इतिहास की अमर बेल

ओसवाल

(ओसवाल जाति का इतिहास)

प्रथम खण्ड

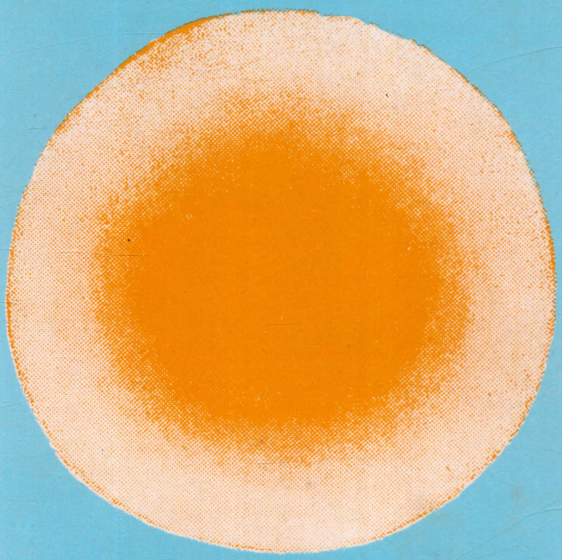

- मांगीलाल भूतोड़िया -

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"आपकी शोध अनुसंधान एवं अनुशीलन भारतीय समाज शास्त्रियों एवं सामाजिक इतिहास के अध्येताओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जिनका सम्बंध ओसवाल परम्परा और उसकी जड़ों और शाखाओं से अंतरंग है, उनके लिये इतिहास के ये पृष्ठ अत्यंत रोचक और मनोरम होंगे।"

— डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
वरिष्ठ अधिवक्ता उच्चतम न्यायालय
सम्प्रति : भारतीय हाई कमिश्नर (इंगलैण्ड)

"सचमुच आपने अत्यंत अध्यवसाय, लगन और परिश्रम से ओसवाल समाज की उत्पत्ति और तज्जज्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सामग्री का गहन अध्ययन किया है। मैं अभिभूत हो गया। इस वैदुष्य का लाभ सबको मिलना चाहिए।—- आपने एक ऐतिहासिक महत्व का काम किया है जिसकी महत्ता वर्तमान और भविष्य दोनों के लिये निर्विवाद है।"

— डा. कल्याणमल लोढ़ा, कलकत्ता

"ओसवाल वंश का इतिहास कई दशकों पूर्व श्री भंडारी ने प्रस्तुत किया था। परन्तु वह श्रीमंत परिवारों का इतिहास था। युग के बदले हुए परिप्रेक्ष्य में ओस वंश की उपलब्धियों के विविध आयामों का यह समग्र आकलन समाज की दृष्टि से ही नहीं, समाज शास्त्रीय दृष्टि से भी आपका एक महत्वपूर्ण अवदान होगा।"

— डा. मूलचन्द सेठिया, जयपुर

"ओसवाल समाज के सम्बंध में ऐसा शोध ग्रंथ देखने में नहीं आया। वस्तुतः यह ग्रंथ एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।.....वृहद् ओसवाल समाज की शक्ति को पहचानने की दृष्टि से यह विशिष्ट उपलब्धि है।"

— श्री कन्हैयालाल सेठिया
साहित्य वाचस्पति

"इस ग्रंथ को लिख कर श्री मांगीलाल भूतोड़िया ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसके लिये मैं उनका समादर करते हुए उनको हृदय से धन्यवाद देता हूँ— भारतीय इतिहास की इस महत्वपूर्ण कड़ी का प्रामाणिक विवेचन हमें यों सुलभ हो गया। यह ग्रंथ पठनीय ही नहीं, अध्ययनीय और सयत्न संग्रहणीय भी है।

—डा. रघुबीर सिंह
भू. पू. महाराजा, सीतामउ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इतिहास की अमर बेल

ओसवाल

(ओसवाल जाति का इतिहास)

(प्रथम खण्ड)

लेखक

श्री मांगीलाल भूतोड़िया

एम.ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्न

प्रकाशक

प्रियदर्शी प्रकाशन

६ठीं पट्टी, पो० लाडनूं-३४१ ३०६ (राजस्थान)

एवं

७, ओल्ड पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट, कलकत्ता—७०० ००१

(फोन : २४८-०२६०, ५३०-६६७८, ४७१-७५१७)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लेखक :
श्री मांगीलाल भूतोड़िया
एम.ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्न
अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, कलकत्ता

प्राक्कथन :
डॉ. रघुवीर सिंह
डी.लिट्., एल.एल.बी.
भू. पू. महाराजा, सीतामऊ

उपोद्घात :
डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी
अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय, नई दिल्ली
सम्प्रति : इंग्लैण्ड मे भारत के हाई कमिश्नर

भूमिका :
श्री शरद कुमार साधक
भू.पू. उपाध्यक्ष, आचार्य कुल, वाराणसी

प्रथम संस्करण – १९८८ (विक्रम संवत् २०४५)
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण – १९९५ (विक्रम संवत् २०५०)
मूल्य – एक सौ पचहत्तर रुपये

© कॉपी राईट के सर्वाधिकार लेखकाधीन

ISBN-81-900389-1-5

मुद्रक :
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
कमच्छा, वाराणसी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

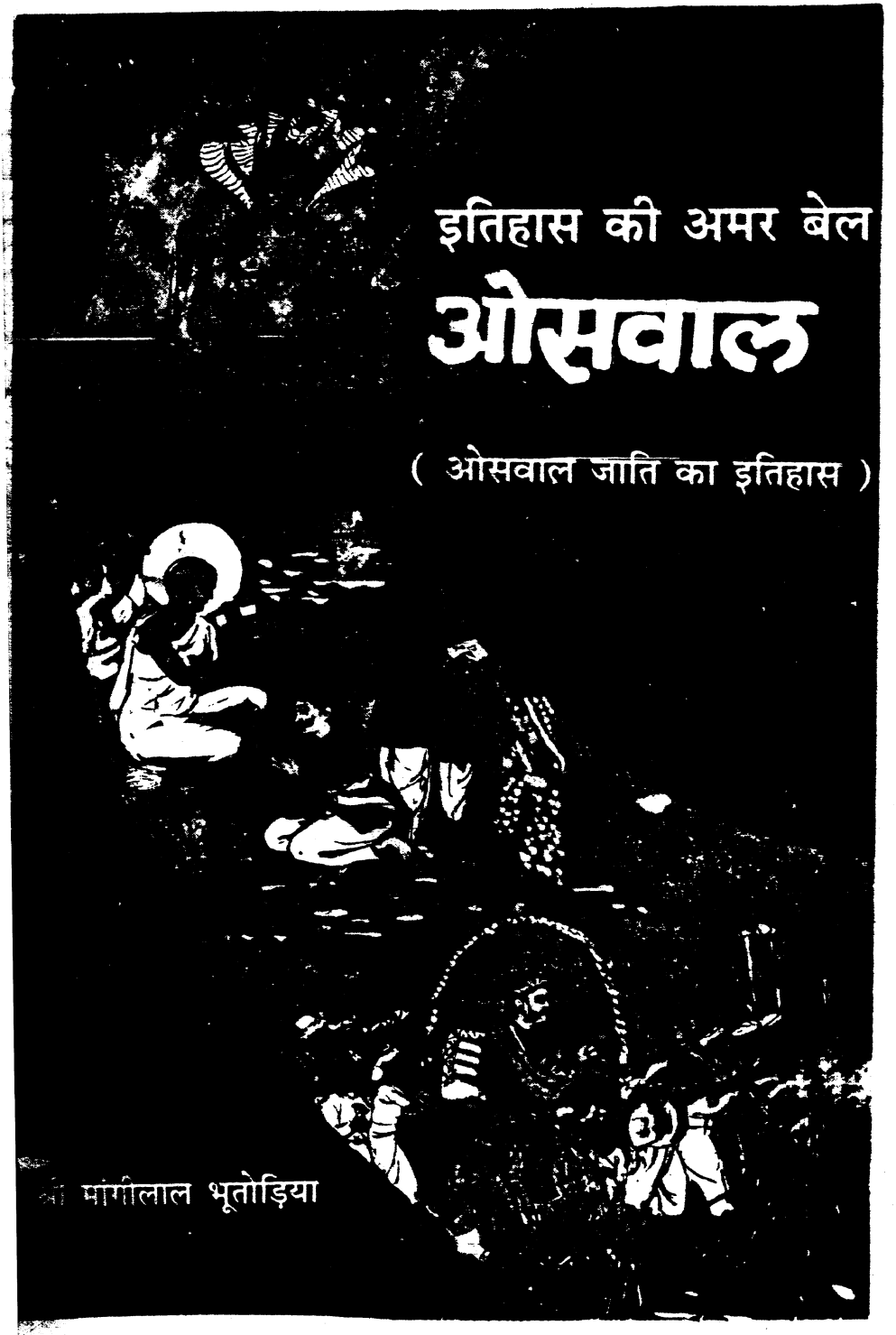

इतिहास की अमर बेल

ओसवाल

(ओसवाल जाति का इतिहास)

श्री मांगीलाल भूतोड़िया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

समर्पण

जब मैंने इतिहास लिखना प्रारम्भ किया—एक ललक थी इसे पूर्ण करने की। यह मेरे लिए एक चुनौती थी। जैसे-जैसे मैं इसमें रमा, मुझे लगा कि यह रत्नगर्भा तो है पर अपरम्पार भी। तब से यह मेरी साधना का अंग बना और धीरे-धीरे आनन्द बन गया। जो अज्ञात है, वह सहज ही आकर्षित करता है। उसे खोलना, समझना प्रीतिकर होता है। उसी अज्ञात को समर्पित है मेरा यह अकिंचन प्रयास।

—मांगीलाल भूतोड़िया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इतिहास की अमर बेल ओसवाल

(ओसवाल जाति का इतिहास)

ग्रन्थ संरक्षक सूची

१. स्व. श्री कंवर लाल जी बेताला	गौहाटी
२. श्री कानमल जी सेठिया,	कलकत्ता
३. श्री पूसराज जी बोथरा,	कलकत्ता
४. श्री बच्छराज जी दूगड़,	कलकत्ता
५. श्री धनपत सिंह जी बैद,	कलकत्ता
६. श्री मांगीलाल जी बिनायकिया,	अहमदाबाद
७. श्री फतहचंद जीकुण्डलिया,	हैदराबाद
८. श्री प्रदीप कुमार विनोद कुमार कुण्डलिया,	कलकत्ता
९. श्री राजेन्द्र सिंह जी दूगड़,	कलकत्ता
१०. स्व. श्री उमरावसिंह जी चोरड़िया,	नई दिल्ली
११. डा. वाइ. एस. बापना,	कलकत्ता
१२. श्री डालमचन्द जी सुराना,	कलकत्ता
१३. श्री मानमल जी भूतोड़िया,	कलकत्ता
१४. श्री सार्दूलसिंह जीभूतोड़िया,	कलकत्ता
१५. श्री राजेन्द्र सिंह जी सेठिया,	कलकत्ता
१६. श्री रूपचन्द जी सिंघी,	कलकत्ता
१७. श्री अभयसिंह जी सुराणा,	कलकत्ता
१८. श्री कन्हैयालाल जी पटावरी,	नई दिल्ली
१९. श्री चन्दनमल जी भूतोड़िया,	कलकत्ता
२०. श्री भँवरलाल जी बैद,	कलकत्ता
२१. श्री विजयराज जी सुराणा,	नई दिल्ली
२२. श्री हुलासचन्द जी गोल्छा,	काठमाण्डू
२३. श्री नगराज जी दूगड़,	काठमाण्डू
२४. श्री नथमल जी कन्हैयालाल बैद	वीरंगज
२५. श्री भौमसिंह जी सेठिया,	काठमाण्डू
२६. श्री पद्मचन्द जी सुरेन्द्र कुमार गोल्छा (फाजिलका निवासी)	वीरंगज
२७. श्री महालचन्द जी ज्योति कुमार, कमल कुमार बैंगानी,	काठमाण्डू
२८. श्री जयचन्द लाल जी आनन्दमल बैद,	काठमाण्डू
२९. श्री लीलाराम जी दूगड़,	काठमाण्डू
३०. श्री श्रेणिक क. लाल भाई	अहमदाबाद
३१. श्री प्रदीप कुमार बैद	अलीपुरद्वार
३२. श्री अजीत कुमार कुचेरिया	बम्बई
३३. श्री एस. मोहनचन्द जी ढढा	मद्रास
३४. श्री के.पी. शाह	लन्दन
३५. श्री सुमेरमल नरपत कुमार नाहटा	छापर
३६. श्री भँवरलाल जी जैन (चोरड़िया)	जलगाँव
३७. श्री राजकुमार डोसी	कलकत्ता
३८. श्री सुरेश कुमार जी श्रीमाल	जलगाँव
३९. स्व. श्री नथमल जी सिंघी	सुजानगढ़
४०. श्री विनोद जी बैद	कलकत्ता
४१. श्री भैरूदान जी बरमेचा	हैदराबाद
४२. श्री कन्हैयालाल जी बरड़िया (बीदासर)	काठमाण्डू

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Ac. Gunratnasuri MS

भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता के सभागार में सम्पन्न ग्रन्थ के विमोचन समारोह में आदरणीय श्री विजय सिंह जी नाहर को ग्रन्थ की प्रथम प्रति समर्पित करती लेखक की सुपुत्री सुश्री निर्मला प्रियदर्शी। चित्र में परिलक्षित समारोह के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी सेठिया, विशिष्ट अतिथि एवं कलकत्ता उच्च न्यायालय के विचारशील माननीय श्री बाबू लाल जैन एवं लेखक।

Jin Gun Aradhak Trust

विमोचन समारोह को सम्बोधित करते हुए प्रो. कल्याणमल लोढ़ा एवं मंच को सुशोभित करते जस्टिस बी. एल. जैन एवं श्री कन्हैयालाल जी सेठिया एवं अन्य।

विमोचन समारोह के संयोजक श्री शरदकुमार साधक के अनुरोध पर साहित्य मनीषी श्री कन्हैयालाल सेठिया ग्रन्थ की हस्ताक्षरित प्रति लेखक की धर्मपत्नी श्रीमती किरण को भेंट करते हुए।

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल कुलरत्न

धन्य हैं आप जैसे सपूत, जिन्होंने सम्पूर्ण ओसवाल जाति की महिमा और गरिमा को इतिहास के पुनीत पृष्ठों पर अल्प समय में एक विशाल ग्रन्थ के रूप में रेखांकित किया। आपका यह अत्यन्त सराहनीय प्रयास शब्दातीत, वर्णनातीत एवं पूर्णरूपेण अभिनन्दनीय है।

इतिहासकार युगस्रष्टा ही नहीं, युगद्रष्टा भी होता है। आपने इस विस्तृत ग्रन्थ द्वारा ओसवाल समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य का जो प्राणवान पुनर्मूल्यांकन किया है और आने वाली पीढ़ियों को जो नूतन संदेश दिया है, उसके लिये जब तक ओसवाल वंश इस धरा पर स्थापित रहेगा एवं परमपूज्य तीर्थंकरों की वन्दना-अर्चना होती रहेगी, तब तक हमारे वंशज आपके चरणों में नतमस्तक होकर आपके चिर ऋणी रहेंगे।

आपकी निःस्वार्थ एवं निस्पृह सेवा अजर-अमर है। अतः हमारी अखिल भारतीय संखलेचा, मंमैया, कांस्टिया, बुचा जनाणी महासभा अति प्रसन्नतापूर्वक और गौरवान्वित होकर इस 'ओसवाल' के विमोचन समारोह की पुण्यमयी बेला में आप श्री को **'ओसवाल कुलरत्न'** उपाधि से विभूषित करती है।

महामन्त्री अखिल भारतीय
संखलेचा मंमैया, कांस्टिया, बुचा, जनाणी महासभा

("इतिहास की अमर बेल-ओसवाल" ग्रन्थ के विमोचन समारोह (२३.११.८९) पर कलकत्ता में लेखक श्री सांगीलाल भूतोड़िया को भेंट किये गये 'अभिनन्दन पत्र' का अंश)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्राक्कथन

भारत चिरकाल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। यही कारण है कि ज क्षति हुई है, तब-तब ऐसे व्यक्ति पैदा हुए, जिन्होंने धर्म की पुनः स्थापना पुनरुत्थान किया। श्रीमद्भागवत में २२ अवतारों का विवरण है, जिनमें जैनों के ऋषभदेव अष्टम अवतार थे। इक्ष्वाकु वंश के भरत चक्रवर्ती उनके समकालं

प्रत्येक धर्म अपनी प्रासंगिकता को स्थापित करते हुए उसके अनुरूप सृ और प्राग्-ऐतिहासिक विकास का विवेचन और धर्म तीर्थ का प्रवर्तन भी कर

यों तो ऋषभदेव के बाद २४वें तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए, जो उ धर्मावलम्बियों द्वारा भगवान् महावीर के रूप में पूजे जाते हैं। परन्तु जैन उपास में जितनी श्रद्धा और भक्ति २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रति है, उतनी महावीर है। यही कारण है कि जैन तीर्थों और तीर्थंकर प्रतिमाओं में सर्वाधिक तीर्थ अं प्रतिमाएँ पार्श्वनाथ की ही मिलती हैं। इसी के फलस्वरूप आचार्य रत्नप्रभ सूरि पा होने के कारण ही प्रतिबोधित होकर संस्थापित हो गये।

जैन धर्म वस्तुतः बहुत ही प्राचीन धर्म है। विष्णु पुराण आदि कई एक पुर धर्म का उल्लेख है। अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का निर्वाण ईसा से ५२७ हुआ था। बौद्ध और जैन धर्मों में यदा-कदा सादृश्य देखने को मिलता है। बौद्ध इसी प्रकार अशोक के शिलालेखों में निर्ग्रन्थों (जैन-संतों) के उल्लेख मिलते हैं। भगवा के जीवन्मुक्त होने के ६०९ वर्ष बाद तदनुसार वि० सं० १३९ में दिगम्बर सम्प्रदाय उ हुई। इन बौधिकों के प्रवर्तक पृथ्वीपुर में जन्मे थे। उधर एक अन्य गाथा के अनुसा स्वामी के निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद श्वेताम्बर सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ था। यों प्रारम्भ जिनकल्पी (दिगम्बर) दीक्षा का ही प्रावधान था। परन्तु कालांतर में कठिनाइयाँ होने (श्वेत) धारण करने लगे, जो श्वेताम्बर कहलाये। देवसेन सूरि कृत 'भाव संग्रह' के विक्रम राजा की मृत्यु के बाद सौरठ देश के वल्लभ नगर में श्वेताम्बर धर्म उदय

जैन धर्म मानने वाली इन दो प्रधान शाखाओं में अनेकानेक पारस्परिक विभेद इन दोनों सम्प्रदायों की देवमूर्तियों के दर्शन से स्पष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार इ धर्मावलम्बियों के कथा-ग्रंथों में बहुत-कुछ अलग-अलग है। धर्म-शास्त्र भी अलग-अ हुए हैं। लेकिन पूर्ववर्ती दिगम्बर और श्वेताम्बर मूर्तियों में बहुत कम अन्तर होता थ इन दोनों शाखाओं में भी अधिक विभेद नहीं था और दोनों मिलकर साधना करते

आजकल दिगम्बर साधु अति विरल हैं, वहीं श्वेताम्बर साधु बहुत दिखाई पड़ जिसका कारण दोनों के दुर्गम और सुगम मार्ग हैं। इन दोनों की मूर्ति पूजा में भी परस्प हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में स्थानकवासी, तेरहपंथी आदि संघों के अनुयायी मूर्ति को नहीं पू

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इन दोनों मुख्य सम्प्रदायों में संघ या गच्छ भेद पाया जाता है। दिगम्बराचार्य अमितगति ने स्व-रचित 'धर्म परीक्षा' में चार संघों का उल्लेख किया है। यथा— १. मूल संघ, २. काष्ठा संघ, ३. माथुर संघ, ४. गोप्य संघ।

श्वेताम्बराचार्य धर्म सागरगणि ने अपने 'प्रवचन परीक्षा' नामक ग्रन्थ में तपागच्छ के सिवाय और भी दस मतों का उल्लेख किया है, जिनमें से चार मत दिगम्बर, पौर्णमीयक, औष्टिक और पाशचन्द आदि जैन धर्म से ही निकले हैं, जिनके बारे में 'प्रवचन- परिक्षा' में स्पष्ट लिखा है।

श्वेताम्बर समाज का एक महत्वपूर्ण वर्ग है, जिसे ओसवाल जाति कहा जाता है। कहा जाता है कि इन ओसवालों की उत्पत्ति जोधपुर से ३२ मील दूर उत्तर-पश्चिम पर स्थित ओसिया नगरी से हुई थी। ओसवाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत-मतांतर प्रचलित हैं, जिनके बारे में इस 'इतिहास की अमर बेल : ओलवाल' ग्रंथ में सविस्तार विवेचन है। ओसवाल जाति का गौरव उसके महान् विश्वभाव के सिद्धांत के कारण ही है, जिसके वश होकर आचार्य रत्नप्रभु सूरि ने उसकी स्थापना की थी। यही नहीं आगे चलकर इस जाति के महान् पुरुषों ने राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी, आश्चर्यजनक कारनामे दिखाये तथा अपनी प्रतिभा और त्याग के बल से राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास को देदीप्यमान कर दिया।

विश्व-बन्धुत्व के सिद्धान्त पर ही श्री रत्नप्रभ सूरि ने ओसवाल जाति की स्थापना की थी और उनके बाद अनेकानेक जैन आचार्यों ने इस जाति की उन्नति के लिए बहुत ही प्रभावशाली चेष्टाएँ कीं, जिनके परिश्रम से अनेकानेक जातियों को ओसवालों में सम्मिलित कर इसमें नये-नये गोत्रों के नाम दिए गये। स्पष्टतया जैन आचार्यों के चमत्कारवाद से ही ओसवाल जाति के कई गोत्रों की उत्पत्ति हुई होगी। कालान्तर में प्रसिद्ध आचार्य बप्प भट्ट सूरि, श्री नेमिचन्द्र सूरि, श्री वर्द्धमान सूरि, श्री जिनेश्वर सूरि, श्री अभयदेव सूरि आदि अनेकानेक जैन आचार्यों नें जैन धर्म की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर जैन धर्म को विशेष महत्त्व प्रदान किया। मध्यकाल में श्री जिनभद्र सूरि और श्री जिनचन्द्र सूरि का विशेष महत्त्व और प्रतिष्ठा रही। श्री हीर विजय सूरि ने मुगल सम्राट अकबर को भी प्रभावित किया था, जिसके फलस्वरूप अकबर ने उनको आमंत्रित कर उनका बहुत आदर-सम्मान किया। उनके साथ उनके कई एक आग्रहों को भी स्वीकार कर पर्युषण पर्व में जीव हिंसा बंद करने के आदेश दिए थे। अकबर ने इन आचार्य श्री को 'जगत्-गुरु' का विरुद भी प्रदान किया था।

इस प्रकार इस पूर्व मध्यकालीन भारत में ओसवालों ने जैन धर्म का महत्त्व ही नहीं बढ़ाया, अपितु उसके विशिष्ट प्रसार और प्रभाव में भी निरंतर वृद्धि की, जिससे श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की इस महत्त्वपूर्ण जाति का परिचय, सांगोपांग वर्णन और विवेचन अत्यावश्यक है। श्री मांगीलाल भूतीड़िया ने इस आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है, अतः

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उनके द्वारा लिखित 'इतिहास की अमरबेल ओसवाल' शीर्षक ओसवाल समाज के इस सचित्र इतिहास का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ।

लेखक ने श्रमण परम्परा की ऐतिहासिकता और धर्मचक्र के महत्त्व का विवेचन करते हुए सम्प्रदायों की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला है। जोधपुर से ३२ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित (२६° ४३' उ०, ७२° ५५' पू०), ओसिया नगरी की संस्थापना का विवरण देते हुए ओसवालों की उत्पत्ति तथा कुलदेवी सचिया माता पर भी सविस्तार विवेचन किया है। ओसिया की प्राचीनता सम्बन्धी नवीनतम शोधों का विवरण देते हुए ओसिया तीर्थ के पुनरुद्धार पर भी विचार किया है। ओसवाल उत्पत्ति के काल-निर्णय में सारे मतों और इतिहासकारों के तर्कों पर भी विचार-विमर्श करते हुए इस तीर्थ के पुनरुद्धार विषयक प्रस्तावों के सन्दर्भ में वर्तमान ओसिया नगरी की पूर्ण जानकारी दी है।

तद्विषयक प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखों सम्बन्धी मान्यता पर विचार कर परमार आदि राजपूत जाति की उत्पत्ति की भ्रांति पर अपना स्पष्ट मत दिया है। इतिहास- लेखन में ओसवालों के इतिहास के विभिन स्रोतों पर अपनी मान्यता प्रकट करते हुए लेखक ने ओसवालों के गोत्रों की स्थापना और विकास सम्बंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। ओसवालों के सामाजिक समीकरणों की चर्चा करते हुए उनके समुचित कार्यों का भी विवरण दिया है, जिससे इस जाति के इतिहास पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। ओसवालों के गोत्रों की स्थापना और विकास के विवरण के साथ माहेश्वरी जाति से आए हुए ओसवालों की भी जानकारी सम्मिलित की गई है। विभिन्न जैनाचार्यों की चर्चा करते हुए स्थानकवासी, तेरापंथी और दिगम्बर सम्प्रदायों के प्रभावी संतों की जानकारी जोड़ दी गयी है। प्राचीन ओसवाल तीर्थों के विवरण देकर ओसवाल इतिहास पुरुषों की भी संक्षिप्त जीवनियाँ और शासन-सम्मानित ओसवालों का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह ग्रंथ ओसवाल जाति सम्बन्धी एक विस्तृत सामग्री-संग्रह बन गया है, जिसके आधार पर ओसवाल इतिहास पर भविष्य में बहुत-कुछ अध्ययन और भरपूर शोध सम्भव हो सकेंगे।

अतः आशा करता हूँ कि यह इतिहास अधिकाधिक प्रसारित ही नहीं होगा, अपितु इसका गहन अध्ययन भी होगा। इस ग्रन्थ को लिख कर श्री मांगीलाल भूतोड़ीया ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसके लिए मैं उनका समादर करते हुए उनको हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि भारतीय इतिहास की इस महत्त्वपूर्ण कड़ी का प्रामाणिक विवेचन हमें यों सुलभ कराया। यह ग्रंथ पठनीय ही नहीं, अध्ययनीय और सयत्न संग्रहणीय भी है।

'रघुबीर निवास'
सीतामऊ (मालवा), ४५८-९९०,
सितम्बर ९, १९८८

-रघुबीर सिंह

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपोद्घात

यह ग्रंथ श्री मांगीलाल भूतोड़िया के अथक अध्यवसाय और अनुशीलन की पुरस्कृति है। इस ग्रंथ में इतिहास और पुरातत्त्व, साहित्य और कला, धर्म और दर्शन, संस्कृति और समाजशास्त्र— इन सबका सार्थक संगम और समन्वय सम्पन्न हुआ है। विद्वान् लेखक ने अपनी दुस्तर अनुसंधान यात्रा में एक सुदीर्घ कालखण्ड के पठारों और पड़ावों का मानक और मनोरम मानचित्र बनाया है। एक पुरातन जाति की जीवन्त गाथा प्रस्तुत करने में प्रमाण और प्रवाद को, साक्ष्य और संभावना को, तथ्य और अनुमान को जोड़ने और आँकने का यह उल्लेखनीय प्रयास है। न केवल इतिहासकार की दृष्टि से बल्कि कवि की संवेदना से लेखक ने भारतीय जीवन के शतदल-पद्मवृन्त पर 'ओस' (शबनम) की तरह सुशोभन ओसवाल जाति के उद्भव और उन्मेष की गाथा प्रस्तुत की है। इस प्रस्तुति में सहृदय आत्मीयता ने विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण को दिशा दी है और बिखरे हुए तथ्यों एवं मतों को एक सूत्र में पिरोने की प्रेरणा भी।

मुझे यह ग्रन्थ संयुक्त राष्ट्रसंघ के स्विट्जरलैंड में जीनीवा स्थित मुख्यालय की एक भित्ति पर सुसज्जित व सुविशाल चित्र की याद दिलाता है। उस बुने हुए चित्र में परिवारों, कबीलों, गाँवों, शहरों, जनपदों, राष्ट्रों और एक विश्व से अन्तर्ग्रथित विकास क्रम की कथा कहने की कलात्मक चेष्टा की गई है। हर बार जब मैं उस चित्र को देखता हूँ तो मेरे मानसपटल पर अनेकताओं में झाँकती हुई मनुष्य जाति की एकता, सांस्कृतिक-समाजिक विभिन्नताओं में बसी हुई मनुष्य की अभिन्नता और इतिहास के क्रम में उभरते और निखरते हुए मानवीय सम्बन्धों की आत्मीयता रेखांकित और आलोकित हो उठती है। मनुष्य का इतिहास इन्हीं सम्बंधों में गुँथी हुई अस्मिताओं की कहानी है। श्री भूतोड़िया जी का यह ग्रंथ उसी कथा-श्रृंखला की एक कड़ी है।

भारतवर्ष में परम्परा से शुद्ध इतिहास की तथ्यात्मक और घटनापरक दृष्टि का अभाव रहा है। भारत में अधिकांश जातियों का इतिहास इस दृष्टि से न्यूनाधिक परिमाण में अभावग्रस्त है। ओसवाल जाति का इतिहास इसका अपवाद नहीं है। विभिन्न साक्ष्य-स्रोत जो संकेत देते हैं उनमें तिथिक्रम एवं अन्य विविध प्रश्नों के अलग-अलग निष्कर्ष प्रकट होते है, अलग-अलग प्रस्थापनाओं और संभावनाओं की प्रतीति उभरती है। विद्वान् लेखक ने उन विभिन्न निष्कर्षों और प्रस्थापनाओं का तरतीब से और तुलनात्मक विवेचन किया है, उनके पक्ष और विपक्ष को तथ्य और तर्क की कसौटी पर रखा है, एवं एक सधे हुए कथाकार की बानगी से सुसंगत तारतम्य का निर्वाह किया है। इसलिए मत-मतान्तर के बीहड़ के बीच लेखक अपना मार्ग कभी नहीं खोता; दिगदिगन्त के सर्वेक्षण में भी लेखक को दिशाभ्रम नहीं होता। एक सर्वांगीण सम्पूर्णता एवं सर्वतोमुखी निरन्तरता का प्रयास इस ग्रंथ को एक परम्परा के यात्रा-वृत्तान्त की तरह रोचक बनाकर प्रस्तुत करता है।

धर्म परम्परा की दृष्टि से ओसवाल जाति का जैन परम्परा से अंतरंग सम्बन्ध रहा है। एक जन-समुदाय के जैनधर्म स्वीकार करने में एवं नई जाति के संगठन या निर्माण के बीच

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्या सम्बन्ध है, और यह निर्माण और संगठन कितना भौगोलिक, कितना धार्मिक, कितना आर्थिक और सामाजिक, कितना जातीय और कितना आनुवंशिक था, इन प्रश्नों का उत्तर निर्णयात्मक रूप से देना संभव नहीं है। ये प्रश्न केवल ओसवाल जाति के इतिहास से ही सम्बन्धित नही; बल्कि मूलभूतरूप से इन प्रश्नों का समाधान भारतीय इतिहास, नृतत्त्वशास्त्र (एंथ्रोपोलाजी) एवं समाजशास्त्र के लिए आधारभूत और अनिवार्य है।

वर्ण-व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में ओसवाल जाति की उत्पत्ति मूलतः क्षत्रियवर्ण से मानी जाती है, यद्यपि मुझे यह लगता है कि शायद भौगोलिक, सामाजिक , आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से एवं पारंपरिक प्रचलन के अनुसार यह संभव है कि इस नई 'महाजन' जाति के निर्माण में राजा, मंत्री, श्रेष्ठि, ब्राह्मण के साथ विभिन्न वर्णों के सदस्य सामूहिक रूप से सम्मिलित हुए हों। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह घटना किसी एक ही दिन हुई हो। हो सकता है यह प्रक्रिया बार-बार या निरन्तर क्रमिक रूप से घटित होती रही हो। यह असंभव नहीं कि इस जाति में क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं वैश्य वर्ण के अतिरिक्त कुछ अन्य भारतीय या भारतीयेतर जातियाँ भी समाहित हुई हों। क्षत्रिय और ब्राह्मण इस नई महाजन जाति में क्यों, कब और कैसे सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने चतुर्विध वर्ण- व्यवस्था में वैश्यवर्ण का अभिधान स्वीकार किया, यह भी एक विचारणीय समाजशास्त्रीय प्रश्न है। मेरी राय में यह संभव है कि अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय वाणिज्य के क्रम में क्षत्रियों, ब्राह्मणों और व्यापारी तथा कृषक-वैश्यों ने नई संभावनाओं को देखते हुए नये व्यवसाय चुने और वे तिजारती काफिलों के सरदार और संरक्षक बने। संभव है कि क्षत्रिय और सार्थवाह वाणिज्य के नये सीमान्त पर एक सूत्र में बंधे और उस समय उन्हें एक नई जाति में गठित होना स्वाभाविक या अनिवार्य लगा हो। यह भी संभव है कि क्षत्रिय और ब्राह्मण के कुछ वर्ग आर्थिक सम्पन्नता के स्रोत सूखने लगे हों और वाणिज्य की संभावनाओं ने वर्ण-व्यवस्था को एक नया मोड़ दे दिया हो। उत्तर भारत में आज कई वैश्य जातियाँ, विशेषतः श्रीमाल (जो वस्तुतः ओसवाल जाति से भिन्न नहीं हैं) अग्रवाल, माहेश्वरी, खंडेलवाल तथा 'खत्री' जाति के ही समान, बल्कि बिल्कुल एक-सी, पृष्ठभूमि प्रतीत होती है।

यह सच है कि ओसवाल जाति के इतिहास में जैनधर्म का प्रभाव बहुत गहरा रहा है। किन्तु धर्म-विशेष के कारण वर्ण-परिवर्तन क्यों आवश्यक हुआ यह स्पष्ट नहीं है। भारतवर्ष में जैन-परंपरा अत्यन्त प्राचीन है, यह एक निर्विवाद सत्य है। भगवान् आदिनाथ ऋषभदेव इस परंपरा के पहले तीर्थंकर थे और भारत के प्राचीनतम साहित्य वेद में उनका उल्लेख मिलता है। उनके बाद एवं भगवान् महावीर से पूर्व जैन परंपरा में बाईस अन्य तीर्थंकर हुए। उन सब के अनुयायी रहे होंगे, यह सुनिश्चित है, किन्तु वे अनुयायी किसी एक जाति या वर्ण के ही रहे हों, यह संदिग्ध है। निर्विवाद रूप से भगवान् नेमिनाथ एवं भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के समय में तदनंतर कई सदियों तक जैन धर्म स्वीकार करने पर किसी व्यक्ति या समुदाय को क्षत्रिय या ब्राह्मण बनना पड़ा है, इसका प्रमाण स्पष्ट रूप से नहीं मिलता है। यह भी संभव है कि जैनधर्म ने जाति की सीमारेखा को नकार कर अपने नए समाजदर्शन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

को आचार और विचार की निष्ठा के रूप में व्याख्यायित करने का सार्थक प्रयास किया हो और इस प्रक्रिया में शायद एक नई जाति का आविर्भाव हुआ हो, जिसका आत्मविश्वास पारंपरिक वर्ण-व्यवस्था से अप्रतिहत रहा।

उल्लेखनीय है कि यद्यपि ओसवाल जाति को 'वैश्य' अभिहित किया गया, इस जाति के कई वंशधर व्यापार और वाणिज्य में अतुल धनसंपदा एवं यश कीर्ति प्राप्त करने के अलावा शासन और सेना में भी संलग्न रहे और उन्होंने अपने आप को निरन्तर तलवार, कलम और व्यवस्था-कौशल का धनी भी सिद्ध किया। राजस्थान एवं गुजरात में ओसवाल जाति के इतिहास से अंतग्रथित इस प्रकार के अगणित और अप्रतिम उदाहरण पग-पग पर मिलते हैं। मध्ययुगीन रियासती राज्यवंशों की आंतरिक राजनीति में ओसवाल जाति के राजपुरुषों ने महत्वपूर्ण सैनिक, राजनैतिक एवं प्रशासनिक भूमिकाएँ निभाई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस जाति के कई सुयोग्य राजकर्मी राज्य वंशों एवं राज्यपरिवारों में व्याप्त पारस्परिक स्पर्धाओं और महत्वाकांक्षाओं के बदलते हुए राजनैतिक माहौल में शासकीय स्थिरता के सर्वाधिक विश्वसनीय और संतुलनकारी शक्ति-केन्द्र सिद्ध हुए। मध्ययुगीन रियासतों में अक्सर राजा को अपने परिवार के सदस्य और नजदीकी रिश्तेदारों के षड्यंत्रों से सावधान रहता पड़ता था और ऐसी स्थिति में ओसवाल जाति के अभिजात मुत्सद्दी वर्ग को शासन का कार्यभार सौंपने में राजकीय असुरक्षा कम होती थी। इस मुत्सद्दी जाति की नीतिज्ञता एवं व्यवहार कुशलता का लोहा सब मानते थे। उनकी स्वामिभक्ति एवं राज्यनिष्ठा बेजोड़ थी। जनमानस में उनकी साख बहुत ऊँची थी। वे बहुधा सामान्य जन के दृष्टिकोण का राज्य प्रशासन में प्रतिनिधित्व भी करते थे। उनमें से कई सैन्यसंचालन में भी निपुण थे। कई ओसवाल परिवारों को बहुत जागीरें मिली हुई थी और सम्मान और सिरोपाव की दृष्टि से वे सामन्ती समाज की प्रथम पंक्ति में बैठते थे। उनकी भाषा, बोलचाल, वेशभूषा, अदबकायदा और रहन-सहन राज्यदरबार के अनुरूप हो चला था। उनमें से कई वंशानुगत रूप से दीवान, प्रधान, फौज बख्शी, मंत्री, राजदूत एवं उच्चाधिकारी हुए। यह क्रम कई सदियों तक चला। राज्य परिवार, व्यापारी वर्ग और सामान्यजन के बीच, राजकर्मी मुत्सद्दी-ओसवाल परिवारों की मध्यस्थता, उनका प्रभाव, उनकी मान्यता और उनकी प्रतिष्ठा परंपरागत वर्ण-व्यवस्था के वास्तविक एवं व्यवहारिक संशोधन को प्रमाणित करते हैं। वर्ण-व्यवस्था की यह संशोधित प्रक्रिया भारतीय समाजशास्त्र और इतिहास के मर्म को समझने के लिए बहुत महत्व की है। ओसवाल जाति के अतिरिक्त भी कई भारतीय जातियाँ ऐसी हैं, जो परम्परा से वैश्य या वणिक वर्ग की मानी गयी, तथापि उनके सदस्य वाणिज्य और व्यापार के अतिरिक्त दूसरी जीवन-चर्याओं में संलग्न हुए एवं अग्रणी रहे। ब्राह्मणों और वैश्यों में कई राजा और सेनापति हुए। क्षत्रियों और वैश्यों में कई विद्वान् विचारक और लेखक हुए। कई ब्राह्मण सफल वणिक हुए। वस्तुतः इन तीन वर्णों से बाहर भी कई भारतीय और भारतीयेतर जातियां रही हैं, जिनकी उत्पत्ति किसी वर्ण विशेष की मूलधारा से प्रमाणित नहीं होती किन्तु जिन्होंने अपना व्यवसाय, वर्ग और वर्ण स्वयं चुना या बनाया। सच तो यह है कि वर्ण और वर्ग के प्रतिबन्ध व्यक्ति की प्रतिभा और स्वतन्त्रता को बन्दी नहीं बना सके।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल जाति की प्रतिभा व्यापार और वाणिज्य में विशेष रूप से उजागर हुई। विशेषतः ओसवाल व्यापारियों ने विपुल संपदा ही नहीं, प्रतिष्ठा भी अर्जित की। उस समय के महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय एवं भारतीय वाणिज्य-मार्गों के केन्द्रस्थलों में उनका प्राधान्य था। उदाहरणतः जैसलमेर कई सदियों तक एक प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। जैसलमेर में ओसवाल श्रेष्ठियों की हवेलियाँ आज भी उनकी समृद्धि, सुरुचि और कलानुरक्ति की साक्षी है। सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी में मुर्शिदाबाद-अजीमगंज-जियागंज में ओसवाल जाति के व्यापारियों ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की। जगतसेठ इसी जाति के होते थे और उनका असर बंगाल में ही नहीं बल्कि मुगल दरबार में भी जाना- माना जाता था। कई समृद्ध ओसवाल परिवार लेन-देन, बैंकिग और वाणिज्य के साथ बंगाल और आसपास में जमींदारी में प्रविष्ट हुए और फिर बंगाल में पाट के वाणिज्य में अग्रगण्य रहे। १८३२ में कर्नल जैम्स टॉड ने लिखा था कि समूचे भारत में नब्बे प्रतिशत बैंकर और व्यापारी मरुदेश के हैं और वे मुख्यतया जैन हैं। प्रवासी ओसवाल जाति मुगलकाल में देशभर में फैल गई थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश साम्राज्य में वाणिज्य का विशेष विस्तार हुआ और उसके साथ-साथ ओसवाल जाति के व्यापारियों ने भी अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ाया। आयात और निर्यात के सभी क्षेत्रों में उनका वर्चस्व था। न केवल बंगाल में बल्कि समूचे मध्यप्रदेश-मध्यभारत क्षेत्र में, बम्बई प्रान्त में, बिहार, उत्तर प्रदेश, मराठवाड़ा, आसाम, मैसूर,मद्रास में प्रवासी राजस्थानी और गुजराती ओसवाल जाति के परिवार बड़े और छोटे वाणिज्य के क्षेत्र में कर्ता-धर्ता थे। गुजरात-सौराष्ट्र से कई परिवार अफ्रीका के अन्य देशों में भी व्यापार के लिए गये। इसी वर्ष (जुलाई १९८८) लेस्टर, इंग-लैंड में निर्मित भव्य जैन मन्दिर और जैन केन्द्र के उद्घाटन के लिए जब मुझे समर्पण-भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया तो यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि सौराष्ट्र के एक हिस्से से आये हुए इंगलैंड में बसे 'ओसवाल' जाति के सदस्यों ने लन्दन के पास एक बहुत विशाल जातीय सम्पत्ति खरीदकर वहाँ देरासर बनाया है। किन्तु उनकी 'ओसवाल' जाति की परिभाषा सौराष्ट्र के केवल एक जिले की परिधि तक परिसीमित है, यह जानकर मुझे और भी आश्चर्य हुआ।

इस परिप्रेक्ष्य में यह भी एक गंभीर समाजशास्त्रीय प्रश्न है कि मूलतः अपने आप को 'ओसवाल' कहने और मानने वाले जाति समुदायों के मूल उद्गम और उन उद्गम स्थानों से देश-देशान्तर में प्रवास के प्रयाण पथ (रूट्स आफ माइग्रेशन) क्या थे, वे प्रयाण-पथ और प्रवास-स्थल क्यों और कैसे चुने गए, और कालांतर में उन प्रवासी समुदायों में परस्पर और मूल उद्गम-स्रोतों के साथ कितने और कैसे सम्पर्क और सम्बन्ध रहे। कब, कहाँ और क्यों वे सम्पर्क सूत्र शिथिल या विच्छिन्न हुए। साथ ही यह भी एक प्रश्न है कि उन उद्गम स्रोतों को छोड़ने और क्षेत्र परिवर्तन या 'देशान्तर' का विकल्प चुनने के क्या कारण थे। क्या वे कारण केवल आर्थिक थे और नई संभावनाओं के लिए ही प्रेरित थे, या कि उनमें राजनैतिक और समाजशास्त्रीय कारण भी थे। क्या यह संभव है कि सामंती व्यवस्थाओं में इस महाजन-जाति के मुसाहिब-मुत्सद्दी-वर्ग के अतिरिक्त दूसरों की वह सामाजिक हैसियत नहीं मिली, इसलिए उन्होंनें देशान्तर में अपना भाग्य आजमाया। पश्चिमी विद्वानों ने इस संभावना का एक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रकार से कुछ अतिवादी, निन्दात्मक एवं अवमूल्यनकारी नामकरण कर दिया। प्रकाण्ड समाजशास्त्री मैक्स वेबर के अनुसार हैतु- विज्ञान (एटियोलोजी) की दृष्टि से भारत के कई साहसिक उद्योगी मूलतः 'पारिया-जन' (Pariah) थे, अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से निम्नवर्ग के और सामाजिक हैसियत से वंचित थे और इसीलिए वे प्रवासी बने। इस प्रस्थापना में एक आंशिक सत्य अवश्य हो सकता है क्योंकि प्रवास का एक मुख्य कारण था, अधिक सम्पन्न आजीविका की खोज। इसका दूसरा पहलू यह भी है कि जिन्हें अपने मूल स्थान में संतोषजनक आजीविका और हैसियत मिल गयी या जिनमें वाणिज्यिक दिलेरी नहीं थी (उदाहरणतः मुत्सद्दी मुसाहिब वर्ग), वे प्रवासोन्मुख नहीं हुए और इसलिए उनका आर्थिक भाग्योदय भी सामन्ती घेरे में सीमित और अवरुद्ध रहा। इस दृष्टि से शायद मैक्सवेबर का सिद्धांत निराधार हो, किन्तु 'पारिया' शब्द का प्रयोग ओसवाल जाति के एवं अन्य वैश्य-जातियों के प्रवासी उद्योगियों के लिए सर्वथा असंगत और अनुपयुक्त है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण और ऐतिहासिक अनुसंधान की दृष्टि से यह निष्कर्ष और प्रस्थापना विचारणीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के बाद भारतीय अर्थ-व्यवस्था ज्यों-ज्यों वाणिज्य से उत्पादनशील औद्योगीकरण की ओर उन्मुख हुई, राजस्थानी ओसवाल जाति दूसरी वणिकजातियों की तुलना में पिछड़ती गयी। इसका कारण यह था कि राजस्थानी जैन ओसवाल जाति में अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धांतों के कारण औद्योगीकरण के प्रति एक उदासीनता और झिझक थी। मैं इस प्रस्थापना से अपने आप को सहमत नहीं पाता, यद्यपि इसमें इस हद तक कोई संदेह नहीं कि उद्योग और वाणिज्य के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनसे प्रत्यक्ष हिंसा या सामिष आहार के कारण अधिकांशतः न केवल जैन बल्कि वैष्णव उद्योगपति भी परहेज करते रहे हैं। किन्तु यदि जैनधर्म के प्रतिबन्ध उद्योग में इतने अवरोधक होते तो गुजरात के ओसवाल- श्रीमाल जैन उद्योग में अग्रणी कैसे हुए। वैष्णव वणिक- वर्ग का औद्योगिक वर्चस्व कैसे स्थापित हुआ। कस्तूरभाई लालभाई के परिवार ने बम्बई , गुजरात में कैसे औद्योगिक कीर्तिमान स्थापित किए। कलकत्ता में सरदारशहर के तेरापंथ जैन सम्प्रदाय के वरिष्ठ श्रेष्ठि चैनरूप संपतराम (दूगड़) का उदाहरण अक्सर यह इंगित करने के लिए दिया जाता है कि जैनधर्म के गहरे संस्कार या किसी धार्मिक प्रतिबोध के कारण उन्होंने अपना धंधा बन्द या सीमित कर दिया और अपने सहयोगियों को हस्तांतरित कर दिया। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उनके सहयोगी, जिन्होंने उनका व्यापार (जो भारत में उस समय प्रमुख था) लिया, वे भी (जैसे बीकानेर का रामपुरिया परिवार) जैन परंपरा मानने वाले थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अपरिग्रह के बारे में यद्यपि वैष्णव दृष्टिकोण भिन्न है, किंतु अहिंसा को लेकर वैष्णव परम्परा और जैन-परम्परा में बहुत साम्य है। वस्तुतः महात्मा गांधी उन दोनों परम्पराओं से समन्वित अहिंसा और अपरिग्रह के सबसे बड़े समकालीन प्रतिनिधि और प्रवक्ता थे। मेरी मान्यता है कि कलकत्ता में ओसवाल जाति के उन्नीसवीं सदी के बाद आपेक्षिक रूप से पिछड़ने का एक कारण यह था कि उनके अग्रणी व्यापारी पहले से ही बहुत सम्भ्रांत और समृद्ध हो चले थे। उनमें से कुछ परिवारों ने जमींदारों की जीवन-शैली अपना ली थी। कई ओसवाल व्यापारी बहुत देखकर चलनेवाले और फूँक-फूँककर कदम रखने वाले थे। उनमें से कई नये उद्योगों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के प्रति उदासीन थे और फिर दूसरी वणिक जातियों के प्रतियोगी परिवार एक नई स्फूर्ति और ऊर्जा लेकर सामने आये। वस्तुतः वे दूसरी वणिक जातियाँ भी ओसवाल जाति से भिन्न नही हैं।

ओसवाल जाति का पिछली कुछ सदियों का इतिहास तो प्रामाणिक आधार पर लिखा जा सकता है किन्तु इस जाति के उद्‌भव की तिथि या कालक्रम निर्धारित करना अत्यंत दुष्कर, यद्यपि रोचक कार्य है ठीक उस यात्रा की तरह जिसका मार्ग उसके मंजिले - मकसूद से कम नहीं होता। व्यापक रूप से यह मान्यता प्रचलित है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि के प्रतिबोध और प्रभाव से भिन्नमाल (भीनमाल) में एक वृहत् समुदाय ने जैन धर्म अंगीकार किया और वे लोग (श्रीमाल) अभिहित हुए। भिन्नमाल को पहले श्रीमालनगर के नाम से जाना जाता था। प्रचलित लोककथा के अनुसार भिन्नमाल के राजा के छोटे भाई उत्पलदेव (उप्पलदेव) और मंत्री के छोटे भाई उहड़ ने आधुनिक जोधपुर के पास 'उएस' भूमि पर 'उएसपट्टण' या उकेशपुर या उपकेशपुर जिसे ओसिया के नाम से जाना जाता है, नाम का नगर बसाया, जहाँ भिन्नमाल से सभी वर्णों के कई सहस्त्र लोग गए। आचार्य स्वयं प्रभुसूरि के पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने 'उएस' भूमि में अपने गुरु की परंपरा का निर्वाह किया और बारह योजन में फैले हुए भूखंड में एक बड़े जन-समुदाय को प्रतिबोध देकर जैन परंपरा में दीक्षित किया। इस प्रकार भीनमाल और ओसिया इन दो नगरों के बीच श्रीमाल और ओसवाल जातियों का प्रादुर्भाव और नवोन्मेष हुआ। प्रारंभ से ही उनके बीच अंतरंग सौहार्द्र और पारस्परिकता का संबंध बना। ओसिया में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उद्‌बोधन के प्रभाव में नामान्तर से 'उपकेशपुर', 'उएसपट्टण' या ओसिया के राजा उत्पलदेव, उनके मंत्री उहड़ एवं प्रजावर्ग ने समवेतरूप से जैनधर्म परंपरा को स्वीकार किया और परिणामतः वर्ण व्यवस्था से परे हट कर ओसवंशीय महाजन जाति की संरचना हुई, जिसमें विभिन्न वर्ण और वर्ग सम्मिलित हुए। भिन्नमाल से आये हुए श्रीमाल भी उस समूह में रहे होंगे । किन्तु प्रश्न यह है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि का समय क्या था?

श्री भूतोड़िया ने चौदहवीं शताब्दी में रचित 'उपकेशगच्छ चरित्र', 'उपकेशगच्छ पट्टावली' एवं 'नाभिनदन जिनोद्धार' यति श्रीपालचन्द्रजी द्वारा रचित 'जैन संप्रदाय शिक्षा' तथा यति श्री रामालजी द्वारा रचित पुस्तक 'महाजन वंश मुक्तावली' तथा भाटों एवं भोजकों के उद्धरणों और कवित्तों का विश्लेषण करते हुए यह बताया है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि भगवान् पार्श्वनाथ के पाँचवें पट्टधर थे और आचार्य रत्नप्रभसूरि छठे पट्टधर थे। इस मान्यता के अनुसार श्रीमाल- ओसवाल जातियों की उत्पति ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ठहरती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीमाल-ओसवाल जातियाँ भगवान् पार्श्वनाथ की परंपरा से अधिक निकट है और यह भी संभव है कि कालांतर में हुए दिगबर-श्वेताम्बर पृथकत्व में इस परंपरा का कुछ प्रभाव रहा हो। किन्तु श्री भूतोड़ियाजी के ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी-संबंधी निष्कर्ष का मुख्य आधार है— कुछ बही-भाटों एवं चारणों द्वारा प्रयुक्त शब्द 'सम्वत बीए बाईसे' एवं 'वीरात् ७० वर्षे'। अन्य बही-भाटों एवं चारणों ने ओसवाल जाति की उत्पत्ति को आबूपर्वत पर यज्ञ के अग्निकुण्ड से प्रकट चार क्षत्रिय वीरों के साथ जोड़ते हुए यह बताया है कि उनमें से एक परमारवंश के पूर्वज हुए और उसी वंश में जूनागढ में उपलदेव का जन्म हुआ और उन्होंने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कालांतर में ओसीया में एक नया राज्य स्थापित किया, सर्पदंश से मृत उनके पुत्र भगवान् सिंह को रतनप्रभसूरि जी ने पुनर्जीवित किया और इसलिए वहाँ के सब लोगों ने शैव मत छोड़कर जैनधर्म अंगीकार किया।

इस प्रकार की कई लोककथाएँ और किंवदंन्तियाँ बही-भाटों एव चारणों के छन्दों और कवित्तों में मिलती हैं किन्तु यह सर्वविदित है कि ये छंद, कवित्त इत्यादि पिछले कुछ तीन सौ चार सौ वर्षों से अधिक पुराने नहीं हैं और वे जिस भाषा और लहजे में लिखे गए हैं, उस आधार पर ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक रूप से ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी का कालनिर्णय उचित नहीं प्रतीत होता। यह सही है, लोकसाहित्य की परंपरा स्मृतियों और मान्यताओं की मंजूषा है किन्तु जो कथानक है, घटनाक्रम है, वे ओसवाल जाति के उद्‌भव के लिए ईसापूर्व की पाँचवीं शताब्दी का सुनिश्चित संकेत नहीं देते। मेरे विचार में जैन ओसवाल जाति के उद्‌भव का समय निश्चित रूप से नैणसी मूथा की पुस्तक 'मारवाड़ रे परगना री विगत' में दी गई जैन देरासर की प्रतिष्ठा के लिए दिए गए वर्ष संवत् १०३३ से पूर्व का रहा होगा किन्तु अब तक उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर यह आश्वस्त होकर नहीं कहा जा सकता कि यह तारीख भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के ७० वर्ष बाद ही पड़ती है। इस कालक्रम के निर्णय में सचिया माता का मंदिर एवं दूसरे पुरातात्विक सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं , ऐसी मेरी मान्यता है। मुझे यह भी लगता है कि दैवी के अभिशाप, योगविद्या से उत्सृष्ट मायावी सर्प या वास्तविक नाग द्वारा राजकुमार या मंत्रीपुत्र को काटना और जैन आचार्य द्वारा उनका बचाया जाना, कुछ ऐसी किम्वदन्तियाँ या स्मृतियाँ हैं जिनकी उलझनों में कहीं ओसवाल जाति की उत्पत्ति के कालचक्र का गूढ़ तथ्य भी छिपा हुआ है। सामाजिक रूप से अतीत से भी अधिक वर्तमान और भविष्य पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि हमारे समकालीन भारत में आज भी अनेकता में एकता का सपना अधूरा है, जो अनेकताओं और उनके अतीत की अस्मिताओं की सर्वथा नकारने से पूरा नहीं हो सकता।

वस्तुतः ओसवाल जाति के उद्‌भव और उत्कर्ष को जानने, समझने और सत्यापित करने के लिए इतिहास, नृतत्व, पुरातत्व, साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, संप्रदाय, अर्थ, समाजशास्त्र और राजनीति का समन्वित एवं सम्मिश्रित विश्लेषण और विवेचन अनिवार्य है। श्री भूतोड़ियाजी ने इस पुस्तक में गहरी एवं बहुमुखी जिज्ञासाओं को जगाया है। उन जिज्ञासाओं का समग्र-सम्पूर्ण दृष्टि से संपन्न समाधान सुझाने का भगीरथ प्रयास वर्षों तक इस विषय के शोध, मंथन और बहुआयामी अवगाहन और समन्वय की अपेक्षा करता है। मैं श्री मांगीलालजी भूतोड़िया को हृदय से सविनय, सादर साधुवाद देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि उन्होंने जो प्रस्थापनाएँ और संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं, उन पर निकट भविष्य में, और भी गहरा उत्खनन और अनुशीलन होगा। श्री भूतोड़िया जी का यह ग्रंथ उस उपक्रम के मार्गदर्शन के लिए एक मशाल की तरह प्रज्ज्वलित रहेगा और जगमगाता रहेगा।

डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
(भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता
सम्प्रति : इंगलैण्ड में भारत के हाई कमिश्नर)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भूमिका

अत्यन्त प्राचीन और देश-विख्यात ओसवाल समाज का इतिहास अभी है कहाँ। वह तैयार हो रहा है। उसकी एक प्रस्तुति इस ग्रंथ में है। इसीलिए लेखक ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना और सापेक्षिक सांस्कृतिक परिवेश व्याख्यायित करना लेखन का अंग है।

लेखक ने अपने यथार्थ स्वरूप पहचानने की प्रक्रिया में इतिहास को जीने का प्रयास किया है। वैसे हम सब वर्तमान इतिहास को जीना चाहते हैं। हमारी जिजीविषा में तालमेल बिठाने वाला दर्शन प्राग्-ऐतिहासिक काल में ऋषभदेव ने दिया जो जैनों के प्रथम तीर्थंकर हैं। 'संस्कृति के चार-अध्याय' में श्री रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि--"ऋषभदेव का उल्लेख ऋग्वेद में है। विष्णु पुराण और भागवत् का भी कहना है कि दशावतार के पूर्व होने वाले अवतारों में से एक अवतार ऋषभदेव हैं। उनकी परम्परा में जो लोग अहिंसा तथा तपश्चर्या के मार्ग पर बढ़ते रहे, उन्हीं ने जैन धर्म का पथ प्रशस्त किया।" ऋषभदेव मूलतः समाज-वैज्ञानिक थे। उन्होंने हिमालय से हिन्द महासागर तक फैले इस विस्तृत भूभाग में रहने वाली जनता की भाषा- भूषा, रुचि-शुचि का अध्ययन किया और सबके जीवन को निरापद रखने के लिए तीन बातें सिखायीं : (१) असि (शस्त्र) (२) मसि (शास्त्र) (३) कृषि। हर स्त्री-पुरुष से अपेक्षा रखी कि वह उपार्जन में हिस्सा लेने के साथ-साथ शस्त्र-शास्त्र में पारंगत बने।

ऋषभदेव के पुत्र भरत ने इस देश को संगठित किया और भारतवर्ष नाम दिया। उसके बाद असि-संचालन में प्रवीणता-प्राप्त लोग क्षत्रिय बन बैठे। मसि पर आधारित वर्ग ब्राह्मण कहलाने लगा। कृषि में लगने वाले वैश्य हो गये। सब अलग-कबीलों के रूप में कार्य करने लगे। कार्य- विभाजन के अनुरूप उनकी पहचान के लिए मनु ने जाति सूचक नाम रखे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। समय के साथ इन चारों जातियों की इतनी उपजातियाँ हो गयी कि भारतवर्ष जातियों का 'अजायब घर' बन गया। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार "अलग- अलग जातियाँ होते हुए भी भारत में मौलिक एकता रही, उससे रंग, भाषा, वेष-भूषा और पूजोपासना का अतिक्रमण होता रहा।"

दस हजार वर्ष पूर्व इस भूमण्डल में पर रहने वालों की संख्या लगभग तीन करोड़ थी। जनसंख्या बढ़ोतरी की दर ०.१ प्रतिशत थी। जीविकोपार्जन में स्पर्धा का अभाव था। सब उत्साहपूर्वक काम करते थे। लेकिन वेद-उपनिषद और श्रुति-स्मृति के नाम पर फिर लोग काम से जी चुराने और पुरखों के नाम से प्रतिष्ठा चाहने लगे। उन्होंने शस्त्र-शास्त्र का दुरुपयोग कर बहुसंख्यक समाज को अपनी रियाया बना लिया। रियाया ने समझा कि क्षत्रिय हमारा रक्षण करेंगे और ब्राह्मण शिक्षण देंगे। किन्तु रक्षण-शिक्षण कहाँ हुआ। मात्र बिना खटे खाने वालों की जमात बढ़ती गयी। अरक्षित और अशिक्षित जनता शासित रही। शासक क्षत्रिय नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजामेध यज्ञ कर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करने लगे। ब्राह्मणों ने उनका भी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शोषण किया। हालात यहाँ तक पहुँचे कि उनकी तुष्टि के लिए राजा हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी तारामती तथा पुत्र के साथ पशुओं की भाँति काशी के बाजार में बिकना पड़ा। बिकवाने वालों की ज्यादतियों के खिलाफ किसी का मुँह नहीं खुला। जनता की इतनी बुजदिली देख-सुन-कर कालान्तर में काशी का राजकुमार पार्श्वनाथ उठा और उसने पुरोहितों से मोर्चा लिया। कमठ के साथ पार्श्वनाथ का ऐतिहासिक संघर्ष हुआ। पार्श्वनाथ की हार हुई--ऐसा श्रद्धालुजन भले ही न मानें, लेकिन यह कटु सत्य है कि उस संघर्ष के परिणामस्वरूप उनका काशी से महाभिनिष्क्रमण हो गया। तब उन्होंने जनशक्ति खड़ी करने के लिए गाँव, नगर, जंगल, पहाड़ों की यात्रा की। वन्य-जातियों को प्रशिक्षित किया। नागजाति उनकी आत्मीयता पाकर निहाल हो गयी। असुर उनके सम्पर्क में आकर आततायीपन छोड़ बैठे। कोल, मुण्डा आदि आदिम जातियों ने भी समाज में स्थान पाया। इस तरह पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण को निकट लाने का और समान हैसियत में काम करने का आधार बना। पार्श्वनाथ ने जैनों के तेइसवें तीर्थंकर के रूप में जन जागरण का अभियान चलाकर मनुष्य को मनुष्य की हैसियत से जीने की अनुकूलता दी और पशु-पक्षी तथा प्रकृति से आत्मीयता कायम की। उसे इतिहास की पहली धर्माधारित सामाजिक क्रांति कहा जा सकता है।

पार्श्वापत्य आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने उस क्रांति के अनुरूप आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन और विधि-विधानों का प्रावधान कर संगठित समाज खड़ा किया, वही 'ओसवाल समाज' है।

ओसवालों की आचार-संहिता में मुख्य बातें निम्न हैं-- (१) मांसाहार न करना (२) मद्यपान आदि व्यसनों से दूर रहना (३) भोगभूमि को कर्मभूमि में बदलने की कोशिश करना (४) दान-शील-तप-भावना को दिनचर्या का अंग बनाना। (५) अरिहंत-सिद्ध-साधु और धर्म की उपासना करना।

ओसवालों का दीक्षा मंत्र है 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं'। इस मंत्र से योग्यता प्राप्त करने तथा योग्य व्यक्तियों का आदर करने की शिक्षा मिली। अरिहंतों ने समाज की अविरोधी जीवन-व्यवहार की दिशा में बढ़ाने का कार्य किया। सिद्धों ने परमहितकारी चिन्तन और चरित्र से सिद्धि प्राप्त करने की विधा स्पष्ट की। तदनुरूप क्रियाशील रहने और रखने की जिम्मेदारी आचार्यों ने ली। पठन-पाठन उपाध्याय करवाने लगे। साधुओं ने सहजीवन को निरापद रखा। इस तरह सज्जनों का संगठन और सज्जनता का संवर्धन हुआ। समाज में एक दूसरे को सहने की, समझने की आदत बनी। स्याद्वाद-अनेकान्तवाद के आधार पर जीवन-व्यवहार कर यह समाज तीर्थ बन गया। तीर्थकर महावीर का स्मरण कर इसीलिए कहा जाता हैः 'सर्वापदामन्तकरं निरंतं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव'।

पार्श्वनाथ के चिन्तन को युगानुरूप आयाम देकर महावीर ने जीवन और जीवजगत के प्रति सामाजिक दायित्व का बोध कराने के लिए १२ व्रत बनाए, जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कृषि कार्य, उद्योगों की सीमा, पशुओं के प्रति किए जाने वाले व्यवहार आदि की आख्या है। इन व्रतों के कारण केवल भक्ति, केवल ज्ञान या केवल कर्म से अपना जीवन सफल समझने वालों का मोह भंग हुआ। सबमें समग्र जीवन जीने की अभीप्सा पैदा हुई। 'सम्यक् ज्ञान- दर्शन- चरित्राणि मोक्ष मार्गः' । समग्र जीवन जीने वालों ने प्रतिदिन स्वाध्याय, समता और सेवा करने का व्रत लिया। व्रतों की कसौटी हैः श्रम, सम (समता) और शम (शांति)। इस कसौटी पर खरे उतरने वाले श्रमणों और श्रमणोपासकों ने मनुष्यता को इतना ऊँचा उठाया कि उनकी कर्म-कौशल ही योग बन गया एवं योगियों के लिए पत्थर, पहाड़, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी आदि विभूति हो गये। भारत का स्वर्ण काल उन्हीं की उपलब्धि है।

पाँच हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष असर तत्कालीन मिस्री, सुमेरी, इरानी, यूनानी सभ्यताओं पर पड़ा, जिसे इंगित कर ए० म्यूबास ने लिखा है : 'भारत विश्व का पालना है। उसने अपनी संतति पश्चिमी देशों में भेजकर भाषा, विधान, नैतिकता, साहित्य और धर्म हमें पैतृक संपत्ति के रूप में प्रदान किये हैं।'

इतिहासकार जानते हैं कि प्लेटो से पूर्व यूनान में पूरी अराजकता व्याप्त थी। उसके गुरु सुकरात का ध्यान सामाजिक-परिवर्तन और ग्रीक युवकों के नव निर्माण की ओर गया। उसने नैतिकतावाद को आधार बनाकर सामाजिक पुनर्रचना का उपक्रम किया, जो उस समय के चरित्रहीन यूनानी शासकों को स्वीकार नहीं हुआ। फलस्वरूप उन्होंने सुकरात की हत्या कर दी। लेकिन उसके शिष्य प्लेटो को बराबर इसकी चिंता रही कि कैसे ग्रीक को संगठित किया जाय। उसने आदर्श समाज की रूपरेखा बनाई, जिसमें तीन वर्ग रखेः (१) चिंतक (२) योद्धा (३) दास। प्लेटो ने चिंतकों के लिए कठोर अनुशासन व विधि-विधान बनाया। योद्धाओं और दासों को भी मर्यादाओं में बांधा। इस तरह यूनान के परस्पर लड़ने वाले राज्यों को तोड़कर उसने एक विशाल ग्रीक राज्य स्थापित करने की कल्पना की। अपने जीवन काल में वह सफल नहीं हुआ। किन्तु उसके अन्तेवासी अरस्तू ने अपने शिष्य सिकन्दर महान् की सहायता से उस कल्पना को चरितार्थ किया। ईसाई धर्म प्रभाव से वह व्यवस्था कालान्तर में टूट गयी। लेकिन प्लेटो और अरस्तू के विचार यूरोप के समाज पर आगे दो हजार वर्षों तक एक ढंग से अपना प्रभाव दिखलाते रहे।

दूसरी ओर अरब भी इस विचार से अप्रभावित नहीं रहे। वहाँ मुहम्मद साहब के बाद जाति-व्यवस्था खड़ी हुई, जो धीरे-धीरे शाखा-प्रशाखाओं में विकसित हुई। भारत आते आते मुसलमानों में इतना भेद हो गया कि उनके आपसी खान-पान, शादी-विवाह, नमाज के तौर-तरीके, मस्जिदों की बनावट आदि में एकरूपता नहीं रही है। आज हालत यह है कि मुसलमानों की ७२ उपजातियाँ हैं, जिनमें परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं है।

यूरोप में ईसाई धर्म के प्रभुत्व के बाद जब चर्च और पोप का प्रभाव बढ़ा , तब ईसाई समाज में विद्रोह हुआ और प्रोटेस्टेंट अस्तित्व में आये । उनमें इतना विरोध रहा कि वे रणक्षेत्र में अपने विरोधियों को जलती आग में जला देने से भी नहीं चूके। यह धर्माधारित जातीयता का जनून है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारत में जातिगत जनून इस सीमा तक नहीं पहुँचा , उसके मूल में ओसवाल है। ओसवालों की सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक सूझ-बूझ को महावीर ने सराहा और स्पृश्यास्पृश्य भावना को नकार दिया।

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी जीवनगाथा में विभिन्न जातियों तथा क्षेत्रों के इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह स्थापना की है कि इन जातियों के विकास का सम्बन्ध मूलतः सामाजिक स्तरीकरण या अस्पृश्यता से नहीं है। वह तो किसी कबीले या कुटुम्ब या वंश के श्रेष्ठ महापुरुषों से है। सामूहिक रूप से विचार करने पर उसका सम्बन्ध उत्पादन प्रणाली से है। लेकिन कालान्तर में ऐतिहासिक और सामाजिक घटना-क्रम तथा वैचारिक विरोधों के कारण विकृति उत्पन्न हुई और वंश तथा उत्पादन से प्रभूत गोत्रों या कबीलों ने अस्वभाविक भेद खड़े कर दिए, जिसके चलते समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और धर्म क्रिया-काण्ड बन कर रह गया।

डा० मोहनलाल तिवारी ने तत्कालीन परिस्थिति का आकलन करते हुए स्पष्ट किया है कि उत्पादन के साधनों तथा अधिकारों के पदों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य काबिज हो गये, जो ३० प्रतिशत से अधिक न थे। उन्होंने ७० प्रतिशत शूद्रों को श्रमजीवी दास बना दिया। पश्चिम में दास व्यक्ति रूप में होते रहे लेकिन भारत में समूह का समूह नीची जाति में पैदा हो कर दास बनता रहा है। दासों के समूह ने उत्पीड़िक वर्ग को बहुत आराम दिया। पर देश की पराधीनता का कारण भी वही बना। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय स्वतन्त्र नहीं रह सके और कर्मभूमि को भोगभूमि में बदलने वाली संस्कृति पनप गयी।

एक जातिगत सर्वे के अनुसार माना जाता है कि भारत में छः हजार जातियाँ हैं। उनमें प्रत्यक्ष उत्पादन में भाग लेने वाले ब्राह्मण १ प्रतिशत, क्षत्रिय १ प्रतिशत, वैश्य ७ प्रतिशत और मुसलमान ७ प्रतिशत हैं। ऐसी अनुत्पादक जातियों का भविष्य क्या है।

भारत जैसे विकासशील देश में १० से १५ प्रतिशत की दर से जनसंख्या बढ़ रही है। उत्पादन घट रहे हैं। ऐसी स्थिति में ८० करोड़ भारतीयों को युगबोध कौन कराये। श्री मांगीलाल भूतोड़िया ने इस प्रश्न का उत्तर खोजने हेतु वि० पू० ५००० से वि० स० २०३० तक की इतिहास यात्रा की और असि, मसि, कृषि से आचार्य ऋषभ की संतति के रूप में ओसवाल समाज को प्रस्तुति दी है। ओसवाल व्यवछेदक नहीं हैं, समावेशक हैं। 'समानशील-व्यसने षु सख्यम्' के अनुसार उन्होंने अपने जैसे रहने सहने वालों को अपनाया और सबकी पहचान के गोत्र का निर्धारण कर इतिहास की इस अमर बेल को पल्लवित-पुष्पित रखा है।

अमरबेल के संरक्षक ओसवालों ने साहित्य-संगीत, कला-कौशल, व्यापार-व्यवहार, राग-रंग, पर्व-त्योहार की जड़ें 'जीओ और जीने दो' तथा 'जिलाओ और जीओ' के भाव जल से सींची। उनके ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन होने से पूर्व वे परंपरा से हटकर खड़ा रहने का साहस खो बैठे और परंपरा से हटकर वैश्य कहलाने लगे। यथास्थिति वादियों ने संस्कृति के गतिशील रथ को विपरीत दिशा में मोड़कर भले ही जातीय समीकरण कर लिया,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किन्तु यह प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा है कि विचार पूर्वक शस्त्र त्यागने, योजनापूर्वक निष्क्रिय चिन्तक बना रहने से असहमति जताने, बिना विवेक के किया जानेवाला व्यापार छोड़ने और सेवा को सर्वोच्च पदों की प्राप्ति का उपाय मानने वालों को जिस दिन आत्मबोध हो जायगा; उस दिन क्या होगा? यह प्रश्न अपने आप में चेतावनी है और चुनौती भी, जो इस ग्रन्थ का अधिष्ठान है। इस ग्रन्थ के दो खंड हैं। प्रथम खंड में ओसवाल प्रणेता जैन धर्म, जैनाचार्य, तीर्थ और विभिन्न गोत्रों के साथ मनीषियों की चर्चा है। द्वितीय में सहजीवी जमातों, सामाजिक समीकरणों और आरोहों-अवरोहों का विवरण है। यह विवरण इतना सजीव है कि पढ़ते-पढ़ते पाठकों का हृदय इतिहास की अपेक्षा पूरी करने के लिए मचल उठेगा। जहाँ उन्हें अपनी कमियाँ दिखायी देंगी, वही उनसे सबक ले कर आगे बढ़ने की भी स्फूर्ति मिलेगी। ग्रंथ के एक-एक अक्षर में जीवन-संगीत है। इस संगीत से स्पंदित होकर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में पाठक स्वयं कह उठेंगे कि 'पूर्व कालीन संस्कृति के जो निर्माणकारी तत्व हैं, उन्हें लेकर हम काम में लगें और नये इतिहास का निर्माण करें। इसी प्रकार भूतकाल वर्तमान का सार बन कर भविष्य के लिए उपयोगी बनता है।'

'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' यह ओसवालों का परिचय है। वे कर्मशूर हैं, धर्मशूर भी। वे रणक्षेत्र में जूझ सकते हैं, तो जीवन रण में भी विजयी हो सकते हैं। उनमें राग है, विराग भी। भोग को त्याग से अनुस्यूत रखने तथा विलास को व्यसनों से मुक्त रखने की सीख वे जन्म घूँटी के साथ साथ पाते हैं। जहाँ भी पुरुषार्थ दिखाने का अवसर है, वहाँ पहुँचते हैं और भोर की किरण निकलने से लेकर रात्रि के प्रथम प्रहर तक खटते हैं। औसत आदमी की तुलना में दुगुना खटना उन्हें लाभ देता है तो विध्वंस की जगह विकास परक चिंतन-चर्या से वे शुभ पाते हैं। विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला या ऐसी ही अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में दान देने से उनको संतुष्टि मिलती है । अतः २१ वीं सदी में कदम रखते समय उन्हें यह याद रखना है कि विचारों की दृष्टि से वे विश्व-मानव हैं, सेवा की दृष्टि से भारतीय हैं, पहचान की दृष्टि से राजस्थानी हैं, प्रत्यक्ष कार्य की दृष्टि से अमुक-अमुक गाँव, नगर या मुहल्लों के निवासी हैं। परस्पर पूरक रहने की दृष्टि से गोत्र विशेष के हैं। कोई गोत्र, संप्रदाय, भाषा, प्रदेश या देशदुनिया उनकी मंजिल नहीं है। सब पड़ाव हैं। जहाँ रुक कर वे विश्राम लें और विराट् की ओर अग्रसर होने की अपनी यात्रा जारी रखें क्योंकि उनकी प्रतिबद्धता अहिंसा के साथ है। गांधीजी के अनुसार 'अहिंसा जीवन का ऐसा रास्ता है, जिस पर सारी मनुष्य जाति स्वभावतः परन्तु अनजाने आ रही है।' आने वालों को अपनाना, शाकाहार को वैज्ञानिकता बताना, व्यसनों का परिहार करने में सहयोग होना, अपने-अपने आग्रहों पर अड़े रहने वालों को दूसरों के विचारों का कद्रदां बनानां तथा आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में उत्पन्न हुई समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान सुझाना और पुरुषार्थी जनों, पशु-पक्षियों व प्रकृति को एक दूसरे का शोषक नहीं, पोषक बनाना ओसवाल समाज के लिए ऐतिहासिक कार्य है। यह कार्य करने की प्रेरणा देने में इस ग्रन्थ का उपयोग है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ग्रंथकार ने ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं पारंपरिक स्रोतों के आधार पर उपकेश वंश से ओसवंश के उद्‌भव का इतिवृत्त उद्‌घाटित किया है। इससे शोध के नये नये क्षितिज खुलने की संभावना बढ़ी है। भारतवर्ष सैंकड़ों सहस्रों वर्षों बाद हिन्दुस्तान कहलाने लगा। ८ वीं से १० वीं सदि पूर्व हिन्दू शब्द रूढ़ कहाँ हुआ था। जैन और बौद्ध शब्दों के बारे में भी यही माना जाता है। इसलिए ओसवाल वंशावली के आदि स्रोत को खोज निकालना सहज नहीं है। लेकिन अनुमानतः उपासक दशांग, ज्ञाता आदि जैनागमों में महावीर ने जिन उपासकों की चर्चा की और जिन्होंने अपने पारिवारिक दायित्वों को वैज्ञानिक विधियों से विकेन्द्रित किया, वे ओसवाल थे। महावीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद संगठित होने वाला यह समाज लंबे अर्सेतक विकास मान होता रहा और इस क्षेत्र में ज्ञान-दर्शन-चरित्र तप का कीर्तिमान बनाया, जिससे स्पंदित होकर महाकवि माघ ने लिखा हैं :

तुङ्गत्वमिति रानाद्रौ नेदं सिन्धावगाहता।
अलङ्घनीयता हेतुरुभयं तन्मनस्विनि।।

सागर केवल गहरा है। पर्वत मात्र ऊँचा है। उन्हें नापा जा सकता है। किन्तु गहराई व ऊँचाई से समन्वित जीवन जीने वालों को कैसे नापा जाय? क्रांतदर्शी कवि ने जिन अमाप्य चरित्रों की ओर ईंगित किया, उन्हें नापने हेतु अद्यतन पीढ़ी के विधिवेत्ता ने उपादान जुटा दिये हैं।

'इतिहास की अमर बेल' ओसवाल-जैसी सूझ-बूझ वाला यह ग्रन्थ लिख श्री मांगीलाल भूतोड़िया ने समाज का गौरव बढ़ाया है। आशा है, पाठक इसे पढ़कर धर्माधारित सामाजिक क्रांति करने वाले ओसवालों का वास्तविक परिचय प्राप्त करेंगे और समझेंगे कि वे महाजन हैं। महाजन जिस पथ से चलते हैं, उसी को भारतीय जनता आदर्श पथ मानती हैः 'महाजनो येनगतः स पन्थाः।'

२०/१४ कबीर नगर (दुर्गा कुण्ड)
वाराणसी-२२१००५

शरद कुमार साधक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वकथ्य

(प्रथम संस्करण, १९८८)

इतिहास की अमर बेल

ओसवाल मूलतः एक जाति नहीं है, जिसकी अविरल धारा का उद्‌गम कोई एक गंगोत्री हो। इसमें अनेक धाराएँ समाहित हुई हैं। समय-समय पर नया रक्त मिलते रहने से इसकी धमनियों का रक्त प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। नयी खाद, नयी भूमि एवं नवीन संस्कृति के संगम से यह पल्लवित-पोषित होती रही है। इसलिए मैंने इसे इतिहास की अमर बेल कहा है।

मैंने इसे लिखा ही नहीं, जिया है

जब से ओसवाल इतिहास का विचार मानस में प्रविष्ट हुआ, तभी से वह उसीका होकर रह गया। ग्रंथागारों एवं ऑरकिव्ज में घंटों बैठकर पांडुलिपियाँ खोजते आनन्द का पारावार न रहता, जब कोई नया तथ्य दृष्टिगोचर हो जाता-भूख, प्यास, समय—सब गौण हो जाते। राजस्थान के ग्रामांचलों एवं ओसिया नगरी के भग्नावशेषों/शिलालेखों का अवलोकन तीर्थ दर्शन बन गया। तत्कालीन भारत के राज्याकाश पर जगतसेठ-नक्षत्रों का वैभव-उल्लास निहारते, मुगलिया सल्तनत के पिटते मोहरों की बिसात पर राजनीति-पटु भंडारी खीवसी को बादशाह बनाते बिगाड़ते, मंत्रीश्वर कर्मचन्द बछावत के वंशजों को केसरिया बाना पहनकर कट-मरते एवं वीरांगनाओं को जौहर की ज्वाला में कूदकर सती हो जाते, सेठाणी हरकौर को कुशल व्यवसायी की तरह कुल के अर्थ साम्राज्य की नकेल संभालते देखना, अनुभव करना एवं लिखना एक पुण्यस्नान से कम न था। यह मेरे लिए ध्येय नहीं रहा—मैंने इसे भोगा है, जिया है।

कार्य पूर्ण नहीं हुआ

इतिहास सहेजने की इस प्रक्रिया में लगातार एक शंका उठती रही है—इतिहास तो स्वयं एक सतत प्रवहमान धारा है। इसे पूर्णता कभी प्राप्त होगी भी। अतीतापेक्षा से मैंने चाहा कि इसके मूल सूत्र एवं तत्व समेटकर उन्हें शब्द निबद्ध कर दूँ, परन्तु मेरी भी सीमाएँ हैं—समय, अर्थ, एवं श्रम सभी की। अनेक मित्रों ने लिखा कि ऐसे वृहद् कार्य में दसों वर्ष लगे, तब भी कम है। भारत के कोने-कोने में बिखरे पड़े ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रह हेतु वहाँ पहुँच भी तो नहीं पाया । किन्तु एक अन्य दायित्व भी था—जिन्होंने ग्रंथ का आरक्षण करवा लिया, उनकी उत्सुकता को अधिक प्रतीक्षारत रखना सम्भव नहीं था। स्यात्, ग्रंथ का यह प्रथम संस्करण उस वृहद् वितान को अगले संस्करण में समेट पाने का हेतु बने।

विद्वानों की समालोचना

तथ्य से घिरे अगोचर अतीत में विहरते मुझे कठिनाई तब हुई, जब कुछ दिग्गज विद्वानों की अवधारणाओं को तर्क की कसौटी पर सही उतरते नहीं पाया। मेरी लेखनी तनिक रुकी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भी, संकोच भी हुआ। परन्तु सत्य-समीक्षा लेखकीय धर्म मानकर मैंने उसे निभाया है। फिर कौन जाने, मैं ही गलत सिद्ध कर दिया जाऊँ। मेरा सही होने का कोई आग्रह भी नहीं। गलतियाँ जो हो गयी हों, ध्यान में आते ही दूसरे संस्करण में उनका परिमार्जन मेरा कर्त्तव्य होगा। आशा है, विद्वत् वर्ग एवं सुहृदयी पाठक मेरी इस अभीप्सा को दृष्टिगत रखकर ग्रन्थ का आंकलन करेंगे एवं अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करेंगे।

आभार ज्ञापन

मैं इतिहासकार नहीं हूँ। इतिहास पहले कभी मेरा अध्येय नहीं रहा। साहित्य में रुचि सदा ही रही एवं उसी का उन्मेष था—'शेष-अशेष' का सृजन । 'श्री रायचन्द्र कुण्डलिया स्मृति ग्रंथ हेतु' लाडनूँ में सर्वोदयी लाक सेवक श्री महालचन्द जी बोथरा से हुई एक चर्चा में ओसवाल-इतिहास अध्ययन लेखन का बीज-वपन हुआ। प्रसिद्ध कवि-मनीषी श्री कन्हैयालाल जी सेठिया ने उत्साह ही नहीं दिलाया, समय-समय पर मुझे इस ओर प्रेरित भी किया—एक तरह से वे ही ग्रंथ के प्रेरणास्रोत हैं। आदरणीय डा० रघुवीर सिंह, सर्व श्री बलवंत सिंह जी महता, दलसुख भाई मालवणिया, विजय सिंह जी नाहर, जौहरीमल जी पारख, भंवरलाल जी नाहटा, डा० सागरमल जैन, विनय सागर जी प्रभृति विद्वानों ने मेरे कार्य में रुचि लेकर मार्ग निर्देशन किया। आत्मीय प्रदीप कुंडलिया ने ग्रंथ के प्रकाशन के बारे में मुझे आश्वस्त कर दिया। बंधुवर श्री शरदकुमार साधक ने पाण्डुलिपि संशोधन, संपादन और मुद्रण का भार अपने कंधों पर लेकर मेरा भार हल्का किया। मेरी धर्मपत्नी किरण तो ग्रन्थ की कल्पना और सृजन में रात दिन सहभागी रही। रेखांकन एवं साज सज्जा में श्री विभूति सेन गुप्त, श्री आशीष नन्दी तथा आवरण चित्र शिल्प में बेटी निर्मला प्रियदर्शी का सहयोग रहा। भारत के उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता डा० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने आशीर्वाद देकर मुझे उपकृत किया है। इस सहयोग के लिए सदा इन सभी सुहृदयों का आभारी रहूँगा।

मांगीलाल भूतोड़िया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वकथ्य

(द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण १९९५)

संशोधन/परिवर्द्धन

ग्रंथ के प्रथम खण्ड में रही प्रेस की भूलों के अतिरिक्त कुछेक तथ्य संवत् भी संशोधित हुए हैं। विभिन्न जैन सम्प्रदायों के अनेक ओसवाल आचार्यों की प्रेरणास्पद जीवन कथाऐं ग्रंथमें जोड़ी गई हैं।इसी तरह 'ओसवाल इतिहास पुरुष' अध्याय में जुड़े अनेकानेक नये विवरण ग्रंथ की श्रीवृद्धि करेंगे।

गुजराती ओसवाल

यह ग्रंथ देश-विदेश में फैले ओसवाल परिवारों से सम्पर्क का एक अच्छा माध्यम बन गया है। साथ ही उजागर हो रही है हमारी ओसवाल इतिहास की अल्पज्ञता। गुजरात के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री पार्श्व भाई कई वर्षों से इतिहास की इन कड़ियों को सहेजने में जी-जान से लगे हैं। मैंने इन्हीं सन्दर्भों से "कच्छसौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे ओसवाल" नामक नया अध्याय लिखा है एवं उसके अन्त में ऐसे ओसवाल गोत्रों की एक सूचि भी दी है। गुजराती ओसवाल गोत्रों के अनेकानेक विवरण ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में भी जोड़े गए हैं। कुछ विद्वानों ने ग्रंथ के प्रथम खण्ड का गुजराती अनुवाद प्रकाशित करने का भी सुझाव दिया है। सुझाव तो उसके अंग्रेजी अनुवाद का भी है। मैं इस ओर सचेष्ट हूँ।

ओसवाल महासंघ

आदरणीय श्री गुलाबमल जी सिंघवी की अध्यक्षता में जिस 'श्री ओसवाल महासंघ' की स्थापना हुई थी वह मात्र स्वप्न बन कर रह गया। एक अन्य अखिल भारतीय ओसवाल महासंघ की चर्चा कई दिनों से सुनी जा रही है परन्तु मेरा उससे या अन्य किसी ऐसे संघ से किंचित् भी सम्बंध नहीं है।

निवेदन : एक बार फिर

सुधी पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे ग्रंथ को अपना समझें, मैं तो इसके लेखन में निमित्त मात्र हुआ हूँ। ऐतिहासिक महत्त्व के जो भी नवीन या विपरीत तथ्य या विवरण, निजी गोत्र सम्बंधी उपलब्ध इतिहास जो भी उन्हें ज्ञात हो, कृपया लिख भेजें ताकि ग्रंथ के नवीन संस्करण में साभार उन्हें शामिल किया जा सके।

कलकत्ता
१३ सितम्बर, १९९५

मांगीलाल भूतोड़िया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इतिहास की अमर बेल
ओसवाल
(प्रथम खण्ड)
अनुक्रमणिका

पृष्ठांक

काल सरणि ३०-४२

अध्याय : १- ओसवाल प्रणेता : जैनाचार्य ४३-६०

(१) विषय प्रवेश ४४
(२) जैन धर्म की प्रासंगिकता ४५
(३) सृष्टि का स्वरूप ४६
(४) प्राग्ऐतिहासिक युग ४८
(५) धर्म तीर्थ प्रवर्तन ४९
(६) श्रमण परम्परा की ऐतिहासिकता ५१
(७) भगवान महावीर का धर्मचक्र ५२
(८) आगम वाचनाएँ ५२
(९) मतान्तर ५३
(१०) प्रमुख जैनागम और सूत्र ५८
(११) सम्प्रदायों की वर्तमान स्थिति ६०

अध्याय : २ ओसवाल उत्पत्ति ६१-७९

१. ओसिया नगरी की संस्थापना ६१
२. ओसवालों की उत्पत्ति कथा ६३
३. कुलदेवी सचिया माता ६६
४. ओसिया में महावीर मन्दिर का निर्माण ६७
५. सेवग/भोजकों की उत्पत्ति कथा ६८
६. ग्रंथि छेदन प्रकोप एवं ओसवालोंका पलायन ६९
७. वर्तमान ओसिया ७०
८. ओसिया तीर्थ का पुनरुद्धार ७४
९. प्राचीनता सम्बन्धी नई शोध ७६

अध्याय : ३- ग्रन्थगारों एवं बही भाटों के उत्पत्ति कथानक ८०-१०४

१. नाहर ग्रंथागार, कलकत्ता ८०
२. एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता ८५
३. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर ८९
४. केशरियानाथ जी मन्दिर-ग्रंथागार ९१
५. मोहन लाल देसाई- संग्रह ९२
६. अभय ग्रंथालय, बीकानेर ९३
७. केलड़ी मन्दिर ग्रंथागार ९८
८. बही भाटों। चारणों द्वारा वर्णित उत्पत्ति कथानक १००

अध्याय : ४- ओसवालों की उत्पत्ति का काल निर्णय १०५-११९

(अ) पहला मत : भाटों का कथन– 'संवत बीये बाईसे' १०५

१. उपलब्ध गुटके १०६
२. बीये बाईसे का जग्गा शाह १०८
३. भाटों के कथन की प्रासंगिकता १०९
४. भाटों द्वारा वर्णित प्रथम गोत्र ११०
५. बीये बाईसे की उक्ति के अन्य आधार ११२
६. भाटों के कवित्तों के सर्वमान्य तथ्य ११२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(ब) दूसरा मत : इतिहासकारों का– 'विक्रम की १० वीं सदी' ११३

१. समर्थक इतिहासकार और उनके तर्क ११३
२. उपकेशपुर ही ओसिया है एवं उपकेश वंश ही ओसवंश है ११६
३. उपकेश गच्छ की ऐतिहासिकता ११८
४. पार्श्वापत्यिक श्रमणों के विलयन का प्रश्न ११९
५. पार्श्व एवं महावीर की धर्म-परम्परा का परस्पर सम्बन्ध १२१
६. अन्य किसी गच्छ ने उत्पत्ति सम्बन्धी श्रेय नहीं लिया १२४
७. शास्त्रीय मान्यता को दी चुनौती का स्वरूप १२५
८. उत्पत्ति सम्बन्धी उल्लेख वाले प्राचीन ग्रन्थों का अभाव १२६
९. प्राचीन लिपि की अग्राह्यता १२७
१०. प्राचीन ग्रन्थों एवं शिलालेखों के अभाव की निर्णायकता १२८
११. ओसिया मन्दिर का शिलालेख १३०
१२. ओसिया बसाने वाले उपलदेव के परमार होने का भ्रम १३१
१३. परमार आदि राजपूत कौमों की उत्पत्ति सम्बन्धी भ्रांतधारणाएँ १३४
१४. ओसवालों के प्रथम १८ गोत्र १३७
१५. खरतर गच्छीय यतियों का स्वीकार १३९
१६. जैन सम्प्रदायों के परस्पर वैमनस्य का प्रभाव १३९

(स) तीसरा मत : जैन शास्त्रों का 'वीरात् ७० वर्ष' १४१

१. स्पष्ट उल्लेख वाले ग्रन्थ साक्ष्य १४३
२. सहायक साक्ष्य १४८
३. समीक्षा १५९

अध्याय : ५- गोत्र विकास १६०-१७१

१. ओसवालों के प्रथम १८ गोत्रों की स्थापना १६०
२. उपकेश गच्छीय अन्य आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र १६४
३. अन्य जैन सम्प्रदायों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र १६६
४. मध्यकालीन आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र १६७
५. गोत्रों के नामकरण के विशेष हेतु १६८
६. माहेश्वरी जाति से बने ओसवाल गोत्र १७०

अध्याय : ६(अ)- श्रीमाल वंश १७२-१८१

१. श्रीमाल नगर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि १७२
२. श्रीमाल जाति की उत्पत्ति १७४
३. श्रीमालों के गोत्र- उपगोत्र १७७
४. ओसवाल- श्रीमाल सम्बन्ध १७९

अध्याय : ६(ब)- कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे ओसवाल एवं उनकी गोत्र सूची १८२-१८७

अध्याय : ७- ओसवाल गोत्र सूची १८८-२१४

१. अद्यतन गोत्रों की स्थिति १८८
२. गोत्रों की कुल संख्या १८९
३. गोत्र सूची (लगभग २७००) १८९

अध्याय : ८- इतिहास, स्रोत एवं लेखन २१५-२२२

१. इतिहास स्रोत (अ) जैन ग्रन्थ २१६
(ब) शिलालेख २१६
(स) वंशावलियाँ २१७
२. इतिहास, लेखन-प्रकाशन २१८

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय : ९- जैनाचार्य और ओसवाल २२३-२७८

१. उपकेश गच्छीय आचार्य २२४
२. स्वर्णकालीन आचार्य २२८
३. अंचल गच्छीय आचार्य २३२
४. खरतर गच्छीय आचार्य २३७
५. बृहद् गच्छ के आचार्य २४९
६. तपागच्छ के आचार्य २५०
७. स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य २५५
८. तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य २६७
९. दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रभावी संत २७७

अध्याय : १०- प्राचीन तीर्थ एवं ओसवाल २७९-३११

१. तक्षशिला २८०
२. शत्रुञ्जय २८०
३. खम्भात २८३
४. प्रभासपाटण २८४
५. भद्रेश्वर २८४
६. अणहिल पाटण २८५
७. सुथरी २८५
८. आबू २८६
९. रणकपुर २८८
१०. गिरनार २८८
११. जीरावली २८९
१२. कुम्भारिया २९०
१३. केसरियाजी २९०
१४. चित्रकूट (चित्तौड़) २९१
१५. अवन्ती २९२
१६. बावनगजाजी २९२
१७. जैसलमेर २९३
१८. मेड़ता २९६
१९. कापरड़ा २९७
२०. नाकोड़ा २९८
२१. नाडलाई २९८
२२. भिन्नमाल २९८
२३. जालोर (जाबालिपुर) २९९
२४. सांचोर (सत्यपुर) ३००
२५. पाली ३००
२६. नाडोल ३०१
२७. बीकानेर ३०१
२८. हस्तिनापुर ३०२
२९. श्रावस्ती ३०२
३०. अयोध्या ३०३
३१. रत्नपुरी ३०३
३२. पावापुरी ३०३
३३. चम्पापुरी ३०४
३४. राजगृह ३०५
३५. पाटलिपुत्र ३०५
३६. क्षत्रिय कुंड ३०६
३७. मधुवन ३०६
३८. सम्मेद शिखर ३०७
३९. श्रवण बेलगोला ३०८
४०. बंग प्रदेश के तीर्थ ३०८

अध्याय : ११- ओसवाल इतिहास-पुरुष ३१२-३९५

सेवग मंछाराम की सूची ३१२

१. जग्गा शाह ३१४
२. भैंसा शाह ३१५
३. श्रेष्ठि जेन्तक ३१६
४. महाकवि माघ ३१७
५. भैंसा शाह (द्वितीय) ३२३
६. श्रेष्ठि उदयन ३२४
७. जगडू शाह ३२६
८. समरसिंह ३२७
९. पेथड़ कुमार ३२८
१०. ठक्कर फेरू ३२८
११. नरोजी भंडारी ३२९
१२. जावड़ शाह ३३०
१३. कर्मा शाह ३३१
१४. कर्मचन्द्र बछावत ३३२
१५. भामाशाह ३३४
१६. भारमल राक्यान ३३७
१७. तेजपाल सोनी ३३८
१८. थाहरू शाह भंसाली ३३८

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१९. वर्धमान पद्मसिंह शाह	३३९	३७. अमरचंद सुराणा	३६८
२०. शांतिदास जौहरी	३४०	३८. हिन्दूमलजी वैद	३७०
२१. योगी सम्राट् आनन्द घन	३४४	३९. जोरावर मल बापना	३७१
२२. कुँवर पाल सोनपाल लोढ़ा	३४५	४०. सेठ वेलजी मालू	३७३
२३. मुणोत नेणसी	३४६	४१. सेठ केशवजी नायक	३७४
२४. संघवी दयालदास	३४८	४२. राजा शिव प्रसाद	३७६
२५. सती पाटण दे	३४९	४३. अमरचंद बांठिया	३७७
२६. भंडारी खींवसी	३५०	४४. श्रीमद रायचन्द	३७९
२७. जगत सेठ माणकचंद	३५२	४५. पूरणचंद नाहर	३८२
२८. जगत सेठ फतहचंद	३५४	४६. सेठ खेतसी खींवसी दुल्ला	३८३
२९. जगत सेठ महताबचंद	३५६	४७. सिरेमल बापना	३८४
३०. जगत सेठ खुशालचंद	३५८	४८. बाबू तख्तमल जैन	३८६
३१. रत्न कुँवर बीबी	३६०	४९. सोहन लाल दूगड़	३८८
३२. मेहता अगरचंद	३६०	५०. देवीलाल सामर	३९०
३३. सेठ नरसी नाथा	३६२	५१. सर वशन जी त्रीकम जी नाईट	३९२
३४. नाहटा मोतीचंद	३६३	५२. डा० विक्रम साराभाई	३९३
३५. सेठाणी हरकौर	३६५	५३. डा० दौलत सिंह कोठारी	३९४
३६. सिंघी इन्द्र राजजी	३६६		

अध्याय : १२- शासन द्वारा सम्मानित ओसवाल **३९६-४०१**

(अ) प्राचीन

१. जगत सेठ	३९७	४. राय साहब	३९९
२. नगर सेठ	३९७	५. अन्य	४००
३. राय बहादुर	३९८		

(ब) आधुनिक

		३. पद्मश्री	४०१
१. पद्म विभूषण	४०१		
२. पद्म भूषण	४०१		

परिशिष्ट : सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **४०२-४१०**

चित्र सूची

१. आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा ओसवंश की स्थापना
२. तीर्थंकर पार्श्वनाथ
३. ओसिया में सचिया माता का मन्दिर
४. ओसिया के महावीर मन्दिर की मूल प्रतिमा
५. ओसिया मन्दिर का स्थापत्य
६. ओसिया के भग्नावशेषों में सद्यः स्नाता सुन्दरी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

७. ओसिया के महावीर मन्दिर का रंग मंडप
८. ओसिया के उत्खनन में प्राप्त प्राचीन तोरण द्वार
९. आचार्य जिनचन्द्र सूरि और बादशाह अकबर
१०. आचार्य जिनचन्द्र सूरि के चमत्कार (१)
११. आचार्य जिनचन्द्र सूरि के चमत्कार (२)
१२. महाकवि माघ (बगीचा में)
१३. महाकवि माघ (शिवबाड़ी में)
१४. प्रधान श्री कर्मचन्द बच्छावत
१५. दानवीर भामाशाह
१६. दीवान मुणोत नैणसी
१७. दीवान भंडारी खींवसी
१८. जगतसेठ फतहचन्द गेहलड़ा
१९. प्रधान मेहता अगरचन्द
२०. सेठ नरसी नाथा
२१. नररत्न मोतीचन्द नाहटा
२२. श्री इन्द्र राज जी सिंघी
२३. दीवान अमरचन्द सुराणा
२४. राव हिन्दूमल वैद
२५. सेठ जोरावर मल बापना
२६. राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द
२७. अमरशहीद अमरचन्द बांठिया
२८. श्रीमद् रायचन्द
२९. सर सिरेमल बापना
३०. बाबू तख्तमल जैन
३१. सेठ सोहनलाल दूगड़
३२. श्री देवी लाल सामर
३३. डा० विक्रम साराभाई
३४. डा. दौलत सिंह कोठारी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इतिहास की अमर बेल

ओसवाल

काल सरणि

वर्ष	
विक्रम पूर्व	
५०००	आर्हत संस्कृति (मोहनजोदड़ो के उत्खनन में प्राप्त सामग्री के आधार पर)
८२०-७२०	भगवान् पार्श्ववनाथ (२३ वें तीर्थंकर)
५४२-४७०	भगवान् महावीर (२४ वें तीर्थंकर)
४४८	आचार्य स्वयंप्रभसूरि (पार्श्वनाथ के ५ वें पट्टधर) द्वारा श्रीमाल नगर में क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया जाना जो श्रीमाल कहलाए।
४००	आचार्य रत्नप्रभसूरि (पार्श्वनाथ के ६ वें पट्टधर) ने उपकेश पट्टण (ओसिया) में क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया जो उपकेशीय (कालांतर में ओसवाल) कहलाए। आचार्य के श्रमणों का संघ (उपकेश गच्छ) कहलाया। उपकेश जाति के अठारह मूल गोत्र स्थापित हुए।
३१०-३००	उत्तर भारत में बारह वर्षीय भयंकर दुष्काल। भगवान् महावीर के ८ वें पट्टधर भद्रबाहु का संघ के साथ दक्षिण प्रस्थान। भारत सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्म में दीक्षित हो संघ के साथ दक्षिण प्रस्थान। दुष्काल समाप्ति के बाद आचार्य स्थूलिभद्र द्वारा पाटलिपुत्र में ११ अंगों का संकलन।
११२	कलिंग देश के पार्श्वपात्यिक खारवेल सम्राट् मेघवाहन के राज्यारोहण-मगध को पराजित कर आदि जिन प्रतिमा का पुनर्स्थापन।
९७	उपकेश पट्टण (ओसिया) के महावीर मन्दिर में ग्रंथि-छेदन से देवी प्रकोप। उपकेशगच्छीय आचार्य कक्क सूरि द्वारा स्नात्र पूजा एवं देवी के श्राप से ओसवालों का उपकेश पट्टण से पलायन।
१७	जैनाचार्य कालक द्वारा शकों की मदद से उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल का उच्छेद एवं साध्वी सरस्वती (कालक की बहन) का उद्धार। कालक का श्रमण संघ 'भाबड़ा गच्छ' कहलाया। सिंध एवं उत्तरी प्रदेशों में बसे उपकेश जाति के लोग 'भाबड़ा' कहलाए। पंजाब में अब भी भाबड़ा ओसवाल गोत्र है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विक्रमादित्य शकों को पराजित कर उज्जयिनी का सम्राट् बना। विक्रम संवत् का प्रणयन।

विक्रम संवत्

१०८ उपकेश जातीय श्रेष्ठि जाबड़ शाह द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ का तेरहवाँ उद्धार। धनेश्वर सूरि कृत शत्रुञ्जय माहात्म्य के अनुसार समय वि० स० १८७

१३६ (१३९) जिन धर्म का श्वेताम्बर- दिगम्बर संघों में विभाजन।

१८७ भावड़ा शाह के पुत्र जावड़ शाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार किया (शत्रुञ्जय महात्म्य)

२२२ आभानगरी के देशल पुत्र उपकेश जातीय श्रेष्ठि जग्गा शाह द्वारा जैन तीर्थों की संघ यात्रा (भाटों की प्रशस्तियों के अनुसार)

२८० आ० मान देव सूरि द्वारा तक्षशिला आदि पश्चिमोत्तर प्रदेशों में प्रतिबोधित भाबड़ा ओसवालों में लघु 'शांति- स्तवन' द्वारा महामारी उपद्रव शांत हुआ- अनेक महाजन बनाए।

३३९-३५७ आ० कक्क सूरिके शासन काल में उनके उद्‌बोधन से भाबड़ा मालाशाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। लाहौर के श्रेष्ठि रणवीर ने सम्मेद शिखर एवं तक्षशिला के ओसवंशीय करणाट गोत्रीय श्रेष्ठि रावत ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला।

३५७-३६० मथुरा में आ० स्कन्दिल एवं वल्लभी में आ० नागार्जुन द्वारा जैन-आगम-वाचना।

३७२ वीरपुर के ओसवाल श्रेष्ठि धवल पि० गोसल शाह गोत्र भूरि ने आ० सिंह सूरि की अध्यक्षता में शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए विशाल संघ निकाला।

४१२ जैन श्वेताम्बर संघ का विभाजन : चैत्यवासी एवं सुविहित मार्गी।

४७० चौरड़िया गौत्रीय गोकुल शाह के पुत्र सोभा ने मरुकोट मलोट से शत्रुञ्जय का संघ निकाला।

५०८ आदित्यनाग गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि भैंसाशाह का अटरू ग्राम कोटा राज्य के मन्दिर में स्थित शिलालेख।

५१० जैनाचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा आगम पुस्तकारूढ़ (अंतिम- वाचना)।

५२०-५५८ आ० सिद्ध सूरि (षष्ठ) की अध्यक्षता में वीरपुर से सांखला गोत्रीय ओसवंशीय श्रावकों ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए संघ निकाला।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

५३०-५८५	आ० हरिभद्र सूरि द्वारा ' समराइच्च कहा ' प्राकृत ग्रंथ की रचना जिसमें उएशनगर की समृद्धि, उपकेश जाति के श्रेष्ठि समरादित्य की कथा एवं उपकेश जाति के लोगों का ब्राह्मण कर से मुक्त होने का उल्लेख। (कुछ इतिहासकारों के अनुसार हरिभद्रसूरि का समय वि० ७५७ से ७८७ है)
५३५-५५७	तोरमाण हूण का पूरे पश्चिमी भारत पर शासन। भिन्नमाल राजधानी। जैन आचार्य हरिभद्र सूरि से प्रभावित।
५६७	तोरमाण का पुत्र मिहिर कुल राजा बना। जैनों पर अत्याचार। उपकेश जाति के व्यापारियों का गुजरात की ओर पलायन (कुवलयमाला के अनुसार)
५९२ (४९२)	आ० सिद्धर्षि दिवंगत हुए। उनका 'उपमितिभव प्रपंच कथा' प्राकृत ग्रंथ भारतीय वाङ्मय का प्रथम रूपक ग्रंथ माना जाता है।
६०१-६३१	आ० देवगुप्त सूरि द्वारा डमरोल में पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा। स्यालकोट में रांका गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि खेत्ता द्वारा मल्लिनाथ मंदिर की स्थापना।
६१३	गोलेच्छा गोत्रिय भोपत शाह के पुत्र अगरों ने जोगनीपुर (दिल्ली) से शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला।
६३१	स्यालकोट में रांका गोत्रीय शाह खेता ने शांतिनाथ-मंदिर की प्रतिष्ठा की।
६६३	हर्षवर्धन भारत के सम्राट् बने। बौद्ध धर्म को राज्याश्रय।
६९७	दंतकथा के अनुसार आबू पर्वत पर यज्ञ के अग्निकुंड से चार राजपूत कुलों की उत्पत्ति-चौहान, पड़िहार, सोलंकी, परमार।
७०३	सामोली शिलालेख के अनुसार जावर की जस्ते और चाँदी की खानों का स्वामी महाजन श्रेष्ठि जेन्तक मृत्यु को प्राप्त हुआ।
७३२	श्रीमाल श्रेष्ठि पुत्र महाकवि माघ द्वारा संस्कृत महाकाव्य शिशु-पाल-वधम् की रचना। इनके चचेरेभाई श्रीमाल गोत्रीय जैन आचार्य सिद्धर्षि द्वारा 'उपमितिभव प्रपंच कथा' नामक वृहद् प्राकृत ग्रंथ की रचना (कुछ इतिहासकार उनका समय पाँचवी छठी एवं कुछ नवीं दसवीं सदी मानते हैं)
७५३	दक्षिण में कुमार सेन द्वारा दिगम्बर सम्प्रदाय के काष्ठा संघ एवं मदुरा में रामसेन द्वारा माथुरसंघ की स्थापना।
७६४-७७५	जैनाचार्य उदयप्रभ सूरि द्वारा भिन्नमाल का राजा भाण प्रतिबोधित। विभिन्न जैनाचार्यों द्वारा कुलगुरुओं की मर्यादाएँ निश्चित। राजा भाण एवं अन्य श्रीमाल श्रेष्ठियों को प्रतिबोध देकर श्रीमाल जाति के ६२ गोत्र निर्धारित ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

७९५ उपकेश नगर के ओसवाल श्रेष्ठि जयमल की पुत्री रत्ना बाई से राजा भाण का विवाह एवं पुत्र उत्पन्न होने से साधार्मिक की उद्घोषणा।

८००-९५ जैन- आचार्य बप्पभट्ट सूरि ने आम राजा की वणिक रानी के पुत्रों को जैन बनाकर उनका राज-कोष्ठगार गोत्र निर्धारित किया।

८०२ पाटण की स्थापना के समय भिन्नमाल नगर से उपकेश जाति के लोगों को आमंत्रण देकर पाटण में बसने के लिए ले जाया गया। वे अब भी वहीं वास करते हैं।

८३५ जैनाचार्य उद्योतन सूरि द्वारा ८४ गच्छों (मय वृहद्गच्छ) की स्थापना एवं कुवलय माला ग्रंथ की रचना जिसमें तोरमाण हूण एवं उसके पुत्र मिहिरगुल के भिन्नमाल पर शासन का विवरण तथा मिहिरगुल के अत्याचार से पीड़ित उपकेश वंशीय श्रावकों के गुर्जर देश चले जाने का उल्लेख है। (कुछ इतिहासकार उद्योतन सूरि का समय वि० ९९४ मानते हैं)

८४५-८७७ आदि शंकराचार्य द्वारा बद्रिकाश्रम, श्रृंगेरी, द्वारिका एवं पुरी में पीठों की स्थापना।

८९१ आ० देव गुप्त सूरि के चातुर्मास में गोसलपुर के ओसवाल श्रेष्ठि आर्य गोत्रीय भानुजी शाह के पुत्र काबड़ ने ८४ न्यातों का जीमनवार किया।

९५४ गोमट्टसार आदि प्रसिद्ध जैन शास्त्रों के रचयिता दिगम्बर आ० नेमिचंद सूरि द्वारा ओसवालों के बरड़िया गोत्र की स्थापना।

९९० श्रवण बेलगोला में गोम्मटेश्वर 'बाहुबलि' की ५७ फीट ऊँची प्रतिमा की स्थापना।

१०२६-७२ सुविहित मार्गीय आ० वर्धमान सूरि द्वारा ओसवालों के संचेती, लोढ़ा, पीपाड़ा आदि गोत्रों की स्थापना। इन्हीं के उपदेश से पोरवाल श्रेष्ठि विमल शाह ने आबू तीर्थ पर १९ करोड़ रुपये खर्च कर भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया।

१०५७-११०७ चन्देल राजाओं द्वारा खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण ।

१०६७-८१ महमूद गजनी के भारत पर २४ हमले, अरबों द्वारा लूट एवं हिन्दू देवी प्रतिमाओं को विनष्ट करना।

१०७२-११३५ आचार्य अभयदेव सूरि द्वारा ओसवालों के पगारिया आदि गोत्रों की स्थापना।

१०७४ आ० जिनेश्वर सूरि से 'खरतर गच्छ' का उद्भव। वे ओसवालों के श्रीपति, तिलेरा गोत्रों के संस्थापक एवं भंसाली, चील, मेहता गोत्रों के उद्बोधक थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

११०८ भिन्नमाल के नाहटा गोत्रीय भैंसाशाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। अपना सिक्का चलाया (कई इतिहासकार उन्हें डीडवाना का निवासी बताते हैं)।

११३२-१२११ आ० जिनदत्त सूरि (खरतर गच्छीय) प्रथम दादा आचार्य द्वारा एक लाख ३६ हजार जैन बनाने का कीर्तिमान- टांटिया, कोठारी, सेठिया, चोरड़िया आदि अनेक ओसवाल गोत्रों के संस्थापक।

११४५-१२२९ ओहड़ गोत्रीय आ० हेमचन्द्र सूरि द्वारा पाटण सम्राट् सिंहराज जयसिंह एवं कुमार पाल को उद्‌बोधन। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र की रचना। ओसवालों के सांखला, सुराणा आदि गोत्रों की स्थापना।

११५०-१२०५ श्रीमाल श्रेष्ठि उदयन चालुक्यराज सिद्धाराज एवं कुमारपाल का मंत्री मुख्य सामंत था।

११५६-६७ आ० जिन बल्लभ सूरि द्वारा विधि चैत्यों की स्थापना एवं ओसवालों के चोपड़ा, बांठिया आदि गोत्रों की स्थापना।

११६९-१२३६ आ० आर्यरक्षितसूरि द्वारा अंचल गच्छ (विधिपक्ष) की स्थापना, श्रावक यशोधन भणशाली द्वारा महोत्सव समायोजन। सिंध में ओसवालों के महीपाल एवं सहसगुणा गांधी गोत्रों की स्थापना।

११९७-१२२३ ओसवंशीय मणिधारी खरतर गच्छीय प्रभावी दादा आ० जिनचन्दसूरि, जिन्होंने जैनेतर लोगों को प्रबोध देकर ओसवालों के छाजेड़, मित्री, खजांची, श्रीश्रीमाल, कोठारी, दूगड़ आदि अनेक गोत्रों की स्थापना की।

१२००-१२३० सम्राट् कुमार पाल का शासन काल। आ० हेमचन्द्र सूरि के प्रभाव से जैनधर्म अंगीकार करने की घोषणा। १४४० भव्य जैन मन्दिरों का निर्माण। २१ शास्त्र ग्रंथागारों का निर्माण।

१२०२-१२५८ ओसवाल कोट्याधिपति द्रोण के पुत्र अंचल गच्छीय आ० जयसिंह सूरि जिन्हें सिद्धराज जयसिंह ने 'युग प्रधान' की पदवी दी। ओसवालों के अनेक गोत्रों- हथुड़िया, जाल्हा, लोलड़िया, मीठड़िया, नागड़ा, भुमणीया, चोखेड़िया, लालान, कटारिया, देवड़ा, नीसर, राठोड़, छाजेड़ आदि की स्थापना।

१२०५ श्रीमाल गोत्रीय श्रेष्ठि उदयन का निधन। वे सम्राट् जयसिंह सिद्धराज द्वारा खम्भात के शासक बनाए गए थे। सम्राट् ने उनके पुत्र 'चाहड़' को गोद भी लिया था। कुमारपाल जब सम्राट् बना तो उसने उदयन के ज्येष्ठ पुत्र बाघभट्ट को अपना मंत्री नियुक्त किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१२३३-६६ मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण

१२३४-१२९८ श्रीमाल गोत्रीय अंचल गच्छीय आ० धर्मघोष सूरि पदासीन। ओसवालों के अनेक गोत्रों 'देवानंद सरवा, गोठी, गोसलिया, फफोलिया डोडिया लेचा, हरिया' की स्थापना।

१२७५-१३०३ पोरवाल श्रेष्ठि वस्तुपाल तेजपाल का काल। दसा-बीसा प्रभेद की शुरूआत।

१२८५ जैन श्वेताम्बर निर्ग्रन्थ शाखा के आ० जगचन्द्र सूरि को आजीवन आयाम्बिल तप करने से 'तपा'-विरुद- फलतः तपागच्छ की उत्पत्ति।

१३१२-१५ श्रीमाल गोत्रीय दानवीर जगडूशाह ने महादुष्काल में लाखों मन अनाज वितरित कर 'जग नो जीवाडण हार' विरुद पाया।

१३२० मांडवगढ के ओसवाल श्रेष्ठि मंत्रीश्वर पेथड़ कुमार ने ८४ विभिन्न नगरों में जिन मन्दिरों का निमाण कराया एवं ३६००० हजार स्वर्ण मुद्राओं से आगम पूजा की।

१३२७-८० श्रीमाल गोत्रीय शाह ठक्कर फेरू दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन तुगलक का खजांची बना (कुछ इतिहासकारों ने उन्हें अलाउद्दीन खिलजी का भंडारी बताया है) विश्व प्रसिद्ध ज्योतिष, गणित, वास्तु, मुद्रा, धातु विषयक शास्त्रीय ग्रंथो की रचना की। रत्न परीक्षा एवं द्रव्य परीक्षा प्राकृत ग्रंथ शाह फेरू की ही देन है।

१३३७-१३८९ छाजेड़ गोत्रीय सिवाना के खरतर गच्छीय तीसरे दादा आचार्य युग प्रधान जिन कुशल सूरि, जिन्होंने पोरवाल श्रेष्ठि तेजपाल को उद्‌बोधन दिया एवं ओसवालों के बावेल, संघवी, जड़िया, डागा गोत्रों की स्थापना की।

१३६९-९३ पाटण के वेदमुहता गोत्रीय श्रेष्ठि देशल शाह के पुत्र समराशाह ने अलाउद्दीन खिलजी द्वारा नष्ट किए गए शत्रुञ्जय तीर्थ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया। दिल्ली के बादशाह सुलतान कुतुबुद्दीन एवं गयासुद्दीन तुगलक उसका बहुत सम्मान करते थे। वि० सं० १३९३ में उपकेश गच्छीय आ० कक्कसूरी ने 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रंथ की रचना समराशाह को नायक बनाकर की।

१३८९-१४४९ लाडनूँ के श्रीमाल (ताम्बी) गोत्रीय खरतर गच्छीय आ० जिनप्रभसूरि द्वारा बादशाह मुहम्मद तुगलक को प्रतिबोध। 'विविध तीर्थ कल्प' ग्रंथ की रचना।

१४२६-७१ पोरवाल वंशीय अंचल गच्छीय आ० मेरुतुंग सूरि पदासीन। मंत्र प्रभावक चमत्कारी योगी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१४४९-१५१४ छाजेड़ गोत्रीय ओसवाल, खरतर गच्छीय आ० जिनभद्र सूरि जिन्होंने अनेक पुस्तक- भंडारों की स्थापना की एवं जो भंडारी गोत्र के उद्‌बोधक थे।

१४७२-१५४६ ओसवाल वंश के दफ्तरी गोत्रीय स्थानकवासी सम्प्रदाय के जनक लोंकाशाह, जिन्होंने चैत्य परम्परा एवं मूर्ति पूजा का विरोध किया।

१४७८-१४८० मुबारिक शाह के शासन काल में पोरवाल श्रेष्ठि शाह हेमराज मंत्री थे।

१४८२ ओसवाल श्रेष्ठि मीठड़िया गोत्रीय मेघाशाह द्वारा आचार्य मेरु तुंग सूरी के• उद्‌बोधन से गौड़ी पार्श्वनाथ तीर्थ की स्थापना।

१४८८-१५४५ ओसवाल श्रेष्ठि बोथरा गोत्रीय बच्छराज एवं अन्य मुत्सद्दियों के सहयोग से राव बीकाजी ने बीकानेर राज्य की नींव रखी एवं बच्छ राज को अपना प्रधान मंत्री बनाया।

१४९३ ओसवाल श्रेष्ठि नरोजी भंडारी की सहायता से राव जोधाजी द्वारा जोधपुर की स्थापना।

१५०५-७२ तारण स्वामी द्वारा दिगम्बर परम्परा में मूर्ति पूजा विरोधी तारण समाज की स्थापना, जो कालांतर में 'तेरहपंथी' कहलाए उनके विरोध स्वरुप दिगम्बर मत के 'बीसपंथी', 'तोतापंथी' आदि सम्प्रदाय बने।

१५१५-१५३१ राव जोधाजी ने भंडारी नरोजी को अपना दीवान प्रधान बनाया।

१५३१ लोका गच्छ की उत्पत्ति , जो कालांतर में ढूँढ़िया, स्थानक वासी, बाईस टोला नामों से प्रसिद्ध हुआ।

१५४७ श्रीमाल श्रेष्ठि जावड़ शाह ने माण्डू के भव्य जैन मन्दिरों में १०४ प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कीं। वे राज्य के कोषाध्यक्ष थे।

१५७३-१६११ बच्छावत गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि मंत्रीश्वर कर्मचन्द बीकानेर राज्य के प्रधान नियुक्त हुए। अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। सम्राट् अकबर उनसे बहुत प्रभावित थे। युगप्रधान आ० जिनचन्द्र सूरि के बीकानेर पधारने पर अतुल धन राशि खर्च की।

१५८२ बाबर भारत का बादशाह बना।

१५८७ चित्तौड़ के राज कोष्ठागर गोत्रीय "कुछ इतिहासकारों के अनुसार डोसी गोत्रीय" ओसवाल श्रेष्ठि कर्माशाह द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार।

१५८५-१६७० ओस वंश के रोहड़ गोत्रीय खरतर गच्छ के चतुर्थ दादा आ० जिनचन्द्र सूरि जिन्हें सम्राट् अकबर ने 'युग प्रधान' घोषित किया, ओसवालों के पींचा गोत्र के उद्‌बोधक।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१६०४ ओसवंशीय लोढ़ा गोत्रीय श्री भाव देव सूरि बड़ गच्छके आचार्य पदासीन। चमत्कारी संत।

१६०४-५६ ओसवाल श्रेष्ठि कावड़िया गोत्रीय दानवीर भामाशाह उदयपुर राज्य के दीवान नियुक्त हुए। राणाप्रताप जब जंगलों में भटक रहे थे तब अपना समस्त कोष उन्हें अर्पित कर खोया हुआ मेवाड़ राज्य पुनः प्राप्त करने में वे सहायक बने।

१६१०-१६५२ ओसवाल कुराँ गोत्रीय तपागच्छीय प्रभावक आचार्य हीर विजय जी बादशाह अकबर द्वारा सं. १६४० में 'जगद्गुरु' की उपाधि से विभूषित।

१६१३ हेमू (हेमराज,जाति-ढूसर) दिल्ली और आगरा फतह कर अल्प काल के लिए भारता का सम्राट बना।

१६१३-६२ अकबर भारत का बादशाह बना। पाश्चात्य इतिहासकारों के अनुसार सं०१६३७-३८ में उसने जैन धर्म अंगीकार कर लिया था।

१६३५ श्रीमाल गोत्रीय धनकुबेर राजा भारमल राक्यान, वैराट की तांबे की खानों के एकछत्र स्वामी, बादशाह अकबर द्वारा 'राजा' की पदवी से सम्मानित।

१६४६-१७१६ अहमदाबाद के ओसवाल श्रेष्ठि शांतिदास जौहरी (श्री कस्तुर भाई लाल भाई के पूर्वज) द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ में जिन मन्दिरों का निर्माण तथा पुनरुद्धार। बादशाह अकबर द्वारा सम्मानित, महारानी जोधा बाई के राखीबन्द भाई बादशाह जहाँगीर एवं शाहजहाँ द्वारा सम्मानित, जैन तीर्थों के रक्षक।

१६४९ खम्भात के ओसवाल श्रेष्ठि तेजपाल सोनी द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ का पुनरुद्धार।

१६४८-१७१७ श्रीमाल गोत्रीय अंचल गच्छीय आ० कल्याण सागर सूरि पदासीन। बादशाह जहाँगीर के सम्मुख आकाश गामिनी विद्या का चमत्कार। १६७२ में युगप्रधान की पदवी।

१६५५-१६८४ थाहरूशाह (भंसाली) ने लोद्रवा (जैसलमेर) में प्रसिद्ध पार्श्वनाथ मन्दिर बनवाया एवं शत्रुञ्जय व सिद्धांचल तीर्थों के संघ निकाले, बादशाह अकबर द्वारा सम्मानित हुए एवं रायजादा का खिताब मिला।

१६६०-१७३१ योगीसम्राट् आनन्दघन के स्तवन और चौबीसी ने जैन साधना और भक्ति-उपासना को नये आयाम दिए।

१६६८-१६७६ भद्रावती में लालन गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि वर्धमान शाह एवं पद्मसिंह शाह का उद्भव। शत्रुञ्जय तीर्थ की संघ यात्रा। जैन मन्दिरों का निर्माण । चीन देश से व्यापार। वर्धमान शाह जाम नगर राज्य के मंत्री नियुक्त हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१६७० आगरा के ओसवाल श्रेष्ठि कुँवलपाल सोनपाल लोढा द्वारा सम्मेद शिखर का संघ समायोजन।

१६८२ जैसलमेर के भंसाली गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि थाहरूशाह द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ पर २४ तीर्थंकरों एवं १४५२ गणधरों के चरण युगल स्थापित।

१६८४ शाहजहां भारत का बादशाह बना।

१७०४ ओसवाल बोहरा गोत्रीय स्थानकवासी आ० ऋषि लव जी ने क्रियोद्धार कर नई दीक्षा ली एवं मुखपत्ती का सर्वप्रथम चलन किया।

१७१२-८० ओसवंशीय मुणोत गोत्रीय स्थानकवासी आ० भूधर जी, जिन्होंने जाटों में धर्म प्रचार किया।

१७१४-२३ ओसवाल मुत्सद्दी महणोत गोत्रीय नैणसी मारवाड़ राज्य के दीवान नियुक्त हुए-अनेक लड़ाईयों में विजयश्री प्राप्त की-'मुणोत नैणसी की ख्यात' प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ की रचना।

१७३१ ओसवंशीय योगी सम्राट् आनन्दघन का महाप्रयाण।

१७३८-१७४९ ओसवाल श्रेष्ठि संघवीं दयालदास उदयपुर राज्य के प्रधान बने एवं मुगल बादशाह औरंगजेब को सन्धि करने पर मजबूर कर दिया। मुगल सेना उनसे थरथर कांपती थी।

१७४७-५७ जॉब चारनाक ने कलिकत्ता आदि ३ ग्राम खरीद कर अंग्रेज सम्राज्य की नींव डाली।

१७६१-७१ ओसवाल श्रेष्ठि गेहलड़ा गोत्रीय सेठ मानकचन्द के सहयोग से दीवान मुर्शिदकुली खाँ ने मुर्शिदाबाद शहर बसाया। दिल्ली के बादशाह फरूंखशियार द्वारा माणकचन्द को 'जगत- सेठ' की पदवी दी गई। बंगाल -बिहार-उड़ीसा में जगत सेठ की टकसाल के सिक्कों का चलन।

१७६६-८२ ओसवाल मुत्सद्दी भण्डारी खींवसी जोधपुर राज्यके दीवान एवं प्रधान बनाए गए-मुगल बादशाह फरूँखशियार आपसे बहुत प्रभावित था-बड़े कूटनीतिज्ञ थे-हिन्दुओं पर लगा जजिया कर माफ करवाया। मुहम्मद शाह को दिल्ली के तख्त पर बैठाने में आपका प्रमुख हाथ था।

१७६६-१८४६ ओसवंशीय बल्लावत (बाफणा) गोत्रीय स्थानकवासी आ० रघुनाथ जी

१७७१-१८०९ ओसवाल श्रेष्ठि गेहलड़ा गोत्रीय जगतसेठ फतहचन्द का बंगाल की राजनीति में योगदान। मरहठों द्वारा जगत सेठ की कोठी से दो करोड़ की लूट।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१८०३-१८४५ ओसवंशीय बल्लावत (बाफणा) गोत्रीय स्थानकवासी आ० रघुनाथ जी को अपने आचार्यत्त्व काल में यतियों एवं पोतियाबंध सम्प्रदाय का भारी विरोध सहना पड़ा।

१८१३-१८२० ओसवाल श्रेष्ठि गेहलड़ा गोत्रीय जगत सेठ महताबचन्द द्वारा बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला का विरोध। मीर जाफर द्वारा अंग्रेजों को कलकत्ता में टकसाल खोलने की इजाजत। अंग्रेजों का प्रभुत्व। मीरकासिम के हुक्म पर जगत सेठ की गंगा में डुबोकर हत्या कर दी गई।

१८१७-१८६० ओसवंशीय सकलेचा गोत्रीय आ० भीखण जी ने स्थानकवासी आ० रघुनाथजी के पास दीक्षा लेकर विद्रोह किया एवं तेरापंथ धर्मसंघ के प्रथम आचार्य बने।

१८१९ जैन श्वेताम्बर तेरापंथ की भिक्षुस्वामी द्वारा स्थापना।

१८२२-१८५७ ओसवाल श्रेष्ठि मेहता अगरचन्द महाराणा अरिसिंह एवं भीमसिंह द्वारा मेवाड़ राज्य के दीवान नियुक्त हुए। अनेक लड़ाइयाँ लड़ी एवं मांडलगढ़ किले का विकास किया।

१८३८-९२ बम्बई में नाहटा गोत्रीय सेठ मोतीचन्द शाह का ईरान, इराक, चीन आदि देशों से व्यापार, शत्रुञ्जय तीर्थ एवं भायखला में भव्य मन्दिरों का निर्माण, करोड़ों का दान।

१८४४ महिला रत्न विदुषी रत्नकुंवर बीवी का भक्ति काव्य 'प्रेमरत्न' प्रकाशित हुआ। वे जगत सेठ एवं राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के खानदान से सम्बन्धित थीं।

१८५१-१९०८ बाफणा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि जोरावरमलजी बाफणा- उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर इन्दौर आदि रियासतों एवं अंग्रेजो के खजाने के एक मात्र प्रबन्धक। राज्यों को बहुमूल्य सेवाएँ दीं। जैन तीर्थों के लिए संघ समायोजन किया। जैसलमेर स्थित पटवों की प्रसिद्ध हवेली बनवाई।

१८६०-७२ ओसवाल श्रेष्ठि अमरचन्द सुराणा बीकानेर राज्य के सेनानायक एवं दिवान नियुक्त हुए। अनेक विद्रोहों का शमन किया पर अन्ततः दरबार ने उनकी हत्या करवा दी।

१८६४-७२ ओसवालवंशीय इन्द्रराज जी सिंधी ने जोधपुर को जयपुर नरेश की फौज के घेरे से मुक्त कराया एवं राज्य के प्रधान दिवान नियुक्त हुए, अनेक लड़ाइयाँ जीतीं एवं अन्ततः राज्य की सेवा करते हुए पिण्डारी सरदार अमीरखाँ के हाथों छल से मार डाले गए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१८६७　कलकत्ता में जैन संघ द्वारा दादा बाड़ी का निर्माण एवं चार दादा आचार्यों (खरतर गच्छीय) की चरण पादुकाएँ स्थापित।

१८८८　ओसवंशीय हिन्दूमलजी वैद बीकानेर के महाराजा द्वारा 'महाराव' की पदवी से सम्मानित किए गए।

१९०१-२०　अहमदाबाद के ओसवाल श्रेष्ठि हठीसिंह की पत्नी सेठानी हरकौर द्वारा करोड़ों के व्यापार का कुशल संचालन, बावन जिनालयों वाले विशाल मन्दिर का निर्माण, तीर्थों का संघ समायोजन।

१९०८-१९३८ ओसवंशीय गोलछा गोत्रीय तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जीतमलजी आचार्य पद पर आसीन। उन्होंने भिक्षु संघ को मर्यादाओं में बांधकर भव्यता प्रदान की।

१९१४　ग्वालियर में बांठिया गोत्रीय अमर शहीद अमरचन्द द्वारा सन् सत्तावन के विद्रोहियों-झाँसी की रानी एवं तांत्या टोपे के लिए खजाना अर्पित। विद्रोह समाप्त होते ही अंग्रेजों ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया।

१९२४-५७　श्रीमाल गोत्रीय श्रीमद् रायचन्द का अवतरण । १९ वर्ष की वय में शतावधान। गृहस्थ महायोगी। गांधी जी के प्रेरक मुक्त पुरुष।

१९३१-४४　ओसवाल जातीय गोखरू गोत्रीय श्री शिवप्रसाद अंग्रेज सरकार द्वारा 'सितारे हिन्द' एवं पुश्तैनी 'राजा' की पदवी से विभूषित हुए।

१९३६　मुनि मोहनलाल जी के प्रयत्नों से ओसिया के खंडहरों में विलुप्त महावीर मन्दिर की खोज एवं पुनः ओसिया तीर्थ-क्षेत्र के रूप में पूजित।

१९४६-९९　ओसवाल समाज में देशी- विलायती विवाद। समाज- बहिष्कृति व अनर्गल प्रलाप।

१९५२-२०२५ ओसवंशीय श्रेष्ठि सोहन लाल जी दूगड़। औघड़ दानी, अनेक सामाजिक प्रवृत्तियों के लिए तन-मन-धन से सहायक।

१९६८-२०२६ ओसवाल कुल दीपक श्री देवीलाल सामर लोक कलाओं, एवं लोक कथाओं के संरक्षण, संवर्धन के लिए पूर्णतः समर्पित- भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' अलंकरण से सम्मानित।

१९७२-२०२१ ओसवाल वंशीय रायबहादुर सिरेमल जी बाफणा- इन्दौर राज्य के होम मिनिस्टर एवं ११ वर्ष बाद प्राइम मिनिस्टर नियुक्त हुए-नाईट (सर) (१९९३) C.I.A. (१९८८) एवं वजीर- उद्दौला की उपाधियों से सम्मानित हुए। इन्दौर राज्य के विकास का श्रेय उन्हीं को है।

Ac. Gunratnasuri MS　Jin Gun Aradhak Trust

१९७६-२०२९ ओसवाल श्रेष्ठि डा० विक्रम साराभाई - भारत सरकार के 'नाभिकीय अनुसंधान केन्द्र' के प्रबन्धक एवं एटामिक एनर्जी कमीशन के अध्यक्ष । अनेक अलंकरणों से विभूषित।

१९७७ जोधपुर से श्री किशन लाल जी बाफना द्वारा 'ओसवाल' मासिक पत्रिका का शुभारम्भ।

१९८१-२०१० बीसा श्रीमाल गोत्रीय तपागच्छीय आचार्य विजय वल्लभ सूरि— जिनकी निश्रा में जैन जातियों का परस्पर बेटी- बेटों के रिश्ते करने का प्रस्ताव पास हुआ।

१९८४ कलकत्ता में ओसवाल नवयुवक समिति की स्थापना 'ओसवाल नवयुवक' पत्रिका का प्रकाशन।

१९८९ प्रथम अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महा सम्मेलन अजमेर में हुआ। ओसवंशीय श्रेष्ठि पूर्णचन्द जी नाहर ('एपिटोम आफ जेनिज्म एवं 'जैन लेख संग्रह' के लेखक) सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित।

१९९१ द्वितीय अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महा सम्मेलन फिर अजमेर में हुआ। आगरा के कांग्रेसी नेता ओसवाल श्रेष्ठि अचल सिंह जी सभापति निर्वाचित। श्री सुख सम्पतराय जी भण्डारी का वृहद् 'ओसवाल जाति का इतिहास' प्रकाशित हुआ।

१९९२ तृतीय अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महा सम्मेलन मन्दसौर में- जामनेर के ओसवाल श्रेष्ठि राजमल जी ललवानी अध्यक्ष निर्वाचित।

१९९३ ओसवंशीय खटेड़ गोत्रीय तेरापंथ के नवम् आचार्य तुलसी ने संघ की बागडोर सम्भाली। आपके समय में संघ ने अभूतपूर्व प्रगति की। आगम शोध, साहित्य निर्माण, अणुव्रत अभियान, विश्व भारती संस्थापन, ७७६ दीक्षाएँ शासन के कीर्तिमान हैं।

१९९४ चतुर्थ अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महासम्मेलन कलकत्ता में। जयपुर के ओसवाल श्रेष्ठि गुलाबचन्द जी ढड्ढ़ा अध्यक्ष निर्वाचित । 'ओसवाल सुधारक' पत्रिका का नाम बदल कर 'ओसवाल' नाम से कलकत्ता से प्रकाशन शुरू हुआ, जो १९९५ में भग्न हृदय के 'साधुत्व' लेख के प्रकाशन पर उठे विवाद के कारण बंद हो गया।

१९९६ पंचम अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महासम्मेलन पुष्कर में। जबलपुर के श्री मोतीलाल जी भूरा अध्यक्ष निर्वाचित। विधान स्वीकृत। लेकिन इस सम्मेलन के बाद समस्त भारत के ओसवाल समाज को एक मंच पर लाने का कोई राष्ट्रीय प्रयास नहीं हुआ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१९९७	श्री भंवरमल जी सिंघी से सम्पादकत्व में तरुण ओसवाल का प्रकाशन शुरू।
२००३	ओसवंशीय चोपड़ा गोत्रीय स्थानकवासी संत आत्माराम जी आचार्य पद पर आसीन।
२००४	ओसवाल नवयुवक समिति द्वारा कलकत्ता में बालिका विद्या भवन की स्थापना।
२००९	आ० आत्माराम जी को सादड़ी सम्मेलन में समस्त स्थानकवासी श्रमण संघ का प्रमुख चुना गया।
२००९	ओसवंशीय गुगलिया गोत्रीय स्थानकवासी आचार्य आनन्द ऋषि को सादड़ी सम्मेलन में समस्त स्थानकवासी श्रमण संघ का प्रधानमंत्री चुना गया।
२०१०	वडाला एवं सेठिया गोत्रिय श्री शरदकुमार साधक तथा श्री सतीशकुमार के सहयोगी ओसवाल युवकों द्वारा धार्मिक क्रान्ति सम्मेलन-सेमिनार।
२०१४	ओसवाल नवयुवक समिति कलकत्ता के ओसवाल भवन की आधारशिला रखी गई, जो कालान्तर में समाज की अनेक प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गया।
२०२२	श्रीमती मृणालिनी साराभाई (डा० विक्रम साराभाई की धर्मपत्नी) भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' अलंकरण से सम्मानित।
२०२६	डा० मोहन सिंह मेहता को भारत सरकार ने 'पद्म विभूषण' से विभूषित किया।
२०२८	बम्बई में ओसवाल मित्र मंडल की स्थापना।
२०२९	डा० विक्रम साराभाई को भारत सरकार द्वारा मरणोपरांत 'पद्म विभूषण' अलंकरण से सम्मानित किया गया।
२०३०	डा० दौलत सिंह कोठारी को भारत सरकार ने 'पद्म विभूषण' अलंकरण से विभूषित किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल जाति का उद्भव

विक्रम संवत से ४०० वर्ष पूर्व वीरात् ७० वें वर्ष में आचार्य रत्न प्रभ सूरि द्वारा ओसिया के क्षत्रिय राजा उत्पलदेव को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाना एवं ओश वंश की संस्थापना

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

न हि तुष्यामि पूर्वेषां
शृण्वानश्चरितं महत्।

मैं अपने पूर्वजों के
महान चरित्र को सुनते
हुए अघाता नहीं।

—महाभारत

अध्याय

प्रथम

ओसवाल प्रणेता : जैनधर्म

इतिहास समय के अजस्र प्रवाह में पीछे लौटकर अपने मूल को पहचानने की प्रक्रिया है। इसीलिए यह आनन्ददायी है और प्रेरणास्पद भी। 'मैं ओसवाल हूँ'— मात्र यह जानना किसी के लिए काफी नहीं होता। मैं कहाँ से आया हूँ, मेरी जड़ें कहाँ हैं आदि प्रश्न जिज्ञासु को इतिहास जानने की ओर उन्मुख करते हैं। अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने और अपने सांस्कृतिक परिवेश को व्याख्यायित करना अपने शुद्ध स्वरूप को पहचानने की प्रक्रिया के अंग हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विषय प्रवेश

भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी एवं कच्छ से अरुणाचल प्रदेश तथा इन सीमाओं के भी पार फैले ओसवाल समाज का इतिहास बड़ा मनोरम और शौर्यपूर्ण है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व संस्थापित यह समाज समय-समय पर भारत की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक,एवं सामाजिक स्थिति को प्रभावित करता रहा है। बड़े- बड़े दिग्गज इतिहास पुरुषों ने इस समाज में जन्म लिया। किसी भी जाति के इतिहास में इससे बढ़कर गौरवपूर्ण बात और क्या होगी कि वह भारत जैसे महादेश के आधे से अधिक आर्थिक संसाधनों की सैकड़ों नहीं, अपितु हजार वर्षों तक मालिक बनी रहे। जब देश भयंकर दुष्काल से त्राहि-त्राहि कर रहा था तो जग्गा शाह (संवत् २२२) एवं जगडू शाह (संवत् १३११) जैसे ओसवाल धन कुबेरों ने जगह-जगह मुफ्त भोजन शालाएँ खुलवा दी एवं 'जग रा पालनहार' जैसे विरुद पाए। अठारहवीं सदी के भीषण अकाल में राहत पहुँचाने वाला ओसवाल जाति का जगत सेठ घराना ही था। राणा प्रताप की संकट की घड़ी को अपनी दानवीरता से विजय में बदल देने वाला नर पुंगव भामाशाह इसी कुल की शान था। देशी राजघरानों के इतिहास पर सदियों तक छाए रहने वाले अधिकांश मंत्री, प्रधान, कोषाध्यक्ष एवं सेनाध्यक्ष ओसवाल श्रेष्ठि ही रहे। मुसलमान बादशाहों को प्रभावित कर अनेक राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के सूत्रधार मुणोत नैणसी, बछावत कर्मचन्द एवं भंडारी खींवंसी जैसे नीति कुशल योद्धा ओस वंशीय ही थे। सरस्वती के अनन्य पुजारी एवं संस्कृत महाकाव्य 'शिशुपाल वधम्' के रचयिता महाकवि माघ का श्रीमाल वंशी ओसवाल होना सिद्धप्राय है। लोक कलाओं के उन्नायक श्री देवीलाल सामर जैसे कला मर्मज्ञ इसी जाति में उत्पन्न हुए। भारत को अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर प्रस्थापित कर विश्व के अग्रणी देशों की कोटि में लाने वाले डा० विक्रम साराभाई जैसे नर-रत्न इसी कुल के दीपक थे। परन्तु इतिहासकारों ने सही परिप्रेक्ष्य में कभी इस बहुमूल्य अवदान को रेखांकित नहीं किया।

भारत में इतिहास लेखन की परम्परा पाश्चात्य विद्वानों ने प्रचलित की। इससे पूर्व जो रचा गया, वह पौराणिक आख्यायिका की कोटि में रखा जा सकता है। उसे प्रामाणिक इतिहास नहीं माना जाता। ओसवाल समाज के गौरवमय अतीत को सर्वप्रथम प्रकाशित करने वाले भी विदेशी इतिहासज्ञ ही थे। उन्नीसवीं सदी के शुरू में यह श्लाघ्य प्रयत्न किया। भारत में ब्रितानवी सरकार के पालिटिकल एजेण्ट कर्नल जेम्स टॉड ने। उन्होंने सन् १८२९ में प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' में ओसवालों को तत्कालीन भारत की सर्वाधिक वैभवशाली एवं सर्वाधिक लक्षाधिपतियों वाली ८४ व्यवसायिक जातियों में अग्रणी माना है। कर्नल टॉड के अनुसार १९ वीं सदी में ओसवाल जाति के कुल एक लाख परिवार हिन्दुस्तान की आधी सम्पदा के मालिक थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उस समय तक भारत के विभिन्न राज्यों में ओसवाल जाति के ही श्रेष्ठि कोषाध्यक्ष, दीवान एवं न्यायाधीश मनोनीत होते थे। बीसवीं सदी के शुरू में जाति के गौरव की रक्षा के लिए इतिहास लेखन के अनेक प्रयत्न हुए। परन्तु काल की अतल गहराइयों में छिपे ढाई हजार वर्षों के इस अनमोल इतिहास को संकलित कर सकना आसान नहीं है।

जैनधर्म की प्रासंगिकता

ओसवाल मूलतः क्षत्रिय हैं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वे अपनी पहचान प्रायः खो बैठे हैं। अब वे एक व्यवसायी कौम बन कर रह गये हैं। वर्तमान सन्दर्भों में उन्हें वैश्य मान लिया जाता है। इस सामाजिक रूपान्तरण को सही परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करना इतिहास लेखन का अभिप्रेय भी है ताकि हमारा भविष्य-पथ आलोकित रह सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र आदि वर्णों के बाह्य विभेद को मैं महत्व नहीं देता । किन्तु मनुष्य के सामाजिक एवं आत्मिक विकास में आनुवंशिक तत्वों की भूमिका नकारी नहीं जा सकती। उन्हें समझने से हमारा आगे का मार्ग प्रशस्त होगा।

ओसवालों के प्रणेता जैनाचार्य रहे हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में जैनाचार्यों से प्रतिबोधित होकर क्षत्रिय राजवंशी लोग हजारों की संख्या में जैन बने। अहिंसा व्रत एवं निरामिष आहार ने उनकी जीवन पद्धति को प्रभावित करना शुरू किया। परन्तु उनकी सामाजिक स्थिति तत्काल नहीं बदल गई। शनैः शनैः जब रूपान्तरण हुआ, तब भी क्षत्रिय-संस्कार एवं शैव, शाक्त या वैष्णव धर्मी विधि-विधान, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज, त्यौहार— सभी उनके चरित्र का एक हिस्सा बने रहे। राजकीय परिधि से वे १७ वीं/१८ वीं शताब्दी के बाद ही विलग हुए। खेती एवं व्यापार जैसे वैश्य कर्म अपनाकर भी उन्होंने अपना क्षत्रियत्त्व नहीं खोया। उसकी झलकियों से इतिहास भरा पड़ा है। जब राजकीय प्रणाली में जीवन पद्धति सुगम न रही तो वे पूर्णतः वैश्य-कर्म की ओर उन्मुख हुए। मध्यकालीन जैनाचार्यों द्वारा इतर जाति एवं अन्य वर्णों के लोगों को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाने एवं उन्हें ओसवाल जाति में सम्मिलित करने से रूपान्तरण की यह प्रक्रिया तीव्रतर हो चली।

ओसवाल समाज का उद्भव जैन धर्म की प्रभावना के लिए हुआ। जैनधर्म का ज्यों-ज्यों अभ्युदय ह्रास हुआ, त्यों- त्यों इस समाज ने भी उत्थान और पतन देखे। दोनों के स्रोत, प्रवाह-पथ, बिम्ब व फलश्रुतियाँ समान ही नहीं, एक दूसरे पर आधारित एवं आश्रित भी रही हैं। जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय थे। ओसवाल जाति का उद्भव स्रोत भी क्षत्रिय है। जैनधर्म की विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्ति, हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों के जैनधर्म पर आक्रमण आदि सभी पहलू ओसवाल समाज पर भी अपना प्रभाव डालते रहे हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विभिन्न जैन सम्प्रदायों के धर्माचार्य अधिकांशतः ओसवाल हुए हैं। ओसवालों के सैकड़ों गोत्रों की प्रस्थापना में उन आचार्यों का प्रमुख योगदान रहा है। ओसवाल समाज की दैनन्दिन जीवन सरणी पर जैन सिद्धान्तों का अमिट प्रभाव परिलक्षित है। अतः जैन परम्परा के इतिहास का विहंगम पर्यावलोकन यहाँ समीचीन होगा। जैन धर्म सृष्टि का आदि धर्म माना जाता है। उसकी अवधारणाएँ हमें अपना मूल स्वरूप निर्धारित करने में सहायक होंगी।

सृष्टि का स्वरूप

जैन दर्शन के अनुसार यह जगत अनादि और अनन्त है। सृष्टि का न कोई कर्ता है, न हन्ता। इस शाश्वत जगत में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। सत् का कभी नाश नहीं होता एवं सर्वथा असत् कुछ भी नहीं है। तत्व (द्रव्य) का लक्षण ही सत् है एवं उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य (ध्रुव) होता रहता है। तत्व मूलतः दो हैं-- जीव और अजीव। जो चेतना युक्त है, वह जीव एवं जो सर्वथा अचेतन है, वह अजीव कहलाता है। चैतन्य का अर्थ है उसमें सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता की अनुभूति करने की क्षमता है, ज्ञान- दर्शन का उपयोग है। इन्द्रिय, बल, आयु और श्वांस इसके लक्षण हैं। ऐसे चैतन्य जीव की पाँच जातियाँ हैं :

एकेन्द्रिय : जिनमें स्पर्श (शरीर) इन्द्रिय होती है, वह स्पर्श से ही जानी जा सकती हैं। इनके पाँच प्रकार हैं— पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति। जो हमारी आँखों से दृष्टिगोचर हैं, वे 'बादर' एवं जो नहीं दिखाई पड़ते, वे सूक्ष्म कहलाते हैं। पांचों प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों का यही स्वरूप है। ये हलन-चलन नहीं करते अतः इन्हें स्थावर भी कहते हैं।

द्वीन्द्रिय : जिनमें स्पर्श (शरीर) एवं रसन (जीभ)— दो इन्द्रियां होती हैं, जैसे शंख, जोंक, घुन, लट आदि।

त्रीन्द्रिय : जिनमें स्पर्श, रस एवं घ्राण (सूँघना)-- ये तीनों इन्द्रिया होती हैं, जैसे- चींटी, जूं आदि।

चतुरेन्द्रिय : जिनमें स्पर्श, रस घ्राण एवं चक्षु (आँख) -- ये चार इन्द्रियां होती हैं जैसे-- मक्खी, मच्छर, भौंरा आदि।

पंचेन्द्रिय : जिनमें स्पर्श रस घ्राण चक्षु एवं श्रोत्र (कान) -- ये पांचों इन्द्रियां होती हैं जैसे- गाय, घोड़ा, कबूतर, आदमी आदि।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव हलन-चलन करने में समर्थ हैं अतः त्रस कहलाते हैं। किन्तु चेतना एकेन्द्रिय जीवों में भी है अतः पृथ्वी और वृक्ष आदि भी मनुष्य की तरह दुःख-सुख, आघात-प्रतिघात आदि का अनुभव करते हैं।

अजीव चेतना रहित होता है, जड़ है, अतः उसमें दुःख-सुख की प्रतीति नहीं होती। अजीव के पाँच भेद हैं— धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। इनमें धर्म, अधर्म, आकाश और काल-- ये चारों अमूर्त हैं, इनमें रस, गंध और स्पर्श नहीं हैं, न ये दिखाई देते है। किन्तु पुद्गल, पाँचवां अजीव-भेद मूर्त है, रूपी है।

धर्म : जीव और पुद्गल के गति (motion) सहायक तत्व को धर्म कहते हैं इसी माध्यम से उनमें गतिशीलता आती है।

अधर्म : जीव और पुद्गल को स्थिर रखने में सहायक तत्व अधर्म कहलाता है, इसी की सहायता से वे एक जगह ठहर सकते हैं।

आकाश : जो पदार्थ को आश्रय देता है यानि पदार्थ जिसमें अवस्थित है, उसे आकाश (space) कहते हैं। यह अनन्त है। इसी के एक क्षेत्र में जीव अजीव द्रव्य टिके हैं---इसे लोक-आकाश कहते हैं। शेष को अलोक आकाश। अनन्त आकाश का वह भाग जो लोक कहलाता है, शास्त्रों में इसे पुरुषाकार माना है, वही हमारी दुनिया है। इसी के मध्य भाग को मध्य लोक कहते हैं। मध्य लोक के ठीक मध्य में जम्बू द्विप (यूरेशिया) है। जम्बू द्वीप के केन्द्र में सुमेरु पर्वत है। चारों ओर लवण समुद्र है। जम्बु द्वीप के एक भाग में भरत (भारत) क्षेत्र है, जो उत्तर में हिमवंत (हिमालय) पर्वत एवं तीन ओर लवण समुद्र से वेष्ठित है।

काल : द्रव्यों के पर्याय में जो परिवर्तन व परिणमन होता है उनका सूचक है काल। काल अनादि-अनन्त है। नवीन-पुरातन, बाल-वृद्ध, दिन-रात आदि का बोधकाल क्रम से होता है। निरन्तर प्रवहमान चक्र होने से यह मात्र वर्तमान का द्योतक है, परन्तु द्रव्यों के अवस्था-सापेक्षतः इसकी तीन अवस्थाएं हैं-- भूत, भविष्य और वर्तमान। इसके सबसे छोटे अविभाज्य अंश को समय कहते हैं एवं सबसे बड़ी व्यवहार्य इकाई है कल्प। प्रत्येक कल्प स्थूलतः संख्यातीत वर्षों का होता है। एक कल्प के दो विभाग होते हैं- अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी में उत्तरोत्तर समाज का ह्रास एवं अवनति होती है तथा उत्सर्पिणी में उत्तरोत्तर विकास एवं उन्नति होती है। प्रत्येक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी को भागों में बांटा जा सकता है। अवसर्पिणी काल का क्रम इस प्रकार होगा : सुखमा-सुखम, सुखमा, सुखमा-दुखम, दुखमा-सुखम, दुखमा, दुखमा-दुखम। उत्सर्पिणी काल क्रम ठीक इससे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उल्टा दुखमा-दुखम से शुरू होकर सुखमा-सुखम तक। सुखमा-सुखम यानि सुख ही सुख, जीव के सर्वोच्च विकास का प्रतिमान है। दुखमा-दुखम उसके आत्यंतिक पतन का प्रतीक है। काल चक्र इसी क्रम को दुहराता रहता है। शास्त्रों के अनुसार वर्तमान में अवसर्पिणी का पांचवाँ भाग दुखम काल चल रहा है।

प्रागैतिहासिक युग

अवसर्पिणी के प्रथम तीन कालों (सुखमा-सुखम, सुखमा, सुखमा-दुखम) में जीवन अत्यन्त सरल एवं प्राकृतिक था। लोगों की आवश्यकता पूर्ति कल्पवृक्ष स्वतः कर देते थे। कोई द्वन्द्व या संघर्ष नहीं था। तीसरे काल के अवसान के समय शंका एवं समस्याएं उत्पन्न होने लगीं। इसी काल में कुलकरों (मनु) का प्रादुर्भाव हुआ। एक के बाद एक चौदह मनु हुए। इस वक्त तक मनुष्य समूहों (कबीलों) में रहने लगा था एवं उनका नायक 'मनु' कहलाया। पाषाणयुगीन चौदह मनु निम्न हैं:

प्रथम मनु प्रतिश्रुत : जिन्होंने मनुष्य जाति को चन्द्र और सूर्य की भक्ति का रहस्य बताया।

दूसरे मनु सन्मति : जिन्होंने नक्षत्रों और तारिकाओं का ज्ञान दिया।

तीसरे मनु क्षेमंकर : जिन्होंने वन्य पशुओं (सिंह आदि) से रक्षा के लिए दण्ड पाषाण का प्रयोग सिखाया।

पांचवें मनु सीमंकर : जिन्होने कल्पवृक्षों के अधिकांशतः नष्ट हो जाने से प्रत्येक आवासीय जन समूह का क्षेत्र निर्धारित कर दिया एवं अपराधी के दण्डार्थ 'हाकार' (हा) शुरू किया।

छठें मनु सीमंधर : जिन्होंने वैयक्तिक सम्पत्ति की अधिकार सीमा नियत की।

सातवें मनु विमल वाहन : जिन्होंने हाथी, अश्व आदि पशुओं को पालतू बनाकर सवारी के लिए उपयोग करना सिखाया।

आठवें मनु चक्षुष्मान: इसके पूर्व तक भोग भूमिज युगलिया स्त्री-पुरुष अपनी युगलिया सन्तान (एक साथ जन्में भाई-बहन) को जन्म देकर मर जाते थे एवं युगलिया सन्तान कालान्तर में स्त्री-पुरुष की तरह जीवन-यापन करते थे। चक्षुष्मान के समय से वे युगलिया सन्तान उत्पन्न करने के बाद भी जीवित रहने लगे।

नवें मनु यशस्वन : जिन्होंने युगलिया दम्पत्ति को सन्तान से स्नेह करना सिखाया।

दसवें मनु अभिचन्द्र : जिन्होंने सन्तान का लालन पालन करना सिखाया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

छठें से दसवें मनु तक अपराधी के दण्डार्थ माकार (मत करो) विधि का प्रचलन रहा।

ग्यारहवें मनु चन्द्राभ :जिन्होंने लोगों के लिए अति शीत, तुषार एवं वायु के प्रकोप से बचने की विधियां इजाद की।

बारहवें मनु मरुदेव : इनके समय तक पृथ्वी का मौसम अनायास विकराल होने लगा था। मरुदेव ने मेघ-गर्जन, बिजली आदि के प्रकोप से बचने की विधियां बतायी एवं कर्म करने की शिक्षा दी।

तेरहवें मनु प्रसेनजित :जिन्होंने-सद्यःजात शिशु की जरायु हटाने एवं शिशु पालन की सुचारु विधियां इजाद की।

चौदहवें मनु नाभिराय : जिन्होंने क्षुधानिवारणार्थ स्वतः उत्पन्न शालि, जौ तिल आदि भक्षण के प्रयोग बताए।

अन्तिम चार मनुओं के समय अपराधी के दण्डार्थ 'धिक्कार' विधि का प्रचलन हो गया था।

धर्म-तीर्थ प्रवर्तन

अवसर्पिणी का तीसरा काल (सुखमा-दुखम) समाप्त होते होते युगलिया-व्यवस्था क्षीण होने लगी। यहीं से हमारा अनुश्रुतिगम्य इतिहास शुरू है। यही से धर्म तीर्थ का प्रवर्तन हुआ। इस युग के प्रथम नायक थे- चौदहवें मनु नाभिराय और उनकी युगलिया पत्नी मरुदेवी की युगलिया सन्तान 'ऋषभ'। ऋषभ की युगलिया पत्नी सुनन्दा थी। सुमंगला के युगलिया पति की अकाल मृत्यु से युगलिया परम्परा भंग हुई और ऋषभ देव ने सुमंगला को भी अपनी पत्नी बनाया एवं सर्वप्रथम विधवा विवाह की प्रणाली प्रचलित की। ऋषभ के भरत, बाहुबलि आदि १०० पुत्र एवं ब्राह्मी और सुन्दरी-दो पुत्रियां हुई।

हिन्दू धर्म में भी ऋषभ को विष्णु के प्रमुख अवतारों में माना गया है। पाँच सहस्र वर्ष पूर्व की सिन्धु घाटी-सभ्यता के अवशेषों के उत्खलन में प्राप्त कार्योत्सर्ग की नग्न मृण्मुद्राओं को पुरातत्व वेत्ता ऋषभ उपासना से जोड़ते हैं। कुछ तो पौराणिक देवता शिव की कल्पना का आधार भी ऋषभ को ही मानते हैं दोनों का प्रतीक चिह्न वृषभ है एवं निर्वाण स्थल-कैलाश। ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट हुए। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारत हुआ।

कालान्तर में हुए २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती सम्राट, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव एवं ९ बलदेव- इन्हें शास्त्रों में त्रिषष्टि शलाका पुरुष कहा गया है

चौवीस जैन तीर्थंकरों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चौबीस जैन तीर्थंकरों का संक्षिप्त विवरण

तीर्थंकर-नाम	पिता-माता	जन्मस्थान	वंश	निर्वाण स्थल	प्रतीक
१. ऋषभदेव	नाभि-मरुदेवी	अयोध्या	इक्ष्वाकु क्षत्रिय	कैलाश	वृषभ
२. अजितनाथ	जितशत्रु-विजया	अयोध्या	,,	सम्मेदशिखर	हस्ती
३. संभवनाथ	दृढ़राज-सुवेणा	श्रावस्ती	,,	सम्मेदशिखर	अश्व
४. अभिनन्दन	संवर-सिद्धार्थ	अयोध्या	,,	सम्मेदशिखर	वानर
५. सुमतिनाथ	मेघरथ-मंगला	अयोध्या	,,	सम्मेदशिखर	चक्रवाक
६. पद्मप्रभु	धर-सुसीमा	कोशाम्बी	,,	सम्मेदशिखर	पद्म
७. सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ-पृथ्वीषेणा	वाराणसी	,,	सम्मेदशिखर	स्वस्तिक
८. चन्द्रप्रभ	महासेन-लक्ष्मणा	चन्द्रपुर	,,	सम्मेदशिखरज	चन्द्रमा
९. पुष्पदन्त	सुग्रीव-जयरामा	काफंदी	,,	सम्मेदशिखर	मगर
१०. शीतलनाथ[२]	दृढ़रथ-सुनन्दा	भद्रपुर	,,	सम्मेदशिखर	श्रीवत्स
११. श्रेयांसनाथ	विष्णु-नन्दा	सिंहपुर	,,	सम्मेदशिखर	गैंड़ा
१२. वासुपूज्य	वसुपूज्य-जयावती	चम्पापुर	,,	मन्दारगिरि	महिष
१३. विमलनाथ	कृतवर्मा-सामा	काम्पिल्य	,,	सम्मेदशिखर	वराह
१४. अनन्तनाथ	सिंहसेन-सुयषा	अयोध्या	,,	सम्मेदशिख	श्येन
१५. धर्मनाथ	भानु-सुप्रभा	रत्नपुर	कुरु	सम्मेदशिखर	वज्रदंड
१६. शांतिनाथ[३]	विश्वसेन-ऐरा	हस्तिनापुर	कुरु	सम्मेदशिखर	हिरण
१७. कुंथुनाथ[४]	सुरसेन-श्रीकान्ता	हस्तिनापुर	कुरु	सम्मेदशिखर	अज
१८. अरनाथ[५]	सुदर्शन-मित्रसेना	हस्तिनापुर	सोम	सम्मेदशिखर	मत्स्य
१९. मल्लिनाथ	कुंभ-प्रजावती	मिथिला	इक्ष्वाकु	सम्मेदशिखर	कलश
२०. मुनिसुव्रत[६]	सुमित्र-सोमा	राजगृह	हरि	सम्मेदशिखर	कच्छप
२१. नमिनाथ	विजय-प्रभा	मिथिला	इक्ष्वाकु	सम्मेदशिखर	नीलकमल
२२. अरिष्टनेमि[७]	समुद्रविजय-शिवा	शौदिपुर	हरि	गिरनार	शंख
२३. पार्श्वनाथ	अश्वसेन-त्रिशला	काशी	उरग	सम्मेदशिखर	सर्प
२४. महावीर	सिद्धार्थ-त्रिशला	कुण्डग्राम	ज्ञातृ	पावापुरी	सिंह

---

१. असि-मसि-कृषि आदि कलाओं का ज्ञान कराया २. वैदिक आचार्यों का प्रवेश एवं ब्राह्मण-पूजा का प्रारम्भ ३.४.५. चक्रवर्ती सम्राट् ६. अयोध्यापति राजा राम के समकालीन (रामायण काल) ७. श्री कृष्ण के समकालीन (महाभारत काल)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रमण परम्परा की ऐतिहासिकता

भारत की प्राचीन संस्कृति में दो धाराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है- प्रथम है आर्हत यानि श्रमण संस्कृति और दूसरी है बार्हत यानि ब्राह्मण संस्कृति। आर्हत मूलतः पुरुषार्थ वादी हैं। बार्हत ब्रह्मणवादी हैं। वे वैदिक सभ्यंता के जनक हैं एवं यज्ञों के उपासक हैं। उनका समूचा दर्शन प्रवृत्ति मूलक है, जब कि श्रमण संस्कृति निवृत्ति मूलक। इतिहासकारों का मानना है कि भारत की मूल संस्कृति आर्हत है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि बार्हत मूलतः आर्य थे जो लघु एशिया एवं मध्य एशिया से उठकर त्रेता युग के प्रारम्भ में ईसा से ३००० वर्ष पूर्व भारत के पश्चिमोत्तर खैबर दर्रे से होकर भारत आए एवं सिंध व पंजाब के विभिन्न प्रदेशों में बसे। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के अनुसार (भूगोल हस्तामलक) ढाई हजार वर्ष पूर्व विश्व का अधिकांश भाग आर्हत धर्म का उपासक था। कल्पसूत्र में वर्णित तथ्यों के आधार पर ऋषभ ने तीन वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) की स्थापना एवं कैवल्य के उपरान्त उनके पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने व्रतधारी श्रावकों को जिनेऊ (जनेउ) देकर ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की । यह जनेउ की परम्परा व्रतधारी जैनियों में अब भी कहीं कहीं प्रचलित है।

मोहन जोदड़ों और सिन्धु घाटी के उत्खनन में ईसा से ३००० वर्ष पूर्व की जिस सभ्यता के चिह्न मिले हैं, वे आर्हत-उपासक थे। ऋषभ की नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में मिली पाषाण मूर्तियां इस बात की पुष्टि करती हैं। उत्खनन में यज्ञों या वैदिकसभ्यता के कोई चिह्न नहीं मिले। वेदों का रचना काल ईसा से १५०० से ९०० वर्ष पूर्व माना जाता है।

उत्खनन में शैव संस्कृति के जो चिह्न मिले हैं, वे भी वैदिक संस्कृति से मेल नहीं खाते। वैसे भी शिव वैदिक आर्यों के देव नहीं थे। पौराणिक ब्राह्मणों ने तो शिव को मायावी, क्रोधी आदि बीभत्स रूपों में चित्रित किया है। शिवलिंग मूलतः शक्ति की ऊर्ध्वावस्था का प्रतीक था। वैसे भी ऋषभ और शिव की समानताएँ अनेक हैं- कैलाश दोनों का सिद्ध क्षेत्र माना जाता है एवं वृषभ दोनों का वाहन। स्कंध पुराण का निम्न श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है:

कैलाशे पर्वते रम्ये, वृषभोज्यं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः।।

जैन धर्म की प्राचीनता एवं उसे आदि धर्म मानने में अब किसी को संदेह नहीं रहा है। एक जमाना था, जब भगवान् पर्श्वनाथ की ऐतिहासिकता भी संदिग्ध मानी जाती थी। ऋग् वेद में '*ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठानां, चतुर्विंशति तीर्थंकराणां*', यजुर्वेद में '*ॐ नमोर्हन्तो ऋषभो*' आदि उल्लेखों एवं महाभारत, नागपुराण, शिव पुराण, योगवाशिष्ट, महिम्न स्तोत्र, मनुस्मृति आदि में जिनेश्वर या निर्ग्रन्थ के नाम से अनेक उल्लेखों ने जिनधर्म को विश्व का आदि धर्म स्थापित कर दिया है। बीसवें जैन तीर्थंकर मुनिसुव्रत जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के समकालीन थे एवं बाइसवें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ श्री कृष्ण के समकालीन माने जाते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भगवान् महावीर का धर्म चक्रः

भगवान् महावीर से २५० वर्ष पूर्व तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ (ईसापूर्व ८७७-७७७) हुए, जिनके शिष्य हज़ारों की संख्या में भगवान् महावीर के समय भी विद्यमान थे। यथा- केशीकुमार, काल शिवेसी, आनन्द, गांगयामुनि एवं केशी श्रमणाचार्य अपने अपने सैंकड़ों शिष्यों के साथ उस समय भारत भूमि पर विचरण कर रहे थे, जिनमें से अनेक भगवान महावीर के शासन् में शामिल हो गए। समकालीन श्रमण परम्परा के अन्य पाँच विशाल सम्प्रदाय भी भारत भूमि पर विद्यमान थे। इनमें कुछ सम्प्रदाय महावीर के संघ से भी अधिक विस्तृत थे। इन पाँच सम्प्रदायों का नेतृत्व क्रमशः (१) पूरण काश्यप (२) मंखलि गोशालक (३) अजित केश कंबलि (४) पकुध कात्यायन और (५) संजय वेलट्ठि पुत्र कर रहे थे। परिस्थितियों वश ये सभी अपना अस्तित्त्व बनाए न रख सके।

भगवान् महावीर का जन्म ईसा पूर्व ५९९ में हुआ एवं निर्वाण ईसा पूर्व ५२७ में। भारत में उस समय मगध सम्राट् श्रेणक सर्वशक्तिमान थे, अन्य राज्य अंग (दधिवाहन) वैशाली (चेटक) कौशल (लच्छवी) आदि भी कम न थे। अधिकांश तत्कालीन राज्यों ने जैनधर्म को राज्याश्रय दिया। वीर निर्वाण के बाद गणधर गौतम मात्र एक महीने जीवित रहे। उसके बाद सुधर्मा स्वामी (ईसा पूर्व ५२७ से ५०७) एवं तत्पश्चात् जम्बू स्वामी (ईसा पूर्व ५०७ से ४६३) महावीर के पट्टधर हुए। ये ही तीन सर्वज्ञ केवली थे। उनके बाद प्रभव, शम्भव, यशोभद्र, सम्भूति विजय एवं भद्रबाहु-ये पाँच श्रुत केवली हुए। उनके पट्टधर स्थूलिभद्र (ईसा पूर्व ३५७से ३०८) केवल पाठ की दृष्टि से श्रुत केवली थे, अर्थ सन्दर्भ से नहीं।

आगम वाचनाएँ

भगवान् महावीर के निर्वाण से १६० वर्ष बाद (ईसा पूर्व ३६७ वर्ष) उत्तरी भारत में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। जिन-संघ छिन्न-भिन्न हो गया। भद्रबाहु स्वामी ने हजारों श्रमणों के दिगम्बर संघ के साथ दक्षिणी भारत की ओर प्रस्थान किया। तत्कालीन मगध सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने भद्रबाहु स्वामी से जिनधर्म अंगीकार ही नहीं किया, अपने पुत्र सिंहसेन को राज्य देकर प्रव्रज्या भी ली एवं आचार्य भद्रबाहु के साथ ही दक्षिण गए-ऐसा श्रवण बेल गोला के शिलालेखों एवं प्राचीन ग्रन्थों से प्रतीत होता है। श्वेताम्बर मत के अनुसार चन्द्रगुप्त को प्रव्रज्या देने वाले भद्रबाहु द्वितीय थे, जो वराहमिहिर के भाई थे एवं वह चन्द्रगुप्त भी मौर्य सम्राट् न होकर अवन्ती का राजा था। दुर्भिक्ष मिटने के बाद धीरे-धीरे श्रमण संघ पाटलिपुत्र में फिर एकत्रित हुआ एवं आगम वाचना प्रारम्भ हुई। अब तक शास्त्रों को कंठस्थ रखने की ही परम्परा थी। इस समय वाचना में ग्यारह अंग संकलित कर लिए गए। बारहवें अंग की वाचना भद्रबाहु स्वामी से ली गई पर वह अधूरी रही। महावीर स्वामी के पन्द्रहवें पट्टधर बज्र स्वामी (सन्- २०-५७) अन्तिम दस पूर्व ज्ञान के ज्ञाता थे। उनके पश्चात् विस्मृति का क्रम बढ़ता ही गया।

जैन आगमों की दूसरी वाचना ईसवी सन् ३०० के लगभग मथुरा में आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व में हुई। इसी समय वल्लभी में आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में भी वाचना हुई एवं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अंगों-उपांगों का संकलन किया गया। आगमों को सर्वप्रथम पुस्तकारूढ़ किया वीर निर्वाण के ९८० वर्ष पश्चात् लोहित सूरि के शिष्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण ने ईसवी सन् ५४३ में। बल्लभी में यह आगमों की तीसरी वाचना थी। उन्होंने आगमों का व्यवस्थित लेखन किया। आगमों के वर्तमान उपलब्ध संस्करण उन्हीं के लिखे हैं। इसके पश्चात् अब तक कोई वाचना नहीं हुई।

मतान्तर : श्वेताम्बर-दिगम्बर संघ

तीर्थंकर महावीर नग्नता के पक्षधर थे। दिगम्बर मत चौबीसों तीर्थंकरों को नग्नता का पक्षधर मानता है, पर श्वेताम्बर ऐसा नहीं मानते। महावीर के संघ में सचेल (श्वेत वस्त्र पहनने वाले) और अचेल (कोई वस्त्र न पहनने वाले नग्न) दोनों प्रकार के श्रमण थे। आचारांग सूत्र में दोनों प्रकार के श्रमणों के मोह विजय का वर्णन है। उत्तराध्ययन सूत्र में दोनों प्रकार के श्रमणों का उल्लेख है। अचेल जिन कल्पिक एवं सचेल स्थविर कल्पिक होते थे। परन्तु इस सम्बन्ध में सैद्धान्तिक मतभेद शुरू हुआ जम्बू स्वामी के समय से। उनके बाद की पट्टावलियाँ विभिन्न मतों की भिन्न-भिन्न है। दिगम्बर मत के अनुसार जम्बू स्वामी के बाद विष्णु, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पांच श्रुत केवली हुए। पर दोनों ही मत भद्रबाहु स्वामी को सम्पूर्ण द्वादशांगी का धारक मानते हैं। माथुरी वाचना में आगमों का जो रूप स्थिर हुआ, उसे अचेल समर्थकों ने अस्वीकृत कर दिया। इस तरह ईस्वी सन् ८२ के आस-पास संघ दो मुख्य शाखाओं में विभक्त हो गया—दिगम्बर और श्वेताम्बर। सूत्रों के अर्थ-भेद के कारण कालान्तर में इन मतों में भी विभिन्न गच्छों का जन्म हुआ एवं उन गच्छों के भी अनेक फिरके हो गए। सैद्धान्तिक मतभेद के मुख्य तीन मुद्दे थे—केवली आहार नहीं करते, स्त्रियों की मुक्ति नहीं होती, अपरिग्रह व्रत में श्वेत वस्त्र भी अमान्य हैं।

यापनीय संघ

दिगम्बर श्वेताम्बर मतभेद की परिणति स्वरूप एक तीसरे समन्वयात्मक सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जो यापनीय संघ नाम से प्रसिद्ध हुआ। दिगम्बर आचार्य देवचन्द्र रचित 'दर्शनसार' ग्रन्थ के अनुसार यापनीय संघ का प्रादुर्भाव वि० स०२०५ में हुआ। उसी ग्रन्थ में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का उद्भव वि० स० १३६ में हुआ- लिखा है यानि मतभेद जनित अलगाव से करीब ७० वर्ष बाद यह समन्वय मूलक अभियान शुरू हुआ। स्व० पं० नाथूराम प्रेमी के अनुसार यापनीय मुनि नग्न रहते थे एवं हाथ में मोर की पिच्छि रखते थे, जिससे समयानुसार नग्नता ढ़कने का काम लेते थे। वे तीर्थकरों की नग्न मूर्ति की पूजा करते थे। ये सभी बातें दिगम्बर मत वालों से मिलती थीं। परन्तु स्त्री का इसी भव में मोक्ष भी मानते थे एवं केवली को आहार भुक्ति भी मानते थे, आवश्यक, दशवैकालिक आदि आगम ग्रन्थों का पठन-पाठन भी करते थे—इस दृष्टि से वे श्वेताम्बरों के अधिक नजदीक थे। यापनीय संघ श्वेताम्बर -दिगम्बर मान्यताओं का समन्वय था। ईसा की १५ वीं सदी तक यापनीय संघ का वर्चस्व रहा एवं कालान्तर में क्षीण हो गया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुनि कल्याण विजय जी ने अपने प्रबंध 'वीर निर्वाण संवत् और जैन काल गणना' में नवीनतम शोधों का उल्लेख किया है। उड़ीसा की गिरि-गुफाओं में प्राप्त सम्राट् खारवेल के ईसा पूर्व १५२ वर्ष के उत्कीर्णित शिलालेख एवं हिमवंत स्थविरावली के अनुसार सम्राट् के निमंत्रण पर कुमारीपर्वत पर एक वृहद् श्रमण सम्मेलन आयोजित हुआ। जिसमें अनेक प्रसिद्ध जैनाचार्य उपस्थित थे जैसे उमास्वाति, श्यामाचार्य, बल्लिसह आदि। उन्होंने द्वादशांगी का संकलन किया और उन्हें भोजपत्र, ताडपत्र एवं वल्कल पर लिपि बद्ध किया।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय

ईसा की पांचवीं शताब्दी में श्वेताम्बर मूर्ति पूजक मत दो भागों में विभक्त हो गया—चैत्यवासी और सुविहित मार्गी। चैत्यवासी परम्परा के शिथिलाचार ने क्रियोद्धार को जन्म दिया। अनेक आचार्य मूल चैत्यवासी धारा से पृथक हो क्रियोद्धार में लगे।

चैत्यवासी

जैन परम्परा में वर्षाकाल के अतिरिक्त एक स्थान पर अधिक निवास वर्जित रहा है। परन्तु बौद्धों की तरह जैनों में भी कुछ प्रभावशाली श्रमण पहले साधना की दृष्टि से और फिर रूढ़ि रूप में चैत्यों (मठों) में स्थायी निवास करने लगे। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में चैत्य विद्यमान हैं। श्वेताम्बर चैत्यवासी यति एवं दिगम्बर चैत्यवासी भट्टारक कहलाते हैं। मुनि कल्याण विजय जी ने इस प्रथा को अति प्राचीन माना है एवं ईस्वी सन् ३५५ में मठों एवं चैत्यों की सुव्यवस्थिति स्वीकार की है। आरम्भ में दिगम्बर भट्टारक भी नग्न रहते थे। आचार्य धर्म सागर के अनुसार मुस्लिम काल में नग्न यतियों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार के कारण उन्होंने चर्या के समय वस्त्र धारण को उचित मान लिया।

वृहद गच्छ

ईस्वी सन् ९३७ में उद्योतन सूरि ने तेलीग्राम के वृहद वट वृक्ष की छाया में सर्वदेव सूरि को सूरि पद प्रदान किया। फलतः अब तक जो श्वेताम्बर श्रमण संघ निर्ग्रन्थ गच्छ के नाम से जाना जाता था, वृहद गच्छ कहलाने लगा। इस गच्छ का प्राचीनतम शिला लेख सिरोही के कोटरा ग्राम में ई० सन् १०८६ का विद्यमान है।

खरतर गच्छ

पाटन (गुजरात) के राजा दुर्लभराज के दरबार में ई० सन् १०१७ में सुविहित मार्गी आचार्य जिनेश्वर सूरि ने पंचाक्षरा पार्श्वनाथ चैत्य के मुख्य अधिष्ठाता सुराचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर 'खरतर' विरुद पाया अतः खरतर गच्छीय कहलाने लगे। पं० हीरालाल हंसराज ने अपने 'जैनधर्म नो प्राचीन इतिहास (१९०२) में इस सम्बन्ध में एशियाटिक सोसायटी की रिपोर्ट' १४८ को उद्धृत करते हुए धर्मसागर उपाध्याय के अनुसार खरतर गच्छ की उत्पत्ति वि० सं० १२०४ में आचार्य जिनदत्त सूरि से मानी है। वे बड़े 'मगरूर' व्यक्ति थे एवं प्रश्नों के उत्तर तीक्ष्ण शब्दों में देते थे अतः लोग उन्हें 'खरा' कहने लगे। इसी विशेषण से 'खरतर' नाम प्रसिद्ध हो गया । डा० बूलर ने इस मत की पुष्टि की है क्योंकि जिनेश्वर सूरि या उनके

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिष्य अभयदेव सूरि के किसी ग्रन्थ में 'खरतर' नाम का उल्लेख नहीं है। कालान्तर में इनके कई गच्छ भेद हो गए हैं यथा- लघु, मधु, बेगड़, आचारीय ,भावहर्ष, लघुवाचार्यीय, रंगविजय, श्रीसारीय, पीपालक आदि।

तपा गच्छ

ई० सन् १२२८ में जगचन्द्र सूरि को आजीवन आयाम्बिल तप करने से मेवाड़ के शासक जेत्रसिंह ने 'तपा' विरुद दिया। फलतः निर्ग्रन्थ गच्छ की इस शाखा को तपा गच्छ कहा जाने लगा। कालान्तर में इसकी भी अनेक शाखाएँ हुई यथा—वृद्ध पौसालिक, लघुपौसालिक, देवसूरि गच्छ, आनन्दसूरि गच्छ, सागर गच्छ, विमल गच्छ, संवेगी, नागौरी, पार्श्वनाथ गच्छ आदि।

आंचल गच्छ

संवत् ११६९ में सुविहित गच्छ का नाम- चालुक्यराज कुमार पाल से सम्बद्ध जनश्रुति के अनुसार आचार्य आर्य रक्षित सूरि के सुश्रावक मंत्री कपर्टी द्वारा अपने वस्त्रांचल से भूमि साफ कर आ० हेमचन्द्र सूरि को वन्दना करने को विधि संगत बताने से उनके गच्छ का नाम आंचल गच्छ पड़ा।श्वेताम्बर मूर्ति पूजकों के कालान्तर में अनेक गच्छ विभेद हुए जिनमें मुख्य हैं— पूर्णमिया, आगमिक, नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति, ब्राह्मण, कोरण्टक, सांडेराव, नागपुरिया आदि। इनमें से अनेक गच्छों का वर्तमान में लोप हो चुका है परन्तु उपलब्ध शिलालेखों के साक्ष्य से किसी समय उनकी स्थिति स्वयं सिद्ध है।

श्वेताम्बर : अमूर्ति पूजक सम्प्रदाय

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मूल शाखा पुजेरा कहलाती है, जो मूर्ति पूजक है। विक्रम की सोलहवीं सदी में चैत्यवासी परम्परा के यतियों के शिथिलाचार के विरुद्ध क्राति का शंख फूँका गुजरात के एक सद्गृहस्थ ने । चैत्यों के परिग्रह और मूर्तिपूजा के रूढ़ विधानों का खोखलापन लौंका शाह को कचोट गया। उनके अनुयायियों का लौंका गच्छ नाम प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने वि० संवत् १५०८ से जिन प्रतिमा का उत्थापन प्रारम्भ किया।

स्थानकवासी

लौंका शाह की प्रेरणा से वि० संवत् १५३१ में भाण आदि ४४ व्यक्तियों ने मूर्ति-पूजा विरोधी इस मत की दीक्षा ली। कालान्तर में ढूँढाड़ प्रदेश में अधिक विचरण करने से इस सम्प्रदाय को 'ढूंढ़िया' कहा जाने लगा। इनके निमित्त बने स्थानक में निवास करने के कारण वे स्थानकवासी कहलाते हैं। वि० संवत् १७०९ में यति लवजी ने क्रिया-उद्धार किया। इन्होंने सम्प्रदाय में सर्वप्रथम साधु-साध्वियों के लिए 'मुखपत्ती' का चलन किया। कालान्तर में एक ही समय २२ आचार्यों के २२ समूह होने से उन्हें 'बाईसटोला' भी कहा जाने लगा।

तेरापंथी

विक्रम की उन्नीसवीं सदी में स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक श्रमण भीखणजी ने एक आचार्य, एक आचार एवं दान-दया के प्रश्नों को लेकर विद्रोह कर दिया। वि० संवत् १८१७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में उन्होंने आ० रघुनाथ जी से अलग होकर तेरापंथी सम्प्रदाय की नींव रखी। भीखणजी इस सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य थे। उन्हें आचार्य भिक्षु कहा जाता है। तेरापंथी सम्प्रदाय ने ओसवाल समाज में अग्रणी स्थान बना लिया ।

दिगम्बर सम्प्रदाय

महावीर की नग्न साधना पद्धति का रक्षक दिगम्बर सम्प्रदाय परम्परा की दृष्टि से प्राचीनतम है। परन्तु दिगम्बर परम्पराएँ मूलतः दक्षिणी भारत में ही सुरक्षित रह सकीं। वहीं से ये परम्पराएँ विक्रम की ८ वीं ९ वीं सदी में उत्तरी भारत आई।

मूल संघ

दिगम्बर सम्प्रदाय के मूर्तिपूजक संघों में प्राचीनतम मूल संघ है जो ईसा की द्वितीय सदी में कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रवर्तित माना जाता है। कुछ पट्टावलियों में माघनन्दी को इसका संस्थापक कहा गया है। इसे द्रविड़ संघ भी कहते हैं।

काष्ठा संघ

'दर्शनसार' के अनुसार काष्ठा संघ की स्थापना ई० सन् ६९६ में कुमार सेन ने की। अग्रवाल जाति ने इस संघ की अभिप्रेत मूर्तियां राजस्थान में प्रतिष्ठित करवाई।

माथुर संघ

'दर्शनसार' के अनुसार ई० सन् ६९८ में रामसेन ने मदुरा में इस संघ की स्थापना की। राजस्थान में १२ वीं सदी में इस संघ से सम्बद्ध अनेक मन्दिरों एवं मूर्तियों की स्थापना हुई।

दिगम्बर अमूर्ति पूजक संघ

तेरहपंथी : ईसा की १५ वीं सदी में तारण स्वामी ने मूर्ति पूजा का विरोध किया। उनके अनुयायी तारण स्वामी द्वारा रचित ग्रंथों की पूजा करते हैं। तेरह सिद्धान्तों के अनुसरण के कारण उन्हें तेरहपंथी कहा जाता है। सांगानेर के पं० अमरचन्द बड़जात्या एवं आगरा के पं० बनारसीदास ने इसे बहुत लोकप्रिय बनाया।

गुमानपंथी : जयपुर के पं० टोडरमल के पुत्र गुमानराम ने १८ वीं सदी में इस मत की प्रतिष्ठा की।

बीसपंथी : मूर्ति पूजक भट्टारक तेरह पंथियों के विरोध में अपनी श्रेष्ठता जतलाने के लिये अपने को 'बीसपंथी' कहने लगे।

तोता पंथी : *तेरहपंथी एवं बीस पंथियों में समझौता कराने हेतु नागौर में यह नया सम्प्रदाय* बना, जिसे साढे सोलह पंथी भी कहते हैं। वर्तमान में इन सम्प्रदायों की स्थिति नगण्य है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पार्श्वापत्य सम्प्रदाय - उपकेश गच्छ

जैनधर्म की तीसरी प्रमुख शाखा पार्श्वनाथ प्रभु के सन्तानियों की है, जिनसे ओसवाल वंश के उद्भव का सीधा सम्बन्ध है। पार्श्वनाथ परम्परा में पार्श्वनाथ भगवान के निर्वाण (ईसा पू० ७७७) के बाद उनके प्रथम पट्टधर हुए शुभदत्त गणधर, द्वितीय थे हरिदत्त सूरीश्वर, तृतीय

* श्री पार्श्वजिनो जने हितकरश्चिन्तामणिः पातु माम् *

थे आर्य समुद्र, चतुर्थ थे केशी श्रमण एक पांचवें पट्टधर थे स्वयं प्रभ सूरि। इस परम्परा के अनेक श्रमण महावीर के संघ में शामिल हो गये। किन्तु अनेक श्रमण ऐसे भी थे, जिन्होंनें पार्श्वनाथ की परम्परा कायम रखी और महावीर के संघ में शामिल नहीं हुए। पार्श्व प्रभु के छठें पट्टधर रत्नप्रभ सूरि ने ईसवी पूर्व ४०० में उपकेशपट्टन में महाजन वंश की स्थापना की, जो कालान्तर में ओसवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका सम्प्रदाय उपकेश गच्छ के नाम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से आज भी विद्यमान है। छठें पट्टधर रत्नप्रभ सूरिके बाद इनकी पट्टावली में ३२ वें पट्टधर तक यक्षसूरि, कक्कसूरि, देवसूरि, सिद्धसूरि एवं रत्नप्रभ सूरि इन पांच नामों की ही पुनरावृत्ति है। तत्पश्चात पहले और अन्तिम नाम को छोड़कर ८५ वें पट्टधर तक बाकी तीन नामों की पुनरावृत्ति है। इस पुनरावृत्ति को लेकर अनेक भ्रम हुए हैं। जर्मन विद्वान डा० बालथेर शुब्रिंग के अनुसार उपकेश गच्छ की पट्टावली इसी कारण सन्दिग्ध है। कुछ भारतीय इतिहासकारों ने उसी तर्क को दोहराया है। हांलाकि पट्टावलियों में आचार्य-पट्टधरों के वास्तविक (गार्हस्थ्य) नामों का भी उल्लेख है। वस्तुतः अतीत से सम्बन्ध विच्छेद करने वाली नाम बदलने की यह भारतीय परम्परा साधना का एक अंग थी, जिसे नजर अन्दाज कर दिया जाता है। ओसवंश के उद्भव के लिए यही गच्छ जिम्मेदार था। कालान्तर में जैन धर्म के अनेक सम्प्रदायों ने इसके उत्थान एवं श्रीवृद्धि में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनमें खरतर गच्छ प्रमुख था। उत्तर भारतीय ओसवालों पर इस समय श्वेताम्बर मत के खरतर गच्छ एवं तेरापंथी सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव है।

प्रमुख जैनागम एवं सूत्र

दिगम्बर मान्यता के अनुसार तीर्थंकरों की वाणी अनाक्षरी होती है। उपदेश की भाषा में वे कुछ नहीं बोलते। उनके रोम-रोम से दिव्य ध्वनि निःसृत होती है और समवसरण में वही ध्वनि उपस्थित श्रोताओं के लिए उनकी अपनी भाषा में परिणत हो जाती है। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार भगवान् महावीर के उपदेश अर्ध मागधी भाषा में हुए। भगवान् के उपदेशों को शब्द बद्ध किया- उनके गणधरों ने। भगवान् के ११ गणधरों में से ९ गणधर उनसे पूर्व ही निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रभूति गौतम जल्द ही कैवल्य को प्राप्त हुए। अतः संघ संचालन का भार आर्य सुधर्मा पर पड़ा। वे ही भगवान् की वाणी के सन्देश वाहक बने। द्वादशांग उन्हीं की देन है। ये द्वादशांग (सूत्र/आगम) हैं—

(१) आचारांग (२) सूत्रकृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) (६) ज्ञातांगधर्मकथा (७) उपासक दशांग (८) अन्तकृद्दशांग (९) अनुत्तरोपपातिक दशांग (१०) प्रश्न व्याकरण (११) विपाक (१२) दृष्टिवाद। (यह बारहवां अंग विलुप्त हो गया है)।

उक्त द्वादशांगों को समझने के लिए स्थविर आचार्यों ने १२ उपांगों की रचना की :

(१) उववाइय (औपपातिक)
(२) रायपसेणिय (राज प्रश्नीय)
(३) जीवाजीवाभिगम
(४) पण्णवणा (प्रज्ञापना)
(५) सूर्यपण्णति
(६) चन्द्रपण्णति
(७) जम्बूद्वीप पण्णति

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(८) णिरयावलिया
(९) कप्पवदंसिया
(१०) पुप्फिया
(११) पुप्फचूलिया
(१२) वण्हिदशा (वृष्णि दशा)

परन्तु अंगों उपांगों में परस्पर कोई सामञ्जस्य नहीं है।

उत्तरवर्ती आचार्यों ने श्रमणों के आचार विषयक ६ छेद सूत्रों की रचना की। आचार्य भद्रबाहु इन छेद सूत्रों के प्रणेता कहे जाते हैं- (१) निशीथ (२) महानिशीथ (३) व्यवहार (४) दशाश्रुतस्कंध (५) वृहत्कल्प (६) पञ्चकल्प (कल्पसूत्र) कालान्तर में भगवान् के पूरे आध्यात्म दर्शन को चार मूल सूत्रों में आचार्यों ने ग्रन्थित किया- (१) उत्तराध्ययन (२) दशवैकालिक (आ० शय्यम्भव ने अपने आठ वर्षीय पुत्र मणक की मृत्यु सन्निकट जानकर दशवैकालिक की रचना की थी)। (३) आवश्यक निर्युक्ति (४) पिण्ड निर्युक्ति और ओघ निर्युक्ति। इनके सिवाय समय-समय पर आचार्यों ने भाष्य, टीकाएँ एवं स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की। संकट निवारणार्थ रचित 'उवसग्गहरं' स्तोत्र उल्लेखनीय है। अन्य ग्रंथों में प्रमुख हैं:

१. प्रणवणा सूत्र	रचनाकार	श्यामाचार्य	(ईसा पूर्व १५२ वर्ष)
२. तत्त्वार्थ सूत्र	,,	उमास्वाति	(,,)
३. अंग विद्या	,,	बलिस्सह	(,,)
४. आप्त मीमांसा	,,	समन्तभद्र	(ईसा पूर्व प्रथम सदी)
५. न्यायावतार	,,	सिद्धसेन दिवाकर	(ईसा पूर्व प्रथम सदी)
६. नियमसार	,,	कुन्दकुन्द	(ईसा की २री सदी)
७. नन्दी सूत्र	,,	देवर्धिगणि	(ईसा की ५वीं सदी)
८. भक्तामर स्तोत्र	,,	मानतुङ्ग	(ईसा की ५वीं सदी)
९. अनुयोग द्वार	,,	आर्य रक्षित	(ईसा की ५वीं सदी)
१०. सर्वार्थ सिद्धि	,,	पूज्यपाद	(ईसा की ५वीं सदी)
११. योग बिन्दु	,,	हरिभद्र	(ईसा की ५वीं सदी)
१२. उपमिति भव प्रपंचकथा	,,	सिद्धर्षि	(ईसा की ६ठी सदी)
१३. कुवलयमाला	,,	उद्योतन	(ईसा की ६ठी सदी)
१४. अष्टशती	,,	अकलंक	(ईसा की ८वीं सदी)
१५. जम्बूद्वीप पन्नति	,,	पद्मनन्दी	(ईसा की १०वीं सदी)
१६. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	,,	हेमचन्द्र	(ईसा की ११वीं सदी)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्प्रदायों की सामान्य स्थिति

इस कलि काल के वर्तमान धर्म संघों का एक लेखा-जोखा हाल ही में 'श्री समग्र जैन चातुर्मास सूचि' १९९५ के रूप में श्री बाबूलाल जैन उज्ज्वल के सम्पादन में प्रकाशित हुआ है जिसके अनुसार भारत में विभिन्न जैन संघों की वर्तमान स्थिति इस प्रकार है-

भारत में समस्त जैन श्रमण - १०५७५ (साधु २३२७, साध्वियाँ ८२४८)

(१) श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय	कुल	श्रमण	६३३५	(आचार्य - १०४)
१. तपागच्छ		श्रमण	५३५३	(आचार्य - ९५)
२. अंचलगच्छ		श्रमण	२४२	(आचार्य - २)
३. खरतरगच्छ		श्रमण	२३०	(आचार्य - १)
४. पार्श्वचन्द्रगच्छ		श्रमण	७१	
५. विमलगच्छ		श्रमण	५०	
६. त्रिस्तुतिगच्छ		श्रमण	१७३	(आचार्य - ३)
७. अन्य		श्रमण	२१६	(आचार्य - ३)
	कुल		६३३५	
	(कुल जैनश्रमणों का ६० प्रतिशत)			
(२) स्थानकवासी सम्प्रदाय		श्रमण	३००४	
१. श्रमण संघ		श्रमण	९९८	(आचार्य - १)
२. स्वतन्त्र सम्प्रदाय		श्रमण	६९८	(आचार्य - ४)
३. बृहत् गुजरात सम्प्रदाय		श्रमण	१००६	(आचार्य - ३)
	कुल		३००४	
	(कुल जैनश्रमणों का २८ प्रतिशत)			
(३) श्वेताम्बर तेरापंथी		श्रमण	६९१	(आचार्य - १)
	(कुल जैनश्रमणों का ७ प्रतिशत)			
नव तेरापंथ		श्रमण	१९	
	कुल		७१०	
(४) दिगम्बर सम्प्रदाय	कुल	श्रमण	५४५	(आचार्य - ३३)
	(कुल जैनश्रमणों का ५ प्रतिशत, जिनमें नग्न - ९७)			

सर्वाधिक आज्ञानुवर्ती साधु—साध्वियों वाले आचार्य हैं:

१. आचार्य देवेन्द्र मुनि जी (स्थानकवासी) जिनके नेश्राय में ९९८ संत-सतियाँ हैं।

२. गच्छाधिपति आ. सूर्योदयसागर सूरीश्वर (तपागच्छ) जिनके नेश्राय में ७९३ संत-सतियाँ हैं।

३. गच्छाधिपति आ. विजय महोदय सूरीश्वर (तपागच्छ) जिनके नेश्राय में ७६८ संत-सतियाँ हैं।

४. आचार्य तुलसीगणि (तेरापन्थ) जिनके नेश्राय में ६९१ संत-सतियाँ हैं।

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

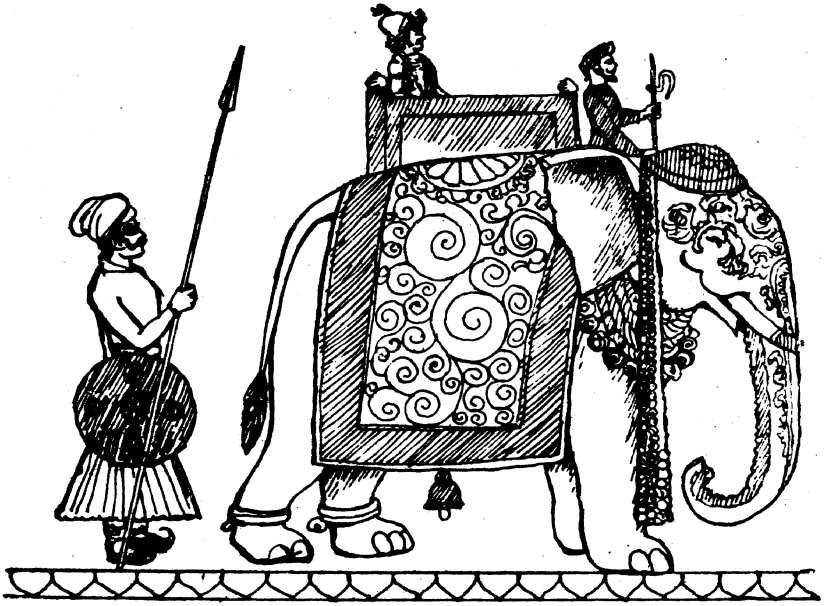

अध्याय

द्वितीय

ओसवाल-उत्पत्ति

ओसिया नगर की संस्थापना

आज से करीब २५०० वर्ष पूर्व मरुप्रदेश का श्रीमालनगर व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। अनेक लक्षाधिपति नगर में वास करते थे। यह नगर बहुत प्राचीन माना जाता है। इसका मूल नाम श्रीलक्ष्मी महास्थान यथा श्रीमाल था। लोग कृत और त्रेता युग में इसे रत्नमाल एवं द्वापर में वीर नगरी के नाम से भी पुकारते थे। कलियुग में इसका नाम भिन्नमाल हो गया। २५०० वर्ष पूर्व नगर की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का वर्णन करते हुए यति श्रीपालचन्द्रजी ने अपने ग्रन्थ जैन सम्प्रदाय शिक्षा में लिखा है कि उस समय राजसत्ता पर वाममार्गी ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। यज्ञ होमादि कार्यों में लाखों पशुओं की बलि दी जाती थी। लोगों में मांस मदिरा एवं व्यभिचार का प्रचलन चरम सीमा पर था। देवी-देवताओं की पूजा एवं भूत पिशाचों के पाखण्ड एवं ठगी से सारा मेरु प्रदेश ग्रसित था। उस समय तक जैन और बौद्ध धर्म इस मरुस्थली में नहीं पहुँचे थे। वाममार्गी, कुंडापंथी एवं कांचलिया पंथियों का उद्घोष था :

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पंच मकारश्च मोक्षदा हि युगे युगे।।

यति श्री पालचन्द्रजी के अनुसार श्रीमाल नगर के सूर्यवंशी राजा जयसेन के दो लड़के थे भीमसेन और चन्द्रसेन। राजा जयसेन की मृत्यु पर भीमसेन राजा बना। भीमसेन ने नगर का नाम बदल कर भिन्नमाल कर दिया। भीमसेन अपने ब्राह्मण गुरु के प्रभाव में शिवलिंगोपासक था। उसके दो पुत्र थे- श्री पुँज और उप्पलदेव (उत्पलदेव)। यति रामलालजी के संवत् १९६७ में प्रकाशित ग्रन्थ 'महाजन वंश मुक्तावली' के अनुसार "भीनमाल नगरी के परमार राजा भीमसेन के तीन पुत्र थे- उप्पलदेव, आसपाल और आसल।" यह उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर असंगत लगता है। भीनमाल नगरी का अधिपति परमार वंश का कोई राजा नहीं हुआ। यह आबू के परमार राजा उत्पलदेव, जो विक्रम की १० वीं सदीं में हुए, के सम नाम भ्रम से लिखा गया लगता है।

भीमसेन की मृत्यु पर श्रीपुँज राजा बना। उसके मन्त्री का नाम था- सुहड़ जिसके छोटे भाई का नाम था उहड़। सुहड़ करोड़पति था। उसके भाई उहड़ को एक लाख मुद्राएँ चाहिये थीं। उस समय भिन्नमाल नगर में तीन अलग अलग परकोटों में करोड़पति, लखपति एवं अन्य श्रेष्ठि रहते थे। उहड़ ने भाई से एक लाख मुद्राएँ मांगीं। उहड़ की पत्नी ने इस पर ताना कसा, जिससे विचलित हो उहड़ उत्पलदेव के पास गया। उत्पलदेव और उहड़ एक साथ भीनमाल छोड़कर निकल पड़े। रास्ते में उत्पलदेव की भेंट वैराट नरेश संग्राम सिंह से हुई, जिसने उनके नया राज्य बसाने के संकल्प से प्रसन्न होकर अपनी पुत्री की सगाई उत्पलदेव से कर दी। उत्पलदेव आगे बढ़े। राह में उन्होंने कुछ घोड़े खरीद लिए। अन्ततोगत्वा वे ढ़िली (दिल्ली) पहुँचे। वहाँ 'साधु' नामक राजा को घोड़े उपहार में दिये। साधु ने उन्हें बंजर धरती पर नया राज्य बसाने की इजाजत दे दी। ढ़िली (दिल्ली) के 'साधु' राजा से इजाजत लेकर वे मंडोर आए। उसके पास ही जोधपुर से १५ कोस उत्तर में उएस भूमि पर 'उएसपट्टण' नगर बसाया। भीनमाल से चारों वर्णों के हजारों लोग आकर इस नये नगर में बसे।

इस सम्बन्ध में विक्रम की १४ वीं शताब्दी में रचित ग्रन्थ 'उपकेश गच्छ चरित्र' में इस प्रकार उल्लेख मिलता है-

अष्टादश सहस्राणि, कुलानां वाणिजं तथा।
तदर्द्धानि द्विजातीनाम् संख्या प्रकृतिरपि।।

भाटों का तत् सम्बन्ध में जो कवित्त मिलता है वह इस प्रकार है:

पंचसहस्रविप्र भिन्नमाल से मणिभर साथे मांडिया।
शाह उहड़ ने उपलदे सहित घर बार साथे छांडिया।।

संवत् १३९३ में विरचित 'उपकेश गच्छ पट्टावली' में ओसिया के महावीर मंदिर के निर्माण-प्रसंग में नगर के उद्भव की कथा विस्तार से दी है। जैन शास्त्रों के प्राचीन ग्रंथ भंडार में इस ग्रंथ की विशिष्टता एवं प्रमाणिकता असंदिग्ध है। जैनाचार्य आत्मारामजी (आनन्द विजय जी) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'अज्ञान तिमिर भाष्कर' के दूसरे भाग में सम्पूर्ण पट्टावली

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रकाशित की थी। प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार प्रो० ए० एफ० होर्नल ने इण्डियन एण्टिक्वेरी (१८९०) में इसका अविकल आंग्ल भाषा अनुवाद टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करवाया था। पट्टावली में दिए हुए विवरण के अनुसार "राजा भीमसेन के दो पुत्र थे : श्रीपुञ्ज और सुर सुन्दर। श्रीपुञ्ज का पुत्र उत्पल कुमार। राजा ने कनिष्ठ पुत्र सुर सुन्दर को युवराज मनोनीत किया। कुछ ग्रन्थकारों के अनुसार श्रीपुञ्ज ने पार्श्वनाथ संतानीय पांचवे पट्टधर स्वयं प्रभ सूरीश्वर से जैन धर्म अंगीकार कर लिया था, इसी कारण उन्हें राजगद्दी से वंचित कर दिया गया। राज्य के मंत्रीश्वर थे दो श्रेष्ठि भ्राता-उहड़ और उधरण। उहड़ ९९ लाख की सम्पदा का स्वामी था। उधरण के पास १८ करोड़ की सम्पदा थी। उहड़ किले के बाहर रहता था। कार्यवश भाई से एक लाख उधार मांगे। न मिलने पर वह उत्पल कुमार के साथ नया शहर बसाने निकल पड़ा।" आगे की कथा उपरोक्त कथानक के समान ही है।

कालान्तर में इस नगर ने बहुत उन्नति की। उएसपट्टण का उकेशपुर (प्राकृत में) या उपकेशपुर (संस्कृत में) के नाम से भी ग्रन्थों एवं शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। 'उपकेश गच्छ चरित्र' में इस नगर की स्थापना की उक्त कथा विस्तार से दी गयी है। श्री कक्क सूरी कृत 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रन्थ में भी उपकेशपुर की समृद्धि एवं विस्तार का वर्णन है। दोनों ग्रन्थ विक्रम की १४ वीं शताब्दी में लिखे हुए हैं। कालान्तर में 'उएस' शब्द 'ओसिया' में रूपान्तरित हो गया।

ग्रन्थागारों एवं हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध भाटों/भोजकों के कवित्तों/गुटकों में भी ओसिया नगर की संस्थापना-कथा विस्तार से वर्णित है। यति श्री पालचन्द्र जी एवं यति श्री रामलाल जी के कथानक भाटों/भोजकों के कवित्तों पर आधारित है। श्रेष्ठि उहड़ की भाभी का ताना (मोसा) प्रायः सभी कवित्तों में ओसिया नगरी की संस्थापना का कारण बना है। राजस्थान के बही भाट अपने कथानक में 'पनघट की एक चुहल' की वजह से उपलदेव को मिले देश निकाले को ओसिया बसाने का कारण बताते हैं। भाटों/भोजकों के अनेक कवित्तों एवं बही भाटों के कथानक का सविस्तार वर्णन ग्रन्थ के अन्य अध्याय में किया जा रहा है।

श्री जैन बीसा ओसवाल क्लब, अहमदाबाद के स्वर्णजयंती अवसर पर वि० संवत् २०२३ में प्रकाशित 'स्मरणिका' में ओसवालों का अर्थ कच्छ की बंजर (उएस, ओस) भूमि के रखवाले (वाल)' किया गया है। एक समय मुस्लिम आक्रमणों से त्रस्त जैन श्रेष्ठि सिंध प्रदेश से पलायन कर कच्छ (रन आफ कच्छ) की ऊसर (बंजर) भूमि में आ बसे थे। इसीलिये कालांतर में वे ओसवाल कहलाए।

ओसवालों की उत्पत्ति-कथा

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पहले पट्टधर थे श्री शुभदत्त गणधर, द्वितीय पट्टधर थे श्री हरिदत्त सूरीश्वर, तीसरे थे श्री आर्य समुद्र सूरीश्वर एवं चौथे पट्टधर थे श्री केशी श्रमण सूरीश्वर, जो भगवान् महावीर के समकालीन थे। पार्श्वनाथ के पांचवें पट्टधर श्री स्वयंप्रभ सूरीश्वर मरु प्रदेश पधारे थे। उन्होंने वहाँ लाखों लोगों को प्रतिबोध दे जैन धर्म अंगीकार करवाया था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वे श्रीमाल जाति के संस्थापक माने जाते हैं। इन्होंने विद्याधर रत्नचूड़ को दीक्षा दी, जो रत्न प्रभ सूरि नाम से महावीर प्रभु के निर्वाण के ५२ वर्ष पश्चात् पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर हुए।

भगवान महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष पश्चात् यानि विक्रम संवत् ४०० वर्ष पूर्व श्री रत्नप्रभ सूरि ५०० मुनियों के साथ उपकेशपुर पधारे। नागरिकों एवं राजा उत्पलदेव के चामुण्डा देवी के भक्त एवं वाममार्गी होने की वजह से जैन साधुओं को भिक्षा बड़ी कठिनता से मिलती थी। लोग जैन आचार-विचार से सर्वथा अनभिज्ञ थे। अतः सूरिजी ने श्रमणों को वहाँ से विहार करने का हुक्म दिया। किन्तु, देवी चामुण्डा की प्रार्थना पर सूरिजी ने ४६५ श्रमणों को गुजरात प्रदेश की ओर विहार करवा दिया एवं ३५ श्रमणों सहित उपकेशपुर में चातुर्मास किया। 'उपकेश गच्छ चरित्र' में इसका उल्लेख इस प्रकार है:

शासनदेव्या कथितं– भो आचार्य ! अत्र
चतुर्मासकं कुरु, तत्र महालाभो भविष्यति
गुरुः पञ्चत्रिंशत् मुनिभिः सह स्थितः।

उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव और मंत्री उहड़ जनता में लोक प्रिय थे। एक समय मंत्री-पुत्र को साँप ने डस लिया। लूणाद्रि पहाड़ि के पास आचार्य के पाद-प्रक्षालन कर जल छिड़कने से मंत्री पुत्र जीवित हो उठा। जनता में आचार्य का जय-जयकार हुआ। उपदेशों से प्रभावित हो १ लाख ८४ हजार क्षत्रियों ने जैन धर्म स्वीकार किया। इस तरह आचार्य ने महाजन वंश की स्थापना की। ये कालान्तर में ओसवाल कहलाए।

'महाजन वंश मुक्तावली' के लेखक यति रामलालजी के अनुसार आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने ५०० श्रमणों को गुर्जर प्रदेश की ओर विहार करवाया एवं स्वयं एक शिष्य के साथ ओसिया पट्टण पधारे। 'महाजन वंश मुक्तावली' में पुनर्जीवन प्रदान करने की कथा इस प्रकार है:

'जब कहीं भिक्षा न मिली तो शिष्य ने किसी गृहस्थ का रोग औषधि से मिटाकर एवज में भिक्षा लेकर निर्वाह किया, आचार्य को मालूम होने पर उन्होंने शिष्य को उपालम्भ दिया एवं विहार करने की तैयारी की। तब सचिया देवी ने साक्षात् प्रकट हो विनती की— आप इस प्रजा को लब्धि मंत्र से धर्म की शिक्षा दो। गुरु ने चेले को भेज नगर में से एक रूई की पूणी मंगवाई । दशम विद्या प्रवाद पूर्व में लिखे मंत्र से उस पूणी का साँप बनाकर आज्ञा दी— 'जिससे दया धर्म की वृद्धि हो, ऐसा कर।' वो साँप भरी सभा में बैठे राजा उपलदेव के पुत्र को जा के काट गया। राजा ने विष वैद्य, गारुड़ी, जोगी, ब्राह्मण, मंत्रवादी व चिकित्सकों से बहुत चिकित्सा कराई पर विष विस्तार पाता गया। कुमार मृतक तुल्य हो गया। नगर में हाहाकार मच गया। उसे मरा जान श्मशान को ले चले। तब गुरु की आज्ञा से चेले ने रथी रोकी और कहा— "तुम इस रथी को मेरे गुरु के पास ले चलो , वे अभी कुंवर को जीवित कर देंगे।" राजा व प्रजा सब वहाँ पहुँचे, जहाँ आचार्य जी महाराज विराजमान थे। विनती की। तब गुरु बोले— "हे राजेन्द्र, तुम सब लोग जैन धर्म अंगीकार करो तो पुत्र अभी ठीक हो जायगा।" राजा प्रजा ने 'तथास्तु' कहा। गुरुजी ने योग विद्या से पूणिया साँप को बुलाया। वह तुरंत आकर डंक चूसने लगा और जहर उतार कर फिर अदृश्य हो गया। कुमार आलस

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मोड़कर बैठा हो गया। गुरु से अमृतरूप जिनवाणी सुनकर सवा लाख राजपूतों के साथ राजा ने जैनधर्म अंगीकार किया।'

उपरोक्त कथा में कई बातें लोगों को चमत्कृत करने के लिए गढ़ी गई लगती हैं जैसे रूई की पूणी वाली बात। उपकेश गच्छ चरित्र, जो संवत् १३९३ मे लिखा गया था, में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसमें भाट/भोजकों के कथानकों का सा लहजा साफ जाहिर होता है।

उपकेश गच्छ पट्टावलि के अनुसार राजा उपलदेव की कन्या सौभाग्य देवी का विवाह मंत्रीश्वर उहड़ के पुत्र त्रिलोक सिंह से हुआ था। एक रात उन्हें सर्प डस गया। सौभाग्य देवी सती होने को तैयार हुई। तब आचार्य के चरण प्रक्षालन कर जल के छींटे देने से वह सहसा जीवित हो गया।

यथा—

मंत्रीश्वर ऊहड़ सुतः भुजंगेन दष्टः
तस्य स्त्री काष्ट भक्षणे श्मशाने आयाता
प्रासु जलमानीय गुरुचरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितः।
सहसात्कारेण संजीव भुवः।

जो भी हो, इसी तरह का कथानक अन्य ग्रंथों में मिलता है। इतना निर्विवाद है कि क्षत्रिय राजा उपलदेव ने आचार्य रत्नप्रभ सूरि से प्रतिबोध पाकर जैन धर्म अंगीकार किया। ब्राह्मणों की प्रचलित वर्ण व्यवस्था के बाहर 'महाजन वंश' की स्थापना उन्हीं क्षत्रियों के १८ गोत्रों से हुई। उल्लेख है कि राजा उत्पल देव के साथ उकेश पट्टण के सभी वर्णों के प्रजाजन सवा लाख घर जैन बने एवं महाजन वंश में शामिल हुए।

सपाद लक्ष श्रावकाणां प्रतिबोध कृतः

—उपकेश गच्छ चरित्र

श्री रत्नप्रभ सूरि वीरात् ८४ वें वर्ष में स्वर्ग सिधारे। इन १४ वर्षों में उन्होंने अनेक जैनी बनाए। पट्टावलिकारों के अनुसार यह संख्या ३८४००० थी। मृत्यु पूर्व उन्होंने अपना पट्टाधिकार उपाध्याय वीर धवल को देकर उनका नाम यक्ष देव सूरि रखा।

यति श्री पालचन्द्रजी के जैन सम्प्रदाय शिक्षा (प्रकाशन ई० सन् १९१०) एवं रावत शेरसिंह जी के 'जैन क्षत्रिय इतिहास' (प्रकाशन ई० सन् १९१३) में भी उपकेश जाति-उद्भव की कथा है, जो महाजन वंश मुक्तावली की कथा से मिलती-जुलती है। यह धर्म रूपान्तर एक ही दिन में हुआ है-ऐसा उल्लेख कहीं नहीं है। राजा के साथ उसकी प्रजा का धर्म परिवर्तन असम्भव नहीं है। पाँचवीं छठीं शताब्दी में तो ऐसे उदाहरण हैं जब पूरी राज्याश्रयी प्रजा ने जैन धर्म छोड़कर हिन्दू धर्म ग्रहण किया है। खरतर गच्छ के अनेक ग्रंथों में १४वीं से १६वीं शताब्दी के बीच प्रभावी आचार्यों द्वारा लाखों लोगों को प्रतिबोधित कर जैन बनाने का उल्लेख है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुलदेवी सचिया माता:

ओसिया में महावीर मन्दिर के समीप ही स्थित
सचिया माता का भव्य प्राचीन मन्दिर

इससे पूर्व उपकेशपुर में चामुंडा देवी (महिषासुरमर्दिनी) के मन्दिर में नवरात्रि पर्व के अवसर पर भैंसों एवं बकरों की बलि चढ़ाई जाती थी। आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने यह पशु बलि बन्द करवा दी एवं लड्डू आदि मिष्ठान्नों का प्रसाद चालू करवाया। कहते हैं इससे देवी नाराज हो गई और उसने आचार्य की आँखों में तकलीफ पैदा कर दी। आचार्य शान्ति से यह तकलीफ सह गए तो देवी ने विचलित होकर क्षमा मांगी और निवेदन किया कि— "आज से मेरे मन्दिर में पशु बलि नहीं होगी, तभी मैं सच्ची देवी कहलाऊँगी।" उसी समय से चामुण्डा देवी जन मानस में 'सचिया माता' के नाम से अङ्कित हुईं। आज भी ओसिया में चामुण्डा देवी का वह मन्दिर 'सचिया देवी का मन्दिर' नाम से विख्यात है। ओसवालों की वह कुल देवी मानी जाती है। अनेक ओसवाल परिवार अपने बालकों का मुण्डन संस्कार करवाने वहाँ जाते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसिया के महावीर मन्दिर का निर्माण :

उप्पलदेव के मन्त्रीवर उहड़ ने जैन धर्म अंगीकार कर उपकेश पट्टण में महावीर मन्दिर का निर्माण करवाया। उस मन्दिर में चामुण्डा देवी द्वारा वेलू रेत एवं दूध के मिश्रण से तैयार की गई महावीर की मूर्ति स्थापित की गई। कहते हैं वह मूर्ति जमीन से खोद कर निकाली

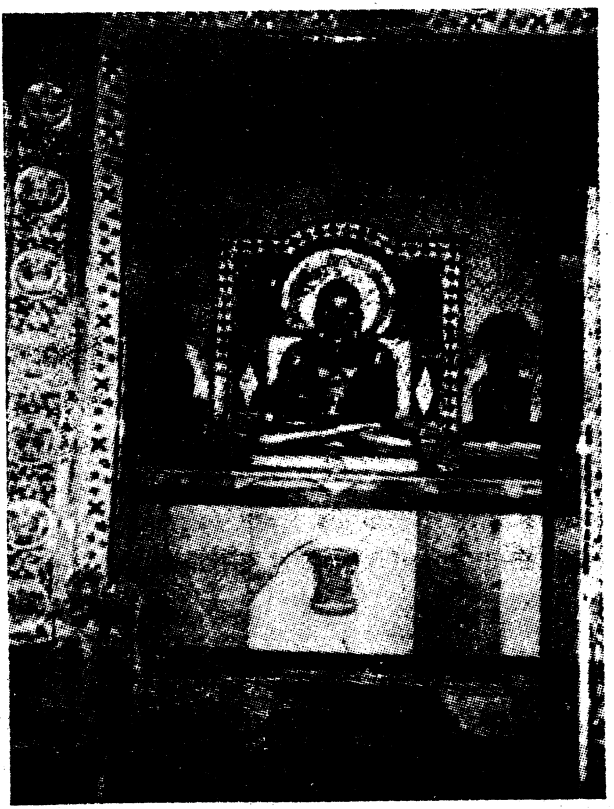

ओसिया के महावीर मन्दिर की मूल प्रतिमा : कहते है बालू और दूध से निर्मित इस प्राचीन प्रतिमा की पार्श्वनाथ संतानीय आचार्य रत्न प्रभ सूरि ने वीरात ७० यानि विक्रम संवत के प्रारम्भ से ४०० वर्ष पूर्व इसी मन्दिर में प्रतिष्ठा की थी।

गई एवं चामुण्डा देवी के निर्धारित समय से पहले निकाल लेने के कारण मूर्ति के वक्षस्थल पर दो ग्रन्थियाँ रह गयीं।

एक अन्य जनश्रुति के आधार पर मन्दिर निर्माण की कथा कुछ इस प्रकार है—अहड़ नामक धनिक व्यक्ति उन दिनों वहाँ एक महादेव मन्दिर का निर्माण करवा रहा था। दुर्योग

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से दिन में जितना निर्माण होता, रात को ढ़ह जाता। अन्ततः वह आचार्य के पास आया। आचार्य ने उसे महावीर मन्दिर बनवाने की प्रेरणा दी। तब से कार्य बिना विघ्न प्रगति करता गया और जिनालय बनकर सम्पूर्ण हुआ। तब मूर्ति निर्माण की बात उठी। कुछ समय से एक गाय लूणाद्रि की पहाड़ी के समीप स्वयमेव दूध की धार छोड़ती थी। यह देख सभी आश्चर्य चकित थे। लोगों के अधिक आग्रह पर उस स्थान पर खुदाई में जिन प्रतिमा प्राप्त हुई। आचार्य के अनुसार वह दूध और रेत से बनी थी। उस मूर्ति के वक्ष पर दो गांठे थीं। आचार्य ने उनका कारण मूर्ति का समय से पूर्व उत्खनन बताया। मन्दिर में इसी जिन प्रतिमा की स्थापना आचार्य ने करवाई।

उपकेशपट्टण के महावीर मन्दिर में मूर्ति स्थापना के समय ही कोरंटनगर के नव निर्मित महावीर मन्दिर में भी मूर्ति स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ। कहते हैं रत्नप्रभ सूरि ने अपने दो रूप बनाकर उपकेशपट्टण एवं कोरंटनगर दोनों जगह एक ही समय उपस्थित रह कर मूर्तियों की स्थापना करवाई।

निज रूपेण उपकेश प्रतिष्ठा कृता। वैक्रय रूपेण कोरंटके
प्रतिष्ठा कृता। श्रद्धैः द्रव्य व्यय कृतः।

—उपकेश गच्छ पट्टावलि

उपकेशे च कोरंटे तुल्य श्रीवीर बिंबयाः।।
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्री रत्नप्रभ सूरिभिः।।

--उपकेश गच्छ चरित्र

यति श्री रामलालजी ने महाजन वंश मुक्तावली में ओसिया और भीनमाल के मन्दिरों में एक ही मुहूर्त में रत्नप्रभ सूरि द्वारा भगवान् महावीर की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख किया है। कोरंट नगर भीनमील से थोड़ी ही दूर था, शायद इसीलिये कोरंट की जगह भीनमील लिखा गया है।

ओसिया के मन्दिर में प्रतिष्ठापित भगवान् महावीर की यह मूर्ति बड़ी ही चमत्कारी थी। मुनि आत्मारामजी (आ० आनन्द विजय) ने अपने ग्रंथ अज्ञान तिमिर भाष्कर में उपकेश गच्छ पट्टावली का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ओसनगरी के महावीर मन्दिर में कभी करोड़ों की लागत की चमत्कारी मूर्ति प्रस्थापित थी।

सेवग/भोजकों की उत्पत्ति-कथा

उस समय मन्दिरों में पूजा के लिए ब्राह्मण ही नियुक्त किए जाते थे। परन्तु क्षत्रियों ने जब जैन धर्म अंगीकार कर लिया तो ब्राह्मणों ने उन मन्दिरों में पूजा कराने एवं भोज में

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। महाजन वंश मुक्तावली के अनुसार तब राजा ने कुछ ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—'अगर जैन धर्म की श्रद्धा धारण करो तो तुम्हारे मरणे-परणे लाग बाग हम लोग देंगे।' पाँच हजार ब्राह्मणों ने इसे मंजूर किया। महाजनों के साथ भोजन करने से वे भोजक कहलाए। इनकी १६ जातियाँ ब्राह्मणों के तीन गोत्रों से मिलकर बनी हैं। इन लोगों को जैन मन्दिरों की सेवा (पूजा) करने के कारण सेवग भी कहा जाता है। सेवगों/भोजकों का तभी से महाजन कौम के साथ सम्बन्ध चला आया है।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि २००० वर्ष पूर्व जैसलमेर के परमार राजा देवसेन ने यज्ञ करवाने हेतु १६ ब्राह्मणों को बुला कर यज्ञ सम्पन्न करवाया। जैसलमेर के निकट 'भोजगा' ग्राम बसा कर उन्हें प्रदान किया। 'वैश्य कल्प द्रुम' नामक ग्रंथ में उल्लेख है कि यदु वंश के नष्ट हो जाने पर मारवाड़ में यज्ञ हेतु भोजग लाए गए। ये वैश्यों के आश्रित गायक नहीं थे वरन् उनके गुरु थे। 'जाति भाष्कर' ग्रंथ में भी भोजगों की उत्पत्ति को वैश्यों के जैन धर्म अंगीकार करने से जोड़ा गया है।

सेवगों की ख्यात में उन्हें शाकद्वीपीय ब्राह्मण बतलाया गया है। उनके अनुसार वह अति प्राचीन जाति है, जिनकी श्रेष्ठता का उल्लेख वेद, पुराण और महाभारत में है। राजस्थान में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को सेवग या भोजक नाम से जाना जाता है।

बीकानेर के महाराजा गंगासिंह के समय ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को लेकर उठे विवाद में महाराजा द्वारा भोजकों को सम्मानित किया गया था। वर्तमान में जैसे जैसे मन्दिरों का सेवा कार्य धीमा पड़ा इस जाति ने युगानुरूप प्रगति की है। अब भोजक कुल में डाक्टर, न्यायाधीश, शिक्षक, व्यवसायी, रोजनेता—सभी हैं।

सेवग-भोजकों द्वारा ओसवालों की वंशावलियाँ रखने का प्रचलन प्राचीन समय से रहा है। ओसवाल श्रेष्ठियों के यश-गायक के रूप में वे राजस्थान के कोने-कोने में पहचाने जाते हैं। उनकी प्रशस्ति में लिखे छन्द/कवित्त ग्रंथ भण्डारों में उपलब्ध हैं।

ग्रंथि छेदन प्रकोप एवं ओसवालों का पलायन

ओसिया स्थित इस महावीर मन्दिर की स्थापना के ३०३ वर्ष बाद विक्रम संवत् से ९७ वर्ष पूर्व ग्रंथि छेदन की घटना हुई। कुछ उत्साही श्रावकों ने मूर्ति के वक्षस्थल की दो ग्रंथियों को अशोभन जान कर भंग करने की कोशिश की। इस से बड़ा देवी प्रकोप हुआ। पूरा उपकेशपट्टण इस उपद्रव से प्रभावित हुआ। तब संघ ने निमंत्रण भेजकर उपकेश गच्छ के तेरहवें पट्टधर आचार्य कक्क सूरि को बुलवाया। आचार्य ने वहां स्नात्र पूजा करवाई। 'उपकेश गच्छ चरित्र' में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

श्री माण्डव्य पुरे प्रेषित् सविज्ञप्रिय मौष्टिकम्।
संघः श्री कक्क रिणा माकारण सूकृते रयात्।।

स्नात्र पूजा में महाजन वंश के १८ गोत्रों के स्नात्रीय बनने का उल्लेख भी उक्त ग्रंथ में है। नौ एक तरफ, नौ दूसरी तरफ। उक्त पूजा से उपद्रव तो शांत हो गया, परन्तु देवी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के अभिशाप स्वरूप महाजनों को उपकेश पट्टण छोड़ना पड़ा। इस घटना एवं पलायन के बाद ही महाजन वंश के लोगों के लिए 'उपकेशीय' नाम का व्यवहार प्रचलित हुआ होगा, जो कालांतर में 'ओसवंशीय' में रूपान्तरित हो गया। बहुत सम्भव है उक्त घटना के बाद नगर की अभिवृद्धि रुक गई हो! जहाँ लाखों जैनी ओसवाल (महाजन) वास करते थे, वहाँ कालांतर में मन्दिरों की निगरानी रखने वाला भी कोई न रहा। उक्त ग्रंथि छेदन की घटना का सविस्तार वर्णन 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रंथ में मिलता है।

वर्तमान ओसिया

ओसिया ग्राम आज जोधपुर (राजस्थान) शहर से उत्तर-पश्चिम दिशा में ३२ मील दूर अवस्थित है। चन्द हजार की आबादी वाला यह ग्राम कभी उपकेश पट्टण के नाम से विख्यात रहा होगा—यह अन्दाज सहज ही ओसिया में तथा इसके चारों ओर मौजूदा खण्डहरों से लगाया जा सकता है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिए ऐसे अनेक प्रमाण आसपास की भूमि पर बिखरे पड़े हैं। वर्तमान ग्राम से ११ मील दूर पर जो 'तिवरी ग्राम' इस समय अवस्थित है, वह प्राचीन ओसिया नगरी का 'तेलीवाड़ा' रहा हो, यहां से ६ मील दूर स्थित 'पण्डित जी की ढाणी' कभी इसी नगर का एक भाग 'पण्डित पुरा' रहा हो, ६ मील दूर स्थिर 'खेता सर' इसी नगर का 'क्षत्रीपुरा' रहा हो, २४ मील दूर स्थित 'लोहावट' इस नगर की लुहारों की बस्ती हो, यह बहुत सम्भव है। इस नगर से २० मील दूर स्थित घटियाली ग्राम को प्राचीन ओसिया का प्रवेश द्वार माना जाता है। घटियाली के उत्खनन में अनेक प्राचीन चिन्ह मिले हैं। यहाँ कभी १०८ जैन-मन्दिर थे, जिनमें से मात्र एक महावीर स्वामी का मन्दिर बचा है। दस बारह मन्दिरों के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं खण्डहरों से प्राचीन नगर के विस्तार का अन्दाज लगाया जा सकता है। तत्कालीन उपकेश नगर के बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा बसा होने का उल्लेख ग्रंथों में पाया जाता है।

जिस महावीर मन्दिर में ओसवाल जाति के संस्थापक श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा भगवान् महावीर की मूर्ति की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख ग्रंथों में है, ओसिया का वह महावीर मन्दिर अब भी विद्यमान है। कालान्तर में अनेक बार इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ है। इसी मन्दिर में जिनदास श्रावक द्वारा निर्मित रंगमंडप पर संवत् १०१३ का एक शिलालेख है, जिसमें प्रतिहार साम्राज्य के संस्थापक महाराजा वत्सराज की प्रशस्ति है। संवत् १०३५ में निर्मित कलात्मक तोरण थंभ मन्दिर के तत्कालीन उत्कर्ष की कथा कहते लगते हैं। ओसिया के दक्षिण पूर्व में एक किलोमीटर पर निर्मित मन्दिर में आचार्य रत्नप्रभसूरि के शिष्य श्री कक्क सूरि के चरण-चिह्न उत्कीर्णित हैं।

मन्दिर बहुत विशाल था। इसका कुछ अन्दाजा वर्तमान मन्दिरों के मुख्यद्वार के सामने वाली भूमि के उत्खनन में पाई गई सीढ़ियों से लगाया जा सकता है, जो सामने वाला आम रास्ता पार कर सामने बने मकानों के नीचे तक पायी गई हैं। इससे इतना तो प्रकट ही है कि प्राचीन समय में जमीन की सतह वर्तमान जमीन की सतह से बहुत नीची थी। मंदिर का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वर्तमान द्वार उन सीढ़ियों के अंतिम छोर से बहुत ऊपर है। हो सकता है मंदिर का अधिकांश हिस्सा ही जमीन में नीचे दबा पड़ा हो और उसके साथ ही मन्दिर का प्राचीन इतिहास भी।

मूल मन्दिर में आदिनाथ भगवान की सुन्दर प्रतिमाएँ जनश्रुति के आधार पर २२०० वर्ष पूर्व राजा सम्प्रति के काल की बतायी जाती हैं—हांलाकि उनके 'पव्वासन' पर एक ओर सं० १५५१ उत्कीर्ण है।

विक्रम संवत् १७२० में जोधपुर राज्य के दीवान मुणोत नैणसी ने समस्त राज्य मर्दुमशुमारी करवाई एवं राज्य के मन्दिरों, कुओं आदि की विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जो 'मारवाड़ रा परगना री विगत' नाम से विख्यात है। इसमें ओसिया जी के 'महावीर मन्दिर' एवं 'सचिया माता के मन्दिर' का भी उल्लेख है। मुणोत नैणसी ने जनश्रुति के आधार पर 'वि०सं० १०३३ में प्रतिष्ठा हुई' लिखा एवं एक अन्य काले पत्थर के लेख का समय "पढ़ा नहीं जा सकता"—ऐसा लिखा है। इस आधार पर मन्दिर के सर्वप्रथम निर्माण के समय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। वि०सं० २०२५ में राजस्थान प्राच्य विद्या संस्थान जोधपुर द्वारा प्रकाशित नैणसी के मारवाड़ रा परगना री विगत में उक्त मन्दिरों के सन्दर्भित उल्लेख निम्न हैं:

१४०- ओसियां महावीर जी रौ देऊरो सं०१०३३ प्रतिष्टा हुई सुनांवो। तोरण सांमो कालो भाटो छै तिण में लीय करणांटी आखर छै। तिम नीचे ओली लिखीं के जिण र सव्रतम् मंडीयो छो सुबंचे छै नै। पोल ऊपर नं मंडप देउरौ सुहड़ सेठरौ करायौ।

१४१- ओसियां श्री सचीया जी माताजी रौ देअरौ सुपलराव पंवार रौ करायो। कांमदार सुहड़ सेठ देहरा दो ला कोट करायौ जिण में कीरौड़ी धन लखेस रौ कोट मांय रैता। ५०८ देहुरा हुता। बारे १२ कोस में बसती हुती।

जिन दास श्रावक द्वारा निर्मित रंगमंडप के संवत् १०१३ के लेख के अलावा मन्दिर में उत्कीर्णित निम्न लिखित अन्य शिलालेख भी द्रष्टव्य हैं:

१. तोरण द्वार का लेख-वि०सं० १०३५ आषाढ़ सुदि १०

२. रंगमंडप के स्तम्भ का लेख-वि०सं० १२३१ माघ सुदि ५

३. मंदिर के लेख- वि०सं० ११८० चेत्र सुदि ८द्

-वि०सं० ११३४ मिगसर बदी ७

४. जिनालय का लेख- वि०सं० १२०७

५. मूर्तियों का लेख- वि०सं०१०८८

-वि०सं० १२३४

कालांतर में ओसिया में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। बहुत थोड़ी आबादी वाला यह ग्राम अब भी अपने भग्नावशेषों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश के खजुराहों की भांति

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिए ओसिया महत्वपूर्ण है। यहाँ भी हिन्दू और जैन मन्दिरों का समूह है, जो खजुराहो के मध्यकालीन मन्दिरों से कई शताब्दी प्राचीन है। खजुराहो की तरह यहाँ भी मिथुन दृश्यों की झांकी प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। यह समय जिनालय के उत्कर्ष का होना चाहिए। खजुराहोह के वास्तुशिल्प से इन खंडहरों की समानता को देखते हुए आ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने उन्हें आठवीं/नवीं शताब्दी के बाद में निर्मित माना है।

आठवीं शताब्दी में यहाँ प्रतिहारों का साम्राज्य था। उस समय के बने अनेक मन्दिर

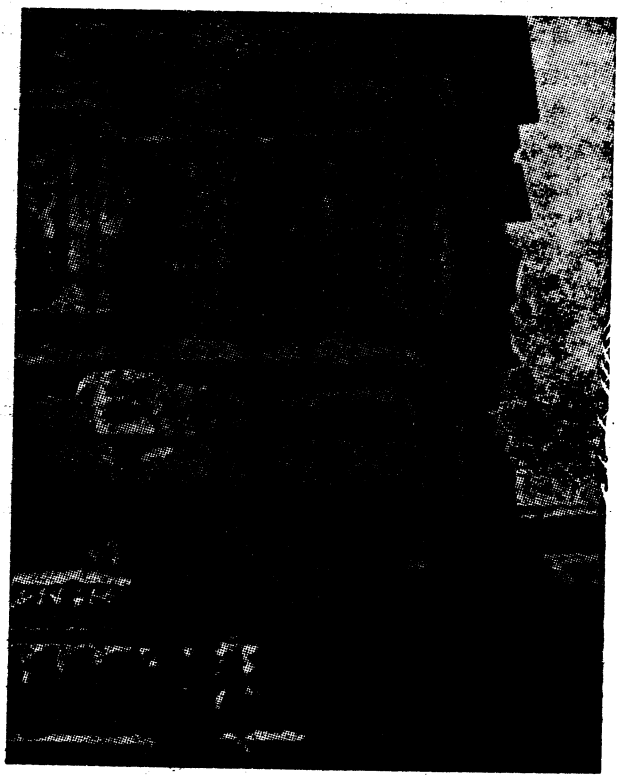

ओसिया महावीर मन्दिर के प्रांगण में स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने, जो खजुराहो के मध्य कालीन मन्दिरों से कई शताब्दी प्राचीन हैं।

(१२) आज भी विद्यमान हैं, जो उस समय की उच्चतम भवन निर्माण कला के परिचायक हैं। प्रतिहार राजा वत्सराज की प्रशस्ति उत्कीर्णित एक शिलालेख ओसिया मन्दिर में विक्रम संवत् १०१३ का अब भी विद्यमान है, जिसमें श्रावक जिनदास द्वारा रंगमंडप बनवाए जाने का उल्लेख है। वि०सं० १०३२ में निर्मित कलात्मक तोरण द्वार मन्दिर के प्रांगण में सुरक्षित

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। अतः बहुत संभव है प्रतिहारों के राज्य-काल में प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ हो। प्रतिहारों की शक्ति का ह्रास हो जाने पर ओसिया प्रदेश चौहान राजा कुमार सिंह के शासन में था। इस समय तक यह नगर बहुत फैल चुका था। विक्रम् संवत् १२५२ में तुर्की सेना इस प्रदेश से गुजरी एवं नगर को तहस-नहस कर डाला। वहाँ के प्रमुख निवासी ओसवाल

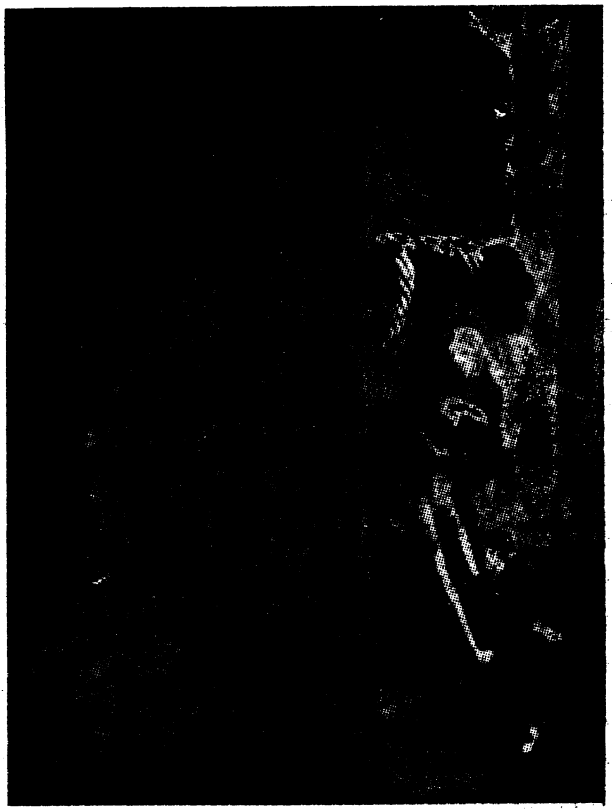

ओसिया के प्राचीन मन्दिरों का भग्नावशेष : भीगी वेणी से जल निचोड़ती सद्यःस्नाता

इसे छोड़ कर दूर-दूर पलायन कर गए। ओसवालों के इस नगर से चले जाने के बारे में और भी किंवदंतियां प्रचलित हैं। कहते हैं सचिया देवी के श्राप के कारण कोई भी ओसवाल ओसिया में स्थायी रूप से नहीं रह सकता। उपकेश गच्छ प्रबन्ध में वर्णित महावीर मन्दिर की ग्रंथि छेदन की घटना स्वरूप भी ओसवालों को ओसिया छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा।

यहाँ के हरिहर मन्दिरों में विष्णु की प्रतिमा है। नवग्रहों के अंकन के अतिरिक्त भीगी वेणियों से जल निचोड़ती एक सुन्दरी विशेष रूप से दर्शनीय है। इन मन्दिरों में शिव, कुबेर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गणेश की कलात्मक प्रतिमाओं के अतिरिक्त कृष्णलीला के चित्रों का सजीव अंकन हुआ है। महिषासुरमर्दिनि की अनेक मूर्तियाँ हैं। ये मन्दिर समूह गांव के बाहर स्थित हैं। यहां के प्राचीन मन्दिरों में सूर्य मन्दिर कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है, जो दसवीं सदी में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। पिप्पलाद का मन्दिर गांव के समीप ही है। मन्दिर के स्तम्भ बड़े ही कलात्मक हैं। इसके गर्भ गृह में कुबेर, महिषासुरमर्दिनी एवं गणेश की विशाल प्रतिमाएँ हैं। सचियामाता का मन्दिर ग्राम के मध्य ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। मन्दिर का अनेक बार जीर्णोद्धार हुआ है, ऐसा शिलालेखों से सिद्ध होता है। देवी की प्रतिमा में महिषासुरमर्दिनी का ही स्वरूप है। मन्दिरों के बाह्य भागों पर पौराणिक कथाएँ उत्कीर्णित हैं। अनेक ओसवाल परिवार अपने बालकों का मुण्डन संस्कार करवाने यहाँ आते हैं। अब यह मन्दिर भव्य आकार एवं प्रतिष्ठा अर्जित कर चुका है।

ओसिया के जैन मन्दिरों में महावीर का मन्दिर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यहाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्रमुखता थी-ऐसा मूर्तियों एवं मन्दिरों के बाहरी व भीतरी भागों पर उत्कीर्णित सामाजिक जीवन के दृश्यों से विदित होता है। भग्नावशेषों के समीप ही एक पुरानी सरकारी तख्ती अब भी दृष्टिगोचर होती है जिसमें सन् १८५४ (V.S.-1911) की एक अंग्रेजी सुपरिन्टेंडेंट की चेतावनी दर्ज है जिसके अनुसार तब वह ऋखब नाथ मन्दिर के नाम से जाना जाता था और वहाँ किसी पक्षी या जानवर को मारने की मनाही की गई है।

अभी भी बरसात के दिनों में बच्चों को मिट्टी में सने प्राचीन सिक्के मिल जाते हैं। ये सिक्के वजन में ३/४ मासा चाँदी के होते है। सिक्के के एक तरफ गर्दभ अंकित होता है। एक जनश्रुति के अनुसार विक्रम पूर्व १७ वर्ष में इस प्रदेश पर राजा गर्दभिल्ल का शासन था। शकों से पराजित होने के बाद उसके वीर पुत्र विक्रमादित्य ने बड़े होकर शकों को हराया और स्वयं सम्राट् बना एवं इस खुशी में विक्रम संवत् का प्रणयन हुआ। अतः इससे ओसिया नगरी का विक्रम-पूर्व काल में उन्नत नगर होना सिद्ध होता है।

इस तरह वर्तमान ओसिया उजड़ कर भी अपनी अनेक सदियों की कहानी कहने में समर्थ है। हिन्दू, जैन, शैव, शाक्त-अनेक धर्मों की समन्वित गाथा ओसिया के खण्डहरों से अब भी ध्वनित हो रही है।

ओसिया तीर्थ का पुनरुद्धार

एक समय ऐसा भी आया जब ओसिया का महावीर जिनालय लुप्तप्राय था। वहाँ चमगादड़ों का निवास था। पूजा होती थी तो मात्र पूनीया बाबा की। आसपास के क्षेत्र वासी उसी के भक्त थे। कहते हैं जोधपुर के राजवंशी भी पूनिया बाबा के भक्त थे। विक्रम संवत् १९३६ में मुनि मोहनलाल जी के अथक प्रयत्नों से यह क्षेत्र पुनः जैन तीर्थ क्षेत्र के रूप में पूजित हुआ। मुनि महाराज की प्रेरणा से जोधपुर के तत्कालीन दीवान कुन्दनमल जी ने इस महावीर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। सं० १९३६ से १९५० तक दीवान जी इसकी व्यवस्था का निरीक्षण करते रहे। कहते हैं महावीर स्वामी की बालू रेत एवं दूध से बनी मूर्ति विशाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रस्तर शिला से ढकी रहने के कारण सुरक्षित रह गई थी। मूर्ति की आशातना मिटने से क्षेत्र का भी उदय काल आरम्भ हुआ।

संवत् १९५१ में फलोदी के श्री फूलचन्दजी गोलेछा ने तन-मन-धन से तीर्थ की सेवा करने का संकल्प लिया। तब से वहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला ३ को मेला लगता है। संवत् १९७२ में रत्नविजयजी महाराज की प्रेरणा से यहाँ श्री वर्द्धमान जैन विद्यालय एवं छात्रावास की स्थापना हुई। वर्तमान में ५०० छात्र विद्यालय मे शिक्षा ग्रहण करते हैं।

संवत २०२६ से मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य पुनः शुरू हुआ, जो निरंतर चल रहा है। यह जीर्णोद्धार सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी अहमदाबाद की तरफ से लाखों रुपया खर्च कर किया जा रहा है। वर्तमान में तीर्थ का प्रबंध सेठ श्री मंगलसिंह जी रतनसिंह जी देव की पेढ़ी ट्रस्ट के सुपुर्द है। इस ट्रस्ट के ९ ट्रस्टी हैं।

संवत् २०३२ में शापमुक्त के लिए उपधान तप की आराधना करवाई गई। परन्तु अब भी वहाँ ओसवालों का एक भी घर नहीं है। कहते हैं कोई ओसवाल यहाँ रात-बासी रहने की हिम्मत नहीं करता। परन्तु यह भ्रम शनैः शनैः दूर हो रहा है।

वर्तमान में शिक्षण संस्था एवं उसके छात्रावास में ८० छात्र ओसवाल हैं, जो वहाँ निरंतर वास करते हैं। संस्था के पदाधिकारी अधिकांशतः ओसवाल हैं, जो मंदिर से संलग्न धर्मशाला एवं गाँव के अन्य भागों में रहते हैं। तीर्थयात्रियों में अधिकांशतः ओसवाल ही होते हैं, जो रात भर धर्मशाला में ही रुकते हैं। कभी कभी तो दो-दो तीन-तीन दिन तक। धर्मशाला के आवास-रजिस्टर की निम्न आवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

- श्री गजराज मेहता—*आये:* १४-१०-८६ रात १२ बजे
  गये: १५-१०-८६ सुबह ९ बजे
- श्री सरोज कुमार हीरालाल बोरदिया—*आये:* १४-१०-८६ की रात
  गये: १५-१०-८६
- श्री महेन्द्र जी पाबूदान जी चोरड़ीया—*आये:* १६-१०-८६ की रात
  गये: १७-१०-८६
- नेमीचन्द्र जी हंसराज जी कावड़िया, जलगाँव—*आये:* १८-१०-८६
  गये: १९-१०-८६

ऐसी ही अनेक आवृत्तियाँ आवास रजिस्टर में दर्ज हैं। अतः रात वासी न रह सकने वाली बात मात्र भ्रांत धारणा है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्राचीनता सम्बन्धी नई शोध

ओसिया एक प्राचीन नगर है- इसमें कोई सन्देह नहीं। कुछ इतिहासकारों ने भले ही भ्रमवशात् नगर के ८ वीं सदी पूर्व बसे होने में शंका व्यक्त की है, परन्तु नई शोध-साक्ष्य के आधार पर ईस्वी द्वितीय शताब्दी में नगर का समृद्धिशाली होना सिद्ध हो चुका है।

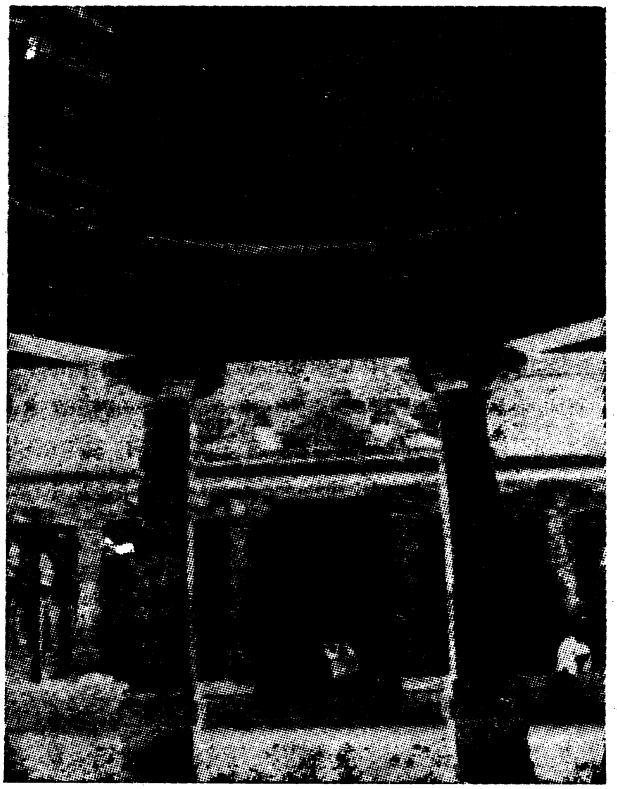

ओसिया के महावीर मन्दिर का रंग मंडप : जस पर अनेक प्राचीन लेख खुदे हुए हैं।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्री डी० आर० भंडारकर ने आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया (१९०६-७) में प्रकाशित पश्चिमी प्रदेश के वार्षिक शोध विवरण के आधार पर ओसिया को प्राचीन हिन्दू परम्परा से जोड़ा है। भंडारकर के आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया (१९०८-९) में प्रकाशित ओसिया के प्राचीन मन्दिर आलेख के अनुसार 'ओसिया' नामकरण से पूर्व

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यह शहर मेलपुर पट्टण के नाम से जाना जाता था। 'ढूँढ़ली मल्ल' नाम के एक जैन संत नगर में पधारे। उनके चरणचिह्न अब भी पार्श्ववर्ती पहाड़ी पर मौजूद हैं। जब नगर में कहीं उन्हे भिक्षा न मिली तो उन्होंने नगर को श्राप दे डाला, जिसके फलस्वरूप नगर उजड़ कर जमींदोज हो गया। शताब्दियों बाद परमार वंशीय राजकुमार उप्पलदे पड़िहार राजा की शरण आया। राजा ने उसे मेलपुर पट्टण के खंडहरों में भेज दिया। उप्पलदे ने यहाँ शरण ली एवं इसे फिर से आबाद किया। उप्पलदे ने इसका नाम नवनेरी नगरी रखा। परन्तु यहाँ 'ओसला' (शरण) लेने के कारण उसे ओसिया कहा जाने लगा। इसी उप्पलदे ने यहाँ सचिया माता का मन्दिर बनवाया। कुछ वर्ष पश्चात् हेमाचार्य के शिष्य एक जैन यति रतन प्रभु यहाँ आए। उन्होंने एक मायावी सर्प का डर दिखा कर लोगों को जैन बनाया। इससे क्रुद्ध होकर सचिया माता ने उन्हे श्राप दिया। ओसवाल भाग खड़े हुए।

श्री भंडारकर के 'आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया' में प्रकाशित उक्त विवरण का आधार मात्र जनश्रुति है। उन्होंने किसी आधार भूत साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया। 'ढूँढ़लीमल्ल' नामक जैन संत का उल्लेख परवर्ती श्वेताम्बर सम्प्रदाय 'ढूंढ़िया मत' के साधुओं से पूर्ववर्ती पार्श्व संतानीय रत्नप्रभ सूरि के वस्त्र एवं धर्म साम्य के कारण इतर धर्मावलम्बियों में प्रचलित हुआ होगा। उप्पलदे के 'परमार' वंशी होने एवं 'रत्न प्रभु' के हेमाचार्य का शिष्य होने सम्बंधी उल्लेखों का आधार भी मात्र जनश्रुति लगता है। श्री भंडारकर के उक्त विवरण को ही परवर्ती इतिहासकारों ने आधार मान कर ओसवालों की उत्पत्ति सम्बंधी ८वीं/९वीं शताब्दी की धारणा की संरचना की होगी।

उक्त आलेख में श्री भंडारकर ने महावीर मन्दिर के नल मंडप (रंग मंडप ?) में स्थित २८ पंक्तियों के वृहद् शिलालेख का उल्लेख भी किया है, जिसमें रावणसंहारक श्री राम के भ्राता लक्ष्मण के वंशजों के प्रतिहार (Door keeper) वंश में हुए राजा वत्सराज की प्रशस्ति है, जिन्होंने मन्दिर की प्रतिष्ठापना करवाई। उकेश नगर के मध्य में स्थित महावीर मन्दिर के रंग मंडप के निर्माण कर्त्ता जिन्दक नामक व्यापारी का विक्रम संवत् १०१३ में जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख भी शिलालेख में है। श्री भंडारकर के अनुसार यह मन्दिर सन् ७७०-८०० काल में अवश्य मौजूद रहा होगा। संवत् १०१३ वाला उक्त शिलालेख अब भी मन्दिर में अवस्थित है। पुरातत्त्ववेत्ता श्री पूर्णचन्द जी नाहर ने अपने 'जैन लेख संग्रह' ग्रंथ में इसे सम्पूर्ण (लेखांक ७८८) प्रकाशित किया है।

एक और उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस शिलालेख में 'संवत्सर दशशत्यामधिकायां वत्सरैस्त्रयो दशाभिः फाल्गुन शुक्ला तृतीया' आदि शब्दों का प्रयोग संवत् को असंदिग्ध रूप से विक्रम संवत् नहीं स्थापित करता। संवत् १०१३ को नन्दिवर्धन संवत् मानें तो इसका विक्रम संवत् ५०१ आता है और वीर संवत् मानें, जो भगवान महावीर के निर्वाण के समय से शुरू होता है, तो वह विक्रम संवत् ५४३ आता है। भारत देश में विभिन्न संवतों का प्रचलन समय समय पर होता रहा है। अतः निश्चित समय स्थापित करने के लिए अन्य साक्ष्यों का सहारा अत्यावश्यक हो जोता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रतिहार शासक वत्सराज का समय विक्रम की ६ ठी सदी होना चाहिए। उद्योतन सूरि रचित कुवलयमाला में प्रतिहार शासक वत्सराज का उल्लेख है। कुवलयमाला का रचना काल विक्रम की ६ ठी सदीमाना जाता है। आर्किया-लाजिकल आफ इण्डिया मैसूर के एपीग्राफिस्ट डा० के०बी० रमेश ने अपने एक लेख (१९७२) में ओसिया स्थित हरिहर मन्दिर के आंगन में सुरक्षित वि०सं० ८०३ और ९१२ के दो स्मारक लेखों का उल्लेख किया है। निःसंदेह ओसिया उस समय एक समृद्ध नगर रहा होगा।

ओसिया के महावीर मन्दिर में सुरक्षित प्राचीन तोरण, जिस पर संवत् १०३६ का लेख उत्कीर्ण है।

महावीर मन्दिर के प्रांगण में सुरक्षित प्रसिद्ध तोरण पर उत्कीर्णित संवत् १०३५ के प्रतिष्ठा लेख के कुछ अंश श्री पूर्ण चन्द्र जी नाहर ने जैन लेख संग्रह (लेखांक ७८९) में प्रकाशित किए हैं। श्री भण्डारकर ने भी उक्त अंश में उत्कीर्णित पाठ 'सं० १०३५ आषाढ़ सुदि १० आदित्य वारे स्वाति नक्षत्रे श्री तोरणं प्रतिष्ठापितमिति' के आधार पर तोरण द्वार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की मात्र स्थापना तिथि दी थी। परन्तु यह पाठ तोरण पर उत्कीर्णित अभिलेख का एक अंश मात्र था। चण्डीगढ़ पंजाब विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग के प्रो० देवेन्द्र हाण्डा ने तोरण के स्तम्भ की अष्ट कोणात्मक पट्टिका पर उत्कीर्णित अभिलेख के पूर्व अंश को 'ओसिया की प्राचीनता' आलेख के साथ 'कर्मयोगी श्री केसरीमल जी सुराणा अभिनंदन ग्रंथ (१९८२)' में प्रकाशित किया है, जिसमें "याते संवत्सराणां सुरमुनि सहित विक्रम.....गुरौ शुक्लपक्षे पंचम्याम्.....स कीर्तिकार.....कषह देवयशः संघ्र सोनशिखे....." आदि पाठ द्रष्टव्य हैं। प्रो० हाण्डा के अनुसार 'सुरमुनि' पाठ से—'सुर' यानि ३३ और 'मुनि' यानि ७—यानि 'विक्रम संवत् ७३३ में निर्मित' अर्थ अभिप्रेय है। प्राचीन काल में संख्या सूचक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग संवत् देने के लिए प्रचलित था एवं उन्हें उलट कर पढ़ा जाता था। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' में इसकी पुष्टि की है। अस्तु संवत् ७३३ से पूर्व अवश्य ही ओसिया समृद्ध नगर रहा होगा।

प्रो० हाण्डा ने ओसिया स्थित श्री वर्द्धमान जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय की नींव खोदें जाते वक्त मिले उन सिक्कों का भी जिक्र किया है, जो अरब शासक अहमद के समय के हैं। ८ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ओसिया पर अरबों का आक्रमण हुआ था। ये सिक्के ओसिया के सेठ मंगलसिंह रतन सिंह देव की पेड़ी ट्रस्ट में सुरक्षित हैं।

ओसिया के उत्खनन में कुछ ऐसे संचयन भांड मिले हैं, जिन पर ब्राह्मी लिपि के अभिलेख हैं। प्रो० हाण्डा के अनुसार ये भांड ईसा की दूसरी/तीसरी शताब्दी के हैं। इससे ओसिया की प्राचीनता सिद्ध होती है। प्रो० हाण्डा मानते हैं कि "इस उपलब्धि से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ओसिया नगर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में अस्तित्त्व में था।" बरसात के दिनों में मिट्टी में सने चाँदी के ३/४ मासा के ऐसे सिक्के भी प्राप्त होते रहते हैं जिनके एक ओर गर्दभ चिह्न अंकित है। एक जनश्रुति के अनुसार विक्रम पूर्व १७ वर्ष में इस प्रदेश पर उज्जैन सम्राट् गर्दभिल्ल का शासन था। इससे भी ओसिया की प्राचीनता प्रमाणित होती है।

विक्रम संवत् ७४३ के नागौर शिलालेख में सूत्रधार गृहभट्ट, सूत्रवर्म गृहवर्मा एवं गंग वर्मा का उल्लेख है जो रूपकर्म में सिद्धहस्त थे और जो भीनमाल से आकर नागौर में बस गए। विक्रम सं० ७४४ के बसंतगढ़ शिलालेख से भी इसकी पुष्टि होती है। उस लेख में शिल्पी शिवनाग को पितामह कहा गया है। ओसिया घाणेराव, पाली, जालोर भीनमाल, वसंतगढ मूंगथला आदि प्रसिद्ध मन्दिरों का निर्माण इस काल से पूर्व सम्पन्न होना सिद्ध होता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

तृतीय

ग्रन्थागारों एवं बही भाटों के उत्पत्ति-कथानक

नाहर ग्रन्थागार में उपलब्ध ओसवाल-उत्पत्ति सम्बंधी गुटके/छन्द

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एवं इतिहासकार श्री पूरणचन्द्र जी नाहर के विशाल ग्रंथागार में संग्रहित प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के भंडार में एक अनाम कवि/भाट का गुटका मिला है। वह है तो अधूरा, परन्तु ओसवालों की उत्पत्ति कथा एवं कीर्ति का व्याख्याता है। गुटके के अनुसार भीनमाल के राजा भीम के दो पुत्र थे: सुरसुन्दर और उपलराव। राजा भीम की मृत्यु पर सुरसुन्दर गद्दी पर बैठा। उसी राज्य के मंत्रीश्वर के भी दो पुत्र थे— धरण और ऊहड़। एक दिन धरण की पत्नी ने देवर ऊहड़ को ईर्ष्यावश उपालम्भ दे डाला। बस ऊहड़ को भावज की बात लग गई। वह राजपुत्र ऊपलराव के पास गया। दोनों ने नया दुर्ग बसाने की योजना बनाई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उक्त कथा में यति रामलाल जी द्वारा उल्लिखित एवं 'उपकेश गच्छ पट्टावलि' के कथानक से बड़ा साम्य है। भाटों के कवित्तों में प्रायः यही कथा दोहराई जाती है। नाहर जी के ग्रंथागर में उपलब्ध उक्त गुटका इस प्रकार है :

कवित्त

श्री सुरसती देज्यो मुदा आसै बहुत विशाल
नासै सब संकट परो, उत्पति कहुँ उसवाल।।१।।

देश किसै किण नगर में, जात हुई छै एह
सुगुरु धरम सिखावियो, कहिस्यु अब ससनेह।।२।।

पुर सुन्दर धाम बसै सकलं, किरन्यावत पावस होय भलं
चऊटा चउराशि विराज खरै, पगभेलय जोर सुग्यान धरै।।१।।

भिनमाल करै नित राजपरं, भल भीम नरेन्द्र उपंति वरं
पटराणी के दोय सुतत्र भरं, सुर सुन्दर ऊपल मत्त धरं।।२।।

अलका नगरी जिह रीत खरी, अठबीस बबाकरी सोभ धरी
तस नारी बसै बहु सुख कही, दुख जाब न पासै सुदूर टरी।।३।।

त्रिय सुन्दर ओपम फूल कली, कनआ मयसुँ उतरी बिजली
मुगताम्बर जेम चले पधरम, बहुरूप भलो मनु कामहरं।।४।।

सुर सुन्दर जेठ सहोदर छै, लघु ऊपल राव जोधार अछै
सुर लोक में भीं गया पधरा, भिनमील को राज बड़ी जुकरा।।५।।

पुन दोय सहोदर मित्र भला, सम रूप मयंक सुधार कला
नलराज मनमथ रूप जिसा, महिरांण अथग्ग सोभाय इसा।।६।।

किरणाल तपै पुन भाग भलं, अरिदूर भजै इक आप बलं
अंगराग उदार दीपंति खरा, किल छाता पंवारमुगट्ट खरा।।७।।

दुरग मांहि मंत्री तणा बेटा दोय सरूप
बड़ो दुरग मांहि रहै रुपिया कोड अनूप।।१।।

सहर मांहि छोटो बसै लाख घाट छै कोड
बडै भ्रात नै इस कहै करू कोड री जोड़।।२।।

एक लाख देवे खरा दुरग बसूं हुं आय
बलती भोजाई कहै बचन सुनो चित लाय।।३।।

देवर जी सुण ज्यों तुम्हें किसो कोट छै सून
या विण आया ही मरै राखो ये अब मून।।४।।

बड़ऊ धरण बखाणीयै छोटो ऊहड़ जांण
उठीयो बचन सुणीकरी लघु बंधव हरिराण।।५।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोप अंग तिण बेल घण नंयो बसाउ द्रंग
एम कही आयो सहर बहुलो पोरस अंग।।६।।
उपल नै पासै जइ वदे पाछली बात
भोजाई मोसो दियो सुवालो मुज तात।।७।।

नाहर जी के कलकत्ता स्थित ग्रन्थागार से कुछ और छन्दों का उल्लेख मिलता है, जिसमे 'भोजकों के दफ्तर से ओसवालों की उत्पत्ति' दर्शायी गई है। इन छन्दों में पूरा कथानक विस्तार से दिया गया है। श्रीमाल गाँव में पँवार राजा देशलदे राज्य करते थे। उनके एक पुत्र का नाम ऊपल था। इसी गाँव में ऊहड़ रूहड़ दो श्रेष्ठि भ्राता वास करते थे। रूहड़ एक दिन अपनी भावज के ईर्ष्या वचनों से त्रस्त हो ऊपल के पास आया। दोनों ने मिल कर नया नगर बसाने की ठानी। दोनों मंडोवर आए। देवी की आराधना कर वहाँ नई नगरी बसायी। वहाँ रत्नप्रभ सूरि पधारे। भिक्षा न मिलने से शिष्य की प्रार्थना पर गुरु ने रूई का सांप निर्मित किया, जिसने कुँवर को डस लिया। शिष्य की प्रार्थना पर गुरु ने उसे पुनः जीवित किया एवं प्रतिबोध दिया। इस तरह चार लाख क्षत्रियों को प्रतिबोध दे रत्नप्रभ सूरि ने ओसवाल जाति की स्थापना की। इस कथा के साथ संवत् 'वीये बाईसे' में राजपूत कौमों से ओसवालों के १८ गोत्र बनने एवं भोजकों की उत्पत्ति का उल्लेख कवित्त में है। पूरा छन्द इस प्रकार है:

भोजकों के दफ्तर से ओसवालों की उत्पत्ति

श्रीमाल बसै दोय सेठ भले निधि उहड़ रूहड़ भाई।
निनानु रूहड़ सो लाख उहड़ सवाई।।
उहड़ इच्छा उपनी कोट में बास करीजै।
बिनती करी बींरकु दाम लख उधारा दीजै।।
बसै कोट थाहीं बिना भोजाई मुख भाखियो।
मरण भलो ध्रग मांगणों हृदय में गूसो राखियो।।१।।

सहर बसै श्रीमाल गांव चोबीस गिरी दे।
राज करै पौंवार दूठ राजा देशल दे।।
देशल सुत दस दोय उपल ओमादिख दाखीजै।
बिजो पढ़ा दिये दूण उपल दो सेर जवार दीरीजै।।
एक दिन कंवर उपल कनेए कर जोड़ रूहड़ कहैं।
पुर सूँ अलग पड़ पगल तो राव तुम मो पासे रहैं।।२।।

सूरज उगै सासता कवर नित गोट करावे।
रूड़े चित रावतां आवतां आवध बनावे।।
बांण बंका अनभंग ठाठ घोड़ां गज ठट्ठां।
आठ पोर उदमाद बनावे निज गुण ठट्ठां।।
राज रे काज मारे रखै ओ तो दाणव ऊटियो।
कवर प्रधान एको करे दुष्ट जान देसाटो दियो।।३।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गाड़ी सहस गुणतीष रथ बल सेष इग्यार।
अश्व सहस अठार प्रगट पाय गाण पाले।।
उँच सहस पचीस तीस हाथी मध झरंता।
दस सहस दुकान कुंवर व्योपार करंता।।
पान से शेष विप्र मघामिलकर साते मंडीया।
सेट तो उहड़ उपर छन्तों एता छंडीया।।४।।

सकल ओचालो सहित ऊपल मंजोवर आवे।
मंजोवर रो धनी देश पुर मैल देखावे।।
नाय बसे नव तेरी बडम आप बसावो।
इस मंडोवर अके कंवर जी राज करावो।।
मंगा विप्र तरे कयो एक अर्ज सुनीजिये।
बस जाय सहर उपल बसे कोई उपाय करीजिये।।५।।

मगा विप्र तिन समय एक मन सक्त अराधे।
सुप्रसन हुई सक्त आराकेन अराधे।।
जद कयो कर जोड़ तवे एक राकस चावो।
माजी जिनने मार बस्तियां सहर वसावो।।
मारियो तबे मरता मुखां करुणाकर वोसेकयो।
मोय नाव नग्र बसे देवी केता वर दियो।।६।।

पिंडत जोशी पूछ तुर्त वसी नव तेरी।
बस्ती बसत कर विच करे सेवा सिव केरी।।
देवी रे बरदान पुत्र राजस फल पायो।
जिनरो नाम जैंचंद्र वर्ष पंदरे परनायो।।
निकट राज ओस्यां नगर कै भूप उपल करें रतन सूर।
प्रभु आयो ओसियां नगर अया ईनीज अवसर।।७।।

नरशा सहर विचार प्रम गुरु शिष्य पठायो।
शिष्य फिर आयो पुर सकल आहर किणी न पायो।।
अति हुये उदास परम मन में पिछतायो।
बदे मधुर सुबैन विप्र भोजन बैरायो।।
सिव धर्म रहा जाने सको जाने न धर्म जैन रो।
सिष्य कयो रतनसूर प्रभु ने कोई उपाव धर्म रो करो।।८।।

सिष्य तनी कथ सुने केदर गुरु को पज कीनो।
आनो पुनी एक दुये शिष्य जेठो दीनो।।
जेठे चेले जाय लोग कर पुणी लायो।
कर माया कारणी विष पिलो बनायो।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेठ सुत कवर सुतां सुख सेज में मज देवारों मालीये।
पी गयो सास पिलो पनंग धरती ताते जालीये।।९।।

दोवड़ी रती दिराय आण जिराण उतारी।
बड़ा जेठ जेठव पति उपर जदों अधिकारी।।
गुरु पठायो शिष्य शिष्य किरत कई सारी।
क्युँ जलावो जीव ने जिवावे जड़ी हमारी।।
आनीया कवर गुरु आगले कवरा ने जीवत किया।
एक एक सारे नगर देशल सुत गुरु ने दिया।।१०।।

प्रथम साख पवार साख गेलोत श्रृंगारा।
रिन थम्बर राठोड़ बसु चौवान बड़ाला।।
भाटि दैयाबुर्ल कावा पडियाला।
वोडौव हाडा जादव गोड़ मोयल गोयल मकराणा।।
तुअर भूप खरबर तनो लेता पटा लाखरा।
एक दिन इतरा ओसवाल हु इतनी साखरा।।११।।

सावण पख सुतात संबत् विये न बाईसे।
अर्क वार अठम ओसवाल हुआ उपदेशे।।
इष्ट चावंड अराधे जड़ी मात कवर जिवायो।
देवी जिनरो दिवस नाम जद साचल पायो।।
चार सहस राजस कुली श्रावग ज्ञानी समापिया।
रतन सूर प्रभु ओसियां नगर ओसवाल थिर थापिया।।१२।।

विप्रां कियो विचार एरा शिव धर्म उथापे।
सिताब जांदीया किन करे जुअर के तांई।।
ऊपर करवा आप चढ़ साचल आई।
सिची आई बिचै मुनिवर सबे प्रगट सच प्रीतपाल का।
जे कदे विरचे ओसवंस तो करसी गट को कालका।।१३।।

विप्रा कीनी विनती श्रवण चावंड सुनीजै।
कोप कियो जी कृपा दयावर दानज दीजै।।
साचो मुज शराप बचन किम चवे, हमारो बदसी।
माल बेलों बदे होसी विप्र थोरा कयो।
ओसियां तज जासी अलग देवी करता वर दियो।।१४।।

गांवेटा गुनीया सुपे जिन करि सेवा।
देवें विवा दान लाखा तीरी जस लेवा।।
बडम सुतारथ व्याव वला अशीश बनावे।
अवसर दूत अपार विधे घर कुँवर बधावे।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपल देव ओसीया नगर शेण माल समापिया।
भाव सु मधाकर भोजक थीर कुल प्रोहित थापिया।।१५।।

एशियाटिक सोसायटी में उपलब्ध ग्रन्थ

नाहर जी के ग्रन्थागार में उपलब्ध उक्त छन्दों से मिलता-जुलता एक हस्तलिखित गुटका कलकत्ता की एशियाटिक सोसाईटी के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार में भी उपलब्ध है, जिसमें 'ओसवालाँ री उत्पत रा कवित्त' (१२१८) कुछ विस्तार से दिये गए हैं। उसके उन्नीस कवित्तों का मूल कथानक नाहर ग्रन्थागार में उपलब्ध पन्द्रह कवित्तों के समान ही है। चार भिन्न कवित्तों में से दो कवित्त इस प्रकार है:

श्री वर्धमान जिन पछे पाट बावने पद लीधो
सतगुर आके संसार नामं गुरदा ओथो दीधो
तात आठ दस बरस नगर ओयसीया आए
प्रतबोधे चामुंड नाम तीहां साचल पाए
एक लाख अस्सी हजार राजकुल प्रतिबोधिया
श्री बिजै रत्नप्रभसूर ओईसीया नगर ओसवाल थिर थापिया।।

* * *

श्रावण पख सितात संवत बीए नै बावीसे
अरक वार आठम ओस वंस हुओ उपदेशे
प्रतिबोधे परमार उपल जैन धरम में आयो
प्रथम गोत सो पाँच बावन सहत बंधायो
नव मण जनोई ब्राह्मण अवसधरी उतारीया
भोजन जीमाय थापिया भोजग कीधा तस आरंभ करीयः।।

पहले कवित्त में "भगवान महावीर के निर्वाण से ५२ वर्ष उपरान्त जिन पछे पाट बावने' रत्नप्रभ सूरि के आचार्य पदासीन होने एवं १८ वर्ष उपरान्त ओसिया पधारने की बात बहुत महत्वपूर्ण है। इसी कवित्त में 'एक लाख अस्सी हजार राजकुलों को प्रतिबोध देने' का उल्लेख है, जबकि नाहर ग्रन्थागार के भोजकों के छन्दों में 'चार सहस राजस कुलों' को श्रावक बनाने का उल्लेख है। दूसरे कवित्त की पहली दो लाईनों में वर्णित 'संवत् बोये बाइसे' में ओसवाल होने की बात भोजकों के बारहवें छन्द की पहली दोनों लाईनों के समान है। किन्तु एक ओर महत्वपूर्ण तथ्य--"पंवार, गहलोत, राठौड़ चौहान".....आदि राजपूत कौमों (साखों) के ओसवाल बनने का उल्लेख एशियाटिक सोसाइटी के कवित्तों में नहीं मिलता।

एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार में इसी तरह के विभिन्न कवियों द्वारा रचित कई गुटके विद्यमान हैं, जो ओसवाल वंश या ओसवाल श्रेष्ठियों की प्रशस्ति में रचे गए थे। दो ऐसे कवित्तों से ओसवाल वंश की उत्पत्ति कथानक पर भी रोशनी पड़ती है। इन कवित्तों की भाषा राजस्थानी एवं लिपि मध्य कालीन नागरी है, जिसका स्वरुप आधुनिक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नागरी अक्षरों के स्वरूप से कुछ भिन्न है। उक्त दोनों गुटकों की कविता का नागरी रूपान्तर इस प्रकार है:

गुटका नं० १—ग्राम ओलवी परगना बिलाड़ा के ठाकुर दौलतसिंह भाटी (राजपूत) की पुस्तक में साधु बालाराम का विक्रम संवत् १९७१ में लिखे छन्द का नागरी रूपान्तर:

कवित्त

श्रीमील बसै दोय सेठ रोहड ने उहड़ भाई
निनाणूँ उहड़ रे लाख रोहड सो लाख सवाइ
उहड़ ईउडा उपनी कोट मै मेहल करी जै
विनती करे वीर सों लाख दान उधार दीज
बसै कोट थाहीं बिगर एम भोजाई मुख भाखीयो
मरण भलो धृग मांगणो हृदय में गोसो राखीयो।।१।।

शहर बसे श्रीमाल गाज चोबीस गरद है
राज करे परमार ऊठ राजा देशलदे तिहाँ
देशल पुत्र दन्ना दोय उपल अणमीनीत आबीजे
पटाइजा पर धेल दोय सेर जुवार उपल न दीजै
दिवस एक उपल ने देखने कुँवर ने ऊहड़ कहे
पुर सूरज क कपड़ों उ छल रावत इणिविध गोंढ़ रहै।।२।।

सूरज उगे सासती कुवर नित गोठ कराडै
रूडे काज रावताँ अस आवधि अणाडै
मड बांका अण जंगा धोडां गज घटां
आटो पोहर उनमाद भणा उगडा गुज भटां
राज रे काज मारै रबै ओतो दाणव उठीयो
कुंवरा राव उखी नएको करे दुष्ट जाणि देसो दीयो।।३।।

आठ सहस असवार रत सहस इग्यारह
गामी सहत्र गुणतीत पायकपाला नहीं पार है
उठीसह सहस अठारह तीस हाथी मद झरंता
दस सहस दूकान कुलह व्यापार करंता
पोकरणराव प्रमार रे मेल घरेवार साथे मंदीया
उहड़ पर श्रीमाल लखां बदंता ए ताव दीया।।४।।

सेहस उछालां सहित उपल मंडोवर आयो
मंडोवर रा धणी करी महिर देश पूर महिल दिखायो
पंडित जोशी पूब उरत बसाई नव तोरी
वेद खत्री यां धर बचे करो सेवा शिव के री

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिव रो राह जाणे सको जाणे नहीं राह जैन रो
शिष्य कहै रत्नप्रभ सूर ने कोईक वीचार धरण रो करो।।५।।

शिष्य तणीकथा सुणै कह कह उर कोप ज कीधो
आणो पूणी एक कयो-शिष्य ने जठे दीपे तठे चलै जाय
लोभ कज पूणी ल्यायो कीनी माया कारमी
विषहर पीणोज बणायौ सेठ
सेठ सुत सुतो सहज मकबपारे मालीये
पी गयो सर्व वीणो प जंग जीरवांण लेजाये जालीये।।६।।

बदी रथी बणाय आंण जाखाण उतारी
वड जांन भूप ती उपल सरीखा अहंकारी
जालण वार जतीये आणं दीधी उपल री
जालो क्यूँ ओ जीव जीवाण जड़ी बैजेरी
आँणियो कुंवर गुरु आगला कुवर ने जीवतो कियो
नर एकम थारे नगर देशल सत गुर नै दियो।।७।।

वर्धमान जिन थकी पाट बावने पद लीधो
श्री रत्न प्रभ सूरि नाम ता सदगुर दीधो
तिण सू अठ दस बरस नगर ओसीया आए
प्रतिबोध बाधाद नांमति हांसा चल पाए
च्यार लाख चौरासी सहसवर राजकुमार प्रतिबोधिया
श्री रत्न प्रभ सूर उईसा नगर थिर उसवाल थरपिया।।८।।

श्रावण पख सितात् संवत वीये बावीसे
अर्कवार आठम उसवंश हुवो
उपदेसे प्रतिबोध्या पमार उपल जिन धर्म में आवो
अथ मगो तसै पांच बोल सहित बँधायों
नव मण जनोउ ब्राह्मण अंसवतर उतारियो
भोजन जीमाय ब्रह्मा भोजगां किया थित आरम्भ का रीया।।९।।

इति श्री उसवाल उपतपन्तिः। लिखितं जोधपुर मध्ये साधु बालारामेण विक्रम संवत् १९७१ फाल्गुन सुदि १२ शुक दिने। ईसवी सन् १९१५ फरवरी ता० २६। गांव ओलवी परगना बिलाड़ा के ठाकुर भाटी दौलत सिंह जी की पुस्तक से लिखी।

गुटका नं० २—सेवग सुखराम लोडावत के छन्द का नागरी रूपान्तर :

एथ ओसवालों री उतपत लीखते।

श्रीमाल बसे दोय सेठ, भली रीद्ध उहड़ न रूहड़ भाई।
नीनाणू उहड़ रे लाख, रूहड़ सौ लाख सवाई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऊहड़ इच्छता उपनी, कोट में महल करीजे।
विनती कीधी वीर सूँ, दाम लाख उधारा दीजे।
बसे कोट थाई बिगर, भोजाई मुख भाखीयो।
मरण भलो धृग मांगीयो, हरिदे में गोसे राखीयो।।१।।

सहर बसो श्रीमाल, गाउ चौबीस गरद् है।
राज करे प्रमार, दुठ राजा देशल है।
देशल पुत्र दस दोय, उपल अणमाने तो अखीजे।
दुजा पटा दुणा, उवाने दोय सेर ज्वार है दीजे।
एक दिवस उपल ने देखीने, कवर ने उहड़ कहै।
पुर सुरी ज कन्हैं कपड़ा प्रगल रावत मों गैडे रहे।।२।।

सुरज उठो सासती, कँवर नित गोठ कराड़े।
रूड़े हित रावताँ, इसे आवधी अनाड़े।
भड़ बंका अण भंग ठाट घोड़ा गज थटां।
आठ पोहर उद्माद भणाडे पमाड़ गुण भटां।
राज रे काज मारे रखे, ओ तो दानव उठीयो।
कवर परधान ऐको करे, दुष्ट जाण देसोटो दीयो।।३।।

अठ सहस असवार, रथ सहज इग्यारह।
गाड़ी सहस गुण तीस, पाला पाईक नहीं पार है।
ओठी सहस अठार, तीस हाथी मद झरंत।
दस सहस दुकान कोड व्यापार करंत।
पाकरण राव जुवार रे, मेल घर बार साथ मंडीया।
सेठ उहड़ ने उपलि सहत छड़तां साते छंड़ीया।।४।।

सहस उचाला साथ, उपल मंडोवर आयो।
मंडोवर रे घणी, दिसपुर मेहल दीखावो।
पंडित जोशी पूछ तुरत वसाई नव तेरी।
वेद घर खत्रीया बाचीजै, करे सेठ सेवा विप्र केरी।
शिव री राह जाणें शको, नहीं जाणें धर्म जैन रो।
शिष्य कहे रत्न प्रभु सूर ने, कोई क विचार धर्म रो करो।।५।।

वर्धमान जिन तकीं, पाट बावने पद लीधो।
श्री रतन प्रभु सुर, नाम वाझ गुरु दीधो।
ताते आठ दस बरस, नगर ओयसां आयै।
प्रतिबोधे चामंड नाम, तसाचल पाए।
चार लाख चौरासी हजार घर राजकुली प्रभ बांधीया।
श्री रत्न प्रभु सुर ओयसा नगर ओसवाल थीर थंपीया।।६।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सावण पख श्री तातु संवत वीये बाबीसे।
अरकवार (सूर्यवार) आठम ओस वंस हुआ पदेसे।
प्रतबोधे पवार, उपल ज्यांनें धरम आये।
अथ गोत पाँच सौ, बायल भो न्यात बँधाये।
मण नव जनोई ब्राह्मणां, अशंक मील उतारीया।
भोजन जीमाय थापीया, भोजग कर थीत आरंभ काकीया।।७।।

प्रथम गोत तातेड़ बिये बाफणा बाहदर।
कुहरतीया करणावट, वले मोदक सहोदर।
कुरहद बिरहद सीखर श्रीमाल सुजाण है।
डीडू लघु कंडेलवाल वेद पारक बखाण है।
आदह कन्हा भूर जद्रक कुंभट चींकच कनोजीया।
श्री वीरधमान सुरपाट अविचल सही ओसवाल थीर थापिया।।८।।
लीखतु सेवग शुखराम लोड़ावत।

उक्त दोनों कवित्तों में काफी साम्य है। दोनों में श्रीमाल नगर के राजा देशल दे के राज-कुँवर ऊपल एवं रोहण और ऊहड़ दो भ्राता-श्रेष्ठियों का उल्लेख है। ऊहड़ और ऊपल द्वारा मंडोर के पास ओसिया बसाने, रत्नप्रभ सूरि के ओसिया पधारने, ऊपल सहित ४ लाख ८४ हजार क्षत्रियों को 'बीये बाईसे 'में ओसवाल बनाने एवं भोजकों की उत्पत्ति का भी उल्लेख है। किन्तु दोनों कवित्तों में कुछ भिन्नताएँ भी हैं और वे बड़ी सार्थक हैं। सेवग सुखाराम के छन्द में जिन प्रथम १८ गोत्रों का उल्लेख है, वे ओसवालों के आदि गोत्र हैं, परन्तु साधु बालाराम के छन्द में बाद के १८ राजपूत गोत्रों का नामोल्लोख है।

नाहर जी के संग्रह में उपलब्ध गुटकों से उक्त छन्दों का मिलान करने पर एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगोचर होता है। एशियाटिक सोसायटी में उपलब्ध कवित्तों में ओस वंश प्रतिष्ठापक रत्नप्रभ सूरि का स्पष्टतः भगवान् महावीर के निर्वाण के ५२ वर्ष बाद आचार्य-पद पर आसीन होना एवं उसके १८ वर्ष अनन्तर ओसिया पधारने का उल्लेख है। इस दृष्टि से ये पद ओसवालों की उत्पत्ति के काल-निर्णय में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान में उपलब्ध ग्रंथ

बीकानेर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (State Archives) के हस्तलिखित ग्रन्थ भंडार में ओस वंश से सम्बन्धित अनेक गुटके संग्रहित हैं, जिनमें 'ओसवाल री जाति विगत' (क्रमांक ६५५), 'ओसवाल जात्युत्पत्ति कवित्त' (क्रमांक ११३३४), कवि माईदास रचित 'कूकड़ चोपड़ा री उत्पत्ति' (क्रमांक ११३४०), 'ओसवाल जाति उत्पत्ति वर्णन' (क्रमांक ११९७८) एवं 'इतिहास ओस वंश' (क्रमांक २७०३३) उल्लेखनीय है।

एक सुखद आश्चर्य यह रहा कि इनके ओसवाल जाति-उत्पत्ति सम्बन्धी छन्द, एशियाटिक सोसायटी के गुटकों में उल्लिखित छन्दों से काफी मिलते-जुलते हैं। ग्रन्थ क्रमांक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६५५ (लिख्यते वेलानुत्तर दास) के अन्त में लिखित 'उसवाल वंश री उत्पत्ति रा कवित्त' और सोसायटी के साधु बेलाराम एवं सेवक सुखराम लिखित छन्दों में बड़ा साम्य है। रत्न प्रभ सूरि एवं ओसवाल गोत्रों से सम्बन्धित छन्द इस प्रकार है:

वर्धमाण जिण थकी पीढ़ी बारमी पद लीधो
श्री रतन प्रभ सूर नाम ते सत गुर दीधो।
तेसुं अठ दस बरस नगर ओईसा आए
प्रतिबोधी चामुंड नाम ते साचल पाए।।
चार लाख चौरासी सहस थिर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभसूरि ओईसा आवीया ओसवाल थिरथंपीया।
सावण पख सितात, संवत् बीये बाईस
अरकवार आठम ओईस वंश हुयो।।
उपदेशे प्रतिबोध्या प्रमार उपल जिण धरमां आयो
प्रथम गौत सौ पांच नांवल सहित बंधराईयो।
मण नव जनोई ब्राह्मणां असंयन रे उतारीया
भोजन जीमाकु भोजगां कीया थित आरिमकीरीया।।

* * *

प्रथम गोत तातेड़ बीया बाफणी बहादुर।।
कहं तीया कर्णाट बल मोरक सहोदर।
कुरहद विरहट सघन श्री श्रीमाल सुजाणां
डीडुलघु खंडेलवाल वेद पारख बखाणां।।
आदित्यनाथ मूरज कहै कूंभट चींचट कनोजीया
श्री रतन प्रभ जग में अचल, उसवाल थिथंपीया।।

सम्भवतः एशियाटिक सोसायटी के साधु बेलाराम लिखित छन्द ही सामान्य लिप्यन्तर से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के ग्रन्थ क्रमाङ्क ६५५ में उद्धृत हुआ है। दोनों के रचनाकारों का नाम-साम्य भी इसी ओर इंगित करता है। 'वर्धमान जिण थकी पीढ़ी बारमी पद लीधो' पद भी एक सा है। सेवग सुखराम लोडावत के छन्द का पद 'वर्धमान जिण थकी पाट बावने पद लोधो' ही अन्य उपलब्ध कवित्तों/छन्दों से अधिक मेल खाता है। 'पीढी बारमी' से सामान्यतः ३०० वर्षों का अन्तर हो जाता है, जो अगली पंक्ति 'ताते आठ दस बरस, नगर ओयसा आये' को अर्थहीन कर देता हैं। बावन और आठ दस बरस का जोड़ 'सत्तर' होने से वह 'वीर निर्वाण के सत्तर वर्ष पश्चात्' वाली शास्त्रीय मान्यता से भी मेल खाता है। अतः 'पीढ़ी बारमी' को 'पाट बावने' का ही लिप्यंतर मानना उचित प्रतीत होता है।

ऐसा ही एक और गुटका राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (State Archives) के हस्त लिखित ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध है, जो विक्रम संवत् १८२८ में लिखा हुआ बताया जाता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। ग्रन्थ क्रमांक ११३३४ के इस गुटके में दो ही पद्य हैं जिनमें ओसवाल संस्थापक रत्न प्रभसूरि 'वर्धमीन जिन थकी पीढ़ी बारह पद लियो' एवं 'तासे आठ दस बरस, नगर उसीया आये' उल्लेख है। साथ ही 'वीये बाईसे' में उपल पमार से ओस वंश की स्थापना का उल्लेख है। उक्त दो पद्य इस प्रकार है:

ओसवाल जात्युत्पत्ति कवित्त

कवित्त उसवाल गोत्रां रो

श्री वर्धमान जिन थकी पीढ़ी बारह पद लियो
श्री रतन प्रभ सूरि नाम दाउल गुरु दियो
तासे आठ दस बरस नगर उसीया आए
प्रतिबोधे चामुंड नाम तिहां साच्चुल पाए
चार लाख चौरासी सहस राजकुली प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभु सूरि उस्या नगर उसवाल थिरथपिया
सावण पख सितात संवत बीयै बावीसे
अर्कवार आठम्म उस वंस छवो उपदेसै
प्रतिबोधे पमार उपल जिन ध्रम ह आए
प्रथम गोत पाँच सै बावल भय बोत बंधाए
मण नव जनो उ ब्राह्मणां असंक मेली उतारीया
भोजन जिमाइ थाका भोजग करिथिति आरम्भ का किया।।२।।

केशरिया नाथ जी मन्दिर-ग्रंथागार के गुटके

जोधपुर स्थित केशरिया नाथ जी मन्दिर के ग्रंथागार में हस्तलिखित गुटकों का संग्रह है। उनमें एक गुटका डब्बा २९ प्रति क्रमांक ५७ में 'कवित्त उसवालां री उत्पत्ति रो' अंकित है। इस गुटके के कवित्त एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के साधु बालाराम द्वारा लिखित कवित्तों (गुटका नं० १) जिन्हें ऊपर उत्धृत किया जा चुका है, के लगभग समान है। इनमें श्रीमाल नगर के उहड़ श्रेष्ठि के साथ राजा देशल के पुत्र उपल द्वारा नगर छोड़ कर मंडीवर आने एवं ओसिया बसाने, भगवान वर्धमान की 'बारमी पीढ़ी' में पदासीन आ० रत्न प्रभ सूरि के ओसिया पधारने और उपल को प्रतिबोध दे जैन बना कर 'संवत बीयै बाईसे' में ओस वंश की स्थापना का उल्लेख है।

केशरिया नाथ जी मन्दिर के ग्रंथागार में एक वृहद् गुटका नं०२२ उपलब्ध है जिसमें विभिन्न ओसवाल गोत्रों की उत्पत्ति के कथानक वर्णित हैं। इस गुटके के अन्त में कुछ ओसवाल वंश री उत्पत्ति रा कवित्त भी अंकित है। यह गुटका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। एक विशेष बात यह है कि लिपिकार ने अन्त में 'सं० १८०१ रा बरस रा लिखा इति ओसवाल वंश रा कवित्त सम्पूर्ण' लिखकर इसे प्राचीनतम उपलब्ध गुटका बना दिया है। इसमें भी उपल को 'देसल-सुत' लिखा है और उहड़-उपल के श्रीमाल नगर से चलकर मण्डोवर आने, ओसिया बसाने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और रत्नप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोध देने का उल्लेख एशियाटिक सोसाइटी में उपलब्ध गुटकों में वर्णित छन्दों के समान ही है। इस गुटके के दो अंतिम छन्द इस प्रकार हैं:

वर्द्धमाण जिण थकी पीढ़ी बारमी पद लीधो
श्री रतन प्रभ सुर नाम तेस गुरु दीधो
तेसुं अठ दस बरस नगर ओईसा आए
प्रतीबोधी चामुंड नाम तै साचल पाए
चार लाख चौरासी सहस थिर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभ सूर ओईसा नगर ओसवाल थिरथपीया।।८।।

सावण पख सितात सम्वत् वीयै बाईसे
अरक वार आठम ओइस वंश हुयो उपदेस
प्रतिबोध्या पमार ओपल जिन धर्म में आयो
प्रथम गोत सो पांच बाबल सहित बँधायो
मण नव जिनोई ब्राह्मण असंख नरे उतारीया
भोजन जीमावन भोजगां कीया थित आरिमकारीया।।९।।

उक्त दोनों छन्द 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के ग्रन्थ' क्रमांक ६५५ के सम्बन्धित छन्दों के समान हैं। इनमें 'पीढ़ी बारमी' के साथ 'आठ दस बरस' बाद ओईसा आने का उल्लेख लिप्यन्तर से वीरात् ७० वर्षे वाली मान्यता की ही पुष्टि करता है एवं साथ ही 'बीये बाईसे' का उल्लेख उसका विक्रम संवत् न होना सिद्ध करता है।

मोहनलाल देसाई संग्रह

स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई के संग्रह में कवि उदयरत्न 'पांच पाट रास' नामक एक गुटका उपलब्ध है, जिसमें रत्नप्रभ सूरि द्वारा श्रीमाल, ओसवाल एवं पोरवाल जातियों की स्थापना का उल्लेख है। पूरा छन्द इस प्रकार है:

सीध पुरीई पोहता स्वामी वीर जी अन्तरजामी।
गौतम आदे गहू गाट बीच माहे बही गया पाट।।
त्रेवीस उपरे आठ बाँधा धर्मनो बांट श्री रहपि।
रत्न प्रभू सूरिश्वर राजे आचारज पद छाजे।।
श्री रत्न प्रभ सूरि राय केशीना केड़वाय।
सात सौ सेका ने समये रे श्रीमील नगर सनूर।।
श्री श्रीमली थापिया रे महालक्ष्मी हजूर।
नेऊ हजार घर नातीना रे श्री रत्न प्रभ सूर।।
थिर सुहरत करी थापना रे उल्लट घरी ने उर।
बड़ा क्षत्री ते भामा रे नहीं कार दियो कोय।।
पहलो तिलक श्रीमाल ने रे सिगली नाते होय।
महालक्ष्मी कुल देवता रे श्रीमाल संस्थान।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री श्रीमालीनाती ना रे जाने बिस्वा बीस।
पूरब दिस थाप्या ते रे पोरवाड़ कहेवाय।।
ते राजा ते समये रे लघु बंधव इक जाय।
उवस वासी रहयो रे तिणे उवेशापुर होय।।
ओसवाल तिंहा थापिया रे सवा लाख घर जाय।
पोरवाड़ कुल अम्बिका रे ओसवाल संचियाय।।

उक्त छन्द में आचार्य रत्नप्रभ सूरि का भगवान महावीर के निर्वाणोपरान्त ६८ (६०+८) या ५२ (६०-८) वें वर्ष में आचार्य पद पर विराजित होने का उल्लेख है। उन्होंने श्रीमाल नगर में क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर श्रीमाल वंश की स्थापना की। उनके नातियों का श्री श्रीमाल गोत्र निर्धारित किया। श्रीमाल नगर के पूर्व दिशा में स्थित प्रदेश के लोगों को प्रतिबोधित किय— वे पोरवाड़ कहलाए। तदनन्तर ओसिया जाकर वहाँ के क्षत्रियों को प्रतिबोध दिया एवं उनका ओसवाल वंश संस्थापित किया। श्रीमालों की कुलदेवी महा लक्ष्मी है, पोरवालों की अम्बिका एवं ओसवालों की कुलदेवी सचिया माता है।

अभय ग्रन्थालय में उपलब्ध ग्रन्थ

बीकानेर में प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता एवं जैन संस्कृति के परम व्याख्याता सर्व श्री अगरचन्द्र जी भंवरलाल जी नाहटा का श्री 'अभय जैन ग्रन्थालय' प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों का भण्डार है। वहाँ सत्तर हजार ग्रन्थों की पांडुलिपियाँ संग्रहित हैं। ओसवाल उत्पत्ति एवं वंशावलियों के गुटके/कवित्त भी भरे पड़े हैं। विषयवार केटलॉग के अभाव में उन्हें छाँट कर निकालना महाभारत अवश्य है, परन्तु शोधकर्त्ताओं के लिए वह अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है।

हस्तलिखित ग्रन्थ (क्रमांक ६४८) में शोभ कवि रचित 'ओश वंश थापन कवित्त' भी ओसवाल जाति की "वीरात् ७० वर्षे" उत्पत्ति स्थापना को पुष्ट करता है। इसमें जिन प्रथम १८ गोत्रों का उल्लेख है, वेभी ८ वीं, ९ वीं सदी में प्रचलित राजपूत गोत्र नहीं हैं। पूरा कवित्त इस प्रकार है:

ओश वंस थापन कवित्त
श्रीमदिष्ट देवाय नमः

श्री वर्धमान जिन थकी बरस वावन पद लिधो,
श्री रत्न प्रभ सूरनाम तिहांस गुर दिधो।
ताऊ अठ दस बरस नय उएस्या आया,
प्रतिबोधे चामुंड नाम तिहांसा वलणाया।
तीन लाख चउरासी सगस्र राजपुत्र प्रतिबोधिया,
श्री रत्न प्रभ सूरि उएसनगर उसवाल थिरथपीया।
प्रथम गोत तातेड़ बीय बाफणा बाहदर,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कह तीजो करणावट रांका बुलह मोराक्ष पोहकरणो।
सुहंकर उलहट नै विरहट अखर श्री श्रीमाल बखाणु,
नवम वैद मुता भणीजे श्रेष्ठ दसम सुचंती जाणु।
आदित्य नाग चोरड़िया स भूरि भटेवरा भाई,
लघु चिंचट भाई गोत्र लीगा समदड़ीया।
लघु श्रेष्ठि कुंभट कोचर मीमु कनोजीया,
श्री रत्न प्रभ सूरी उएसनगर उसवाल थीरथपीया।।

बीकानेर के अभय ग्रंथालय में एक और हस्त लिखित ग्रंथ (क्रमांक- ७७६५) 'ओसवाल उत्पत्ति कवित्त' उपलब्ध है जिसमें १६ छप्पय के माध्यम से ओयसा नरेस उपलदेव के 'प्रभु रतन ऋषि' से जैन धर्म अंगीकार करने की कथा सविस्तार कही गई है। ये सम्पूर्ण पद्य इस प्रकार हैं:

अथ ओसवालां री उतपत्त रा छप्पय लिख्यते

उपलदेव पवार नगर ओयसा नरेश रा
राज रीत भोगवै सकल सचियाय दियो वर
नव लख चरू निधान दियो सोनहियां देवी
इतव उपर अरिगंज कियो सह पाय न केवी
इम करे राज भुगते अदल के इक वर सब दिविया
नहिं राजपुत्र, चिता निपट सकत प्रगट कहकत्थिया।।१।।

हो राजा, किण काज करै चिंता मन मांहि
थारै उदर सुतन्न वेह अंक लिखिया नांहो
जद नृप छै दलगीर दीना वाय क इम दाखै
राज बिना सुत राय, राज म्हारो कुण राखै
जा नृपत पुत्र होसी हमें घणां नरां पण घटसी
होवसी वणं संकर जुवा पुव सांध राव लहसी।।२।।

देवी रै वरदान पुत्र राजा फल पाये
नाम दियो जयचन्द बरस पनरां परणाये
पिता पुत्र भडया महल सहलां सुक माणै
दिन दिन गढ़ मं छाख का निसाण बजाणै
उण समौ आये प्रभु रतन ऋषि मास खमण करतो मुरा
सिष मेल बहरावा सहर मे धरम लाभ करतो धुरा।।३।।

घर घर सिष फिरगयो पर त आहार नहिं पायो
बिपर हेक पिण बार वचन रसड़ो बतलायो
हो सिख, झोली हात मेल, कर काम हमारो
करदयो न संत रोकीयो वले जग साद बिहारो

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बहु बहर खांड भोजन घिरत ले आये गुरु अगल
गुरु कहओ बार लागी घणी कह चेला वृतांत सकल।।४।।

सिष मुख सुणे वृतांत सहर स्यूँ रि, रिसायो
पिवण सरप कर प्रगट महल कवँरा मिलवायो
पिवण सरप पीबातां कवँर चेतना न काई
सास नहीं बेसास सोग यणप डसँ ताई
हाहाकार हुय देस मे दाग दियण सब चल दीना
पड़ पंच करे पूछ्यो उहम मगे आय उभो मुनी।।५।।

सिख मुख सुणे वयाण भवँर राजा भूलाणो
कवण नाम गुरु कठे थए सो दास ठिकाणो
ओ खेजड़लो अठे कवँर ने लेय पधारो
आहु दीन री अरज स मो काज सुधारो
रिष कह्यो विप्र घणा राजरे अधिकारी गुरबुध अनम
जो कै कँवर ने जीवचो तो पूछो प्रुहतांप नम।।६।।

नृपत पूछे गुरु विप्र कवँर जीवै किण कारण
ओखद मंत्र उपचार वेद बड़ा कियो विचारण
पण गुण लग न लगार रिष कहियौ सुण राजा
हूँ जीवाऊ कवँर कहुँ सो करसओ काजा
तिणबार नृपत इम उच्चरे कहो राज सो मेह करां
जो कवँर काज चूकां वचन मोत अफूटी सह मरां।।७।।

तद कहियो रिषराज कवँर महलां पदरावा
मंत्र फेर मंत्रीया जाय पोढ़ाय जगावो
खमा खमा कर ख्वास गीत मंगल चा गाया
बाजा सुभ बाजिया उठ गुरु चरणां आया
मंगलीक कुंकुंम कर गोहली चोक मोतियाँ पूरतदू
पालज्यों दया रिष राज भणव सुधा सिरजिण धरमबद।।८।।

जैन धरम जिण दीह अभंग षरधा आदरियो
मिटी आद मरजात ध्यांन हिय रिषभ सुं धारियो
विषां हंत बदल्ल मूल अज्ञान ह मानिनी
ऊ आंको आविया राज विग्रह रचानी
नृप विर्र लाग देवौ नहीं कर घरणो तागो कियो
तद हुयो मरण केतांतणो विरलो विप्र जु जीवियो।।९।।

तिण हि त्यां कारणे प्रजा राजा पीड़ावे
सा का बंध सहैर मिनक चालता मर जावे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोई ताप विरोद सत्र पण केय केय संघारौ
केय सरप ले सीह जलण पर के ताजारे
तिण परै सहर खाली हुयो बसेजाय भिनमाल लग
अनरथ हुयो गुरु कहे अनम भूख मरे भूखा जिनग।।१०।।

तद कहियो रिखराज याद गुर मेट किया किम
तिण तीतागो कियो तिका सह पाप लगो तुम
अबे हुवे वा बंस जिकां मत्रोज दिवाड़ो
बै देवे आशीष उदोतद होय तुमारा
आणियां विप्र वोहो कर अरज पगे लाग परचानिया
आविया के क गुरु आगलाके नह चैन ह आनिया

आविया गुरु अगल नृपत कर जोर कह्यो बल
थे म्हारा पुजनीक आद नमत णीर ची इल
होणहार आ हुई लीह भवतणी लुपाणी
हमैं पलट सीध्यांह तिकां सह पाप लगाणी
दै वचन बीच सचियाय देब्रम भोजन मन भावीया
ओयसां हूँत भिनमाल में महपत विप्र मनाविया।।१२।।

दीध गुरां गोंहली दीद देवां ची सेवा
दिये लाग व्याहरा पुत्र पुत्री परणेवा
उत्तम दान आचार तार दाता रे तरणां
इण विध सूंई सवर किया सेवग पोकरणां
उपलदे राव अवसर तणें साख अठारे सहत सख
ओयेसा थी उँटले बसे जाय भिनमाल बख।।१३।।

विरधमान जिण पछे बरस बावन पद लीधो
सिरी रतन प्रभु सूर नाम सत गुर भो दीधो
संवत इक उगणीस नगर ओयसां आये
प्रतभोधे चामंड नाम साचलता पाये
सहस चोरासी तीन लाक राजपुत्र परबोदीया
इम भीनमाल पुर ओयसां ओसवाल थिर थप्पिया।।१४।।

भिन्नमाल थी उचल जाय ओयेसां बसाणां
छत्री आ रै बंस उठे उसवाल कहाणां
गयो राज धर गई प्थी पलटी पम्मारां
उपल दे हुय असत सत साचल सु पियारां
गुर हुवे रतन प्रभु अकल गमभड कै भूपत भूविनां
पोकरणां सेबग तद हुबा ओसवाल तद अपनां।।१५।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रथम साख पम्मार सीक सीसोद सिंघाला
रणथंभ रा गेड़वसू चहुआण बडाला
सोलंकी सांखला बरल पडियारं बोराण
दस्या भाटी सोट मोयला गोयल मकवाणा
कछवाह गोरम कडबड किता लहता पटा जु लाखरा
हेक दिन इता मीलन हुआ सूर बड़ा भड़ साखरा।।१६।।

उक्त पद्य अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। 'ओयसा के राजा उपलदेव को रत्नप्रभ सूरि ने जैन धर्म अंगीकार करवाया'—यह तो मूल स्वर है ही, "रत्न प्रभ सूरि भगवान् महावीर के निर्वाण से बावन वर्ष उपरांत सूरि पदासीन हुए"—यह भी पूर्वस्थापनाओं से मिलता है, किन्तु 'वे संवत् ११९ में ओयसा पधारे'—यह स्थापना सर्वथा नवीन है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि भगवान ने ३० वर्ष की वय में दीक्षा ग्रहण की थी । इस दिव्य मुहूर्त से भगवान के कुल भ्राता राजा नन्दि वर्धन ने भगवान के दीक्षांत समारोह को भव्यता प्रदान करने के लिये एक संवत का प्रचलन किया। दीक्षा समय से ४२ वर्ष उपरांत भगवान का निर्वाण हुआ। भगवान के निर्वाण से ५२ वर्ष पश्चात् यानि नन्दिवर्धन संवत् ९४ में आचार्य रत्न प्रभ सूरि पदासीन हुए एवं ७७ वर्ष पश्चात् यानि नन्दि वर्धन संवत् ११९ में ओसिया पधारे। यह स्थापना अनेक गुटको के 'बीये बाईसे' वाली उक्ति से मेल नहीं खाती किन्तु जैन ग्रन्थों के "वीरात् ७० वर्षे ओस वंश स्थापना" से काफी मेल खाती है।

'संवत् ११९' की मान्यता को पुष्ट करने वाला एक ग्रंथ/गुटका श्री 'अभय जैन ग्रन्थालय' के हस्तलिखित ग्रंथ भण्डार में भी उपलब्ध है। संवत् १८३५में लिखित इस ग्रन्थ (क्रमांक ५०१) में वर्णित कवित्त इस प्रकार हैं:

अथ उसवालां री उतपत रा कवित्त

श्रावण पष्प (पख) सितात संवत एकै उगणीसै
अरकवार आविम्म उस वंस लओ उदेसै
प्रतिबोधियो परमार उपल जैन धर्म में आयो
प्रथम गौत सौ पांच बावन जिणेसर बंधायो
मणत्रि जनोई असग मिले उतारीयां
भोजन जिमामें थिपे भोजगां करथित आरंभकारीयां।।१।।

घरि घरि रिष फिर गयो पवित्र आहार न पायो
विप्र एक तिण वार वचन इसै बतलायो
हो रिष झोली हाथ मेल कर काम हमारो कहीय
उण ईण कीयो विप्र पात श्राध दिहा यो, बेहराय
भोजन खीर खांड लायो सीक गुरु ले अगल
गुरुकहीयो बार लागी घणी सीख कहीयो कारण सकल।।२।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सीष मुख व्रितान्त सुणि रिषि सहैरं सुंरीसाए
पीयण साप करे प्रगट मेहेल कुँअर रे मेलाए
पीयण सास पीयंते कुँअर चेतना न काई
नहीं सास बेशास सांग हुए राय चिंताई
हाहाकार सैहैर कुँअर मोत हुई सुनी दागदी
अणमिल सब सनी परपंच कर पोरवछंडै मारग रहै ऊ भोसुनो।।३।।

सीष मुख ब्रितंत सुणी भरम राजा भलाणौ
कवण नाम गुंर कठे थैसो वाण ठिकाणौ
उठो डांड गुर उठै कुँअर ले पारो
आय वांदे की अरज शांह मो कारज सारो
सीष कहै विप्र राज रै ईधकारी बैगुर अन्तम
जे करे कुँवर ने जीवते पोह पु बै तिहाने प्रणाम।।४।।

नृप हर वैगुर विप्रां कुँवरजी वैं को कारणे
उषध मन्त्र उपचार विप्रे बोह कीआ विचारण
पिण गुण न होई ली गार रिष कहीयो सुणं राजा
कुँ जीवाऊ कुँअर कऊँ सो करसो काजा
रिष कहे राज ईम अनुष्ठै कहो राज सो म्हे कहां
नृप या पुत्र काजनृका वचन मोत अधवी सौ हमरां।।५।।

उक्त पद्यों में 'संवत एकै उगणीसै' में ओस वंस की स्थापना का स्पष्ट उल्लेख है। बाकी कथा अन्य गुटकों के कथानक से मिलती है। कवित्त अधूरा प्रतीत होता है। कवित्त के नीचे 'सं० १८३५ रा वर्षे श्रेय' लिखा हुआ है।

केलड़ी मन्दिर ग्रन्थागार का गुटका

केलड़ी मन्दिर के ग्रन्थ भंडार में एक हस्तलिखित ग्रंथ/गुटका संग्रहित है। 'ओस वंश उत्पत्ति' नामक इस ग्रन्थ क्रमाक १२७५ से भी 'संवत ऐके उगणीसे' में ओसवंश स्थापना की पुष्टि होती है। इसके पहले पाँच कवित्त एशियाटिक सोसायटी के गुटका नं० १ साधु बाला राम लिखित छन्दों के समान हैं । बाद के १३ पद अभय ग्रन्थालय के ग्रन्थ क्रमांक ७७६५ के पहले तेरह पदों के समान हैं । इनमें श्रीमाल नगर के परमार राजा देसल दे, उनके पुत्र उपल एवं सेठ उहड़-रुहड़ की कथा दी है। बाद के पाँच कवित्त जिनमें परमार उपल का संवत् एके उगणीसे में भगवान महावीर के निर्वाण से ५२ वर्ष बाद सूरि पदारूढ़ श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा १८ वर्ष पश्चाते (यानि भ० महावीर के निर्वाण से ७०वें वर्ष में) प्रतिबोधित हो जैन धर्म अंगीकार करना एवं ओस वंश की स्थापना और उसके प्रथम १८ गोत्रों का निर्माण वर्णित है। ये पाँचों कवित्त निम्न है :

खत्री साख अठार तिके ओसवाल कहवाणां
गयो राज धरती गई पृष्वी पलटी परमारां

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साची आई सचीयाय रायमन सोचे विचारां
एक लाख चौरासी सहस घर राज सुली प्रतीबोधिया
श्री रत्न प्रभ सूर भीनमाल में ओसवाल थिरथपीया।।१९।।

श्रावण पख सितात संवत ऐके उगणीसे
अर्कवार आठम ओस वंस हुवा उपदेसे
प्रतिबोध्या परमार उपल जिण धरम में आयो
प्रथम गोत्र सो पांच बावन जिनेसर बँधायो
मण त्रण जनोई ब्राह्मणां असंग मिली ने उतारीया
भोजन जिमाय ने भोजगां धर करकथ आरम्भकीया

प्रथम गोत्र सो पांच प्रथम साखां परमारां
साख सीसोदिया सांखला रिणथंभनेरा बोद।।२०।।
बसी चहुआण वडाला सोलंकी ने सांखला
बुरबकीयार बोरांणा दईया भाटी सोढ़
मोहल गोहल मकहवाणा कछवाहा ने गोद खरपद
कथा लेता पटा जलाखरा
एक दिन इतरा महाजन हुआ सूरा पूरा खत्री सुधसाखरा।।२१।।

वरधमान जिन थकी बरस बावन पद लिधो
श्री श्री रतन प्रभ सूर नाम श्री सद्गुरुजी दीधो
ताहु अठ दस बरस नगर ओसीया आया
प्रतिवोध्या मात चामुंड नाम साचल दे पाया
त्रण लाख चौरासी सहस घर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रत्न प्रभू सूर ओसीया नगर ओसवाल तिहाँथापिया।।२२।।

प्रथम गोत्र तातेड़ प्रगट, बुबकीया बापणा बहादुर
कहे तीजा करणाट बलही ते रीया खांप सुहखर
कुलहट भीरहट सिखा श्री श्री माल बखाणा
सासह सचेता सबघर प्रत्यरु सचियाय पुरांणी
आदितयनाग गोत्र भर भाई वलचचेटी
कुंभट ने कनोजीया डीडू लघु श्रेष्ठ
ओसीया नगर ओसवाल तिहाँ थापीया।।२३।।

समस्त उपलब्ध छन्दों पर विहंगम दृष्टि डालने से इतना तो स्पष्ट है कि ओस वंश की स्थापना रत्नप्रभ सूरि नामक आचार्य ने की। ये रत्नप्रभ सूरि भगवान् महावीर के निर्वाण से ५२ वर्ष पश्चात् आचार्य पदासीन हुए। १८ वर्ष अनन्तर उन्होंने ओसिया के राजा उपल देव को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया एवं ओसवाल जाति की स्थापना की। रत्न प्रभ सूरि वीर निर्वाण से ८४ वें वर्ष में स्वर्गस्थ हुए । इन १४ वर्षों में उन्होंने ओसवालों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के अनेक गोत्रों की स्थापना की। उन्होंने जिन प्रथम गोत्रों की स्थापना की, वे राजपूत जाति के ८ वीं ९ वीं शताब्दी में प्रचलित चौहान, पड़िहार आदि गोत्र नहीं थे। अधिकांश छन्दों में स्थापना काल वीर निर्वाण से ७० वर्ष उपरान्त के साथ ही एकै उगणीसे या वीये बाईसे का भी उल्लेख है। इन्हें नन्दिवर्धन संवत् माना जाय तो 'एकै उगणीसे' वाली उक्ति शास्त्रीय मान्यता से मेल खाती एवं युक्ति युक्त प्रतीत होती है।

निर्विवाद रूप से ये सभी छन्द १७ वीं से २० वीं सदी के बीच लोकगायको—भाटों चारणों या भोजकों द्वारा प्रशस्ति स्वरूप रचित हैं। भारत के इतिहास में विभिन्न शासकों द्वारा समय-समय पर विभिन्न संवतों का प्रर्वतन किये जाने के भी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। अस्तु, स्थापना काल के निर्णय हेतु इन्हें निर्णायक न मान कर सहायक ही मानना उचित होगा।

ये सभी गुटके, छन्द एवं कवित्त इस तथ्य को उजागर करते हैं कि ओसवाल वंश के आदि पुरुष भिन्नमाल के क्षत्रिय राजकुमार उत्पलदेव थे, जिन्होंने ओसिया बसायी। भिन्नमाल के राजा का यानि उत्पलदेव के पिता का नाम कहीं 'भीमसेन' दिया गया है, कहीं देशल दे। भिन्नमाल के मंत्री-श्रेष्ठि एवं ओसिया बसाने में उत्पलदेव के सहयोगी मित्र का नाम प्रायः सभी गुटकों/कवित्तों में 'ऊहड़' दिया गया है। कुछ छन्दों में उत्पलदेव को 'परमार' अवश्य बताया गया है। 'बीये बाईसे' 'देशलदे' एवं 'परमार' ये तीनों शब्द अनेक वर्षों बाद हुए ओसवाल श्रेष्ठियों से सम्बन्धित रहे हों एवं उनकी जहलौ-जलाली की प्रशस्तियों से जुड़े होने के कारण भाटों एवं भोजकों के कवित्तों में आ गये हों—यह बहुत सम्भव है। विक्रम संवत् २२२ में आभा नगरी का देशल सुत जग्गा शाह बहुत बड़ा धनपति हुआ, जिसकी दानवीरता जग प्रसिद्ध थी। भाट/चारणों ने उसकी प्रशस्ति में सैकड़ों छन्द बनाए। इसी तरह ८वीं/९वीं शताब्दी के बाद परमार राजपूत कुल के अनेक सामन्तों/शासकों को जैनाचार्यों ने प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार कराया एवं ओसवाल महाजन जाति में सम्मिलित कर उनके वंशजों के विभिन्न गोत्र स्थापित किए। कालान्तर में हो सकता है इसी भ्रमवशात् १७ वीं से २० वीं सदी के बीच रचे या लिखे गये कवित्तों एवं छन्दों में ये शब्द स्थान पा गये हों। वैसे भी विभिन्न कवित्तों एवं छन्दों में इस महान देश के कोस कोस पर बदलती भाषा और लिपि का अन्तर एवं लिपि बद्ध करने वाले व्यक्ति की व्यक्तिशः त्रुटियाँ हर कहीं दृष्टिगोचर होती हैं।

बही भाटों/चारणों द्वारा वर्णित उत्पत्ति-कथानक

राजस्थान के सभी प्रदेशों में बही भाटों द्वारा प्रमुख महाजन गोत्रों की वंशावलियाँ बहियों में अंकित की जाती रही हैं। समय-समय पर ये बही भाट दान-दाताओं की प्रशस्ति में अनेक दोहे और कवित्त उन वंशावलियों में जोड़ते रहते हैं। समय समय पर श्रेष्ठि परिवारों के बीच वे इन वंशावलियों का वाचन करते रहते हैं। वंशावलियां सुनाने के पूर्व बही भाट ओसवाल वंश की स्थापना-कथा भी विस्तार से सुनाता है। एक समय ऐसे बही भाटों को सभी महाजन प्रश्रय देते थे। बड़े-बड़े धनाढ्य श्रेष्ठियों के आश्रय में भाटों की कई पीढ़ियाँ जीवन यापन करती थीं। पूरे गाँव भाटों से भरे होते थे। किन्तु अब न तो ऐसे आश्रय दाता श्रेष्ठि ही रहे,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

न सीमित साधनों एवं दान पर गुजर-बसर करने वाले लोग ही। भाटों ने भी समय के साथ पुश्तैनी गायकी/वाचन छोड़कर दूसरे धन्धे अपना लिए। अब बही भाटों के कभी-कभार ही दर्शन होते हैं।

बही भाटों द्वारा राजस्थानी भाषा में वर्णित ओसवाल जाति की उत्पत्ति-कथा का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:

आबू पर्वत पर यज्ञ के अग्नि कुण्ड से चार क्षत्रिय वीर प्रकट हुए। उनसे क्रमशः चौहान, परमार, पड़िहार एवं सोलंकी राजकुलों का प्रवर्त्तन हुआ। परमार राजा के वंशज धाँधू जी जूनागढ़ (बाड़मेर के पास) के शासक थे। उनकी दो रानियाँ थीं। पहली रावरानी (पटरानी) माधो सिंह जी सोलंकी की कन्या थी और दूसरी रानी भाटी सामंत जोगीदास जी की कन्या थी। पहली रानी से दो सन्तानें हुई—उपलदेव और जोगा कवँर बाई। दूसरी रानी से भीदो सन्तानें हुईं—काँध राव और साँत राव। उपलदेव युवा हुए तो उनका विवाह कछवाहा क्षत्रिय कुल की कन्या से कर दिया गया।

एक बार युवराज उपलदेव अपने मित्रों सहित सैर करने निकले। रास्ते में मिट्टी के बर्तन लिए पानी भर कर आती हुए पनिहारिने मिलीं। राजकुमार को चुहल सूझी। यह कह कर कि हमारे राज्य में मिट्टी के घड़ों का क्या काम, सब बर्तन फोड़ दिये। पनिहारिनों के अंगवस्त्र भींग गये । उन्होंने घर जाकर शिकायत की। जहाँ बहन-बेटियों की इज्जत नहीं, उस राज्य में नहीं रहा जा सकता—सोच कर बड़े-बूढ़े नगर छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए तैयार हो गये। बात राजा के कानों तक पहुँची। राजा ने उन्हें बुला भेज़ा। कुँअर की अनीति फिर न होने देने का आश्वासन दिया। नए धातु के घड़े राज्य के खजाने से देकर विदा किया। उपलदेव और उसके साथियों ने ऐसी ही चुहल दूसरे दिन राजपुरोहित की कन्या से की। उसका मिट्टी का घड़ा भी फोड़ दिया। राजपुरोहितों ने भी राज्य से अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया । राजा को पता चला—उन्होंने पुरोहित को बुला कर शिकायत सुनी और राजकुमार को 'देश-निकाला' का हुक्म दे दिया। उपलदेव काली घोड़ी पर सवार हो १२ वर्ष के लिए 'देश निकाला' पर चल दिए। उनके संगी साथी, उनके परिवार के लोग एवं कुँअरानी भी उसके साथ हो लीं। तीन सौ गाड़ियों का यह काफिला ओसिया पहुँचा। उस रात उपलदेव को सपने में कुल देवी ने 'परचा' दिया—"यह जगह मत छोड़ना—यही नगर बसाओ। पानी की समस्या का हल पलंग के नीचे राजा सगर का बँधाया हुआ कुँआ है। ६० कदम उत्तर में खोदने से माया से भरे ९९ चरू (धातु के बड़े बर्तन) मिलेंगे।" सुबह आँख खुलते ही राजकुमार के ललाट पर केसर का एवं अन्य साथियों के ललाट पर कुँकुम का तिलक देख कर उपलदेव को कुल देवी के 'परचे' का विश्वास हो गया। पलंग के नीचे खुदाई शुरू की। कुआँ मिला। पानी चखा तो 'खारा' निकला। दूसरी रात राजकुमार को कुलदेवी ने फिर परचा दिया- 'देवी का चढावा नहीं किया, इसलिए पानी खारा निकला। अब चढ़ावा कर देना—पानी मीठा हो जाएगा। पाँच दस सरदारों के साथ घोड़ी पर दिन भर में जितने गाँव घेर सको, वहाँ तक तुम्हारा राज्य होगा। पहले देवी का मन्दिर बनाना, फिर अपना महल।" उपलदेव

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने वैसा ही किया। सर्व प्रथम देवी का मंदिर बनवाया—देवी ने सच्चा 'परचा' दिया इस लिए 'सचिया माता' कहलाई।

इस बही भाट के अनुसार उपलदेव ने संवत् १८४ में सचिया माता के मन्दिर की नींव रखी। बारह साल में मन्दिर बनकर तैयार हुआ। आगे की कथा इस प्रकार है :

बारह बरस के देस निकाला की अवधि व्यतीत हुई तो उपलदेव माता-पिता के दर्शनार्थ चले। उन्होंने एक और विवाह ओसिया में किया था—दोनों 'कुवराण्या' साथ चलीं। 'कांकड' (सीमा) पर पड़ाव डालकर कासीद को संवाद देने भेजा। छोटी रानी ने संवाद सुना तो सोचा-'राज्य का पट्टधर उपलदेव है—जूनागढ़ और ओसिया—दोनों ही जगह उसी का राज्य होगा—मेरे बेटों को कुछ नहीं मिलेगा।' छोटी रानी ने उपलदेव को खत्म करने का षडयंत्र रचा। 'मिनखमारों' (जल्लाद) को बुलाकर समझा दिया। राजा से एक दिन का शासन मांग लिया और पहरेदारों को हुक्म दे दिया—कोई शस्त्र लिए महल में न जाने पाये। पहरेदारों ने उपलदेव से शस्त्र बाहर रखवा लिए। उपलदेव ज्यों ही मन्दिर में घुसे, मिनखमारों ने तलवार से सिर काट लिया।

उधर उपलदेव की 'कुवराण्या' को सत उठा—लाज शरम छोड़कर रथ से नीचे उतर गयी। जलते अंगारे हाथ में लेकर सत की परीक्षा दी और श्राप दिया—'धांधूजी री दूसरी राणी से जाएडां रो वंश मत चालज्यो, राज मत रहीज्यो, भायां मे प्रेम मत रहीज्यो।' वैसा ही हुआ। काँधराव पर राठोड़ों ने हमला कर राज्य छीन लिया।

उपलदेव की दोनों पत्नियों ने सती होने (उपलदेव की लाश के साथ जलने) का निश्चय किया। किन्तु छोटी गर्भवती थी, अतः सती नहीं हो पाई। ओसिया आकर उसने एक बच्चे को जन्म दिया। उसका नाम भगवान सिंह रखा गया। कुछ वर्ष पश्चात् रत्न सूरी जी महाराज ओसिया आए। वे पूरे चौमासे मास-खमण-साधना रत रहे। शिष्य को कहीं गोचरी नहीं मिलती थी। अन्त में शिष्य एक सुथार के घर पहुँचा—बताया सिंध से आये है और कच्छ जा रहे हैं। सुथार ने दया कर गोचरी दे दी। शिष्य जब दूसरे दिन भी गोचरी लेने आया तो सुथार ने हाथ में कुल्हाड़ी पकड़ा दी—जंगल से सूखी लकड़ी काटकर लाने के लिए। इस तरह चार मास किसी तरह बीते। गुरु ने साधना पूरी की—शिष्य को कमजोर पाकर कारण पूछा। शिष्य ने सारा वृत्तांत कह डाला। गुरुजी को क्रोध आ गया। उन्होंने तपोबल से नगर को ही नष्ट करने की ठानी। शिष्य की सलाह पर गुरु जी ने धर्म की प्रभावना के लिए एक दूसरा रास्ता अपनाया। रूई की पूणी को मंत्रबल से सर्प बनाकर राजा पर छोड़ दिया। सर्प ने नाबालिग भगवान सिंह को डस लिया। लोग जब 'बेकुंठी' बनाकर श्मशान ले जा रहे थे तो शिष्य ने उन्हें रास्ते में ही रोक लिया और गुरु के पास ले आया। बारह सामन्तों ने गुरु से बालक भगवान

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिंह को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। गुरु जी ने वचन लेकर उसे मंत्रबल से जीवित कर दिया। सामन्तों और भगवानसिंह ने तत्काल शिव-धर्म छोड़कर जैनधर्म अंगीकार किया।

बही भाटों के अनुसार यह परिवर्तन संवत् बीये बाइसे श्रावण सुदी ८ गुरुवार को हुआ। उन तेरह व्यक्तियों के वंशजों से १३ गोत्र हुए- तातेड़, बाफणा, सामसुखा, बेद, बोरड़, बांठिया, मिनी, संकलेचा, सुरेश गोता, आरा, झाबक, देशवाल, लूंकड़।

भगवान सिंह एवं अन्य सामंतों ने हिंसा का परित्याग कर दिया। परन्तु सचिया माता को दो बकरों का चढ़ावा अनिवार्य था। गुरु ने उस समस्या का भार अपने ऊपर लिया। तीन दिन तक पूजा नहीं हुई तो देवी क्रुद्ध हो गयीं—गुरु के पास आई। गुरु के पूछने पर देवी ने महाभोग (बकरों की बली) इशारे से बताया—खड़को, भड़को और डेरो। गुरु ने फतवा दिया—'खाजा रो करो खड़को, खोपरा रो भड़को और मीठी लापसी रो डेरो।' तब से खाजा, नारियल और लापसी ही देवी का चढ़ावा है। देवी ने इसे छल समझ कर श्राप दिया—'तीन दिन में गाँव खाली कर दो।' भगवान सिंह जी ओसिया छोड़कर सांडवा जा बसे और वहाँ कामदार बन गये।

भगवान सिंह का लड़का लाभराज सोजत जाकर बसा। वहाँ के नवाब की बेगम सुलमा का धर्म-भाई बना। एक बार सुलमा की आँखों में पीड़ा हुई। हकीमों की दवा से फायदा न हुआ तो भाई को बुलवाया। भाई पूजा में बैठा था—पूजा में विघ्न होने से क्रोध में कह दिया—'आँख में आक का दूध और बालू रेत डाल दो।' इससे तो आँखें फूट जानी चाहिए थी परन्तु देवी ने चमत्कार किया—सुलमा की आँखें ठीक हो गयीं। तब से सारा गाँव लाभराज को वैद्य समझकर उसके पास आने लगा। इस तरह उसके वंशजों का 'वैद' गोत्र हुआ।

उपरोक्त कथा मात्र दंतकथा नहीं कही जा सकती। प्रथमतः इसका आधार जनश्रुति है। यह भाटों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामान्य हेरफेर से कही जाती रही है। द्वितीयतः इसे अपरोक्षतः भारत भर के ओसवालों की मान्यता प्राप्त है। तृतीयतः इसके कथानक तथा ग्रन्थागारों में उपलब्ध गुटकों/कवित्तों के कथानक एवं शास्त्रों में वर्णित कथानक में बड़ा साम्य है। ओसिया के संस्थापक क्षत्रिय राजकुमार उपलदेव थे। जैनाचार्य रत्नप्रभ सूरी ने प्रतिबोध देकर उनके वंशजों को जैन धर्म अंगीकार करवाया एवं उनके वंशज ओसवाल कहलाए—ये तत्त्व सभी में समान हैं।

इस कथा के दो तत्त्व सर्वथा नवीन हैं : एक तो यह कि आचार्य रत्नप्रभ सूरि के प्रतिबोध से जैनधर्म अंगीकार करने वाला उपलदेव नहीं, वरन् उसका पुत्र भगवान सिंह था। दूसरा यह कि उपलदेव ने ओसिया संवत् १८४ के आस पास बसाई एवं भगवान सिंह संवत् २२२ में जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल बने। ये दोनों तत्त्व गुटकों एवं शास्त्रों में वर्णित तथ्यों के विपरीत फिर भी नहीं हैं। भगवान सिंह भी उपलदेव के ही पुत्र थे अतः उपलदेव को ओसवालों का आदिपुरुष कहना उचित कहा जा सकता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

समय-समय पर विभिन्न संवतों के प्रवर्तन के कारण आचार्य रत्नप्रभ सूरि के भगवान महावीर के निर्वाणोपरांत बावनवें वर्ष में आचार्य-पदासीन होने एवं १८ वर्ष बाद ओसिया में उपलदेव को प्रतिबोध देकर जैन एवं ओसवाल बनाने की शास्त्रीय मान्यता को चुनौती भी नहीं दी जा सकती।

बहीं भाट कथा के कुछ पक्ष सर्वथा नवीन हैं। कवित्तों, गुटकों में उपलदेव के भिन्नमाल छोड़ने का कारण मित्र ऊहड़ की भावज के उपालम्भ को बताया गया है परन्तु भाट कथा में पनघट की चुहल की वजह से दिए गये 'देश-निकाला' को उपलदेव के जूनागढ़ (बाड़मेर) छोड़ने का हेतु माना गया है। यह लोक प्रिय वैष्णव-कृष्ण-कथा का प्रभाव भी हो सकता है। यह भावज के उलाहने से अधिक वजनी भी है। बही भाट कथा का एक और पक्ष है—छोटी रानी द्वारा उपलदेव को षडयंत्र कर मरवा डालने का कथानक। इससे संवत् १८४ में उपलदेव के ओसिया बसाने एवं संवत् २२२ में उनके वंशज का जैन धर्म अंगीकार करने का अंतराल आसानी से पूरा हो जाता है। इस संवत् को नन्दिवर्धन का संवत् माने या विक्रम संवत् या कोई अन्य—यह और बात है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

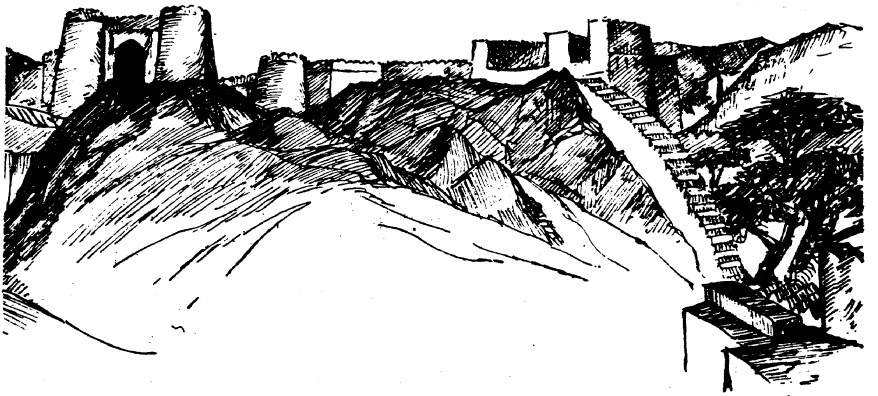

अध्याय

चतुर्थ

ओसवालों की उत्पत्ति का काल-निर्णय

मूल ओसवाल वंश की उत्पत्ति-काल का निर्णय करना, जितना आवश्यक है उतना ही जटिल भी। काल के गर्भ में छिपे इस रहस्य का अनावरण बीसवीं सदी के इतिहास एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिए एक चुनौती रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर समस्त शोध-विवरणों की समीक्षा यहाँ समीचीन है।

भाट एवं चारणों द्वारा रचित गुटकों, छन्दों, कवित्तों एवं बही भाटों के वर्णन, पुरातत्त्व सम्बन्धी शिलालेखों और जैन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की पट्टावलियों एवं धर्म-ग्रन्थों में वर्णित ऐतिहासिक सामग्री के परिप्रेक्ष्य में इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन मत हैं।

पहला मत : 'भाटों का कथन-सम्वत् बीये बाईसे'

अधिकांश भाट भोजक, सेवग आदि ओसवालों की उत्पत्ति सम्वत् २२२ में मानते हैं। जाति भास्कर, जाति अन्वेषण, जाति विलास आदि जैनेतर ग्रन्थों में भी "ओसवाल 'बीये बाईसे' में हुए"—लिखा है। ग्रन्थागारों में उपलब्ध अनेक गुटकों, कवित्तों एवं बही भाटों के वर्णन का विस्तृत ब्यौरा पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। काल निर्णय की दृष्टि से उपलब्ध गुटकों, कवित्तों की समीक्षा :

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संदर्भ	राजा का नाम	मन्त्री का नाम	संस्थापक	सूरि-पदासीन	ओसवाल जाति की स्थापना
नाहर ग्रन्थागार					
१ कवित्त	उपल	उहड़	---	---	---
२ भोजको के दफ्तर	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	---	संवत् २२२
एशियाटिक सेसाइटी					
३ ओसवालों की उत्पत	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	वीरात् ७० वर्ष संवत् २२२
४ साधु बालाराम	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	वीरात् ७० वर्ष संवत् २२२
५ सेवग सुखराम	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	वीरात् ७० वर्ष संवत् २२२
राजस्थान प्राच्यविद्या					
६ ग्रंथ ६५५	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	पीढ़ी बारमी	सूरि पद से १८ वर्ष पश्चात् संवत् २२२
७ ग्रंथ ११३३४	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	पीढ़ी बारे	सूरि पद से १८ वर्ष पश्चात् संवत् २२२
मोहनलाल देसाई		---	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ६८ या ५२ वर्ष	--- ---
अभय ग्रंथालय					
९ ग्रंथ ६४८	---	---	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	वीरात् ७० वर्ष
१० ग्रंथ ७७६५	उपल	---	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	सेवत् ११९
११ ग्रंथ ५०१	उपल	---	---	---	संवत् ११९
केलाड़ी मन्दिर ग्रंथागार					
१२ ग्रंथ-१२७५	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	संवत् ११९ वीरात् ७० वर्ष
केशरिया नाथ मन्दिर					
१३ ग्रंथ-२९।५७	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	संवत् २२२
१४ ग्रंथ-२२	उपल	उहड़	रत्नप्रभसूरि	वीरात् ५२ वर्ष	संवत् २२२
बही भाट	उपलदेव का पुत्र भगवान	---	रत्नप्रभसूरि	---	संवत् २२२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भाटों, भोजकों, सेवगों आदि के कवित्तों/छन्दों में एक स्वर से उपलदेव को ओसवालों का आदि पुरुष माना गया है। मंत्री या मित्र उहड़ का नाम कुछ में है, कुछ में नहीं। उन्हें प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाने वाले जैनाचार्य का नाम श्री रत्न प्रभ सूरि सभी में एक सा है। अधिकांश छन्दों के अनुसार भगवान् महावीर के निर्वाण वर्ष पश्चात् श्री रत्नप्रभ सूरि आचार्य पदासीन हुए। इस सन्दर्भ में जिन गुटकों में 'पीढी बारमी' लिखा मिला है, उनके दूसरे पद में 'तास आठ दस बरस नगर ओयसा आए' सबमें प्रायः समान है। अतः 'पीढ़ी बारमी' 'पाट बावने' का ही रूपान्तर लगता है। अधिकांश कवित्तों/छन्दों में ओसवाल जाति का स्थापना समय 'वीर निर्वाण के ७० वर्ष पश्चात्' ही दिया है। साथ ही संवत बीये बाइसे का उल्लेख भी प्रायः सभी में समान मिलता है। अवश्य ही 'वीरात् ७० वर्ष' बीये बाईसे को ही कहने का दूसरा ढंग लगता है।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि किसी गुटके या छन्द में 'संवत् वीये बाईसे' के साथ 'विक्रम' शब्द नहीं मिलता। अतः बहुत सम्भव है 'वीये बाईसे' विक्रम संवत् न होकर अन्य कोई संवत् हो। क्योंकि संवत् ८९८ से पूर्व कहीं भी किसी संवत् के आगे 'विक्रम' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। भारतवर्ष में समय समय पर अनेक संवतों का प्रवर्तन हुआ है। भगवान् महावीर के भ्राता नन्दिवर्धन ने भगवान के दीक्षा समय से एक संवत् का प्रवर्तन किया, जो नन्दिवर्धन संवत् कहलाता है। भगवान ने तीस वर्ष की वय में दीक्षा ली एवं बहत्तर वर्ष की वय में निर्वाण को प्रप्त हुए। भगवान के निर्वाण समय से प्रवर्तित संवत् 'वीर संवत्' कहलाता है। भगवान के निर्वाण से ४७० वर्ष पश्चात् सम्राट् विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। इस तरह 'विक्रम संवत् २२२' और 'वीराते ७० वर्षे' के बीच ६२२ वर्षों का अन्तराल है। ईस्वी सन् विक्रम संवत् से ५७ वर्ष बाद एवं दक्षिणी भारत के महाराजा शालिवाहन का शक संवत् १३५ वर्ष बाद प्रवर्तित हुआ। गुप्त संवत् विक्रम से ३७६ वर्ष बाद प्रचलित हुआ। अस्तु २२२ को ईस्वी या शक या गुप्त संवत् माने तो यह अन्तराल और भी बढ़ जाता है।

'संवत् २२२' और 'वीरात ७० वर्षे' के समन्वित रूप में सबसे कम अन्तराल उसे नन्दिवर्धन का संवत मानने से रहता है। यति रामलाल जी ने अपने ग्रन्थ 'महाजन वंश मुक्तावली' में 'बीये बाईसे' से भाट कथानक की समालोचना करते हुए लिखा है कि "भाटों का बीये बाईसे विक्रम संवत् नहीं, नन्दिवर्धन का संवत्सर है।" 'वीरात् ७० वर्षे' वाली उक्ति को सही माने तो उस समय (४२+७०) ११२ नन्दि संवत्सर आता है। फिर भी यह 'बीये बाईसे' से पूर्णतया मेल नहीं खाता।

भाटों के कुछ कवित्तों (अभय ग्रंथालय के ग्रंथ क्रमांक ७७६५ एवं ५०१) केलड़ी मन्दिर ग्रन्थागार के क्रमांक १२७५ में संवत् ११९ का उल्लेख नन्दिवर्धन संवत् ११२ के निकटतम है, जो वीरात् ७० वर्षे वाली उक्ति से भी मेल खाता है अतः सर्वाधिक सही प्रतीत होता है। 'संवत् ११९' की उक्ति के साथ ही इन पद्यों में 'जैनाचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि के वीरात्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

५२ वर्षे आचार्य' पदासीन होने एवं १८ वर्ष पश्चात् ओसिया में ओस वंश की स्थापना करने का उल्लेख उन्हें और अधिक प्रमाणिकता प्रदान करता है।

भाटों की इस मान्यता की पुष्टि जैन व जैनेतर ग्रंथों के ओसवाल जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी तीसरे मत से होती है, जिसमें एक स्वर से इस जाति के वीरात् ७०वें वर्ष में संस्थापित होने का स्पष्ट उल्लेख हे। उसकी चर्चा हम आगे करेंगे। नववीं/दसवीं सदी में ओसवालों की उत्पत्ति मानने वाले पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं इतिहासकारों के विरुद्ध यह बहुत बड़ा साक्ष्य है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी भाट, भोजकों एवं सेवगों के मुँह से दोहराया जाता रहा है एवं उनकी पुश्तैनी बहियों से प्रमाणित होता है।

'बीये बाईसे' का जग्गा शाह

भाटों/चारणों से एक और लोकप्रिय कवित्त बहुधा सुनने को मिलता है, जो ओसवाल-भूषण शाह जग्गा की प्रशस्ति में कहा गया है। यह कवित्त इस प्रकार है:

आभा नगरी थी आव्यो, जगो जग में भाण।
साचल परचों जब दियो, तब सीस चढ़ाई आण।
जुग जिमाईयो जुगत सूं दीनों दान प्रमाण।
देशल सुत जग दीपतो ज्यारीं दुनिया माने आण।
छूप धरी चित भूप सेना ले आगल चाले।
अड़ब पति अपार, खड़ब पति मिल्या माले।
देरासर बहु साथ खरच, सामो सुण भाले।
घन गरजे बरसे नहीं, जगो जुग बरसे अकाले।
यति सती साथे घणा, राजा राणावड़ भूप।
बोले भाट विरुदावली, चारण कविता चूप।
जग जस लीनो दान दे, यों जग्गो संघपति भूप।
मिलिया सेवग सांमठा, पूरे सक्ख अनूप।
दान दिया लख गाय, लख वलि तुरंग तेजाला।
सोनो सौ मण सात सहस मोतियन की माला।
रूपा नो नहीं पार सहस करहा कर माला।
बीये बावीसे भल जागियो यो ओसवाल भूपाला।।

ओसवाल श्रेष्ठि जग्गा शाह की प्रशस्ति मे कहे गये ऐसे अनेक कवित्त उपलब्ध हैं, जो भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा रचित है।

जग्गा शाह आभानगरी का रहने वाला था। संवत् २२२ में उसने संघ निकाल कर जैन तीर्थों की यात्रा की। इस संघ में अनेकों राजा, महाराजा, कोट्याधीश एवं यती-सती शामिल थे। अपनी प्रसिद्धि के अनुरूप उसने दान दक्षिणा दी। एक लाख गाय, एक लाख घोड़े, सौ मन सोना, सात सहस्र मोती-मालाएँ एवं अपार चाँदी खरच कर वह संघपति कहलाया। ऐसे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मरुस्थलवासियों के लिए जहाँ बादल भी गरज कर चले जाते हैं, शाह जग्गा अकाल-मेघ के समान जीवनदाता था। इसी ओसवाल श्रेष्ठि देशल सुत जग्गा शाह की प्रशस्ति में उक्त कवित्त कहा गया है। इस कवित्त की अंतिम पंक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'बीये बावीसे भल जागियों यो ओसवाल भूपाला' स्वभावतः दानदाता को लक्ष्य कर उसकी प्रशस्ति में ही कहा गया है।

इससे दो बातें सिद्ध हैं—जग्गा शाह ओसवाल था और वह संवत् २२२ में प्रसिद्धि के शिखर पर था। अगर यह समय विक्रम संवत् २२२ माना जाय तो वीरात् ७० वर्षे संस्थापित ओसवाल जाति ६२२ वर्ष पुरानी हो चुकी थी इस समय तक ओसवाल आभा नगरी तक फैले एवं इतने समृद्ध हो गये हों कि भाटों की प्रशस्ति के लक्ष्य बने—यह सम्भव है। उस समय के उपकेश वंशीय श्रेष्ठि महा समृद्ध थे एवं दान-दक्षिणा देने में अग्रणी थे । इसके प्रमाण जैन कथाओं में उपलब्ध हैं। 'वीये बाईसे' की उक्ति कालान्तर में ओसवाल जाति की उत्पत्ति के साथ भाटों की विरुदावलियों में जुड़ गई। संवत् बीये बाईसे में हुए जग्गा शाह को ओसवाल जाति का प्रतीक स्तम्भ मान कर जाति की उत्पत्ति के छन्दों के साथ बीये बाईसे का प्रयोग हुआ है—यह भी सम्भव है।

भाटों के कथों की प्रासंगिकता

भाट, चारण, भोजक, सेवग आदि कोई पढ़ी लिखी पंडित जमात नहीं है। वे सीधे सादे, अनपढ़ तुक मिला कर सेठ साहुकारों की प्रशस्ति गा कर पेट पालने वाले लोग हैं। उनमें भी कई उच्चकोटि के कवि हुए हैं—यह अलग बात है। प्रशस्ति गायन में अतिशयोक्ति होती है। जो विरुदावलियाँ दान दक्षिणा के लोभ से रची गई हों, उनमें सर्वथा प्रामाणिक तथ्य ढूँढ़ना उचित नहीं होगा। उनमें सत्यांश होता है, इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। भाटों ने वंशावलियों को अपनी विरुदावली में पिरो कर इतिहास के विशेष पक्ष को संग्रहित रखा है।

भाटों के जो कवित्त/छन्द उपलब्ध हैं, वे कब रचे गये—इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। ग्रन्थागारों में जो गुटके संग्रहित हैं, उनमें कवि या रचनाकार का नाम प्रायः नहीं मिलता। सभी अठारहवीं उन्नीसवीं सदी की लिपि बद्ध रचनाएँ हैं। इनकी संरचना के विश्लेषण से जाहिर है कि सभी पद एक ही कवि या एक ही समय में रचित भी नहीं हैं। पुश्तैनी बही भाट वंशानुक्रम से ये प्रशस्ति पद वंशावलियों एवं विरुदावलियों में जोड़ते रहते हैं। विभिन्न समय के शासकों का प्रभाव भी उन पर परिलक्षित है। अनेक कवित्तों के प्रथम पद में 'वीरात् ७० वर्षे' का उल्लेख एवं बाद के पद में 'बीये बाईसे' का उल्लेख सम्भवतः इसी ओर इंगित करता है। इसी तरह विभिन्न गुटकों में मूल कथा समान होते हुए भी विवरण-वैभिन्य, उनका जनश्रुति-आधारित होना सिद्ध करता है। कुछ कवित्तों में ओसवालों के मूल गोत्रों का उल्लेख और अन्य में शब्दशः समान कथानक होते हुए भी ९वीं/१०वीं सदी में प्रचलित राजपूत कौमों से संस्थापित ओसवाल गोत्रों का उल्लेख उनके भिन्न-भिन्न रचना काल के प्रभाव का ही परिचायक है। ओसवालों के आदि पुरुष उपलदेव के पिता का नाम वैभिन्य (देशल दे या भीमसेन),

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुछ में उनके परमार वंशीय होने का उल्लेख, कुछ में कथा विस्तार हेतु पूणिये सर्प की कथा का समावेश उनके लोकाश्रित एवं लोकरंजनार्थ होने का द्योतक है। अस्तु, अन्य साक्ष्यों के सन्दर्भ से ही उनके कथ्य का उचित मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

भाटों द्वारा वर्णित प्रथम गोत्र

बही भाटों के अनुसार उपलदेव के पुत्र भगवान सिंह एवं उनके सामन्तों के वंशजों से ओसवालों के जो प्रथम १३ गोत्र बने, वे हैं—तातेड़, बाफणा, सामसुखा, बैद, बोरड़, बांठिया, मिनी, संकलेचा, सुरेश गोता, आरा, झावक, देशबाल और लुंकड़। एशियाटिक सोसाइटी एवं राजस्थान प्रच्य विद्या प्रतिष्ठान के गुटकों में जिन प्रथम १८ गोत्रों का उल्लेख हैं, वे हैं—तातेड़, बाफणा, करणावट, रांका, कुरहट, बिरहट, श्रीमाल, डीडू, लघु खंडेलवाल, बेद, पारख, भूरा, कुंभट, आदित्यनाग, चींचट, कनोजिया, मोराक्ष, सीखर। अभय ग्रंथालय के एक कवित्त में खंडेलवाल, डीडू की जगह सुचंती, भटेवरा, चोरड़िया, लीगा समदड़िया, कोटर आदि गोत्रों का उल्लेख किया गया है। अभय ग्रन्थालयों एवं नाहर ग्रंथागार के अन्य गुटकों में ओसवालों के जिन गोत्रों का उल्लेख है, वे हैं—परमार, गहलोत, राठौड़, चौहान, भाटी, पड़िहार, यादव, मोयल, मकराणा, सोनगरा, तुअर, सिसोदिया, सोलंकी, सांखला, मकवाणा, कछवाहा, गौड़, सौढ़ आदि।

बही भाटों की बहियों एवं ग्रंथागारों के कुछ गुटकों मे तातेड़, बाफणा आदि जिन प्रथम गोत्रों का उल्लेख आता है, जैन शास्त्रों के अनुसार भी सामान्य हेर-फेर से वे ही ओसवालों के प्रथम गोत्र हैं, अढ़ाई सहस्र वर्षों के इतिहास में गोत्रों के नामों में सामान्य हेर फेर स्वाभाविक ही माना जायेगा।

किन्तु गुछ गुटकों में परमार गहलौत, चौहान आदि राजपूत कौमों से ओसवाल बने गोत्रों के उल्लेख ने एक नई समस्या उत्पन्न कर दी।

श्री शिवकरण रामरतन दरक (माहेश्वरी) द्वारा सन् १८९२ में प्रकाशित वैश्य कुलभूषण व इतिहास कल्पद्रुम (माहेश्वरी कुल शुद्ध दर्पण) नामक ग्रंथ में भी ऐसा ही एक कवित्त है

बहरमान तणें पछे वर्ष बावन पद लीधो
श्री रत्न प्रभु सूरि नाम तास सत गुरुवर दीधो
भीनमाल सूं उठिया जाय औसिया बसाणा
क्षत्री हुआ साख अठार उठै ओसवाल कहाणा
एक लाख चौरासी सहस्र घर राजकुली प्रतिबोधिया
श्री रत्न प्रभु ओस्या नगर ओसवाल जिण दिन किया
प्रथम साख प्रमार सेस सीसोद सिंगाला
रणथम्भा राठौड़ बंस चउआन वचाला
दइया सोलंखी सोनगरा कछावा धन गौड कही जे
जादम हाड़ा जिद लाज मरजाद लही जै

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

खरबरा पाट ओपे खरा लेणा पाटजलाखरा
एक दिवस इतरा महाजन भया सूर बड़ा बड़ी साखरा।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार उक्त गोत्रों में से कोई भी गोत्र विक्रम के ४०० वर्ष पूर्व का नहीं है। इन सभी गोत्रों की उत्पत्ति ८वीं शताब्दी के बाद हुई है। कुछ विद्वान् इसका अर्थ लगाते हैं कि ओसवालों की उत्पत्ति ८वीं सदी के बाद ही हुई होगी। यहाँ वे कवित्त के पहले पद को किंवदन्ति कह कर नजर अन्दाज कर देते हैं। कवित्त के पहले पद के अनुसार ओसवालों की उत्पत्ति भगवान वर्धमान (महावीर) की मृत्यु के ५२ वर्ष बाद श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के १८ वर्ष पश्चात् भीनमाल से उठकर ओसिया में बसे क्षत्रियों के १८४००० घरों को प्रतिबोध देने से हुई। इन दोनों बातों को मिलाने का अर्थ यह लगता है कि जिन क्षत्रियों को रत्नप्रभु सूरि ने ओसवाल बनाया, उनकी जाति कवित्त की रचना के समय इन १८ नामों से जानी या पुकारी जाती थी। कुछ इतिहासकारों ने ऐसे कवित्तों के आधार पर यह फतवा दे दिया कि जब इन १८ गोत्रों की उत्पत्ति ही बाद में हुई तो ओसवालों का जन्म विक्रम के ४०० वर्ष पूर्व कैसे हुआ होगा।

भारतीय इतिहास में विक्रम की ९वी शताब्दी के बाद एक समय ऐसा आया जब हिन्दू धर्म के अद्वैत मत-प्रवर्तक आदि शंकराचार्य ने जैन एवं बौद्ध धर्मावलम्बियों के विरुद्ध जिहाद के कारण जैन समाज एवं विशेषतः ओसवालों पर विपदा का पहाड़ टूट पड़ा। अनेकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। समूहों में जैन व बौद्ध श्रमण कत्ल कर दिये गये। अनेकों बौद्ध भारत छोड़कर चले गये। जैन धर्म का राज्याश्रय समाप्त हो गया। अनेकों ने डर कर धर्म परिवर्तन कर लिया—वैष्णव-सनातन धर्म ग्रहण कर लिया। जैन मन्दिरों एवं तीर्थों को बड़े पैमाने पर नष्ट किया गया।

विक्रम की ९वी शताब्दी के पश्चात् मुसलमानों के आक्रमणों से वही हाल हिन्दू धर्म का हुआ। हिन्दू मन्दिर और मूर्तियों नष्ट कर दी गयीं, हजारों लोगों को जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बना लिया गया। तब मुसलमान शासकों को प्रभावित कर जैन आचार्यों ने स्थिति सुधारने का प्रयास किया। इसलिये विक्रम की ९वीं शताब्दी के बाद जैन आचार्यों का प्रभाव राज्य में बढ़ने लगा। मुसलमान शासकों ने भी उनका सम्मान किया। क्षत्रिय कौमें, जिन्होंने जैन धर्मानुयायी तथा ओसवाल गोत्रीय कहलाना छोड़कर हिन्दुओं के नाना गोत्र धारण कर लिये थे, फिर से जैन धर्म अंगीकार करने लगी। जैनाचार्यों ने उनके गोत्र प्रस्थापित किये एवं उन्हें ओसवाल जाति में शामिल किया।

कुछ गुटकों एवं कवित्तों में ९वीं शताब्दी में ओसवाल बनी राजपूत कौमों का उल्लेख होना अपरिहार्य नहीं है। उनके ओसवाल बनने को ओसवाल जाति की उत्पत्ति से जोड़ना गलत होगा। तथ्यतः भाटों की पदावली या कवित्त एक निरन्तर प्रवहमान लोकाश्रयी धारा रही है। वे उसमें समय सापेक्ष पद जोड़ते घटाते रहे हैं।

हम देख ही चुके हैं—गुटके या कवित्त के पहले पद में 'वीरात् ५२ वर्ष' में रत्नप्रभ सूरि के आचार्य पदासीन होने एवं १८ वर्ष पश्चात् राजकुल के क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल बनाने का उल्लेख है और अंतिम पद में राजपूत कौमों के ९वीं सदी में प्रचलित गोत्रों को महाजन बनाने का उल्लेख। भाटों के कथन को प्रामाणिक व सच मानना हो तो दोनों पदों को ही सच मानना होगा। और उनका समन्वित अर्थ ग्रहण करना होगा। इन दोनो पदों को एक दूसरे के विपरीत खड़ा करना रचनाकारों के प्रति अन्याय होगा। कवित्त के पिछले पद को आधार मानकर पहले पद को चुनौती देना असंगत है।

यदि हम दोनों पदों को सही मान कर चलें तो समन्वित अर्थ यही होगा कि विरात् ७० वें वर्ष में जैनाचार्य रत्नप्रभ सूरि ने ओसवाल कुल की स्थापना की एवं कालान्तर में उक्त राजपूत कौमें जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल बनी द्रष्टव्य यह भी है कि इन राजपूत कौमों को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाने वाले आचार्य का नामोल्लेख पद के साथ नहीं है।

बीये बाईसे की उक्ति के अन्य आधार:

बीये बाईसे की उक्ति का एक और विशेष, कारण ग्रन्थों में मिलता है। कहते हैं कि संवत् २२२ में खंडेला ग्राम में समस्त वणिज पेशा जातियों का एक सम्मेलन हुआ।

इसमें भाग लेने के लिए १२ प्रमुख बस्तियों (प्रदेशों) के लोग आये। उस समय उनके मूल स्थानों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया जैसे पाली से आने वालों को पालीवाल, ओसिया से आने वालों को ओसवाल, खंडेला के लोगों को खंडेलवाल, श्रीमाल नगर से आने वालों को श्रीमाली, अग्रोहा के अग्रवाल, पोरवा के पोरवाल नाम से जाने गये। इससे पूर्व ओसवाल महाजन के नाम व कर्म से ही पहचाने जाते थे। सम्भवतः उनके इस नामकरण के आधार पर ही 'बीये बाईसे' में उत्पत्ति की कहावत चारण-भाटों के कवित्तों में चल पड़ी।

एक अन्य सम्भावना यह भी है कि जैनाचार्य श्री रत्न प्रभ सूरि ने वीरात् ७० वें वर्ष में यानि विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पूर्व जिन क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया, उनके परिचयात्मक ओहदे, कार्य, ग्राम आदि के हिसाब से विभिन्न गोत्र स्थापित किये, उनका नामकरण किया। खान-पान विवेक के साथ हिंसा त्याग कर जो जैन बने, उनके समूह को 'महाजन' नाम से पुकारा। उएस पट्टण से चल कर जैसे-जैसे ये महाजन अन्य प्रदेशों में फैले, उन्हें 'उएसीय' यानि 'उएस' प्रदेश के कहा जाने लगा। कालान्तर में वे 'ओस' या 'ओसवाल' कहलाये। इस प्रक्रिया में अनेक पीढियाँ यानि चार पाँच सौ वर्ष लगना सम्भव है। अतः ओस वंश नामकरण 'बीए बाईसे' के आस पास हुआ हो, यह भी सम्भव है।

भाटों के कवित्तों के सर्वमान्य तथ्य:

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि प्रायः २५०० वर्षों के इतिहास में ऐसा कोई भी गुटका या कवित्त नहीं मिलता, जिसमें ओसवाल जाति के आदि पुरुष का नाम उपलदेव के सिवाय कोई अन्य नाम दिया हो या क्षत्रियों के प्रतिबोधक जैनाचार्य का नाम रत्न प्रभ सूरि के सिवाय कोई अन्य दिया हो या इस रूपान्तरण का समय 'वीरात् ७० वर्ष' न देकर अन्य कुछ हो। जहाँ संवत् २२२ या ११९ का उल्लेख है वहाँ 'वीरात् ७० वर्षे' साथ ही दे दिया है मानो इनकी संगति हो। ये तथ्य जाति की उत्पत्ति के काल निर्धारण में निर्णायक तथ्य हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सदी) के पट्टधर आ० हेमवंत ने **'हेमवंत स्थविरावली'** लिखी—जिसके उल्लेखानुसार भगवान महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष के बाद पार्श्वनाथ की परम्परा के छठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभ ने उपकेश नगर में १८०००० क्षत्रियों को उपदेश देकर जैन धर्मी बनाया और वहाँ से उकेश नामक वंश चला। (पृष्ठ १९५)

२१. **आबू जैन मन्दिर के निर्माता** ग्रंथ में कतिपय कुल गुरुओं की ओसवाल जाति उत्पत्ति विषयक बीये बाईसे की धारणा को चुनौती देते हुए लिखा है कि जैन पट्टावली और जैन ग्रंथों में ओस वंश स्थापना का समय महावीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद ही लिखा मिलता है, जो वास्तविक मालूम होता है।

२२. व्याकरण वाचस्वति यतीन्द्र विजय जी महाराज ने अपने ग्रन्थ **'कोरंटा तीर्थ का इतिहास'** में लिखा है कि वीरात् ७० वर्ष आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने उपकेशपुर में उपकेश वंश की स्थापना कराके वहाँ महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा की एवं उसी समय कोरंटपुर में भी महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा आप ही ने करवायी।

२३. अनेक गच्छों एवं सम्प्रदायों की प्राचीन पट्टावलियों में इस बात के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने ओसिया नगरी में ओसवंश की स्थापना की। इनमें मुख्य हैं:

(१) तपागच्छीय प्राचीन पट्टावली
(२) अंचल गच्छीय पट्टावली
(३) कोरंट गच्छीय पट्टावली
(४) खरतर गच्छीय पट्टावली
(५) नागपुरिया गच्छीय पट्टावली

२४. देश के अनेक ग्रन्थागारों एवं हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें वीरात् ७० वर्ष में ओसवाल जाति की स्थापना का स्पष्ट उल्लेख है। ऐसे ग्रंथों/गुटकों/कवित्तों का वर्णन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ मात्र उनकी सूची देना पर्याप्त होगा।

(१) एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता में उपलब्ध ओसवाल री उत्पत के कवित्त (क्रमांक R १८)
(२) एसियाटिक सोसाइटी कलकत्ता में उपलब्ध साधु बालाराम के छन्द
(३) एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता में उपलब्ध सेवग सुखराम लोडावत के छन्द
(४) अभय ग्रंथालय, बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ६४८।
(५) अभय ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ७७६५।
(६) केलडी मन्दिर के ग्रंथागार में उपलब्ध ग्रन्थ क्रमांक १२७५।
(७) केशरीयानाथ जी मन्दिर के ग्रन्थागार में उपलब्ध ग्रन्थ संख्या २९/५७।
(८) केशरीयानाथ जी के मंदिर के ग्रंथागार में उपलब्ध ग्रंथ संख्या २२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सहायक साक्ष्य

ऐसे अनेक ग्रंथ एवं साक्ष्य उपलब्ध हैं, जिनमें उपकेश वंश की उत्पत्ति विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पूर्व होनी सिद्ध होती है या नौवीं/दसवीं सदी वाले मत का खण्डन होता है। इन ग्रन्थों में ऐसी घटनाओं के उल्लेख हैं, जिनसे सहज ही ओसिया एवं ओसवाल जाति के बहुत प्राचीन होने की पुष्टि होती है।

१-उपकेश गच्छ चरित्र

उपकेश गच्छ चरित्र (रचना : विक्रम सं० १३९३) में वीरात् ७०वें वर्ष में उत्पलदेव द्वारा जैन धर्म अंगीकार करने के बाद उपकेश पुर में भगवान् महावीर का एक मन्दिर निर्माण करवाने का उल्लेख है। यह ग्रंथ उपकेश गच्छीय आचार्य कक्क सूरि द्वारा विरचित है। मन्दिर की प्रतिष्ठा के अनन्तर ३०३ वर्ष बाद महावीर प्रतिमा के वक्षःस्थल पर स्थित दो ग्रन्थियों के छेदन से बहुत उपद्रव हुआ। कहते हैं उस दैवी-उपद्रव से उपकेश वंशीय उपासक/श्रावक गण बहुत घबड़ा गये। उनके निमन्त्रण पर आचार्य श्री कक्क सूरि उपकेश नगर पधारे एवं शान्ति अनुष्ठान का आयोजन किया। स्नात्र-पूजा करवाई, जिससे उपद्रव शान्त हुआ। स्नात्र पूजा के समय उपकेश गच्छ के प्रथम संस्थापित अठारह गोत्रों के श्रेष्ठि उपस्थित थे।

स्नात्र पूजा का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार लिखता है :

"आचार्यैः चतुर्विधसङ्घसहितैः उपनवासत्रयं कृतं। तृतीयोपवास प्रान्ते रात्रि समये शासनदेव्या प्रत्यक्षीभूय आचार्याय प्रोक्तम्—'हे प्रभो! न युक्तं कृतं बालश्रावकैः मद् घटितं बिम्बं आशातीतं (कलानिश) शकलानि कृतं। अतोऽनन्तरं उपकेशनगरं शनैः उपभ्रंश भविष्यति (गमिष्यति) गच्छे विरोधो भविष्यति, श्रावकाणां कलहो भविष्यति, गोष्ठिका नगरात् दिशोदिशं यास्यन्ति'। आचार्यैः प्रोक्तं—'परमेश्वरि! भवितव्यं भवत्येव परं त्वं श्रवत्तु रुधिरं निवारय'। देव्या प्रोक्तम्—'घृत घटेन, दधि घटने, इक्षुरस घटेन दुग्ध घटने, जल घटने कृतोपवासत्रयं यदा भविष्यति तदा अष्टादश गोत्रमेलं कुरूत (तेमी) तातहड़गोत्रं (तप्तभट) बापणा-गोत्रं (बप्पनाग) कर्णात गोत्रं, बलहगोत्रं, मोरखगोत्रं, कुलहट गोत्रं, विरिहर गोत्रं, श्रीश्रीमाल गोत्रं, श्रेष्ठिगोत्रं, एते दक्षिणा बाहौ। सूचंतिगोत्रं, आईच्चणाग गोत्रं, भूरिगोत्रं, चिंचट गोत्रं, कुंभट गोत्रं, कन्याकुब्ज गोत्रं, डिंडुभगोत्रं, लघु श्रेष्ठि गोत्रं एते वाम बाहौ। स्नात्रं कर्त्तव्यं। नान्यथा शिवा शान्ति भविष्यति'।

मूल प्रतिष्ठाऽनन्तरं वीर प्रतिष्ठा दिवसलादतीते शतत्रये (त्र्याधिके त्रिशते ३०३ वर्षे) अनेहसि ग्रन्थियुगस्य वीरोरःस्थस्य भेदोऽजनि दैवयोगात् इत्युक्तं।।"

उक्त उल्लेखों से उपकेश गच्छ, उपकेशवंश, उसके प्रथम अठारह गोत्र एवं उनका समय निश्चित करने में बड़ी सहायता मिलती है। इन ग्रंथों के मूल उत्पत्ति सम्बन्धी उल्लेखों का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं।

ग्रंथिछेदन की उक्त घटना का उल्लेख श्री कक्क सूरि रचित 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रंथ (रचना वि० सं० १३९३) में भी विस्तार से मिलता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

२. नाभिनन्दन जिनोद्धार

आचार्य कक्क सूरि द्वारा वि० सं० १३९३ में रचित इस ग्रंथ में शत्रुञ्जय तीर्थ के १५ वें उद्धारक उपकेश वंशीय समर सिंह (वि० सं० १३७१) का जीवन चरित्र है। उनके पूर्वज उपकेशपुर से १० वीं शताब्दी के आसपास किराडू आकर बसे। वे श्रेष्ठि गोत्रीय थे। समर सिंह के इस प्रशस्ति ग्रंथ में रत्नप्रभ सूरि, उपकेशपुर के वैभव, उकेश वंश, उसके १८ गोत्र एवं समर सिंह के पूर्वजों के नाम—आदि पुरुष बेसट श्रेष्ठि से शुरू करके दिये हैं। इस ग्रन्थ के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं, जिनमें वीर निर्वाण से ७० वर्ष पश्चात् आचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा उकेशपुर में प्रतिष्ठापित महावीर मन्दिर एवं उकेश वंश के १८ गोत्रों में विख्यात श्रेष्ठि गोत्र का वर्णन है :

यत्रास्ते **वीर निर्वाणात् सप्तत्या वत्सरैर्गतैः।**
श्रीमद्रत्नप्रभाचार्यैः स्थापितं वीरमन्दिरम् ।।२३।।
तत् पुरः प्रभवौ **वंश, ऊकेशाभिध** उन्नतः।
सुपर्वा सरलः किन्तु नान्तः शून्योऽस्ति यः क्वचित्।।३०।।
तत्राऽष्टादश गोत्राणि, पत्राणि व समन्ततः।
विभ्रान्ति तेषु विख्यातं श्रेष्ठि गोत्रं पृथुस्थिति।।३९।।

इससे वीरात् ७० वर्षे उकेश वंश की उत्पत्ति का ही समर्थन नहीं होता अपितु इस वंश के प्रभावक चरित्रों पर भी प्रकाश पड़ता है।

३. उपकेश गच्छ पट्टावली

वि० सं० १४०२ में विरचित इस ग्रन्थ के अनुसार श्री रत्नप्रभ सूरि ने उपकेश पुर के साथ ही कोरंट नगर में भी एक महावीर मन्दिर की स्थापना की थी। पट्टावली में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

उपकेशे च कोरंटे तुल्यं श्री वीर बिम्बयोः।
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्री रत्नप्रभसूरिभिः।।

यह नगर व मन्दिर आज भी एरिनपुरा छावनी से तीन कोस पर कोरंट गाँव में विद्यमान है। पट्टावली के अनुसार इन मन्दिरों की प्रतिष्ठा वीरात् ७०वें वर्ष में हुई थी।

४. 'कल्पद्रुम कलिका'

टीका के स्थविरावली अधिकार में उकेश नगर एवं कोरंट नगर में एक ही समय आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा भगवान् महावीर के बिम्ब की प्रतिष्ठा का उल्लेख है:

ङ्कउपकेश वंश गच्छे श्री रत्नप्रभु सूरिः येन उसिय नगरे कोरंट नगरं च समकालं प्रतिष्ठा कृता रूप द्वय कारणेन चमत्कारश्च दर्शितः।ङ्क

इससे भी उपकेश गच्छ पट्टावली के कथनों का समर्थन एवं वीरात् ७० वर्षे उपकेश वंश स्थापना की पुष्टि होती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

५. आचार्य हरिभद्र सूरि

आचार्य हरिभद्र सूरि (वि० सं० ५३० से ६८५) ने 'समराईच्च कहा' ग्रंथ रचा। इस प्राकृत कथा ग्रंथ के आधार पर आचार्य कनकप्रभ सूरि ने सार रूप 'समरादित्यसार' संस्कृत भाषा में रचा है। 'समराईच्च कहा' के अनुसार 'उएस नगर के उपकेश जाति के गुरु ब्राह्मण नहीं हैं। वे ब्राह्मण—कर से मुक्त हैं।' इस सम्बन्ध में ग्रन्थ का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है:

तस्मादुपकेश ज्ञातीनां गुरुवो ब्राह्मणाः नहि।
उएश नगरं सर्वं कर ऋण हनिं समृद्धिमत्।।
सर्वथा सर्व निर्मुक्तमुएशनगरं परम्।
तदा प्रभृति सजातिमिति लोकप्रवीणकम्।।३९।।

कहा जाता है कि जब उपकेश नगर के क्षत्रिय लोग जैन बन गये तो ब्राह्मणों ने उनका संस्कार करवाने से इन्कार कर दिया। तब कुछ ब्राह्मणों को पुश्तैनी अधिकार का आश्वासन दे भोजक बनाकर जैन मन्दिरों की पूजा-प्रतिष्ठा के लिए रखा गया। तब से अन्य ब्राह्मणों का सम्बन्ध उपकेश जाति से टूट गया। वे ब्राह्मण—कर से मुक्त कर दिये गये। उपकेश जाति के गुरु ब्राह्मण नहीं हैं।

आचार्य हरिभद्र का समय विक्रम ५३० से ५८५ के बीच माना जाता है। मुनि जिन विजयजी ने उनका समय वि० ७५७ से ७८७ के बीच माना है। परन्तु आचार्य सिद्धर्षि के उल्लेखानुसार उनके ग्रन्थ 'उपमिति भव प्रपंच' कथा की रचना संवत् ९६२ में हुई, जिसे अगर वीर संवत् मानें तो वह वि० ४९२ ठहरता है। आचार्य हरिभद्र आचार्य सिद्धर्षि के दीक्षा गुरु थे। अतः हरिभद्र का समय ५वी/६ठी शताब्दी ठहरता है। प्राचीन शास्त्रीय मान्यता के अनुसार उनका समय वि० ५३० से ५८५ है। पं० हीरा लाल हंसराज के अनुसार वे वि० सं० ५३५ में दिवङ्गत हुए थे।

'समराईच्च कहा' ग्रन्थ की ऐतिहासिक महत्ता को प्रसिद्ध जर्मन् विद्वान डा० हरमन जेकोबी ने भी स्वीकारा है। आचार्य हरिभद्र सूरि ने पोरवाल जाति को संगठित किया था। छठी शताब्दी के इस ग्रन्थ में उपकेश नगर की समृद्ध उपकेश जाति का उक्त वर्णन सिद्ध करता है कि यह जाति सैकड़ों वर्ष पूर्व स्थापित हुई होगी, तभी वैसी समृद्धि अर्जित कर सकी।

६. उपकेशगच्छ प्राचीन पट्टावली

विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्री यक्षदेव सूरि सोपारपट्टण विराजते थे। उस समय वज्रस्वामी के पट्टधर वज्रसेनाचार्य ने अपने चार शिष्यों को दीक्षा दे सोपारपट्टण ज्ञानाभ्यास के लिए यक्षदेवसूरि के पास भेजा। यक्षदेवसूरि ने १२ वर्ष विद्याभ्यास के अनन्तर उन्हें सूरि पद अर्पण कर विहार कराया। इन चारों की अलग-अलग चार शाखाएँ हुईं — नागेन्द्र शाखा, चन्द्र शाखा (तपागच्छ एवं खरतर गच्छ इसी शाखा में हैं), निवृत्ति शाखा और विद्याधर शाखा(जिसमें हरिभद्र सूरि हुए)। इन तथ्यों से विक्रम की दूसरी सदी में उपकेश

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गच्छ का प्रभावकारी अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। उपकेश गच्छ प्राचीन पट्टावली में इसका उल्लेख इस प्रकार है:

एवं अनुक्रमेण श्री वीरात् ५८५ वर्षे श्री यक्षदेवसूत्तिर्बभूव
महाप्रभावकर्ता, द्वादशवर्षे (वार्षिके) दुर्भिक्षमध्ये
वज्रस्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरौ परलोकप्राप्ते
यक्षदेव सूरिणा चतस्रः शाखाः स्थापिताः।।

इन चार शाखाओं की विक्रम की दूसरी शताब्दी में स्थापना एक सर्व मान्य ऐतिहासिक तथ्य है।

७. प्रभावक चरित्र मानदेव प्रबन्ध

'प्रभावक चरित्र' के मानदेव प्रबन्ध में श्री देवचन्द्र उपाध्याय द्वारा कोरंट नगर के महावीर मन्दिर की व्यवस्था किये जाने का उल्लेख है। यह वही मन्दिर है, जिसमें श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा एक ही समय में उपकेशपुर में उपलदेव एवं उहड़ श्रेष्ठि द्वारा निर्मित महावीर मन्दिर के साथ महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा का उल्लेख उपकेश गच्छ पट्टावली में मिलता है और जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस ग्रन्थ के प्रबन्ध नायक मानदेव सूरि का समय भगवान महावीर से ७३१ वर्ष बाद ठहरता है। देवचन्द्र सूरि के पट्ट पर प्रद्युम्न सूरि एवं उनके पट्ट पर मानदेव सूरि बिराजे। इससे कोरंट नगर के महावीर मन्दिर की प्राचीनता सिद्ध होती है, साथ ही उपकेश गच्छ पट्टावली में वर्णित कथानक का समर्थन भी होता है।

८. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर

आचार्य विजयानंद सूरि रचित इस ग्रंथ के अनुसार देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण ने उपकेश गच्छाचार्य देवगुप्त सूरि के पास एक पूर्व सार्थ और आधा पूर्व मूल एवं डेढ़ पूर्व का अभ्यास किया था। देवर्द्धिगणि, क्षमाश्रमण का समय विक्रम की पाँचवीं/छठी सदी ठहरता है। उक्त उल्लेख का समर्थन उपकेश गच्छ चरित्र एवं पट्टावली से भी होता है। यह तत्कालीन उपकेश गच्छाचार्य की महिमा का सूचक है।

९. राजपूताना की शोधखोज

राजपूताना की शोध खोज में मुन्शी देवी प्रसाद जी (जोधपुर) ने कोटा राज के अटारु ग्राम में एक जैन मन्दिर के खंडहरों में प्राप्त एक मूर्ति के नीचे वि० सं० ५०८ भेंसाशाह का उल्लेख किया है। यह भेंसाशाह उपकेश जाति आदित्यनाग गोत्र का महाजन था। भेंसाशाह और रोड़ा विणजारा का प्रेम-सम्बन्ध प्रसिद्ध है। इन्हीं के नाम पर भेंसारोड़ा (मेवाड़) ग्राम बसा, जो आज भी मौजूद है। जैन समाज में भेंसाशाह बड़ा प्रख्यात था। इस लेख से ओसवाल जाति की समृद्धि उससे बहुत पहले ही सिद्ध हो जाती है।

१०. कलकत्ता के म्यूजियम में संग्रहित पार्श्वनाथ भगवान् की एक मूर्ति पर 'वीरात् ८४' का शिलालेख है। उसमें लिखा है कि श्री वंश जाति के श्रावक ने यह मूर्ति बनवायी। श्री

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वंश जाति उपकेश वंश की शाखा थी, जिसका प्रमाण वि० सं० १६ वीं सदी के एक शिलालेख से मिलता है, जिसमें श्री वंश जाति के साथ उपकेश वंश का भी उल्लेख है।

११. **कुवलयमाला**—श्वेत हूण तोरमाण वि० ५वीं/६ठीं शताब्दी में मरु प्रदेश की तरफ आया। उसने भिन्नमाल को हस्तगत कर अपनी राजधानी बनाया। आ० हरिगुप्त सूरि के उपदेश से वह जैनधर्म अनुरागी बना।उसने वहाँ ऋषभदेव का विशाल मन्दिर बनवाया। तोरमाण का पुत्र मिहिरगुल कट्टर जैन विरोधी था उसके अत्याचारों से भाग कर जैन लोग गुजरात गये। उनमें उपकेश जाति के व्यापारी थे। विक्रम की छठी शताब्दी में आचार्य उद्योतन सूरि द्वारा रचित प्राकृत् ग्रंथ कुवलयमाला में उक्त तथ्यों के विस्तार से उल्लेख मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि छठीं शताब्दी में उपकेश वंश अच्छी उन्नति पर था। ये उपकेश वंशीय श्रेष्ठिगण आज भी गुजरात के बाशिंदे हैं।

१२. इतिहास वेत्ता मुनि कल्याण विजयजी के अनुसार आचार्य स्कंदिल (समय विक्रम की दूसरी सदी) के पट्टधर आचार्य हेमवन्त ने **'हेमवन्त स्थविरावली'** की रचना की जिसके उल्लेखानुसार मथुरा निवासी उपकेश वंश शिरोमणि श्रावक पोलक ने गंधहस्ती विवरण सहित उन सब सूत्रों को ताड़पत्रादि में लिखवा कर पठन-पाठन के लिए निर्ग्रंथों को अर्पण किया। इस प्रकार जैन शासन की उन्नति करके स्थविर आर्य स्कन्दिल वि० सं० २०२ में मथुरा में अनशन करके स्वर्गवासी हुए। (पृष्ठ १८०)

इसका अर्थ यह हुआ कि विक्रम की पहली सदी के आस-पास उपकेश वंश का अस्तित्व था। उसी को लोक भाषा में ओस वंश कहा जाने लगा।

१३. 'उपकेश गच्छ चरित्र' एवं 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' ग्रन्थों में विक्रम की चौथी शताब्दी से आठवीं शताब्दी के मध्य पंजाब में जैन धर्म की प्रभावना में महाजनश्रेष्ठियों के अनुपम योगदान के अनेक उदाहरण दिये हैं। पं० हीरालाल दुग्गड़ ने अपने शोध ग्रंथ **'मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म'** में तक्षशिला के उत्खनन में प्राप्त ईसा की द्वितीय शताब्दी के कुषाण कालीन अवशेषों को व्याख्यायित किया है एवं आठवीं शताब्दी के पूर्व के अनेक उदाहरण अंकित किये हैं जिनसे पता चलता है कि उस समय पश्चिमोत्तर प्रदेशों में बसे ओसवाल बड़े वैभवशाली थे।

१४. भगवान महावीर के १९ वें पट्टधर आचार्य मानदेव सूरि ने तक्षशिला उच्चनगर देराउल आदि नगरों में अनेक 'ओसवाल' जैन श्रावक बनाये। नाडुलाई (राजस्थान) के चतुर्मास में तक्षशिला के श्रावक संघ की प्रार्थना पर वहाँ फैली महामारी रोग की शांति के लिए वि.० संवत् २८० में आ० मानदेव सूरि ने संस्कृत भाषा में 'लघु शांति स्तवन' की रचना कर तक्षशिला भेजा, जिसके जाप से महामारी का उपद्रव शांत हुआ। यह ओसवालों के तक्षशिला आदि सूदूर प्रदेशों में फैले तत्कालीन वैभव का सूचक है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१५. विक्रम पूर्व पहली शताब्दी में जैनाचार्य कालिक हुए। इन्होंने अपनी साध्वी बहन सरस्वती को उज्जयिनी सम्राट् गर्दभिल्ल के पंजों से छुड़ाने में सिन्धुराज शक वीरों की सहायता ली थी। इन्हीं कालिकाचार्य का गच्छ 'भावडार' या भावड़ा नाम से जाना जाता था। उस समय सिन्धु-जनपद में बहुत बड़ी संख्या में ओसवाल महाजन आबाद थे। कालिकाचार्य के 'भावड़ा' गच्छ के अनुयायी होने से वे भी भावड़ा ओसवाल कहलाए। पंजाब, कश्मीर में अब भी अनेक भावड़ा ओसवाल निवास करते हैं।

१६. विक्रम की ४थी सदी में आचार्य कक्क सूरि (संवत् ३३०-३५७) के उद्‌बोधन से श्रेष्ठि मालाशाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। तक्षशिला के करणाट गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि रावत ने भी सूरि जी की प्रेरणा से शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। यह तत्कालीन ओसवालों के वैभव का सूचक है।

१७. विक्रम संवत् ३७२ में श्रेष्ठि धवल पि० गोसल शाह गोत्र भूरि ने वीरपुर से शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया। उसने सकल संघ पूजा करके सोने की सुपारियों की प्रभावना दी।

१८. विक्रम संवत् ४७० में गोकुल सा के पुत्र सोभा गोत्र चोरड़िया ने मरोट कोट से शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। यह ओसवालों की तत्कालीन जहलौजलाली सिद्ध करता है।

१९. विक्रम संवत् ६१३ में मोपत शाह के पुत्र अगरो गोत्र गोलेछा ने जोगनीपुर (दिल्ली) से शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। प्रत्येक गाँव के साधर्मी को एक एक सोने की मुद्रा की प्रभावना दी।

२०. विक्रम की ७वीं सदी में आचार्य देवगुप्त सूरि (संवत् ६०१-६३१) ने उमरेल में पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। इन्होंने स्यालकोट में रांका गोत्रीय शाह खेता द्वारा निर्मित भगवान मल्लिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा की।

उक्त सभी उदाहरण ओसवाल गोत्रीय श्रेष्ठियों के है, जिनसे इस जाति की पूर्वोत्पत्ति सिद्ध होती है।

२१. ओसिया के एक ध्वंस हुए मंदिर में वि० सं० ६०२ का एक टूटा हुआ शिलालेख मुनि रत्न विजयजी को मिला है, जिसके अनुसार आदित्यनाग गोत्र (ओसवालों का एक गोत्र) के किसी श्रावक ने वह चन्द्रप्रभु की मूर्ति बनवाई थी। उस पर 'वि० सं० ६०२' भी खुदा हुआ है। यह सिद्ध करता है कि उस समय से पहले ही यह जाति काफी उन्नत रही होगी।

२२. आचार्य हरिभद्रसूरि आदि आठ आचार्यों ने मिलकर 'महानिशीथ सूत्र' का उद्धार किया था, जिसमें उपकेश गच्छाचार्य देवगुप्त सूरि भी शामिल थे। महानिशीथ सूत्र की हस्तलिखित प्रति के अन्त में इस बात का उल्लेख है। इनका समय ६ठीं शताब्दी माना जाता है। यह भी उपकेश गच्छ की प्राचीनता का एक प्रमाण है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

२३. पं० हीरालाल हंसराज के ग्रन्थ 'जैन गोत्र संग्रह' के अनुसार भिन्नमाल के राजा भाण ने उपकेशपुर के ओसवाल श्रेष्ठि जयमल शाह की पुत्री रत्ना के साथ लग्न किया था। राजा भाण का समय वि० सं० ७६४ है।

राजा भाण ने शंखेश्वर गच्छ के श्री उदयप्रभ सूरि से जैन धर्म अंगीकार किया। शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थों के संघ निकाले। राजा के संघवी पद पर तिलक के समय इसी ग्रंथ के अनुसार संघ में वासक्षेप की तकरार होने से वि० सं० ७७५ से ८४ गच्छों के आचार्यों ने एकत्र होकर मर्यादा बाँधी कि भविष्य में जिसके प्रतिबोधित श्रावक हों, वे ही वासक्षेप देंवे। इस मर्यादा को हस्ताक्षरित करने वाले ८४ गच्छों के आचार्यों में उपकेश गच्छ के आचार्य सिद्ध सूरि भी थे। अतः उस समय तक उपकेश जाति की समृद्धि में कोई सन्देह नहीं।

२४. वि० सं० ८०२ में पाटण की स्थापना के समय चन्द्रावती और भिन्नमाल से उपकेश जाति के बहुत से लोगों को आमंत्रण देकर पाटण में बसने के लिए ले जाया गया था। आज भी उनकी संतानें वहाँ निवास करती हैं।

२५. ओसिया मन्दिर का जो शिलालेख है, उसमें परिहार सम्राट् वत्सराज की प्रशस्ति है इन वत्सराज का समय वि० सं० ७८३ है। इससे उपकेशपुर की ८वीं सदी में समृद्धि सिद्ध होती है।

२६. आचार्य बप्पभट्ट सूरि ने ग्वालियर के राजा नागावलोक या नाग भट्ट प्रतिहार, जो आम राजा के नाम से प्रसिद्ध था, को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। उनकी सन्तानों को उपकेशवंश में शामिल किया—ऐसा शत्रुञ्जय तीर्थ पर विमलवाली स्थित आदीश्वर मन्दिर में मिले शिलालेख (जैन शिलालेख संग्रह एवं प्राचीन जैन लेख संग्रह) से ज्ञात होता है। बप्पभट्ट सूरि का जन्म वि० सं० ८०० में हुआ था। आम राजा का समय वि० ९वीं सदी था। इस शिलालेख में ओस वंश की विशालता एवं राजकोष्ठागार गोत्र की प्रशस्ति है। उस समय तक ओसवंश को इतना विशाल बनने में कई शताब्दियाँ लगी होंगी। आम राजा की एक रानी व्यवहारिया (वणिक) की पुत्री थी। उसकी सन्तानों का गोत्र राजकोष्ठागार हुआ। राजकोठारी आज भी अपने को आम राजा की संतान बताते हैं। इसी गोत्र में १६ वीं सदी में कर्माशाह हुए, जिन्होंने शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाकर उक्त शिलालेख लगवाया, जो वि० सं० १५८७ का है। इस शिलालेख के निम्न श्लोक में उक्त कथनों के प्रमाण है:

एतश्च गोपाहूगिरौ गरिष्टः श्री बप्प भट्टी प्रतिबोधितश्च,
श्री आम राजाऽजति तस्य पत्नी काचित् बभूव व्यवहारि पुत्री।
तत्कुक्षि जाताः किल राजकोष्ठागाराहू गोत्रेकृतैक पात्रे,
श्री ओस वंशे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽभिरुषाः प्रसिद्धाः।।

इससे पता चलता है कि ओसवाल जाति ९वीं शताब्दी में भारत के विशाल क्षेत्र में फैली हुई थी एवं बड़ी प्रभावी तथा समृद्धिशाली थी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

२७. ओसिया के भग्नावेशेषों के उत्खनन एवं कभी-कभी वर्षा ऋतु में अनायास ग्रमीणों को चाँदी के ३-४ मासा के प्राचीन सिक्के मिले हैं, जिन पर एक ओर गर्दभ चिह्न अंकित हैं। एक अनुश्रुति के आधार पर ये सिक्के विक्रम संवत् के प्रणेता विक्रमादित्य के पिता गर्दभिल्ल के समय के हैं। गर्दभिल्ल का समय विक्रम पूर्व १७ वर्ष माना जाता है। इससे इस नगरी के तत्कालीन उत्थान का सहज ही अनुमान किया जा सकता है यानी उससे २/३ सौ वर्ष पूर्व तो बसी ही होगी।

२८. किसी समय राजपुताने की धरती समुद्र संलग्न थी। पुरातत्त्ववेत्ताओं को इस बात के अनेक प्रमाण मिले हैं। कहते हैं—उपकेशपुर के पास से भी एक धारा बहती थी। वहाँ के उत्खनन में सीप कोडियाँ एवं जलमच्छों की हड्डियाँ मिली हैं। इस धारा के कारण बनजारों को यातायात में बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। एक लम्बा मार्ग तय करना पड़ता था। कई बार इस धारा का मार्ग बदलने का प्रयास किया गया। अन्ततः हेम नामक बनजारे ने इसे पूरने में सफलता पायी। भाटों और चारणों ने उसकी प्रशस्ति के कवित्त बनाये, जो आज भी लोकप्रिय हैं :

लाखा सरीखा लख गए, आतु सरीखा अद्ध।
हेम हडाउ न आवसी, वलके इण हिज वट।।

जल मार्ग के समाप्त होने से नगर के व्यापार को क्षति पहुँची एवं धीरे-धीरे वह चौपट हो गया। नये धन्धों की तलाश में व्यापारी वर्ग का अन्यत्र प्रवसन हुआ। वे ओस वंशी रहे हों एवं उएस नगर के बाशिंदे होने के कारण ओस वंशी कहलाये हों। विक्रम से पूर्व पहली शताब्दी में उपकेशपुर से उपकेश जाति के पलायन का जो कथानक ग्रन्थों में आया है, सम्भवतया इस प्राकृतिक अवरोध से भी वह सम्बन्धित था।

२९. दिल्ली के प्रसिद्ध विधि विशेषज्ञ श्री उमराव सिंह टांक ने संवत् १९७२ में 'ओसवाल एवं उनके परिवार' नाम अंग्रेजी पुस्तिकाओं की सीरीज में समाज के इतिहास पुरुषों की गौरव गाथाएँ प्रकाशित कीं। आपने अपने शोध प्रबन्धों में 'बीए बाईसे' को गुप्ता संवत् मानते हुए ओस वंश की उत्पत्ति संवत् ५९८ में निर्धारित की है।

३०. डा० गौरीशंकर औझा ने जावर की प्रसिद्ध जस्ते और चाँदी की खानों से सम्बन्धित वि० सं० ७०३ का सामोली शिलालेख खोज निकाला। इस शिलालेख में महाजन श्रेष्ठि जेन्तक की प्रशस्ति है, जिसने वहाँ खान विशेषज्ञों की बस्ती बसाई एवं महाजन संघ की अनुमति से अरण्यवासिनी देवी (महिषासुरमर्दिनी) का एक मन्दिर बनवाया। महिषासुर मर्दिनी चामुण्डा ओसवालों की कुल देवी हैं। ये सभी तथ्य श्रेष्ठि जेन्तक का ओसवाल होना सिद्ध करते हैं एवं ओसवालों के तत्कालीन वैभव एवं पूर्वोत्पत्ति की ओर इङ्गित करते हैं।

३१. मुनि कलाप्रभ सागरजी द्वारा सम्पादित 'श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रन्थ' (संवत् २०३९ में प्रकाशित) के उल्लेखानुसार शंखेश्वर गच्छ के आचार्य उदयप्रभ सूरि ने विक्रम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् ७९५ में श्रीमाल नगर में ६२ ब्राह्मण श्रेष्ठियों को प्रबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया। उन्हें श्रीमाल-ओसवाल जाति में शामिल किया। उनसे गुजरात के गौतम, हरियाण, कात्यायन, बंसीयाण एवं लाछिल आदि गोत्र बने। कालान्तर में उनसे अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हुई—जैसे महोता, भणशाली, गांधी, दोषी, बहोरा, पारेख आदि।

३२. प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता श्री डी० आर० भण्डारकर ने 'आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया' (१९०८-९) में प्रकाशित 'ओसिया के प्राचीन मन्दिर' आलेख में मन्दिर में उपलब्ध संवत् १०१३ के शिलालेख के आधार पर प्रतिहार शासक वत्सराज का समय विक्रम की ८वीं शताब्दी मानते हुए लिखा है कि ये मन्दिर अवश्य ही उस काल में प्रतिष्ठापित हुए होंगे। इन्हीं प्रतिहार शासक वत्सराज का उल्लेख उद्योतन सूरि रचित 'कुवलयमाला' में हुआ है। नई शोधों से कुवलयमाला का रचनाकाल विक्रम की ६ठीं शताब्दी ठहरता है। इसकी विशद समीक्षा ग्रंथ में अन्यत्र की गयी है। स्वभावतः उस समय ओसिया एक समृद्ध नगर रहा होगा।

३३. संवत् १०१३ के ओसिया मन्दिर के शिलालेख में प्रयुक्त 'समवत्सर दश शत्यामधिकायां वत्सरैस्त्रयो दशाभिः फाल्गुन शुक्ला तृतीया' में 'विक्रम' शब्द न होने के कारण संवत् को वीर संवत् मानें, जो भगवान् महावीर के निर्वाण से शुरू होता है तो वह विक्रम संवत् ५४३ के बराबर ठहरता है। यह नई शोधों पर आधारित शासक वत्सराज एवं उद्योतन सूरि के समय से भी मेल खाता है। यह शिलालेख उस उपकेश वंशीय श्रावक जिन्दक की, जिसने यह रंग मंडप बनवाया, समृद्धि का सूचक है।

३४. ओसिया के महावीर मन्दिर में सुरक्षित तोरण पर उत्कीर्णित अभिलेख में 'याते संवत्सराणां सुरमुनि सहित विक्रम .....गुरौ शुक्ल पक्षे पंचम्याम्....' पाठ द्रष्टव्य हैं। इसके आधार पर चण्डीगढ़ (पंजाब विश्वविद्यालय, पुरातत्व वविभाग) के प्रो० देवेन्द्र हाण्डा ने मन्दिर को विक्रम संवत् ७३३ में निर्मित माना है। प्राचीन काल में संख्या-सूचक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता था। अतः सुर यानि ३३ एवं मुनि यानि ७ अर्थ अभिप्रेत है। अस्तु, अवश्य ही तब तक ओसिया समृद्ध नगरी रही होगी।

३५. प्रो० हाण्डा ने 'कर्मयोगी केसरीमल सुराणा अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित 'ओसिया की प्राचीनता' आलेख में ओसिया स्थित श्री वर्धमान उच्च माध्यमिक विद्यालय की नींव खोदते वक्त प्राप्त कुछ सिक्कों का वर्णन किया है, जो ८वीं सदी के पूर्वार्ध में ओसिया पर आक्रमण करने वाले अरब शासक अहमद के हैं। ये सिक्के ओसिया के सेठ मंगलसिंह रतन सिंह देव की पेढ़ी ट्रस्ट में सुरक्षित हैं।

३६. आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, मैसूर के एपीग्राफिस्ट डा० के० वी० रमेश ने एक आलेख में ओसिया स्थित हरिहर मन्दिर के प्रांगण में सुरक्षित वि० सं० ८०३ एवं ८१२ के दो स्मारक लेखों का उल्लेख किया है। यह भी ओसिया की समृद्धि का ही सूचक है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

३७. ओसिया के उत्खनन में ऐसे संचयन भांड मिले हैं, जिन पर ब्राह्मी लिपि के अभिलेख हैं। ये संचयन भांड भी उक्त पेड़ी ट्रस्ट में सुरक्षित हैं। प्रो० हाण्डा के अनुसार ये भांड ईसा की दूसरी/तीसरी शताब्दी के हैं। इससे भी ओसिया की प्राचीनता सिद्ध होती है। प्रो० हाण्डा मानते हैं कि ङइस उपलब्धि से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ओसिया नगर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में अस्तित्त्व में था।ङ

३८. भाटों/भोजकों के प्राचीन कवित्तों में आभा नगरी के देशल-सुत जग्गा शाह की प्रशस्ति के कुछ कवित्त बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनका वर्णन हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके है। इन कवित्तों में जग्गा शाह के संघ समायोजन एवं दान की महिमा का बखान करते हुए अन्त में कवि ने कहा है

बीये बावीस भल जागियो, यो ओसवाल भूपाल।

यह कवित्त संवत् बीये बावीसे में ओसवाल श्रेष्ठि जग्गा शाह की समृद्धि की पुष्टि करता है अतः ओसवाल कुल की पूर्वोत्पत्ति स्वयंसिद्ध हो जाती है।

३९. देश के अनेक ग्रंथागारों एवं हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में ऐसे अनेक ग्रंथ एवं गुटके उपलब्ध हैं, जिनमें ओसवाल जाति की उत्पत्ति संवत् २२२ या ११९ में लिखी है। यह संवत् 'विक्रम संवत्' माना जाये या 'नन्दि संवत्' या 'वीर संवत्'—इस सम्बन्ध में विवाद है। इसे अगर नन्दि या वीर संवत् मानें तो यह 'वीरात् ७० वर्ष' वाली मान्यता के काफी निकट चला जाता है अगर इसे 'वीर संवत्' न भी माने तो यह उक्त इतिहासकारों की '९वीं/१०ववीं शताब्दी में ओसवाल जाति की उत्पत्ति' वाली अवधारणा के विरुद्ध एक बहुत बड़ा साक्ष्य है ही। भाटों की बीये बाईसे वाली मान्यता पर हम विशद चर्चा पहले ही कर चुके हैं।

यहाँ हम उन गुटकों का उल्लेख मात्र करेंगे, जिनमें ओसवाल जाति की उत्पत्ति 'संवत् २२२ या ११९ में हुई'—लिखा है :

१. नाहर ग्रन्थागार कलकत्ता में उपलब्ध 'भोजकों के दफ्तर' के कवित्त
२. एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में उपलब्ध ओसवाला री उत्पत्त रा कवित्त
३. एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में उपलब्ध बालाराम के छन्द
४. एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में उपलब्ध सेवग सुखराम के छन्द
५. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ६५५
६. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ११३३४
७. अभय ग्रंथालय, बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ७७६५
८. अभय ग्रंथालय, बीकानेर में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक ५०१
९. केलड़ी मन्दिर के ग्रंथागार में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक १२७५
१०. केशरीयानाथ जी मन्दिर, जोधपुर के ग्रन्थागार में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक २२
११. केशरीयानाथजी मन्दिर, जोधपुर के ग्रंथागार में उपलब्ध ग्रंथ क्रमांक २९/५७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४०. **कुंथुनाथजी मन्दिर**, जोधपुर के ग्रन्थ भण्डार में प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में गुटका क्रमांक ५/१०७ ओसवाल 'भीलडिया बोहराओं' की गोत्रोत्पत्ति विषयक है। इस ग्रंथ के पृष्ठ ८७ पर उनकी संवत् ५३५ से आरम्भ कर ४२ पीढ़ियों की वंशावली अंकित है, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

श्री गणेशाय नमः। संवत् ५३५ भीलडवा बौहरा सुँ
महाजन हुवा भट्टारक श्री चंदर सूर परमोदीया
आसधवल रौ बेटो बीजानन्द स्यूँ पीढ़ीयाँ री विगत...

विगत के अन्त में ग्रंथकार ने आसधवल जी की ३३वीं पीढ़ी में हुए श्रेष्ठि सोनोजी की प्रशस्ति अंकित की है। सोनोजी ने संवत् १३६५ में गिरनार एवं आबू तीर्थों के संघ समायोजित किये। उन्हें 'संघवी' पदवी से विभूषित किया गया।

ये उल्लेख ओसवाल जाति की तत्कालीन समृद्धि के सूचक हैं। इसमें शक नहीं कि उक्त 'महाजन' शब्द ओसवालों के लिए ही प्रयुक्त है। एक पीढ़ी सामान्य गणना में २५ वर्ष की मानी जाती है। इस पीढ़ी के क्रमानुसार तैंतिसवीं पीढ़ी में संवत् १३६५ में हुए श्रेष्ठि सोनोजी के पूर्वज आसधवलजी एवं उनके पुत्र बीजानन्द जी का समय संवत् ५३५ सही प्रतीत होता है। ये तथ्य ओसवाल जाति की विक्रम की छठ्ठी शताब्दी से पूर्वोत्पत्ति की ओर इंगित करते हैं।

४१. **राजस्थान की जातियाँ**—संवत् २०११ में प्रकाशित श्री बजरंगलाल लोहिया के शोध ग्रंथ 'राजस्थान की जातियाँ' में ओसवाल जाति का उत्पत्ति समय संवत् २८२ लिखा है। लोहिया जी ने इस ग्रंथ में कुछ विशिष्ट ओसवाल गोत्रों—महनोत, भण्डारी आदि का संक्षिप्त इतिहास भी दिया है।

४२. सं० १७८२ में लिखी एवं सं० १९३९ में प्रकाशित **'हरिचन्द्रिका'** एवं **'मोहन चन्द्रिका'** नामक ग्रंथों के उल्लेखानुसार वि० संवत् ४५७ के आस-पास दिल्ली प्रदेश पर 'मलूखचन्द बोहरा' का शासन था। उन्होंने समुद्रपाल के वंशज विक्रमपाल को हरा कर राज्य पर अधिकार किया था। मलूखचन्द के वंशजों की दस पीढ़ियाँ दिल्ली प्रदेश पर वि० संवत् ६५७ तक शासन करती रही। अंतिम वंशज गोविन्दचन्द की मृत्यु होने पर शासन सामन्तों के हाथों में चला गया। कर्नल टॉड ने अपने राजपूताने के इतिहास में मलूखचन्द बोहरा की दस पीढ़ियों का नामोल्लेख इस प्रकार किया है:—

मलूखचन्द—विक्रमचन्द—अमीनचन्द—मानकचन्द—रामचन्द—हरिचन्द—कल्यानचन्द—भीमचन्द—लोवचन्द—गोविन्दचन्द।

उक्त उल्लेख विक्रम की पांचवी सदी में ओसवाल महाजन कुल की समृद्धि एवं क्षमता के साक्ष्य है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४३. **माहेश्वरी कुल शुद्ध दर्पण**—शाह शिवकरण रामरतन दरक ने अपने सन् १८९२ में प्रकाशित माहेश्वरी जाति के इतिहास 'माहेश्वरी कुल शुद्ध दर्पण' ग्रंथ में भाटों का एक कवित्त जिसमें वीर निर्वाण के ७० वर्ष बाद ओसवाल उत्पत्ति का वर्णन है दिया है जो इस ग्रंथ में अन्यत्र उद्धृत किया जा चुका है। साथ ही उन्होंने ओसवालों की विक्रम संवत् २२२ में उत्पत्ति का भी जिक्र किया है।

समीक्षा

उपरोक्त साक्ष्यों में अधिकांश ऐसे हैं, जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है एवं उन्हें नकारा नहीं जा सकता। ये सभी ओसवाल जाति की 'वीरात् ७० वर्ष' यानि विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पूर्व उत्पत्ति की ओर इंगित करते हैं अथवा पुष्टि करते हैं। भाट/भोजकों की 'बीये बाईसे' वाली उक्ति भी संवत् को विक्रम संवत् न मानें तो इसी मान्यता का समर्थन करती है।

चन्द पुरातत्त्वेवत्ताओं एवं इने-गिने इतिहासकारों की ९वीं/१०वीं शताब्दी में ओसवाल जाति की उत्पत्ति वाली अवधारणा को मात्र कपोल कल्पना साबित करने के लिए ये साक्ष्य काफ़ी हैं। मैं पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस तर्क से सहमत हूँ कि इतिहास मात्र 'शिलालेख' नहीं हैं एवं शिलालेख के अभाव में इतिहास को नकारना तो कदापि उचित नहीं। पुरातत्त्व एवं इतिहास के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। कल शोधकर्मी या पुरातत्त्वज्ञ ऐसे पाजिटिव साक्ष्य प्रस्तुत कर दें, जिससे जाति की उत्पत्ति किसी अन्य समय हुई प्रमाणित हो तो इतिहासकार उसे मान्यता देगा ही।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

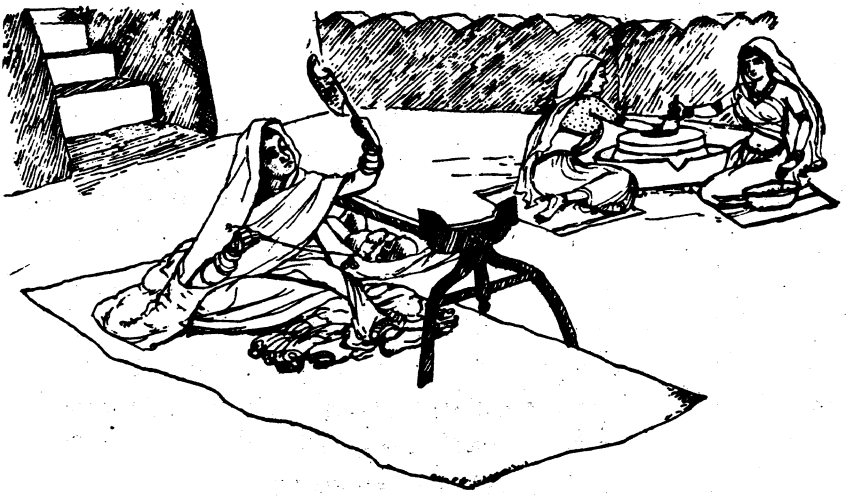

अध्याय

पंचम

गोत्र-विकास

ओसवालों के प्रथम १८ गोत्रों की स्थापना

उपकेशगच्छ के आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोधित उपकेश नगर में जैन धर्म अंगीकार करने वाले क्षत्रियों के आचार्य ने १८ गोत्र निर्धारित किये :

१ तातेहड़ (राजा के पिता का जिन्हें वे तातजी कहते थे)
२ कर्णाट।
३ बाफना।
४ बलहरा (बलाहा)।
५ मोराक्ष।
६ कुलहट।
७ विरहट।
८ श्रीमाल।
९ श्रेष्ठि (राजा का)।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१० सहचिंती या संचेती (राजा के प्रधान का)।
११ आईचणाग (आदित्यनाग)।
१२ भूरि (राजा के सेनापति का)।
१३ भाद्र।
१४ चींचट।
१५ कुंभट।
१६ डीडू।
१७ कन्नौज।
१८ लघु श्रेष्ठि (राजा के भाई का)।

खरतर यति रामलाल जी के ग्रंथ 'महाजन वंश मुक्तावली' में दी हुई १८ गोत्रों की उक्त तालिका मुनि ज्ञान सुन्दर जी की 'जैन जाति महोदय' एवं 'जैन जाति निर्णय' में दी हुई तालिका से हूबहू मिलती है, जो 'उपकेश गच्छ चरित्र' पर आधारित है। इन १८ मूल गोत्रों की प्रस्थापना का समय वीरात् ७० वर्षे यानि विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व माना जाता है।

कालान्तर में इन गोत्रों की अनेक शाखाएँ हुईं। ज्यों-ज्यों महाजन तादाद एवं प्रदेशों के लिहाज से फैलते गये, उनमें पूर्वजों के नाम पर, व्यापार के नाम पर, गाँवों के नाम पर अनेक उप-गोत्र होते गये एवं वे विभिन्न नामों से मशहूर हुए।

उपरोक्त १८ गोत्रों से निःसृत ४९८ शाखा गोत्रों की एक तालिका उपकेशगच्छीय मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने अपने ग्रंथ 'जैन जाति महोदय' में दी है, जो उपकेश गच्छ (जिसे कालान्तर में कमला गच्छ कहा जाने लगा) के आचार्यों एवं अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्रों की है:

१.मूलगोत्र तातेड़–तातेड़, तोडियाणि, चौमोला, कौसीया, धाववडा, चैनावत, तलवाडा, नरवरा, संघवी, डुँगरीया, चौधरी, रावत, मालावत, सुरती, जोखेला, पांचावत; विनायका, काढेरावा, नागडा, पाका, हरसोत, केलाणी। २२ जातियाँ तातेड़ों से निकलीं। यह सब भाई हैं।

२. मूलगोत्र बाफणा–बाफणा, (बहुफणा) नाहटा, (नाहटा, नावटा) भोपाला, भूतिया, भाभू, नावसरा, मुँगडिया, डागरेचा, चमकीया, चौधरी, जांघडा, कोटेचा, बाला, धातुरिया, तिहुयणा, कुरा, बेताला, सलगणा, बुचाणि, सावलिया, तोसटीया, गांधी, कोठारी, खोखरा, पटवा, दफ्तरी, गोडावत, कूचेरिया, बालीया, संघवी, सोनावत, सेलोत, भावड़ा, लघुनाहटा, पंचवया, हुडिया, टाटिया, ठगा, लघुचमकीया, बोहरा, मीठडीया, मारू, रणधीरा, ब्रह्मोचा, पाटलीया, वानुणा, ताकलीया, योद्धा, धारीला, दुद्धिया, बादोला, शुकनीया। ५२ जातियाँ बाफणों से निकलीं। ये आपस में भाई हैं।

३. मूलगोत्र करणावट–करणावट, वागडिया, संघववी, रणसोत, आच्छा, दादलिया, हुना, काकेचा, थंभोरा, गुँदेचा, जीतोत, लाभांणी, सखला, भीनमाला। करणावटों से १४ शाखाएं निकलीं। वे सब आपस में भाई हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४. मूलगोत्र बलाहा–बलाहा, राँका, वांका, शेठ, शेठिया, छावत, चोधरि, लाला, बोहरा, भूतेडा, कोठारी, लघु रांका, देपारा, नेरा, सुखिया, पाटोत, पेपसरा, धारिया, जडिया, सालीपुरा, चितोड़ा, हाका, संघवी, स कागडा, कुशलोत, फलोदिया। ये २६ शाखाएं बलाहा गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

५. मूलगोत्र मोरक्ष–मोरख, पोकरणा, संघवी, तेजारा, लघुपोकरणा, बांदोलीया, चुंगा, लघुचुँगा, गजा, चोधरि, गोरीवाल, केदारा वातोकडा, करचु, कोलोरा, शीगाला, कोठारी, ये १७ शाखाएँ मोरख गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

६. मूलगोत्र कुलहट–कुलहट, सुरवा, सुसाणी, पुकारा, मसांणीया, खेड़ीया, संघवी, लघु सुरवा, बोरडा, चोधरी, सुराणीया, साखेचा, कटारा, हाकडा, जालोरी, पालखीया, खूमाणा। ये १८ शाखाएँ कुलहट गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

७. मूलगोत्र विरहट–विरहट, भुरंट, तुहाणा, ओसवाला, लघुभुरंट, गागा, नीपत्ता, संघवी, निबोलिया, हांसा, धारीया, राजसरा, मोतीया, चोधरी, पुनमिया, सरा, उजीत। ये १७ शाखाएँ विरहट गोत्र से निकली हैं। वह सब भाई हैं।

८. मूलगोत्र श्रीमाल–श्री श्रीमाल, संघवी, लघुसंघवी, निलड़िया, कोटडिया, झावांणी, नाहरलांणि, केसरिया, सोनी, खेपर, खजानची, दानेसरा, उद्धावत, अटकलीया, धाकडिया, भीत्रमाला, देवड, माडलीया, कोटी, चंडालेचा, साचोरा, करवा। ये २२ शाखाएँ श्रीमाल गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

९. मूलगोत्र श्रेष्ठि–श्रेष्ठि, सिंहावत, भाला, रावत, बेद, मुत्ता, पटवा, सेवडिया, चोधरी, थानावट, चीतोडा, जोधावत्, कोटारी, बोत्थाणी, संघवी, पोपावत, ठाकुरोत्, बाखेटा, विजोत्, देवराजोत, गुँदीया, बालोटा, नागोरी, सेखाणी, लाखांणी, भुरा, गान्धी, मेड़तिया, रणधीरा, पातावत्, शूरमा। ये ३० शाखाएँ श्रेष्ठि गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१०. मूलगोत्र संचेति–संचेति (सुचंति साचेति) ढेलडिया, धमाणि, मोतिया, बिंबा, मालोत्, लालोत्, चोधरी, पालाणि, लघुसंचेति, मंत्री, हुकमिया, कजारा, हीपा, गांधी, बेगाणिया, कोटारी, मालखा, छाछा, चितोडिया, इसराणि, सोनी, मरचा, घर घटा, उदेचा, लघुचोधरी, बापावत्, संघवी, मुरगीपाल, कीलोला, लालोत्, खरभंडारी, भोजावत्, काटी, जाटा, तेजाणि, सहजणि, सेणा, मन्दिर वाला, मालतीया, भोपावत्, गुणिया। ये ४४ शाखाएँ संचेती गोत्र ने निकलीं। वह सब भाई हैं।

११. मूलगोत्र आदित्यनाग–आदित्य नाग, चोरडिया, सोढाणि, संघवी, उडक मसाणिया, मिणियार, कोटारी, पारख, पारखों से भावसरा, संघवी, ढेलडिया, जसाणि, मोल्हाणि, नडक, तेजाणि, रुपावत्, चोधरी, गुलेच्छा, गुलेच्छों से दोलताणी, सागाणि, संघवी, नापडा, काजाणि, हुला, सेहजावत्, नागडा, चित्तोडा, चौधरी, दातारा,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मीनागरा, सावसुखा, सावसुखा से मीनारा, लोला, वीजाणि, केसरिया, वला, कोटारी, नांदेचा, भटनेराचोधरी, भटनेरा-चोधरियों से कुँपावत, भंडारी, जीमणिया, चंदावत, सांभरिया, कानुँगा, गदईया, गदईयों से गेहलोत्, लुगावत्, रणशोभ, बालोत्, संघवी, नोपत्ता, बुचा, बुचों से सोनारा, भंड, लिया, करमोत्, दालीया, रत्नपुरा, चोरड़िया, चोरडियों से नाबरिया, सराफ, कामाणि, दुदधोणि, सीपांणि, आसाणि, सहलोत्, लघु, सोढाणि, देदाणि, रामपुरिया, लघु पारख, नागोरी, पाटणिया, छाडोत्, ममइया, बोहरा, खजानची, सोनी, हाडेरा, दफ्तरी, चोधरी, तोलावत्, राब, जोहरी, गलाणि, इत्यादि। ये ८५ शाखाएँ आदित्यनाग गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१२. मूलगोत्र भूरि–भूरि, भटेवरा, उडक, सिंधि, चोधरी, हिरण, मच्छा, बोकड़िया, बलोटा, बोसूदीया, पीतलीया, सिंहावट्, जालोत्, दोसाखा, लाडवा, हलदीया, नाचाणि, मुरदा, कोटारी, पाटोतीया। ये २० शाखाएँ भूरि गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१३. मूलगोत्र भद्र–भद्र, समदडिया, हिंगड, जोगड, लिंगा, खापाटीया, चवहेरा, बालडा, नामाणि, भमराणि, देलडिया, संघी, सादावत्, भांडावत्, चतुर, कोटारी, लघु समदडिया, लघु हिंगड, सांढा, चोधरी, भाटी, सुरपुरीया, पाटणिया, नांनेचा, गोगड, कुलधरा, रामाणि, नथावत्, फलगरा। ये २९ शाखाएँ भद्र गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१४. मूलगोत्र चिंचट–चिंचट, देसराडा, संघवी, ठाकुरा, गोसलांणि, खीमसरा, लघु चिंचट, पाचोरा, पुर्विया, निसांणिया, नौपोला, कोठारी, तारावाल, लाडलखा, शहा, आकतरा, पौसालिया, पुजारा, बनावत्। ये १९ शाखाएँ चिंचटगोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१५. मूलगोत्र कुँभट–कुमट, काजलीया, धनंतरि, सुँधा, जगावत्, संघवी, पुगलिया, कठोरिया, कापुरीया, चोखा, सोनीगरा, लाहोरा लाखाणी, मरवाणि, मोरचिषा, दलीया, मालोत्, लघुकुँभट, नागोरी। ये १९ शाखाएँ कुँमट गोत्र से निकलीं। यह सब भाई हैं।

१६. मूलगोत्र डिडू–डिडू, राजोत्, सोसलाणि, धापा, धीरोत्, खंडिया, योद्धा, भाटिया, भंडारी, समदरिया, सिंधुडा, लालन, कोचर, दाखा, भीमावत, पालणिया, सिखरिया, वांका, वडवडा, वादलीया, कानुंगा। ये २१ शाखाएँ डिडू गोत्र से निकलीं। वह सब भाई हैं।

१७. मूलगोत्र कन्नोजिया–कन्नोजिया, वडभटा, राकावाल, तोलीया, धाधलिया, धेवरीया, गुँगलेचा, करवा, गढवाणि, करेलिया, राडा, माठा, भोपावत, जालोरा, जमघोटा, पटवा, मुशलीया। ये १७ शाखाएँ कन्नोजिया गोत्र से निकलीं। यह सब भाई हैं।

१८. मूलगोत्र लघुश्रेष्ठि–लघुश्रेष्ठि, वर्धमान, भोभलीया, लुणेचा, बोहरा, पटवा, सिंधी, चित्तोडा, खजानची, पुनोत, गोधरा, हाडा, कुबडिया, लुणा, नालेरीया, गोरेचा। ये १६ शाखाएँ लघुश्रेष्ठि से निकलीं। वह सब भाई हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपरोक्त तालिका आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपट्टण (ओसिया) में बनाये गये ओसवालों की है। आचार्य ने अन्य स्थानों पर भी अनेक जैनी बनाकर महाजन वंश में शामिल किये। श्री सुख सम्पतराय भंडारी ने भी अपने 'ओसवाल जाति का इतिहास' ग्रन्थ में उक्त तालिका उद्धृत की है।

आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा अन्य स्थानों में बनाये ओसवाल गोत्र एवं उनकी शाखाएँ

१. मूलगोत्र चरड- चरड, कांकरीया, सानी, कीस्तुरीया, बोहरा, अछुपत्ता, पारणिया, संघवी, वरसांणि।

२. मूलगोत्र सुघड- सुघड, संडासिया, करणा, तुला, लेरखा।

३. मूलोत्र लुंग- लुँग, चंडालिया, भाखरीयो, बोहरादि।

४. मूलगोत्र गटिया- गटिया, टीबाणी, काजलीया, रांणोत।

उपकेशगच्छीय आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित अन्य गोत्र

जैन धर्म जिस तरह अनेक सम्प्रदाय, उप सम्प्रदाय, गच्छ, गण, आदि में विभक्त होता गया, सभी आचार्यों ने अनेक अजैनों को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया। उन्हें जैनों की प्रमुख श्रावक जातियों—ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल जातियों में से किसी एक में शामिल किया एवं उनके नये गोत्रों की प्रतिस्थापना की। आचार्य रत्नप्रभ सूरि के पश्चात् उनकी परम्परा के अन्युपकेश गच्छाचार्यों ने प्रतिबोंध दे ओसवालों के जिन नये १८ गोत्रों की स्थापना की वे अपनी शाखाओं सहित इस प्रकार हैं:

१. मूलगोत्र आर्य—लुणावत, संधवी, सिन्धुडा।

२. मूलगोत्र काग।

३. मूलगोत्र गरुड़—धाडावत, चापड।

४. मूलगोत्र सालेचा—बोहरा, जोधावत, बनावत, गांधी, कोटारी, पाटणीया, चोधरी,

५. मूलगोत्र बागरेचा—सोनी, संधि, जालोरा।

६. मूलगोत्र चोपड़ा—कुंकमचोपड़ा, धूपिया, कुकड़ा, गणधर, चोपड़ा, जाबलीया, बलवटा।

७. मूलगोत्र सफला—बोहरा, सांडिया, जालोरा, कोटारी, भलभला।

८. मूलगोत्र नक्षत्र—धीया, संघवी, खजानची।

९. मूलगोत्र आभड—कांकरेचा, कुबेरिया पटवा, चोधरी, कोठारी, सांभरिया, संधिमेहता।

१०. मूलगोत्र छावत—कोणेजा, गटीयाला, लेहेरीया चोहान।

११. मूलगोत्र तुंड—वागमार, फलोदीया, हरसोरा, ताला, साचा-संधि।

१२. मूलगोत्र पछोलिया—पीपला, बोहरा, रूपावत, नागोरी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१३. मूलगोत्र हथुडीया—छपनिया, रातडीया, गौड, राणावत्।
१४. मूलगोत्र मंडोवरा—रत्नपुरा, बोहरा, कोटारी।
१५. मूलगोत्र मल—मला, वीतरागा, कीडेचा, सोनी।
१६. मूलगोत्र गुदेचा—गगोलीया, वागाणी।
१७. मूलगोत्र छाजेड़—संघवी, नखा, चावा।
१८. मूलगोत्र राखेचा—पुंगलीया, पावेचा, धामाणि।

उपकेश गच्छीय आचार्यों द्वारा प्रतिबोध ले या जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल बनने वाली उपरोक्त जातियों का उद्भव काल ७ वीं से १२ वीं शताब्दी के बीच है। ये सभी कौमें पूर्वकाल में क्षत्रिय/राजपूत थीं। अनेक इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं ने उन्हें आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोधित १८ मूलगोत्र मानकर यह तर्क दिया है कि ये राजपूत कौमें पहले रत्नप्रभ सूरि (वि० पूर्व ४००) के समय अस्तित्व में ही नहीं थीं, अतः उनका जैन बनाया जाना भ्रम पूर्ण है। आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोधित १८ मूलगोत्र सर्वथा भिन्न हैं। अन्य उपकेश गच्छीय आचार्यों द्वारा ७वीं सदी से १२ वीं के बीच जिन राजपूत कौमों को ओसवाल बनाकर १८ नये गोत्र बनाये, उनकी पूर्व जाति, ग्राम रूपान्तर का समय एवं प्रतिबोध देने वाले आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं:

गोत्र	आदिपुरुष	पूर्वजाति	ग्राम	प्रतिबोधक आचार्य	वि०स०
१. आर्य	राव गौसल	भाटी	अटवड	देवगुप्तसुरि	६८४
२. छाजेड़	राव काजल	राठोड	शिवगढ़	सिद्धसूरि	९४२
३. राखेचा	रावराखेची	भाटी	कालेर	देवगुप्तसूरि	८७८
४. काग	पृथ्वीधर	चौहान	धामाग्राम	कक्कसूरि	१०११
५. गरुड़	महाराय	चौहान	सत्यपुर	सिद्धसूरि	१०४३
६. सालेचा	सालमसिंह	सोलंकी	पाट्टण	सिद्धसूरि	९१२
७. वागरेचा	गजसिंह	चौहान	वागरा	कक्कसूरि	१००९
८. कुँकुम	अडकमल	राठोड़	कन्नौज	देवगुप्तसूरि	८८५
९. सफला	लांखणसि	चौहान	जालोर	सिद्धसूरि	१२२४
१० नक्षत्र	मदनपाल	राठोड़	वटवाडाग्राम	कक्कसूरि	९९४
११. आभड़	रावआभड़	चौहान	सांभर	कक्कसूरि	१०७९
१२. छावत	रावछाहड	पंवार	धारानगरी	सिद्धसूरि	१०७३
१३. तुँड	सूर्यमल	चौहान	तुँडग्राम	सिद्धसूरि	९३३
१४. पीच्छोलिया	वासुदेव	गौड	पाल्हणपुर	देवगुप्तसूरि	१२०४
१५. हाथुडिया	राउ अभय	राठोड	हथुडि	देवगुप्तसूरि	११९१
१६. मंडोवरा	देवराज	पडिहार	मंडोर	सिद्धसूरि	९३५
१७. मल	मलवराव	राठोड	खेडग्राम	सिद्धसूरि	९४९
१८. गुँदेचा	राव लाधी	पडिहार	पावागढ़	देवसूरि	१०२६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपरोक्त मूलगोत्रों एवं शाखा प्रशाखा जातियों को प्रतिबोध देनेवाले आचार्य उपकेश गच्छ यानि कमला गच्छ के थे। प्रायः इन सब जातियों की वंशावलियाँ भी उपकेश (कमला) गच्छ की पोशालों वाले महात्मा लिखते हैं।

कमला गच्छीय महात्माओं की पोशालें बीकानेर, नागोर, खजवाणा, खीवसर, संखवाय, मेडता, जोधपुर, पाली, बूँदी, नरवर, आनन्दपुर (कालू), जसनगर (केकीन्द) वैड, लाबीयों, जैतारण, रास, आमेट, केलवा, पादडी, पीपलोद, लाहेवे, सोजत, राजनगर, पीपलाज, हुरडे, सादडी, चौकडी, पालासणी, कोटा, माधपुर, ईडवे, सेथणे, जैपुर, सांगानेर, छीपीये, रामपुर, चौंणद, भणाय, कणेडे, आदि स्थानों पर हैं।

अन्य जैन सम्प्रदायों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र

उपकेश गच्छ (कमला गच्छ) के अलावा अन्य जैन सम्प्रदायों एवं गच्छों ने भी अनेक जैनेतर लोगों को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया एवं उन्हें उपकेश वंश (कालांतर में ओसवंश) में शामिल किया। उनकी तालिका उक्त गच्छ एवं सम्प्रदाय की बहियों एवं वंशावलियों के अनुसार निम्न प्रकार है। इनमें अनेक नाम एक से अधिक गच्छ या सम्प्रदाय की तालिका में आ गये हैं, जिसका कारण समय-समय पर उक्त गोत्र का विभिन्न गच्छों का उपासक होना है।

कोरंट गच्छोपासक ओसवालों के गोत्र—मांडोत, सुन्धेचा, ध्रुवगोता, रातडिया, बोत्थरा (बच्छावत मुकीम फोफलीया) कोठरी, कोटड़िया, धाड़िवाल, धाकड़, नागगोत्ता, नागसेठिया, धरकट, खींवसरा (मथुरा) सोनेचा, मकवाणा, फीतुरीया, सबीया, सुखीया, संकलेचा, डागलिया, पांडुगोता, पोसालेचा, सहाचेती, नागण, खीमाणदीया, बडेरा, जोगणेचा, सोनाणा, जाडेचा, चिंचड़ा, कपुरिया, निंबाडा, बाकुलिया। ये ३४ गोत्र हैं। इन गोत्रों से भी अनेक शाखाएँ निकली हैं। कोरंटगच्छ पोशालावाले इन जातियो की वंशावलि लिखते हैं।

वृहत्तपागच्छ या नागपुरिया तपागच्छोपासक ओसवालों की जातियाँ : (१) गोलाणी, नौलखा, भुतेडीया, (२) पीपाडा, हीरण, गोगड़, शिशोदीया, (३) रूणिवाला, वेगाणी, (४) हींगड़, लिंगा, (५) रायसोनी, (६) झामड, झाबक, (७) छजलाणी, छलाणी, घोडावत, (८) हीराउ, केलाणि, (९) गोखरू, चोधरी, (१०) राजबोहरा, (११) छोरीया, सामडा (१२) श्रीश्रीमाल, (१३) दूगड, (१४) लोढा, (१५)सुरिया-मठा (१६) जोगड, नक्षत्र, (१७) नाहार, (१८) जडिया। इन अठारह मूलगोत्रों तथा इनकी शाखाओं की वंशावलि खराडी बलूँदी, पांदु, नागोर के तपागच्छीय महात्मा लिखते हैं।

वरडिया, वरदिया, वरहुडिया, बांठीया, चामड़, कवाड, शाह, हरखावत, लालाणि, गांधी, राजगांधी, वेदगान्धी, सराफ, लुंकड, बुरड़, संधि, मुनौत, गोलीया, ओस्तवाल, कछोला, मरडेचा, सालरेचा, मादरेचा, लोलेचा, भला, विनायकीया, कोठारी, मीत्री, खटोल, चोधरी, सोलंखी, आंचलीया, गोठी, क्षत्रीया, डफरिया, गुजराणी, इत्यादि। इन सब जातियों का तपागच्छ हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आंचलगच्छोपासक ओसवाल जातियां—गाल्हा, आथागोत, बुहड, कटारिया, रत्नपुरा, वडेरा, कोटेचा, सुभद्रा, बोहरा, नागडा, मीठडीया, वडोरा, गन्धी, देवानंदा, गोतमगोत्ता, दोसी, लालन (डोसी)सोनीगरा, कांटीया, हरिया, देडिया, बोरेचा, स्याला, धरबेला। इन मूलगोत्रों से कई शाखाएँ भी निकली हैं। इन सब जातियों का गच्छ आंचल गच्छ है।

मलधारगच्छोपासक—पगारीया, कोठारी, बंब, गंग, गीरीया, गेहेलडा, चंडालिया खींवसरा।

पुनमियागच्छोपासक—सांढ, सीयाल, सालेचा, पुनमिया।

नाणावालागच्छ—रणधीरा, कोठारी, ढड्ढा, श्रीपति, तिलेरा, कावडिया।

सुराणागच्छोपासक—सुराणा, संखला, वणवट, मिटडियासोनी, उस्तबाल, खटोड, नाहार।

भावहड़ागच्छोपासक—डागा, मालू, आघरिया।

पल्लिवालगच्छोपासक—धोखा, बोहरा, डुंगरवाल।

कंदरसागच्छोपासक—खाबिया, गंग, बंब, दुधेडिया, कठोतीया।

सांडेरावगच्छोपासक—गुगलिया, भण्डारी, चतुर, धारोला, कांकरेचा, बोहरा, दुधेडिया, शिशोदीया।

चित्रवालगच्छोपासक—भंडशाली, अलंझड़ा, अरणोदा।

चैत्यवासीगच्छोपासक—खारा, खारीवाल, लूनिया, निबड़िया, मंत्री, सूरमा।

पीपलगच्छोपासक—पीपला, पीतलिया, सोनीगरा।

उपरोक्त जातियों में संघवी, चोधरी, बोहरा, खजानची, कोठारी, आदि के नाम बहुत से गोत्रों में आते हैं। वह तीर्थों के लिए संघ निकालने या बोहरागत या चौधर या कोठार का काम करने से हुआ है।

मध्यकालीन आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र

अनेक गोत्रों का विशिष्ट आचार्यों द्वारा प्रतिस्थापित होना शिलालेखों एवं ग्रंथों के उल्लेखों के आधार पर निश्चित है।

१. आचार्य बप्प भट्ट सूरि (वि० सं० ८०० से ८९५) ने आम राजा को प्रतिबोध देकर राजा की व्यवहारिका रानी के पुत्रों का राज कोष्ठागार वंश स्थापित किया। ये कालान्तर में कोठारी कहलाए।

२. आचार्य नेमिचन्द सूरि ने मालव देश में सं० ९५४ में बरड़िया गोत्र की स्थापना की।

विक्रम की दसवीं से सतरहवीं शताब्दी के बीच खरतर गच्छ के अनेक प्रभावी आचार्य हुए, जिन्होंने ओसवंश की श्रीवृद्धि के अथक प्रयास किये।

कुछ विशिष्ट आचार्यों एवं उन द्वारा प्रस्थापित गोत्रों के नाम निम्नांकित हैं:

१. खरतर गच्छ के जनक श्री जिनेश्वर सूरि के गुरु एवं प्राकृत ग्रन्थ कुवलयमाला

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के रचयिता आचार्य उद्योतन सूरि के शिष्य श्री वर्द्धमान सूरि ने वि० सं० १०२६ में संचेती गोत्र वि० सं० १०२७ में लोढ़ा एवं पीपड़ा गोत्रों की स्थापना की।

२. जिनेश्वर सूरि-(समय सं० १०६१-११११) ने श्रीपति ढढा, तिलेरा, भणसाली गोत्रों की स्थापना की।

३. अभय देव सूरि ने (समय सं० १०७२-११३५) खैतसी, पगारिया, मेड़तवाल गोत्रों की स्थापना की।

४. हेमचन्द सूरि- (समय सं० ११४५-११२९) ने सांखला, सुराणा, सियाल, सांठ सालेचा, पुनमिया गोत्रों की स्थापना की।

५. जिन वल्लभ सूरि- (समय सं० ११५६-११६७) ने चोपड़ा, गणधर, बडेर, कुकड, सांढ़, बांठिया, ललवाणी, बरमेचा, हरखावत, मल्लावत, साह, सोलंकी, कांकरिया, सिंघी आदि गोत्रों की स्थापना की।

६. जिनदत्त सूरि (समय सं० ११३२-१२११) ने खाडेवा, पाटेवा, टांटिया, कोठारी, बोरड़, खीमसरा, समदरिया, कठोतिया, रत्नपुरा, कटारिया, ललवाणी, डागा, मालू मोमू, सेठी, सेठिया, रंक, बोक रांका, बांका, सालेचा, पूगलिया, चोरड़िया, सावैणसुखा, गोलेछा, लूनिया, चंडालिया, आवेड़ा, खटोल, गड़वाणी, मेड़गतिया, पोकरणा, आदि गोत्रों की स्थापना की।

७. जिनचन्द्रसूरि- (समय सं० ११९७-१२२३) ने अछारिया, छाजेड़, मित्री, खजांची, भूगंडी, श्रीमाल, सालेचा, दूगड़, सूघड़, शैखाणी, कोठारी, आलावत पालावत आदि गोत्रों की स्थापना की।

८. जिनकुशलसूरि- (समय सं० १३३०-१३८९) ने बावेला, संघवी, जड़िया, डागा आदि गोत्रों की स्थापना की।

९. श्री भद्र सूरि ने संवत् १४७८ में भंडारी गोत्र की स्थापना की।

१०. श्री जिनहंससूरि ने सं० १५५२ में गेहलड़ा गोत्र की स्थापना की।

११. श्री जिनभद्रसूरि ने सं० १५७५ में झाबक, झामक, झाबड़ गोत्रों की स्थापना की।

१२. श्री रविप्रभ सूरि ने लोढ़ा गोत्र, मानदेव सूरि ने नाहर गोत्र, जयप्रभसूरि ने छलानी और घोड़ावत गोत्रों की स्थापना की।

गोत्रों के नामकरण के विशेष हेतु

ओसवाल जाति में अनेक प्रशाखाओं के नामकरण से ऐसा लगता है कि इनमें शूद्र जातियां भी शामिल थीं— जैसे चंडालिया, ढेढिया, बलाई, चामड़िया। ऐसे नाम माहेश्वरी जाति में भी हैं जैसे-सुड़दा, चंडक, भूतड़ा, काबरा, बुब, सारडा। पर इससे उनका शूद्र होना सिद्ध नहीं होता। चंडालिया मूलतः चौहान वंशीय क्षत्रिय थे। चंडालिन देवी की आराधना से ऐसा नाम पड़ा हो—यह सम्भव है। ढेढिया ग्राम में आने के कारण 'ढेढिया' हुआ, जो मूलतः पवार राजपूत थे। चामड़ ग्राम में होने के कारण चामड़िया हुए, ये भी पंवार राजपूत थे। वैसे मूलतः जैनधर्म जातिवाद एवं वर्ण व्यवस्था का विरोधी रहा है। भगवान् महावीर का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्पूर्ण अभियान ही इसके विरोध में था। हरिकेशी चाण्डाल जैनधर्म में दीक्षित होकर सबका पूज्य बना। अतः जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोध पाकर जैन हुई कौमों में चारों ही वर्ण रहे हों, यह अस्वाभाविक नहीं है। आगे चलकर उनमें भी ब्राह्मणों के प्रभाव से जातीयता आई हो एवं वे भी शूद्रों को अपने से नीची कोटि का मानते रहे हों—यह हो सकता है।

ओसवालों की अनेक जातियों के नाम पशुओं पर है जैसे—सांड़, सियाल, नाहर, कान, बगुला, कुर्कट, मिन्नी, चील, गदइया, हंसा, मच्छा, बोकड़िया, हीरण, बागमार, बकरा, लुँकड़, गजा, घोड़ावत, घोड़ीवाल, धोखा, मुर्गीपाल, बाघचार आदि। यह नामकरण उक्त पशु के संदर्भ में किसी विशेष घटना या व्यवसाय का द्योतक है।

ओसवाल जातियों के अनेक नाम निवास-स्थान के आधार पर हैं। जैसे—हथुडिया, साचोरा, जालोरी, सिरोहिया, रामसैण, नागौरी, भणसाली, खाटेड़, पूँगलिया, रामपुरिया, फलोदिया, मेडतिया, मंडोवरा, जीरावाला, गुदोचा, नरवरा, कोटेचा, कांकरिया, सेडरा, रत्नपुरा, रूणिवाड, हरसौरा, मोपाल, कुचेरिया, बोरुदिया, पीपाड़ा, भटेवरा, आहाड़ा, मारु ओस्तवाल, देवपुरा, डूंगरपुरिया, जावंरिया, नरसिंहपुरा, पालीवाल, कठालिया, डूँगरवाल कर्णावट, गलूंडिया, कछारा, गौठवाड़ा, डांगी, सिंगरवाडिया, रुणवाला, भिन्नमाल, चीतोड़ा, मटनेरा, संगरिया, पाटणि, खींवसरा, चामड़, मेड़तवाल, हालाखंडी, झवक, डेढ़िया, श्रीमाल आदि।

ओसवालों की अनेक जातियों के नाम राजकर्म या उपाधि के अनुसार पड़े। जैसे—मोदी, भंडारी, कोठारी, खजांची, कामदार, पोतदार, चौधरी, पटावरी, सेठ, मुँथा, हाकिम, कानूनगो, शूखा, रणु, धीरा, बोहरा, दफ्तरी, पगारिया, महता, बोहित्थरा, सेल्होत, बेताला, नानावटी, कावडिया, मंत्री, गन्ना, सिंघवी, सेठिया, साहु, वेद, साहनी

व्यापार के नाम पर बनी ओसवाल जातियाँ हैं—लूणिया, पटवा, घीया, गूगालि, मारोलिया, कपूरिया, गूँगालिया, नालेरिया, सोनी, चामड़, गान्धी, जड़िया, बोहरा, गूंदिया, मणियार, तिलेरा, बजाज, केसरिया, जौहरी, मीनारा, सराफ, फंबरी, पितलिया, मंडोलिया, धूपिया, हिरण, तिलेसरा, कपासी, किनोलिया, रांका, बया, दोषी, भण्डशाली, संचेती आदि।

अनेक जातियाँ, जो दक्षिण की ओर गयीं, उनके नाम अवस्थितियों के अनुसार पुकारे जाने लगे—कोटेचा, डांगरेचा, ब्रह्मेचा, (बरमेचा) बागरेचा, कांकरेचा, सालेचा, प्रामेचा, पावेचा, पालरेचा, नादेचा, संभलेचा मादरेचा, मुगुलेचा, गुँदेचा, कडेचा, सुधेचा आदि।

पूर्वजों या पिता के नाम पर बहुत सी जातें बनीं। जैसे—मालावत, चम्पावत, भूजावत, हरखावत, माडावक, दस्सानी, डुंगरानी, खेतानी, बखतावत, डागा, यातावत, सिंहावत, सेलाणि, लालाणि, धमाणि, तेजाणि, दुधाणि, आसाणी, लालवाणी, गंग, दुधोड़िया, मालु, डुँगरानी, सीपाणी, बेगाणी, वासाणि, जनाणि, निमाणी आदि।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माहेश्वरी जाति से बने ओसवाल गोत्र

माहेश्वरी और ओसवाल दोनों ही जातियों के मूल स्रोत क्षत्रिय थे। कालांतर में जैन धर्म के प्रभाव से हिंसा छोड़ कर ये व्यवसायी बने। इन दोनों जातियों की उत्पत्ति भी राजपूताने की विभिन्न क्षत्रिय कौमों से मानी जाती है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुनि जिन विजय जी के अनुसार 'एक समय राजपूताने एवं गुजरात के कतिपय प्रतिष्ठित कुटुम्बों में जैन और शैव दोनों धर्मों का पालन किया जाता था, किसी गृहस्थ का पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव और किसी का मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। उनके सामाजिक विधि-विधान सब ब्राह्मणों द्वारा ही सम्पन्न कराये जाते थे।'

खंडेला के राजा खड़गल सेन के पुत्र सुजान कुंवर माहेश्वरी समाज के आदि पुरुष माने जाते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार एक दिन सुजान कुंवर ७२ उमरावों के साथ कहीं जा रहे थे। राह में यज्ञ में पशुओं की बलि होते देखी। हिंसा के इस चक्र को उन्होंने नष्ट कर दिया किन्तु ब्राह्मण ऋषियों के श्राप से वे पाषाण बन गये। सुजान कुंवर की युवा पत्नि चन्द्रावती के तप और प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान महेश और पार्वती ने उन पाषाणों में प्राण संचारित किये। तभी से उनकी संतानें माहेश्वरी कहलायीं। उन्होंने शस्त्र छोड़ तराजू ग्रहण किया यानि क्षत्रिय से वैश्य बने। इस तरह जैन और शैव संस्कृतियों का मिला-जुला संस्करण माहेश्वरी हैं। 'माहेश्वरी कल्पद्रुम' के लेखक श्री शिवचरण जी दरक के अनुसार उक्त ऐतिहासिक घटना विक्रम की ८वीं/१०वीं शताब्दी के बीच हुई होगी। वैसे किंवदन्ती यह भी है कि माहेश्वरी जाति महाभारत काल में यानि ४८०० वर्ष पूर्व उत्पन्न हुई थी।

विक्रम की १२ वीं शताब्दी में एवं उसके बाद माहेश्वरी जाति के अनेक गोत्र जैन धर्म मानने वाली क्षत्रियों से महाजन बनी मुख्य जाति 'ओसवाल' में आ मिले।

विक्रम संवत् ११९२ में माहेश्वरी जाति के मूँदड़ा गोत्रीय सेठ हाथी शाह मुल्तान राज्य के दीवान थे। उनके पुत्र लूणाजी को सांप ने डस लिया। आचार्य जिनदत्त सूरि जी ने उन्हें जीवन दान दिया। जैन धर्म अंगीकार करवा कर उनका लूणिया गोत्र निर्धारित किया एवं उन्हें ओसवाल बनाया। कालांतर में इस गोत्र के वंशज मुल्तान से फलौदी आकर बसे।

माहेश्वरी जाति के राठी गोत्रीय भाभूजी नामक श्रेष्ठि रतनपुर के राजा रतन सिंह के खजांची थे। राज्य के दीवान माल्हदेव के लड़के को अधंगी रोग हो गया। उसे आचार्य जिनदत्त सूरि ने रोगमुक्त किया। उनके उपदेशों से प्रभावित हो भाभूजी और माल्हदेव ने जैन धर्म अंगीकार किया। भाभूजी की संतानों से ओसवालों का भाभू गोत्र बना। माल्हदेव के वंशजों का मालू गोत्र निर्धारित हुआ। उनके साथ ही माहेश्वरी जाति के डागा गोत्रीय अनेक परिवार जैन बने। उनका डागा गोत्र निर्धारित हुआ। वे सभी ओसवाल जाति में शामिल हुये।

माहेश्वरी जाति के ही लढ़ा गोत्रीय श्री नवाजी को आचार्य ब्रह्ममान सूरि ने उपदेश देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया। उनकी संतानें लोढ़ा कहलाईं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माहेश्वरी जाति के बाहेती गोत्रीय श्री खेताजी के दो पुत्र थे : लाला और भीमा। दोनों नवाब लोदी रूस्तम के खजाने का काम देखते थे। उन्होंने करोड़ों रुपये का माल बिरादरी के लोगों एवं ब्राह्मणों को बांटा। नवाब ने दोनों को गिरफ्तार कर लिया। वे किसी तरह जेल से निकल भागे। अनेक दिन तपा गच्छ के उपाश्रयों में छिप कर रहे। उन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया एवं लूंकड़ (लुक कर रहने से) कहलाने लगे।

नागौर में माहेश्वरी जाति के मूँदड़ा गोत्रीय एक श्रेष्ठि रहते थे। उनका पुत्र गायब हो गया। जैन संत देवाल जी के बताने से वह जंगल में नाहर (सिंह) के पास पड़ा मिला। श्रेष्ठि ने जैन धर्म स्वीकार किया। उनका गोत्र नाहर हुआ।

विक्रम संवत् ११७९ में मंडोवर के परिहार राजा नानद को एक जैनाचार्य के वरदान स्वरूप पुत्र प्राप्ति हुई। राजा के साथ प्रजा ने भी जैन धर्म स्वीकारा। उनमें अनेक ब्राह्मण एवं माहेश्वरी परिवार भी थे।

सिरोही में माहेश्वरी जाति के मोहता गोत्रीय श्री डीडा जी ने जैन धर्म स्वीकार किया। उनका डीडू गोत्र हुआ।

विक्रम संवत् १०१६ में माहेश्वरी जाति के लढ़ा गोत्रीय कुछ परिवार जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल बने। उनको तातेड़ गोत्र में शामिल किया गया।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उपरोक्त गोत्रों के अलावा माहेश्वरी और ओसवाल जातियों के अन्य अनेक गोत्रों के नाम भी एक जैसे हैं। माहेश्वरी जाति में भी गदइया, गेलड़ा, गट्टाणी, खटवड, पूँगलिया, सुखानी, गाँधी, सिंगी, पटवा, सोनी, कोठारी, नौलखा, नागोरी, चौधरी, फोफलिया, भंडारा, भंसाली, भूतड़ा, मंडोवरा धीया, मोदी, सेठ, सेठी, मूँथा, आदि गोत्र या खापे हैं। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि दोनो जातियों का मूल स्रोत एक ही है एवं सांस्कृतिक विरासत समान है।

ओसवालों के अनेक गोत्र माहेश्वरी परिवारों के जैनधर्म अंगीकार कर लेने से बने हैं। परन्तु मध्यकाल में किसी ओसवाल श्रेष्ठि द्वारा जैन धर्म छोड़ कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लेने एवं महेश्वरी कुल में शामिल होने के उदाहरण कम हैं। श्री शिवकरण रामरतन दरक ने अपने ग्रंथ 'इतिहास कल्पद्रुम' (विक्रम संवत् १८९२ में प्रकाशित) में ओसवाल चोपडा गोत्र से बने महेश्वरी 'मंत्री' गोत्र का विस्तार से वर्णन किया है। दरक जी के अनुसार संवत् ४२५ में महेश्वरी श्रेष्ठी राठी गोत्रीय साह चौथ जी ने ओसिया नगर में एक विराट् वैश्य-यज्ञ का आयोजन किया। इस उत्सव पर उन्होंने अपने मित्र मारवाड़ के रहण ग्राम निवासी चोपड़ा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि श्री धर्मपाल को भी आमंत्रित किया। धर्मपाल जी उस यज्ञ समायोजन की भव्यता और भोजन में स्वच्छता देख कर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने तत्काल अपने मित्र से महेश्वरी कुल में प्रविष्ट होने एवं वैष्णव धर्म अंगीकार करने की आकांक्षा प्रकट की। पंचायत बैठी और उन्होंने सहर्ष वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। इस तरह दो मित्रों के मिलने से बने नये 'मंत्री' गोत्र की स्थापना हुई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

षष्ठ (अ)

श्रीमाल वंश

श्रीमाल नगर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

वर्तमान 'भिन्नमाल' नगर राजस्थान के जालोर जिले का एक ऐतिहासिक नगर है, जो आबू रोड स्टेशन से पश्चिम में ४०मील की दूरी पर स्थित है। यह नगर निःसन्देह अति प्राचीन एवं प्रसिद्ध रहा है। कहते हैं चार युगों में यह चार विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है। यथा- श्रीमाल, रत्नमाल, पुष्पमाल, भिन्नमाल।

श्रीमालमिति यन्नाम रत्नमालमिति स्फुटं।
पुष्पमालं पुनर्भिन्न-मालं युग चतुष्टये।।
चत्वारि यस्य नामानि, वितन्वंति प्रतिष्ठितं।
अहो नगर सौन्दर्य-महार्य त्रिजगत्यपि।।

—श्रीइन्द्र हंसगणि विरचित 'उपदेश कल्पवल्लरी'

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्कंध पुराण में श्रीमाल महात्म्य ६५ अध्यायों में सम्पन्न होता है। कार्तिकेय भगवान् शिव से इस नगर की महिमा पूछते हैं और शिव वर्णन करते हैं। भगवती लक्ष्मी की कृपा से नगर का नाम 'श्रीमाल' हुआ।

श्रीमाल पुराण में इस नगर की तात्कालीन भव्यता का वर्णन है, जिसके अनुसार इस महान नगरी का विस्तार ५ योजन तक था। इसके ८४ दरवाजे थे। इसमें ८४ कोट्याधीश श्रेष्ठि वास करते थे। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के संग्रह में कल्पसूत्र की सं. १५६३ में लिखित एक हस्तलिखित प्रति के अन्त में दी हुई पुष्पिका में भी उक्त चारों नामों एवं नगर के भव्य सौन्दर्य का वर्णन है

श्री रत्नमालं किल पुष्पमालं, श्रीमाल माहहुश्च ततो विशालम्।
जीयाद् युगे नाम पृथग् दधानं, श्री भिन्नमालं नगरं प्रधानम्।।

इसके अलावा 'उपकेश गच्छ पट्टावली' 'वृहत् कल्पभाष्य टीका' जिनदास गणि द्वारा वि० सं० ७३३ में रचित 'निशीथ चूर्णि' उद्योतन सूरि द्वारा वि० सं० ५३६ में रचित 'कुवलयमाला' एवं सिद्धसेन सूरि विरचित 'सकल तीर्थ स्तोत्र' में भी इस समृद्ध नगर-तीर्थ का विषद उल्लेख है। आचार्य सिद्धर्षि कृत उपामिति भव प्रपंच कथा की रचना वि० सं० ४९२ में यहीं हुई। आचार्य हरिभद्र सूरि ने अनेक ग्रंथ यही रचे। महाकवि माघ ने उत्कृष्ट संस्कृत महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' की रचना इसी नगर में की। बीज गणित के प्रधान प्रवर्तक आचार्य ब्रह्म गुप्त इसी नगर के थे। ब्रह्मगुप्त रचित 'ब्रह्म सिद्धान्त' अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। इसका अरबी अनुवाद 'सिंध हिन्द' नाम से हुआ। वहीं से पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ग्रहण किया। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वर्णन में भीनमाल नगर एवं आचार्य ब्रह्म गुप्त के प्रयोगों का वर्णन किया है। महूक के 'हरमेखला' नामक आयुर्वेद ग्रंथ की रचना भी इसी नगर में हुई।

पं० हीरालाल हंसराज के अनुसार वि० सं० २०२ में भिन्नमाल पर सोलंकी वंश के राजा अजीत सिंह का शासन था। उस वक्त मीर मामोची नामक म्लेच्छ ने भिन्नमाल पर चढ़ाई की। युद्ध में अनेक सैनिक और स्वयं राजा हताहत हुए। म्लेच्छ नगर को लूटपाट कर चले गये। उजाड़ नगर को फिर से बसाया गया। विक्रम सं० ५०३ में इस नगर पर सिंह नामक राजा का शासन था। उसके कोई सन्तान न थी। देवी आराधना से उसे पुत्र रत्न प्राप्त हुआ उसका नाम जईयाण कुमार रखा गया, जो विक्रम संवत् ५२७ में भिन्नमाल का राजा बना। उसका पुत्र श्रीकर्ण वि० सं० ५८१ में गद्दी पर बैठा। इस प्रकार इस वंश का शासन करीब ३०० वर्ष तक रहा। वि० सं० ७०५ में सामंत भिन्नमाल का राजा बना। उसके दो पुत्र थे: जयंत और विजयंत। वि० सं० ७१९ में जयंत राजा बना। विजयंत को लोहियाण का राज्य मिला, जिसे जयन्त ने छीन लिया। विजयंत ने संखेश्वर गाँव में सर्वदेव सूरि से जैन धर्म अंगीकार किया। वि० सं० ७२३ में उसने अपने मामा की सहायता से लोहियाण पर कब्जा कर लिया। उसका पुत्र जयमल वि० सं० ७३५ में राजगद्दी पर बैठा। वि० सं० ७६४ में उसका पौत्र भाण राजा हुआ। भाण ने भिन्नमाल जीत लिया और अपनी राजधानी बनाया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भाण बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने जैनधर्म को राज्याश्रय दिया। शत्रुञ्जय और गिरनार तीर्थों के संघ निकाले। उसका संघवी पद पर तिलक करते समय कुलगुरु उदयप्रभ सूरि एवं चाचा गुरु सोमप्रभ सूरि में—'कौन तिलक करेगा' प्रश्न को लेकर विवाद हुआ। अन्ततः ८४ गच्छों के आचार्यों ने राजा भाण की साक्षी से मर्यादा बांधी—तदनुसार कुल गुरुओं द्वारा गोत्रों का इतिहास रखने की परम्परा पड़ी। इस मर्यादा को हस्ताक्षरित करने वाले ८४ गच्छों के आचार्यों में उपकेश गच्छ के श्री सिद्ध सूरि भी थे।

प्राचीन काल में यह नगर समृद्धिशाली था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। 'श्रीमाल नगर' का नाम बदलकर 'भिन्नमाल' नाम कब हुआ—इस बारे में मत-वैभिन्य है। भगवान् पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास' में दी अनुश्रुति के अनुसार इस नगर में विक्रम संवत् से ३७० वर्ष पूर्व राजा जयसेन राज्य करते थे। उन्होंने आचार्य स्वयंप्रभ सूरि से प्रतिबोध पाया। उनके उत्तराधिकारी राजा भीमसेन हुए, जो वाममार्गीय थे। भीमसेन के तीन पुत्र थे—उपलदेव, आसपाल और आसल। राजा से अनबन होने के कारण उपलदेव और आसपाल नगर छोड़कर चले गये—उनके साथ अनेक सामंत भी चल दिये। उन्होंने जोधपुर के निकट 'ओसिया नगरी' बसायी। श्रीमाल नगर के बहुत से धनिक व्यापारी भी वहाँ जा बसे। तब राजा भीमसेन ने उजड़े नगर को फिर से आबाद किया। 'उपकेश गच्छ पट्टावली' के अनुसार तभी से यह नगर भिन्नमाल कहलाने लगा। 'श्रीमाल महात्म्य' के ४४ वें अध्याय में दी अनुश्रुति के अनुसार नगर का अधिकांश भाग महामारी में नष्ट हो गया। तब नगरवासियों ने सूर्योपासना की। सूर्य ने भील का रूप धारण कर मृतजनों को पुनर्जीवित किया। भीलों के प्रभाव के कारण नगर भिन्नमाल कहलाने लगा।

छठवीं-सातवीं शताब्दी में रचित ग्रंथों में नगर का नाम श्रीमाल नगर ही है।

भिन्नमाल नगर के प्राचीन खण्डहरों के पास एक तालाब है, जहाँ जैन मंदिर के खण्डहर में वि० सं० १३३३ का एक प्राचीन शिलालेख मिला है, जो प्राचीन जैन लेख संग्रह एवं 'आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट' में प्रकाशित हुआ है। इस शिलालेख के अनुसार भगवान महावीर स्वयं कभी श्रीमाल नगर पधारे थे:

यः पुरात्र महास्थाने श्रीमाले स्वयमागतः।
सदेवः श्री महावीरो देवा (द्वः) सुख सम्पदं।।

यदि इस तथ्य को प्रामाणिक माना जाय तो उस समय राजस्थान में भिन्नमाल तक जैन धर्म का प्रसार था—यह भी सिद्ध हो जाता है। इस तथ्य की पुष्टि 'श्रीमाल महात्म्य' नामक ग्रंथ से भी होती है। आचार्य सिद्ध सेन सूरि ने 'सफल तीर्थ स्तोत्र' में इस नगर को तीर्थ स्थल बताया है। यह प्रदेश विक्रम की प्रथम सदी में वज्र स्वामी का विहार क्षेत्र रहा है।

श्रीमाल जाति की उत्पत्ति

'विमल प्रबन्ध' एवं 'विमल चरित्र' नामक ग्रन्थों में श्रीमाल नगर का विषद वर्णन है। इसके अनुसार यह नगर द्वापर युग के अन्त में बसा। श्रीमाल जाति की स्थापना इसी नगर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में हुई। इस विषय में निम्न पद उल्लेखनीय है :

श्रीकार स्थापना पूर्वे श्रीमाल द्वापरान्तरैः।
श्री श्रीमाल इति ज्ञाति, स्थापना विहिताश्रियाः।।

यह भी कहा जा सकता है कि श्रीमाल नगर के होने के कारण अन्यत्र इस नगर का वणिक समुदाय श्रीमाली कहा जाने लगा। अन्य जातियों में भी श्रीमाली गोत्र हैं। जैसे श्रीमाली ब्राह्मण। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्रीमाली ब्राह्मणों एवं श्रीमाली वणिकों की कुल देवी एक ही मानी जाती है—लक्ष्मी।

श्रीमाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जैन ग्रंथों में उपलब्ध कथानक के अनुसार कभी श्रीमाल नगर में श्रीमल्ल नामक राजा राज्य करता था। वह वैदिक धर्म का अनुयायी था। राजा ने एक यज्ञ किया, जिसमें सैकड़ों पशुओं की बलि दी जानी थी। तभी गौतम मुनि अपने शिष्यों सहित वहाँ पधारे। उनके उपदेश से प्रभावित हो राजा ने पशुबलि बन्द कर दी और जैन धर्म अंगीकार कर लिया। तभी सिरोही के राजा भीमसेन ने श्रीमाल नगर पर चढ़ाई कर दी। राजा श्रीमल्ल ने खून खराबे से बचने के लिए अपनी एक मात्र रूपवती कन्या लक्ष्मी के साथ भीमसेन के विवाह का प्रस्ताव रखा। राजा भीमसेन को मनचाही मुराद मिली। राजा श्रीमल्ल के कोई अन्य सन्तान न होने से भीमसेन श्रीमाल नगर का भी राजा हुआ। श्रीमल्ल राजा के नाम पर ही जैन धर्म अंगीकार करने वालों का श्रीमाल गोत्र हुआ।

यति रामलाल जी ने अपने ग्रंथ 'महाजन वंश मुक्तावली' में इसी तरह का कथानक बड़े विस्तार से दिया है। उनके अनुसार भगवान महावीर के समय श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर के राजा श्रीमल्ल ने अपनी रूपवती कन्या लक्ष्मी के पाणिग्रहण के लिए स्वयम्वर न रचकर ब्राह्मणों की राय से अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। भगवान् महावीर ने लाखों जीवों की होने वाली हिंसा को लक्ष्य कर गौतम गणधर को श्रीमाल नगर प्रतिबोधार्थ भेजा। उनके उपदेशों से प्रतिबोध पाकर राजा ने यह यज्ञ स्थगित कर दिया। श्रीमल्ल राजा ने सवा लाख राजपूतों के साथ जैन धर्म अंगीकार किया। उन्हीं से श्रीमाल गोत्र और उसकी १३५ शाखाएं स्थापित हुई।

यतिजी के अनुसार थोड़े अरसे बाद सिरोही गढ़ के राजा परमार के पुत्र भीमसेन ने श्रीमाल नगरी घेर ली। राजा श्रीमल्ल वृद्ध था पुत्र था नहीं। कन्या लक्ष्मी थी। अतः लाखों लोगों का संहार बचाने के इरादे से अपनी कन्या लक्ष्मी भीमसेन को ब्याह दी एवं हथलेवे में श्रीमाल नगर का राज्य दे दिया। इनके तीन पुत्र हुए: उपलदेव, आसल और आसपाल। आसल नाना को गोद गया। वह श्रीमाल नगर का राजा बना। उसका श्रीमाल गोत्र हुआ। श्रीमाल वंश वाले धीरे-धीरे गुजरात, गौडवाड़, मालवा में बिखर गये। भीमसेन वाम मार्गी था। उपलदेव और आसपाल भी वाम मार्गी थे। जब उनको होश आया तो उन्होंने पिता की आज्ञा से ओसिया पट्टण नगर बसाया। यहाँ रत्नप्रभसूरि ने उनको जैनधर्म धराया एवं उनके गोत्र की स्थापना की। उपलदेव का 'आर्य श्रेष्ठि' तथा आसपाल का 'लघु श्रेष्ठि' गोत्र बना। श्रेष्ठि गोत्र वाले

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सं १२०१ से 'बेद' कहलाने लगे। 'लघुश्रेष्ठि' वाले सोनपाल जी के नाम से 'सोनावत' कहलाने लगे। भीनमाल के राजा आसल ने भी रत्नप्रभ सूरि से 'गुरु धारणा' ली। इसीलिए श्रीमालों को ओसवालों के प्रथम गोत्रों में गिनते हैं।

श्रीमाल जाति की उत्पत्ति के विषय में इसी तरह के अनेक कथानक प्रचलित हैं। इतना तो निर्विवाद है कि इस जाति की उत्पत्ति श्रीमाल नगर में उसी नगर के श्रेष्ठियों द्वारा जैन धर्म अंगीकार कर लेने से हुई।

'श्रीमाल पुराण' के अनुसार श्रीमाल नगर के ब्राह्मणों के शास्त्र विरोधी कार्यों से दुखित होकर ब्राह्मण श्रेष्ठि गौतम काश्मीर गये। वहाँ भगवान् महावीर की देशना से प्रभावित हो उन्होंने जैन धर्म अंगीकार किया। वे महावीर के प्रथम गणधर बने। उन्होंने श्रीमाल नगर लौटकर लाखों लोगों को जैन बनाया। वे श्रीमाली जैन कहलाये। कालांतर में 'श्रीमाल' उनका गोत्र बन गया।

'जैन जाति महोदय' के लेखक उपकेशगच्छीय मुनि ज्ञान सुन्दर जी के अनुसार श्रीमाल जाति की उत्पत्ति पार्श्वनाथ प्रभु के पाँचवें पट्टधर श्री स्वयंप्रभ सूरि (समय वीरात् ३० वर्ष) द्वारा श्रीमाल नगर के शिवोपासक राजा जयसेन को अश्वमेध यज्ञ में जीव हिंसा के विरुद्ध प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार कराने एवं 'महाजन' बनाने से हुई। उस वक्त कुल नब्बे हजार जैन श्रावक बने, जो कालान्तर में श्रीमाल नगर के निवासी होने से 'श्रीमाल' कहलाने लगे। 'उपकेश गच्छ पट्टावली' के उल्लेख को ही उक्त कथानक का आधार माना जाता है।

उदयरत्न रचित 'पंचपाट रास' के अनुसार शक संवत् ७०० में रत्नप्रभसूरि श्रीमाल नगर पधारे और वहाँ श्रीमाल जाति की स्थापना की।

'जैन गोत्र संग्रह' के लेखक पण्डित हीरालाल हंसराज के अनुसार राजा भाण के समय वि० सं० ७९५ में उपकेश नगर के बासठ ब्राह्मण श्रेष्ठियों द्वारा आचार्य उदयप्रभ सूरि के उपदेशों से प्रतिबोधित हो जैन धर्म अंगीकार कर लेने से श्रीमाल गोत्र उत्पन्न हुआ। उन बासठ श्रेष्ठियों के नाम पर बासठ शाखा गोत्र बने। कालान्तर में उनकी और भी अनेक प्रशाखाएँ हुईं।

मुनि जयन्त विजयजी ने भीनमाल नगर के श्रीमाल वंशीय भारद्वाज गोत्रीय सेठ तोड़ा के वंशजों की वि० संवत् ७९५ से १६०० तक की वंशावली 'श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रंथ' (१९८२) में प्रकाशित की है। वह ८०० वर्षों की वंशावली बीसा श्रीमाली जाति के बहीं भाटों की बहियों से ली गयी हैं। मूल वंशावली महाराज कांति विजयजी के संग्रह में सुरक्षित है। इसमें श्रीमाल जाति की ३३ शाखाओं का उल्लेख है। वंशावली के उल्लेखानुसार शाह तोड़ा भीनमाल नगर के पूर्व दिशा की पोल में 'भट्टना पाड़ा' में रहते थे। वे पाँच कोटि मुद्रा के आसामी थे। उनकी कुलदेवी अम्बाजी थीं। संघ ने उन्हें भगवान शांतिनाथ के मन्दिर का व्यवस्थापक चुना था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाहटा बन्धु (श्री अगरचन्द जी भँवरलाल जी नाहटा) श्रीमालों की उत्पत्ति ८वीं सदी के बाद में हुई मानते हैं क्योंकि 'वीरात् ९०० वर्ष' में लिखे आगमों एवं उपलब्ध शिलालेखों में पूर्व उत्पत्ति सम्बन्धि कोई उल्लेख नहीं हैं।

जैन साहित्य संशोधन एवं जैनाचार्य आत्माराम शताब्दी स्मारक ग्रन्थ के उल्लेखानुसार 'इस जाति का प्राचीनतम अभिलेख श्रीमाल टोडा का ई० सन् ७३८ से सम्बद्ध है।' जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह के अनुसार ई० सन् ९४७ में श्रीमाल श्रावक दीदा ने आचार्य शांति सूरि से प्रभावित हो नवहारा में आदिनाथ चैत्य का निर्माण कराया था।

श्री सुख सम्पतराय भंडारी ने भोजकों के पास जो वंशावलियाँ हैं, उनके हवाले से श्रीमाल वंश की उत्पत्ति सं० १८२ में हुई को ठीक मानते हुए लिखा है कि यह नन्दिवर्धन का सम्वत् मानना चाहिए, विक्रमी नहीं।

भगवान् महावीर के भ्राता नन्दिवर्धन ने महावीर की दीक्षा प्रसंग पर नये संवत् का प्रवर्तन किया था। दीक्षा के बाद भगवान् ४२ वर्ष सदेह रहे। रत्नप्रभ सूरि द्वारा संस्थापित ओसवालों के १८ गोत्रों में एक श्रीमाल गोत्र मानें तो इस गोत्र का उत्पत्ति समय ७०+४२ यानि नन्दिवर्धन संवत् ११२ होना चाहिये।

श्रीमाल जाति की उत्पत्ति-काल के विषय में मतभेद अवश्य है, पर इस जाति के साथ ओसवाल जाति के सम्बन्ध को लेकर सभी ग्रन्थकार, इतिहासकार एवं पुरातत्ववेत्ता एक मत हैं। भिन्नमाल (श्रीमाल नगर) के राजा के पुत्र उपलदेव ने ओसिया बसायी। भिन्नमाल के ही सामन्त व वणिक ओसिया जाकर बसे एवं वे सभी कालान्तर में 'ओसवाल' कहलाये। अतः श्रीमालों और ओसवालों का आनुवंशिक सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है। अब तो श्रीमाल जाति को ओसवालों का ही एक अंग माना जाने लगा है। श्रीमालों की उत्पत्ति ओसवालों से ४० वर्ष पहले हुई हो यह तथ्य सही हो सकता है। ओसवालों के विराट् वट वृक्ष की यह एक शाखा है। भाटों के कवित्तों में इस जाति के सांडाशा, टाकाशा, गोपाशा, बागाशा, डूंगरपाल, उद्दाशाशा, भीमसेन, पुनशा, पेमाशा, भादाशा, नरसिंह, मेलपाल, राजपाल, भोजपात आदि श्रेष्ठियों का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनके जीवन के अन्य विवरण उपलब्ध नहीं है।

श्रीमालों के गोत्र/उपगोत्र

पं० हीरालाल हंसराज ने अपने ग्रंथ 'जैन गोत्र संग्रह' में उदयप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोधित ब्राह्मण जाति के ६२ नगर श्रेष्ठियों से संस्थापित श्रीमालों के ६२ गोत्रों की तालिका दी है। वह इस प्रकार हैं: गौतम, हरियाण, कात्यायन, भारद्वाज, आग्नेय, काश्यप, वारिधि, पारायण, वंसीयाण, खुड्डीयाण, लोढ़ायण, पारस, चंडीसर, देहीत, पापच, दाडिम, सांख्य, महालक्ष्मी, बीजल, लाछिल, द्वीपायन, पारध, चक्रायुद्ध, जांगल, वाछिल, माढ़र, तुंगीयाण, पायत्रा, एलायन, चोखायण, अक्षायण, प्राचीन, कामरू, भोभान, चन्द्र, टाटर, छाहिल, राजत, स्वास्थित, अमृत, चामल, कोशि, बहुलक, नागड़, झायण, डोड, जीतधर, जालन्धर, तक्षक, खागिल, वायस, सारधि, धीरध, आत्रेय, आहटा, कर्कस, बंबायन, कुम्भक, दीर्घायण, तोतिल, बटुसर, वर्णिका।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिलालेखों में श्रीमाल गोत्र के अनेक उपगोत्रों का उल्लेख मिलता है। जैसे गोवलिया, घेवरीया, चंडालेचा, जबहरा, जरगड़, टांक, डउडा, डोर, दोसी घामी, धीधीद, नलुरीया, पल्हड़, पाताड़ी, पाताणी, पापड़, फोफलिया, बदलिया, बहरा, भांडावत, भांडिया, महुविया, मेहेता, मइरोल, माथलपुरा, मोठिप्पा, बहबड़ा, साहु, सिंधुड, लीबड़िया, सींदड़िया, तलाजीया, तलाजीया, गांधी, सालगिरा, गोरसीया, वारीया, सरकडीया, पुनातर, मणीयार, झुझाणी, वोरा, मधासर, चुकडीया, आदि।

यति रामलाल जी ने अपने ग्रन्थ 'महाजन वंश मुक्तावली' में श्रीमाल गोत्र की १३५ शाखाओं के नाम दिये हैं। उनमें से अधिकांश का अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं मिलता। यति जी के अनुसार उनमें से अनेक गुजरात जाकर बसे गये। 'गुजरात में गोत नहीं, मारवाड़ में छोत (छूत) नहीं' न्याय के अनुसार वे अपना गोत्र ही भूल गये।

श्रीमालों की १३५ शाखाएँ

१. श्रीमाल २. कटारिया ३. कहुँधिया ४. काठ ५. कालेरा ६. कादईये ७. कुराडिक ८. काल ९. कुंठारिये १०. कूकड़ा ११. कौडिया १२. कौकगढ १३. कंबोतिया १४ खगल १५ खारेड १६ खौर १७ खौचडिया १८ खौसडिया १९ गदउडधा २० गलकटे २१ गपताणिया २२ गदइया २३ गिलाहला २४ गौदोडिया २५ गुजरिया २६ गूजर २७ घेवरिया २८ घौघडिया २९ चरड ३० चांडी ३१ चुगल ३२ चडिया ३३ चंदेरीवाल ३४ छक्कडिया ३५ छालिया ३६ जलकट ३७ जूंड ३८ जूंडीबाल ३९ जांट ४० झामचूर ४१ टांकई ४२ टांकरिया ४३ टींगड ४४ डहरा ४५ डागड ४६ डूँगरिया ४७ ढौर ४८ ढौढा ४९ तबल ५० ताडिय ५१ तुरक्कया ५२ दुसाज ५३ धनालिया ५४ धूवना ५५ धूपड ५६ ध्याधीया ५७ तावी ५८ नरट ५९ दक्षणत ६० नाचण ६१ नांदरीवाल ६२ निवहटिया ६३ निरदुम ६४ निवेहेडिया ६५ परिमाण ६६ पचौसलिया ६७ पडवाडिया ६८ पसेरण ६९ पंचोभू ७० पंचासिया ७१ पाताणी ७२ पापडगोत ७३ पूरणिया ७४ फलवधिया ७५ फासू ७६ फोफलिया ७७ फूसपाण ७८ बहापरिया ७९ वरडा ८० बदलिया ८१ बंदूबी ८२ बांहकटे ८३ बाईसझ ८४ बारीगोत ८५ बायडा ८६ विमनालक ८७ वीचड ८८ बोहलिया ८९ भद्रसवाल ९० भांडिया ९१ भालोव ९२ भूवर ९३ भंडारिया ९४ भांडूगा ९५ भोथा ९६ महिमबाल ९७ मऊठिया ९८ मरद्वला ९९ महतियाणा १०० महकुले १०१ मरहटी १०२ मथुरिया १०३ मसूरीया १०४ माधलपुरी १०५ मालवी १०६ मारूमहटा १०७ मांदोटिया १०८ मूसल १०९ मोगा ११० मुरारी १११ मुंदडिया ११२ राडिका ११३ रांकिबांण ११४ रीहालीम ११५ लबाहला ११६ लडारूप ११७ सगरिप ११८ लड़वाला ११९ सागिया १२० साभडती १२१ सीधूंड १२२ सुदाडा १२३ सोंहू १२४ सौठिया १२५ हाडीगण १२६ हेडाउ १२७ हीडौया १२८ अंगरीप १२९ आकोडपड १३० उँबरा १३१ बोहरा १३२ सांगरिया १३३ पल्लहोट १३४ घघरिया १३५ कूँचलिया।

हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध पुनर्संस्थापक आदि-शंकराचार्य के बाद जब जैन एवं बौद्ध धर्म विरोधी अभियान चला तो अनेक जैन धर्मावलम्बी वैष्णव या शैव हो गये। जैन गुरु हेमचन्द्राचार्य

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने पुनः अनेक परिवारों को जैन बनाया। इस रूपान्तरण में स्वाभाविक ही है कि वे अपना मूल गोत्र या साखा गोत्र बिसरा बैठे हों।

गुजरात में बसे श्रीमाली वणिकों में ओसवाल गोत्रों की तरह ही दसा-बीसा है। एक समय तो वैष्णव और जैन श्रीमाली परिवारों में भी वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। मध्ययुग में बड़ा विभेद पड़ा और परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध दसा-बीसा गोत्रों में भी नहीं रहा।

मारवाड़ और गोड़वाड़ में बसे श्रीमाली परिवार झूँझनूँ, जयपुर, भरतपुर, चिडावा, देहली, कानपुर, लखनऊ, भागलपुर, हिंडोन, मालवा, कलकत्ता, आदि अनेक स्थानों पर व्यवसाय निमित्त स्थानान्तरण हो गये।

श्रीमाल जाति के वर्तमान गोत्रों (शाखाओं) में प्रमुख हैं: सीधंड़ (श्रीधर) मुकीम, राक्यान, फाफूँ, नागर, फोफलिया, संघवी, भांडिया, खारड़, बदलिया, टांक, जरगड़, मेहमवार, पटोलिया, मूसल, ढ़ोर, जनीवाल। श्री श्रीमाल, चंडालिया आदि गोत्रों को भी कहीं कहीं श्रीमाल गोत्र की ही शाखाएँ माना गया हैं।

ओसवाल-श्रीमाल सम्बन्ध

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् डा० टेसीटरी ने प्राचीन भारत के राजवंशों एवं जातियों पर अनेक शोध प्रबन्ध एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित 'बिब्लियोथेका इण्डिका' में प्रकाशित किये। इस प्रकाशन की राजस्थान सीरिज में ओसवालों की गुण-कीर्ति से सम्बन्धित हस्तलिखित ग्रंथों, गुटकों, कवित्तों, गीतों की रिपोर्ट भी हैं। ऐसा ही एक सेवग मनसाराम (मंछाराम) द्वारा रचित 'ओसवालां में दातार हुआ तिणारा नाम' नामक डिंगल भाषा का हस्तलिखित गुटका नं० २७ है, जो अभी भी एशियाटिक सोसायटी के संग्रह में मौजूद है। इस गुटके में ७७ ओसवाल श्रेष्ठियों के नाम हैं जिनमें 'नं० १० हीरानन्द', 'नं० १५ श्रीमाली पंदराज नगर थटे', 'नं० ३० श्रीमाल आशकरण नाथावत', 'नं० ६५ श्रीमाल अचलदास अमरसा', 'नं७६ श्रीमाल तोतराज' और 'नं० ७७ श्रीमाल जसराज वास खंभायच' है। निःसन्देह ओसवालों में हुए दातारों की सूचि में उनका नाम श्रीमालों को ओसवाल जाति का एक अंग मान कर ही शामिल किया होगा। यहाँ द्रष्टव्य यह है कि यह एक सेवग की कलम से निस्सृत हुआ है, जो मात्र प्रशस्ति गायक है। मनसाराम का लेखन तात्कालीन प्रचलन और लोक ग्राह्यता का सूचक है।

पं० हीरालाल हंसराज ने अपने ग्रन्थ 'श्री जैन गोत्र संग्रह' (सन् १९२३ में प्रकाशित) में श्रीमालों को ओसवाल जाति का ही एक गोत्र माना है। श्रीमाल गोत्र की उत्पत्ति उनके अनुसार विक्रम संवत् ७९५ में हुई। श्री उद्योतन सूरि ने विक्रम संवत् ७२३ में ८४ शिष्यों को सूरि पद दिया, जिनसे ८४ गच्छों की स्थापना हुआ। प्रथम आचार्य सर्वदेव सूरि ने शंखेश्वर गच्छ की स्थापना की। इनके तीसरे पट्टधर श्री उदयप्रभ सूरि हुए। वि० सं० ७७५ में भिन्नमाल के राजा भाण ने ८४ गच्छों के आचार्यों की सही से कुलगुरुओं द्वारा गोत्रों का इतिहास रखने सम्बन्धी मर्यादाएँ बाँधी। उन ८४ आचार्यों में उदयप्रभ सूरि एवं उपकेश गच्छीय आचार्य

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिद्ध सूरि भी थे। राजा भाण ने उपकेश नगर के ओसवाल श्रेष्ठि जयमल की कन्या रत्नबाई से विवाह किया एवं वि० सं० ७९५ में जैन धर्म अंगीकार किया। उसी समय श्रीमाल नगर के बासठ श्री श्रीमाल ब्राह्मणों ने श्री उदयप्रभ सूरि से जैन धर्म अंगीकार किया, जिनसे श्रीमाल गोत्र उत्पन्न हुआ। उनके ६२ उपगोत्र हुए।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमाल जाति नहीं, एक गोत्र है और वह वृहद् ओसवाल जाति का ही एक अंग है। पं० हीरालाल हंसराज ने अपने उक्त ग्रंथ में ओसवालों के २५० गोत्रों की तालिका दी है, जिनमें श्रीमाल और उनके उप गोत्र भी शामिल है। उनके अनुसार श्रीमाल सदा से ओसवाल जाति का ही अंग माने जाते रहे हैं।

यति रामलाल जी ने श्रीमालों को ओसवालों का ही एक गोत्र माना है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महाजन वंश मुक्तावली' (प्रथम आवृत्ति-१९१०) के पृष्ठ १४० पर 'ओस वंश' के गोत्रों की तालिका में प्रथम गोत्र 'श्रीमाल' ही गिनाया है। श्रीमालों के कथित १३५ उपगोत्रों में से अधिकांश ओसवालों की उक्त तालिका में मौजूद हैं। यह १३५ गोत्रों की बात भी यति जी से ही प्रारम्भ हुई दिखती है। क्योंकि अन्यत्र किसी भी ग्रंथ में गोत्रों की संख्या १३५ नहीं दी है। श्रीमालों की उत्पत्ति विषयक कथानक पृष्ठ १०३ पर 'अथ श्रीमाल गोत्र्युत्पत्ति' शीर्षक से ही शुरू होता है। वे इन्हें ओसवालों का एक गोत्र मानकर ही चले हैं। इसकी पुष्टि वे आगे कर भी देते हैं। उनके अनुसार भीमसेन के तृतीय पुत्र आसल ने, जो भीमसेन की मृत्यु पर भीनमाल की गद्दी पर बैठा, आचार्य रत्नप्रभ सूरि से प्रतिबोध लेकर जैन धर्म अंगीकार किया। श्रीमाल गोत्र इसी वास्ते ओसवालों के १८ गोत्रों में गिनते हैं।'

मुनि ज्ञानसुन्दर जी ने अपने ग्रन्थ जैन जाति महोदय में उपकेश, श्रीमाल, एवं प्राग्वाट वंशों की उत्पत्ति महाजन वंश के ही अन्तर्गत ३ विभिन्न नगरों से होने के कारण मानी है। उनके अनुसार विक्रम की ११ वीं सदी तक तीनों में रोटी-बेटी का व्यवहार होता था। इनमें श्रीमाल जाति के लोग अधिकांश मुत्सद्दी थे। धीरे-धीरे शक्ति वैषम्य से व्यापारियों को कन्या देने में वे अपनी हेठी समझने लगे। यही उनके दुराव का कारण बना। यहां द्रष्टव्य है कि एक समय 'सेठिया' गोत्र भी ओसवालों से भिन्न माना जाता था। इनकी उत्पत्ति विषयक एक कथानक के अनुसार ८वीं सदी में भिन्नमाल नगर के श्रीमाली गोत्रीय सोमदेव आदि श्रेष्ठि ब्राह्मणों को आचार्य उदयप्रभ सूरि द्वारा प्रतिबोध देकर जैन बनाने से 'सेठिया' वंश की उत्पत्ति हुई। २४ धनपतियों के अलग-अलग २४ गोत्र बने। परन्तु कालान्तर में उन्हें ओसवाल जाति का ही अंग माना गया। इसमें प्रधान भूमिका धर्म की रही है। श्रीमाल भी इसी तरह ओसवालों का ही एक अंग बन गये।

१९ वीं सदी के अन्त और वीसवीं सदी के शुरू में एक छोटा सा विवाद अवश्य उठा, जिसकी गूँज अभी-भी कहीं-कहीं सुनाई देती है। उस समय यह भ्रम फैला कि श्रीमाल ओसवालों की बेटी लेंगे, पर ओसवालों को बेटी देंगे नहीं। कहा जाता था कि श्रीमाल श्रेष्ठि मूलतः राजघरानों में मुत्सद्दी थे। उनकी उत्पत्ति क्षत्रियों से न होकर ब्राह्मणों से मानी जाती

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। अतः वे अपने आपको ओसवालों से श्रेष्ठ समझते हैं। इस भ्रम का कोई प्रमाण नहीं है। यह हवा के सूक्ष्म रजकणों की तरह जैसे उठा था, वैसे बैठ भी गया। रोटी-बेटी का व्यवहार सदा चालू रहा, अब भी चल रहा है। ओसवाल कन्याएँ श्रीमाल परिवारों में और श्रीमाल कन्याएँ ओसवाल परिवारों में ब्याही जाती रही हैं। श्रीमाल ओसवाल धर्म सेतु से तो जुड़े ही हैं, पेशा, भाषा, खान-पान, पहरान आदि की समानता से भी आबद्ध है।

बीसवीं सदी के तृतीय दशक में अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महा सम्मेलनों में यह महसूस किया गया कि श्रीमाल समाज महासम्मेलन की ओर से उदासीन है। तब राय साहब कृष्णलालजी बाफना ने 'ओसवाल' मुख पत्र के सन् १९३७ के फरवरी अंक में महा सम्मेलन के ओसवाल शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा था कि जिन जातियों का रोटी-बेटी व्यवहार ओसवालों से है, वे इसमें सम्मिलित है। इस तरह श्रीमाल ओसवाल समाज के ही अंग हैं। सन् १९३९ में महासम्मेलन के पांचवें अधिवेशन के अध्यक्ष माननीय मोतीलाल जी भूरा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में श्रीमालों को वृहत् ओसवाल समाज का अंग माना। यह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। अनेक वर्षों से महासम्मेलन के विधान का प्रारूप बन रहा था, जो इस अधिवेशन में स्वीकृत हुआ। इस स्वीकृत विधान में 'ओसवाल' शब्द की व्याख्या की गयी: 'ओसवाल से तात्पर्य उस जन समूह से है, जो ओसवाल कहलाते हैं या जिनका रोटी-बेटी व्यवहार हो जैसे श्रीमाल आदि।' इससे स्पष्ट है कि श्रीमालों को ओसवालों का ही अंग माना गया है।

'श्रीमाल एक अलग जाति है, इसकी उत्पत्ति भिन्न है और इसके अपने गोत्र है'— यह तर्क अनर्थक हो जाता है। ओसवालों के हर गोत्र की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न है और हर गोत्र के अनेक उपगोत्र या खांपे हैं। तब क्या उन्हें भिन्न-भिन्न जाति की संज्ञा दी जाएगी? श्रीमाल-उत्पत्ति ओसवालों की उत्पत्ति से पूर्व हुई हो, इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया का सकता। यह शोध का विषय है। परन्तु वर्तमान स्थिति में संख्या अपेक्षा से यही कहना न्यायोचित है कि श्रीमाल ओसवालों के ही एक अंग हैं। ओसवाल जाति इतनी विशाल है कि एक समय अलग लगने वाली श्रीमाल जाति अब ओसवालों में आत्मसात हो गयी है। कल को श्रीमाल संख्या मे अधिक हो जायें तो वे ओसवालों को अपने में आत्मसात कर ही लेंगे। अगर श्रीमालों को ओसवाल न मानना ही किसी के लिए तुष्टिकारक हो तो उनके आपसी विवाह सम्बन्धों को अन्तर्जातीय कहना होगा। असली मापदण्ड की ओर हमारा ध्यान मुश्किल से जाता है ओसवाल एवं श्रीमालों में जो विवाह सम्बन्ध होते हैं—क्या वे अन्तर्जातीय सम्बन्ध कहलाते हैं? क्या ओसवाल कन्या से विवाह कर लेने पर कोई श्रीमाल जाति बहिष्कृत किया गया है जैसी कि मध्यकालीन समाज में व्यवस्था थी। यदि नहीं, तो मानना होगा कि श्रीमाल ओसवाल जाति के अंग हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

षष्ठ (ब)

कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे ओसवाल

आज से ३००० वर्ष पूर्व कच्छ भूमि ऐसी नहीं थी जैसी अब है। जैनागम श्री भगवती सूत्र में इस प्रदेश का उल्लासमय उल्लेख है। गौतम भगवान से प्रश्न करते हैं— "पुरीषेणं भंते कच्छंसि वा दहंसि वा" (यानि हरिण के शिकारार्थ कोई कच्छ जाता है... आदि)। उक्त सूत्र के टीकाकार ने कच्छ प्रदेश का भोगौलिक वर्णन करते हुए लिखा है—

"कच्छंसि कच्छे नदी जल परिवेष्ठिते वृक्षादि मति प्रदेशे"। इस नदी जल एवं वृक्षों से आच्छादित प्रदेश का स्वरूप उस समय कुछ और ही रहा होगा, आज की तरह बंजर, रेतीला, वृक्ष शून्य नहीं रहा होगा। किसी समय यहाँ समुद्र भी अवश्य लहराता होगा जिससे यह सदा के लिए लवण भूमि बन गया। १५० वर्ष पूर्व तक भूकम्पों से यह भूमि अपना विन्यास बदलती रही है। प्राकृतिक आपदाओं के सिवाय मुस्लिम आक्रांताओं की यातना भी इसने कम नहीं झेली। किसी समय सिंध से जुड़ा यह प्रदेश प्रकृति एवं मानवीय कुठाराघात से सदा के लिए अलग-थलग हो गया।

यह सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य है कि कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे ओसवाल गोत्र मूलतः राजस्थान से प्रवसित होकर यहाँ बसे है। तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के पांचवें एवं छठे पट्टधर स्वयंप्रभ सूरि एवं रत्नप्रभ सूरि ने विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व क्षत्रिय कौमों को प्रतिबोधित कर उन्हें जैन धर्म अंगीकार करवाया एवं महाजन कुल की नींव रखी जो कालांतर में श्रीमाल और ओसवाल कहलाए। राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों से यह प्रवसन कब और क्यों शुरू हुआ इसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा इतिहास की अमर बेल-ओसवाल (द्वितीय खंड) के 'ओसवाल प्रवसन' सम्बंधी अध्याय में अन्यत्र दी जा चुकी है।

भारत के उत्तरी प्रदेशों पर मुस्लिम आक्रान्ताओं के आक्रमण विक्रम संवत् की छठी शताब्दी तक आरम्भ हो चुके थे। तभी से यह महाभिनिष्क्रमण भी आरम्भ हुआ। यो तो शत्रुञ्जय, गिरनार आदि श्रेष्ठतम जैन तीर्थों के उस प्रदेश मे अवस्थित होने से जैन धर्मावलम्बी यात्रियों के संघ समायोजन युगों युगों से निरन्तर होते आ रहे थें किन्तु प्रवसन की यह प्रक्रिया विक्रम की पांचवीं सदी में शुरू हुई होगी। कच्छ भूमि पर जैनों के प्राचीनतम निवास का उल्लेख वीर वंशावली पट्टावली में मिलता है। इस ग्रंथ में वि० सं० ५७१ में सुथरी तीर्थ में शैव एवं जैनों के बीच हुए एक विवाद का विवरण इन शब्दों में किया गया है—

"तत्पट्टे श्री देवानन्द सूरि... पुनः वि० ५७१ वर्षे कच्छ देशी सुथरी ग्रामई शिव अनि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन नई वाद हुओ।''

उक्त उल्लेख की पुष्टि श्री त्रिपुटी महाराज ने भी 'जैन परम्परा नो इतिहास' ग्रंथ में की है। ओसवालों की उस प्रदेश में विद्यमानता का प्राचीनतम उल्लेख आ० उद्योतन सूरि रचित प्राकृत ग्रंथ 'कुवलयमाला' में मिलता है। उद्योतन सूरि का समय विक्रम की नौवीं सदी माना जाता है। उक्त ग्रंथ के उल्लेखानुसार श्वेत हूण तोरमाण के पुत्र मिहिर गुल के अत्याचारों से त्रस्त उपकेश जाति के व्यापारी गुजरात पलायन कर गए। हूण तोरमाण एवं मिहिर गुल का समय विक्रम की छठीं सदी है।

'श्री जैन गोत्र संग्रह' के लेखक प्रसिद्ध इतिहासकार पं० हीरालाल हंसराज के अनुसार विक्रम संवत् ७९५ में राजा भाण के समय शंखेश्वर गच्छ के श्री उदयप्रभ सूरि ने उपकेश नगर में ब्राह्मण जाति के ६२ श्रेष्ठियों को जैन धर्म अंगीकार करवा कर श्रीमाल जाति के ६२ गोत्रों की स्थापना की। मुनि जयंत विजय जी ने श्रीमाल वंशीय भारद्वाज गोत्र के सेठ तोडा के वंशजों की सं० ७९५ से १६०० तक की वंशावली 'श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रंथ' (१९८२) में प्रकाशित की है। पं० हीरालाल के अनुसार वि० सं० ८०२ में पाटण नगर की स्थापना के समय चन्द्रावती एवं भिन्नमाल से उपकेश जाति के अनेक श्रेष्ठियों को पाटण में बसने के लिए आमंत्रित किया गया। आज भी उनकी संतानें सूरत, भरुच, खम्भात, बड़ौदा, भावनगर, पाटण, अहमदाबाद आदि प्रदेशों में वास करती हैं।

विक्रम की १२वीं सदी में अंचल गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद तो ओसवाल श्रेष्ठियों का कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात आदि प्रदेशों में निवास एवं प्रभाव उपलब्ध शिलालेखों, प्रशस्ति पत्रों एवं ग्रंथों से स्वयं सिद्ध है। कुल गुरुओं एवं बही भाटों के संग्रह में विभिन्न गोत्रों की वंशावलियां भी सुरक्षित हैं। महाजन वंश मुक्तावली के लेखक यति रामलाल जी के अनुसार पाली शहर पारकर देश के महाजन कच्छ के राव खेगार के आमंत्रण पर सं० १७०० के आसपास कच्छ के सुथरी, नलिया, जखऊ आदि प्रदेशों में आकर बसे। अनुश्रुतियों एवं उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर प्रसिद्ध गुजराती इतिहासकार श्री पार्श्व यह प्रवसन सं० १५५० से १७०० के बीच हुआ मानते हैं। इन प्रवासियों में कुछ जो सिंध देश होकर कच्छ आए एवं यही बस गए वे कच्छी महाजन कहलाते हैं। जो प्रवासी गुजरात के उत्तरी भाग से आए वे गुर्जर कहलाए। कालांतर में दोनों ही धाराएँ दसा, बीसा आदि प्रभेदों से ग्रसित हुईं। जो सिंध होकर आए वे मूलतः खेतिहर थे। कालांतर में उन्होंने भी दूसरे व्यापार धंधे अपनाए।

'जीवन और जागृति'(१९७२) नामक आत्म कथा ग्रंथ के लेखक सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्रीटोकरसी लाल कापडिया के अनुसार पत्री (भुज से २४ मील दूर) में सं० १३६५ मे ओसवालों की बस्ती विद्यमान थी।

विक्रम की १८ वीं शदी में कच्छ एवं सौराष्ट्र में बसे ओसवाल परिवार फिर आपदा ग्रस्त हुए। यति रामलाल जी के अनुसार कच्छ में बसे ओसवालों को अंचल गच्छीय आचार्यों एवं मुनियों ने खेती करने में पाप बता कर व्यापार व अन्य धन्धों की ओर प्रेरित किया। उस

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वक्त अंग्रेज सरकार मुंबई के विकास की योजना क्रियान्वित कर रही थी। इससे आकर्षित हो अनेक ओसवाल श्रेष्ठ खेती छोड़ व्यापार के निमित्त मुंबई आए और जल्दी ही कोट्याधिपति बन गए।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री पार्श्व ने एक और कारण सुझाया है— संवत् १८१० में सिंध के शासक गुलाम शाह ने कच्छ पर आक्रमण किया। जब महाराव गोडजी ने सफलतापूर्वक उनका सामना किया एवं उनका बाल भी बांका न हुआ तो गुलाम शाह ने खीझ कर लखपत तालुका में सिंधु की शाखा पर बाँध बना कर पूरे कच्छ प्रदेश को बरबाद कर दिया। इस यंत्रणा से जूझते हुए ओसवाल परिवारों ने फिर एक प्रवसन की ठान ली। वे मुंबई आदि दक्षिणी प्रदेशों में ही नहीं प्रवसित हुए बल्कि सुदूर अफ्रीका के केनिया, मोमबासा आदि प्रदेशों में गए और वहीं बस गए। फिर भी कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात के इन ओसवालों का सम्पर्क इन प्रदेशों से कभी नहीं टूटा।

समाज हमेशा पुरातन परम्पराओं का पोषक रहता है, वह किसी भी नई बात को मुश्किल से पचा पाता है। इसी भाव का प्रतिफल है दसा-बीसा विग्रह वहीं तक सीमित न रह कर पांचा-ढायां तक चला गया। टोकरसी भाई ने अपना आत्मकथा में इसे विश्लेषित करते हुए लिखा है कि अपनी वृत्ति एवं व्यवहार में सर्वांश पूर्ण रहने वाले अपने को बीसा मानने लगे और शिथिलाचारी 'दसा' माने गए। तथ्यतः यह कथन सत्य प्रतीत होता है परन्तु पुरातन से चिपके रहना एवं थोथी परम्पराओं का पोषण सदा ही विकास का सूचक नहीं होता। श्री पार्श्व के अनुसार कच्छ में बीसा ओसवाल अधिकांशतः श्वेताम्बर मंदिर मार्गी हैं, उनमें अंचल गच्छ, खरतर गच्छ एवं तपा गच्छ—तीनों आम्नयावलम्बी परिवार हैं। दसा कहे जाने वाले ओसवाल पूर्णतः मंदिरमार्गी अंचल गच्छीय सम्प्रदाय को मानने वाले हैं। बीसा ओसवालों में स्थानकवासी सम्प्रदाय को मानने वाले भी कम नहीं हैं।

यद्यपि कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे ओसवाल मूलतः श्रीमाल एवं ओसवाल जातियों से ही सम्बंधित है किन्तु उनका ठीक ठीक गोत्र क्या था एवं उनके वर्तमान गोत्र नाम कब और कैसे बने—यह शोध का विषय है। इनमें अनेक नामांकित श्रेष्ठि एवं इतिहास पुरुष हुए हैं। कुछेक इतिहास पुरुषों की प्रेरणादायक जीवनियाँ ग्रंथ में अन्यत्र दी गई हैं एवं राजस्थान से प्रवसन एवं उन्नयन के प्रसंग द्वितीय खण्ड के प्रवसन सम्बंधी अध्याय में दिए गए हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल जाति के कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे गोत्रों/खापों की सूची

अधोदूया
अभराणी
अलियाण
आग्नेय
आथा
आंबलिया
आभाणी
आल्हा
आसराणी

इसराणी

कऊड
कका
कटारिया
कपाइया
करणाणी
करणीया
कांकरिया
कात्यायन
कांटिया
कापडिया
कामसा
कायाणी
काला
काला परमार
काश्यप
कुलधर
कुपर्द
केनिया
कोकलिया
कोठारी
कोराणी

खेतलाणी
खोडायण
खोना

गटा
गदा
ग्रंथलिया
गागाणी
गादबाणा
गांधी
गाला, गाल्हा
गुगलीया
गेलाणी
गोखरू
गोठी, गोष्ठी
गोदड़ा, गोदड़िया
गोपाउत
गोसल
गोसलीया
गौतम

घट्टा
घलइया
घेलाणी

चंडीसर
चिंचट
चोथाणी
चौपड़ा
चौधरी
चोखेड़िया
चौहान

छकलसीया
छाजेड़
छुटसखा
छेडा
छोवट्टाणी

जवेरी
जांबड़
जाजा
जासल
जाहड़ा

झवेरी

ठक्कर
ठाकराणी

डहरवालिया
डूंगराणी
डोडिया
डोडियालेचा

ढ़ासरिया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ढ़ेढ़िया
तातोल
तालाणी
तेजपालाणी
थावराणी
दंड
दाधेलिया
दांठड़ी
दित्राणी
दुघड़
देढ़िया
देपालाणी
देयाणी
देवया
देवड़ा
देवाणी
देवाणदसखा
देसलाणी
दोसी
धरोड
धुरियाणी
नकीयाणी
नपाणी
नागड़ा
नागना
नाखुयाणी
नागार्जुनाणी
नागर
नाहर
नीकीयाणी
नीसर
नोद्राणी
पडाईया
पंचायाणी
पबाणी
परमार
परीख, पारीख, पारेख
पाटलिया
पारस
पारायण
पांचारिया
पालणपुरा
पावेचा
प्रामेचा
पीपलिया
पुराणी
पेथडाणी
पेथाणी
पोम
पोलडीया
बकीयाणी
बहंद
बहुल
ब्रह्मेचा
ब्रह्मशांति
बाधाणी
बीसलाणी
बुहड़
बेरीया
बोरीया
बोहड़
बोहरा
भणसाली, भांडशाली
भंडारी
भरकीथाणी
भादरायण
भारद्वाज
भुंबाणी
भुलाणी
भूगतरिया
भोर
मथाल
मणियार
मरुथलिया
महाजनी
महीरोल
महेता
महोता
महुडिया
महुडिया गांधी
माणकाणी
मालदे
मालाणी
माल्हू, मालू
मीठड़िया
मुमणिया
मूलाणी
मेघाजलाणी
मेलाणी
यशोधन
राजाणी
राठौड़
राणाणी
राणाथी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रांका

लघुशाखा
लाखाणी
लाछिल
लाछी
लालन
लालाणी
लींबड़िया
लोडाईया
लोडाया
लोढ़ा
लोढ़ायण
लोलड़िया

वकीयाणी
वडेरा
वड़हरा
वंशीयाण
व्यवहारी
वरहडिया, वरहुडिया
वहोरा
वागड़िया
वागड़ेचा
वांछिया
वारध
वाहणी
विषपहार
वीखरी
वीजल
वीसरिया महेता
वीसाणी
वृद्ध शाखा

शंख
शाएला
शाह
शंखेश्वरिया
शेढ
शत वर्धवान

सचीया
सच्याणी
सचराणी
संघवी
स्याल
समरसी
सरवण
सरवाणी
सहसगणा
सहस्रफणा
सहस्रफणागांधी
सांईया
सांड
साचोरी
सांडल
सांडसा
सांयाणी
साहुला
साधु
सायलेचा
सिंघलोरा
सिवाणी
सीयाणी
सुगंधी
सुवर्णगिरा
सुराणा
सेल्होत
सोनगिरा
सोनी
सौराणकीया

हथुडीया
हरगणाणी
हरिया
हरियाण
हरियाणी
हापाणी
हीराणी

श्री पल्लिवाल
श्रीपाल
श्रीमाली
श्री श्रीमाली

ऋषभ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

सप्तम

गोत्र सूची

अद्यतन गोत्रों की स्थिति

ओसवाल जाति अद्वितीय है। संसार में अनेक जातियाँ हैं, जिनका जन्म या आदि स्रोत एक ही है, परन्तु ओसवाल जाति के स्रोत अनेक हैं। अनेक कौमों, जातियों एवं वर्णों को अपने में आत्मसात कर लेने वाली यह जाति इतिहास की अमर बेल है। मूलतः अठारह गोत्रों से शुरू होकर वट वृक्ष की तरह इसकी शाखा-प्रशाखाएँ फैलती गयीं। वट वृक्ष का भी क्षेत्र सीमित होता है परन्तु इसका फैलाव सीमाहीन है। महत्ता इस बात में है कि जाति का मूल स्वरूप सुस्थिर हैं एवं इसकी धार्मिक व्यवसायिक एवं भाषायी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों कायम है। वैवाहिक सम्बन्धों के सूत्र सबको जातिगत ऐक्य का भान हर समय कराते रहते हैं।

पार्श्वनाथ प्रभु के छठे पट्टधर जैनाचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि ने सवा लाख क्षत्रियों को जैन बना कर इस महाजन वंश की नीव रखी एवं इसके प्रथम अठारह गोत्र प्रस्थापित किये। काल प्रवाह के साथ अन्यान्य जैनाचार्यों के सहयोग से यह धारा निरन्तर प्रवहमान रही। कई शाखाएँ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्य जाति एवं धर्म के प्रभाव में कटती रहीं और फिर इसी में समाहित भी होती रहीं। अन्य जातियों के उत्ताल हिम श्रृङ्गों से निस्सृत अनेक धाराएँ इसमें शामिल हुई। ग्यारहवी से पन्द्रहवीं सदी के बीच यह रूपान्तर तीव्रतर रहा। भगवान् महावीर के तयालीसवें पट्टधर श्री जिन बल्लभ सूरि ने लाखों जैनेतर लोगों को जैन बनाकर ओसवालों के बावन गोत्र संस्थापित किये। तत्पश्चात् आचार्य श्री जिनदत्त सूरि ने सर्वाधिक महाजन बनाये।

गोत्रों की कुल संख्या

अठारहवीं सदी के कवि रूपचन्द ने 'जैन भारती' के आलेखानुसार ओसवालों के ४४० गोत्र माने थे। वस्तुतः यह गणना अनुमानित है। यति श्रीपालचन्दजी ने उन्नीसवीं सदी में रचित अपने वृहद् ग्रंथ 'जैन सम्प्रदाय शिक्षा' में ओसवालों के करीब ६०० गोत्रों का नामोल्लेख किया है। विक्रम की बीसवीं सदी में प्रकाशित 'जैन जाति महोदय' एवं अन्यान्य ग्रंथों में मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने भी ६०० गोत्रों की तालिका दी है। पंडित हीरालाल हंसराज ने श्री जैन गोत्र संग्रह में कच्छ और गुजरात प्रदेश के ओसवालों के २५० गोत्रों की सर्वथा भिन्न तालिका दी है। भोजक एवं सेवग ओसवाल गोत्रों की कुल संख्या १४४४ बताते हैं। यति रामलाल जी ने अपने ग्रंथ महाजन वंश मुक्तावली में एक दन्त कथा का जिक्र किया है—'एक भोजक ने अश्वपति ओसवालों की १४४४ शाखों के नाम लिख लिये। घर आया तो स्त्री ने पूछा—'सब जात लिख ली?' भोजक बोला—'हाँ'। स्त्री ने कहा—'मेरे पीहर में डोसी जात है, देखो, लिखा या नहीं।' भोजक ने अपनी तालिका देखी। आश्चर्य, वह नाम तालिका में नहीं था। बोला—'और लिखू डोसी? तो फेर और घणाई होसी।'

सच में ओसवाल गोत्रों की सम्पूर्ण तालिका देना बहुत कठिन है। कुछ नये गोत्र बनते रहे हैं तो कुछ गोत्र कटते भी रहे हैं। जब वे जैन से 'शैव' हो गये तो पूरी सामाजिक व्यवस्था भी बदल गयी। उनका रोटी-बेटी सम्बन्ध नहीं रहा। इस तरह कितनी ही धाराएँ सूख गईं। कालान्तर में वे फिर रूपान्तरित हुए तो नये गोत्र बने। एक ही गोत्र में से शाखाएँ प्रशाखाएँ निकलती रहीं। यति रामलाल जी के अनुसार गोत्रों की अनुमानित संख्या २००० है। श्री बजरंगलाल लोहिया ने अपने ग्रंथ 'राजस्थान की जातियाँ' (१९५४) में एक जैन साधु का जिक्र किया है जिसने निरन्तर परिश्रम करके ओसवालों के १८०० खापों की सूचि बनाई। एक अन्य साधु ने उनके पास १५० अन्य नामों की सूची भेजी। इससे घबड़ा कर उन्होंने अपना उद्योग ही छोड़ दिया।

श्रीमती मनमोहिनी ने अपने सद्यः प्रकाशित ग्रंथ 'ओसवाल : दर्शन दिग्दर्शन' में ओसवालों के १५०० गोत्रों की तालिका दी है। वस्तुतः इनमें से अनेक गोत्र अब लुप्त प्रायः हैं या उनका नाम रूपान्तरित होकर कुछ अन्य हो गया है।

गोत्र सूची

ओसवाल गोत्रों की प्रामाणिक सूची बनाना इतिहास लेखन सा ही श्रम साध्य है। भारत के हर कोने में फैले ओसवाल परिवारों से सम्पर्क करना असम्भव था। मैंने एक मध्यम मार्ग

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चुना।ग्रंथागारों में अनेक हस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं जो विभिन्न काल में रचे एवं लिखे गये हैं। उनमें ऐसे भी ग्रंथ गुटके हैं जिनमें विभिन्न गोत्रों का इतिहास संयोजित है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का ग्रंथ क्रमांक १७०३३ संवत् १९१३ में रचित ऐसा ही एक विशद प्रयास है। प्रतिष्ठान के ग्रंथ क्रमांक ६५५ में ओसवालों के ३९४ गोत्रों की विगत दी हुई है। श्री अभय जैन ग्रन्थालय के हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक ७७६१ में 'ओस वंश के गोत्र' दिये हैं। नाहर ग्रंथागार में मथेन अमीचन्द रचित एवं संवत् १९४० में व्यास गोरथन लिखित 'महाजनां री जाता रौ छन्द' में ओसवालों के अनेक गोत्रों का विवरण संयोजित है। ये विगतें भाट एवं भोजकों की बहियों पर आधारित है।

जैन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के महात्माओं एवं यतियों द्वारा श्रावकों की वंशावलियाँ रखने का प्रचलन था। उनकी पोशालों एवं उपासरों में उपलब्ध बहियों के आधार पर यति श्रीपालचन्द्रजी, यति रामलाल जी एवं मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने अनेक ग्रंथ प्रकाशित किये, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भारत के विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध शिलालेखों के विवरण प्रकाशित किये हैं, जिनका उल्लेख यथा स्थान करेंगे। उसमें विभिन्न गोत्रों के ओसवाल श्रेष्ठियों द्वारा बिम्ब प्रस्थापना, मंदिर निर्माण एवं उनके द्वारा किये गये अन्य लोकहितकारी कार्यों के विवरण हैं।

हाल ही में ओसवाल इतिहास को उजागर करने वाले अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री हीरालाल जी दुग्गड़ ने 'मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म' नामक वृहद् इतिहास ग्रंथ की रचना की है। जयपुर, मद्रास, अहमदाबाद आदि अनेक नगरों से जैन या ओसवाल श्रावकों की डाईरेक्टरियाँ प्रकाशित हुई है। जैसे श्री सौभाग्य मल जी श्री श्रीमाल द्वारा प्रकाशित 'जयपुर डाईरेक्टरी', मद्रास के श्री सी० एन० मेहता द्वारा प्रकाशित जैन 'डाईरेक्टरी', श्री पिछौलिया द्वारा अहमदाबाद से प्रकाशित 'ओसवाल समाज निर्देशिका' आदि। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर ओसवाल गोत्रों के नाम एवं विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। इनमें बीसवीं सदी के मध्य में प्रकाशित ओसवाल सुधारक, ओसवाल, ओसवाल नवयुवक आदि पत्र तो ओसवाल समाज को ही समर्पित थे।

उक्त समस्त विवरणों के आधार पर समस्त ओसवाल गोत्रों की एक प्रमाणिक सूची यहाँ प्रकाशित की जा रही है जिसमें कुल २६०० गोत्रों के नाम संग्रहीत हैं। अनेक गोत्रों के नाम स्थान व समय के विपर्यय से बदलते रहे हैं। गणना में मैंने उन्हें 'एक' गोत्र ही माना है। अनेक गोत्र ऐसे है, जो किसी बड़े गोत्र की शाखा या उपशाखा हैं। कालान्तर में उन्होंने अपनी अलग पहचान बना ली अतः उन्हें भिन्न गोत्र मान लिया है। अनेकों को अपने पूर्व गोत्र का नाम भी नहीं मालूम। हमारा समाज इतना वृहद् है कि अब वैवाहिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में गोत्रों का कोई औचित्य नहीं रहा। एक ही प्रान्त के दूगड़ गोत्रीय परिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध हो चुके है क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे अपने आपको जैन लिखते आ रहे हैं। उन्हें पता भी नहीं कि उन दोनों परिवारों का मूल गोत्र 'दूगड़' था।

यह सूची भी पूर्ण नहीं कही जा सकती। हो सकता है अनेक गोत्रों के नाम छूट गये हों।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अ

अकोल्या
अधोरा, अघोड़ा
अछड़
अछुपत्ता
अछोइया
अजमेरीया
अजीमगंजिया
अटकलीया
अंचल
अनविध पारख
अंबड़
अबाणी, अब्बाणी
अभड़
अभाणी
अभराणी
अमरावत
अमी
अरणोदा
अलंझड़ा
असुभ
असोचिया

आ

आईचणाग
आकतरा
आकाशमार्गी
आकोदड़िया
आकोलिया
आखा
आगमिया
आगरिया
आघारिया
आछा, आच्छा
आडपायत
आथा
आथागोत
आदित्य
आदित्यनाग
आदितनाग
आधेरिया
आँचल
आँचलिया
आँचल्या
आबेड़ा
आभड़रहा
आभड़
आभाणी
आभू
आमड़
आमणी
आमू
आमदेव
आयरिया
आर्य
आलझड़ा
आलावत
आलीझा
आवगोता
आवड़
आस्तेवाल
आंसपुर
आसराणी
आसाढिया
आसाणी
आसी

इ

इटोडका
इंदा
इंदाणी
इलदिया
इसराणी

उ

उएस, उकेश, ऊकेश
उचितवाल
उजोत
उटड़ा
उड़क
उत्कंठ
उद्दावत, ऊदावत
उदेचा
उनकण्ठ
उपकेश
उर
उस्तवाल
उसतवाल
उसभ
ऊनवाल
ऊरण

ओ

ओकेश
ओडीचा, ओदीचा
ओपेचा
ओरड़िया
ओरा
ओवरेचा
ओस्तवाल
ओसतवाल
ओसवाल, ओशवाल
ओहड़

क

कउक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्यावर
कर्करेचा
कक्का
कक्कड़
कगस
कड़क
कड़ावत
कड़िया
कड़े
कच्छी
कच्छी नागड़ा
कचरा
कछारा
कछावा
कछवाहा
कछोला
कजलोत
कजारा
कटकथला देसाई
कटलेचा
कटारा
कटारी
कटारिया
कटी
कटोलिया
कठ
कठउड़
कठफोड़
कठारा
कठाल
कठीयार
कठोड़
कठोतिया
कठोरिया
कर्णावट

कर्णाट
कणोर
कतकपुरा
कदामालिया
कंकर
कंकालिया
कंच
कंजल
कंठीर
कंबेड़ी, कमेड़ी
कन्याकुब्ज
कनक
कनीय
कनियार
कनोड़ा, कन्हूड़ा
कनोजा
कनोजीया, कन्नोजिया
कपाईया
कपूरिया
कबाड़
कबाड़िया
कमल
करकट, कर्कट
करणा
करणाट
करणाणी
करणारी
करणावट, कर्णावत
करनेला
करमदीया
करमोत
करयु कररेड़ी
करवा
करहड़ी, करहेड़ी
करेलिया

करोड़िया
कलवाणा
कलरोही
कलिया
कवाड़
कवाड़िया
कस्तुरिया
कसाण
कसारा
कसूंभा
कहा

काउ
काकरेचा
काकेचा
काकलिया
काग, कागोत
कागड़ा
काछवा
काड़क
काजल
काजलिया
काजाणी
काटी
काठेड़
काठेलेवड़ा
काड
कात्या
कातेल
कातरेला
कांक
कांकलिया
कांकरिया
कांकरेचा
कांग, कांगरेचा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कांगसिया
कांचिया
कांटिया
कांठेड
कांधाल
कांवसा, कामसा
काँस्टिया
कान्हूड़ा
कानरेला
कानलोत
कानूँगा, कानूगा
कानूनगा, कानूनगो
कात्रेला
कापड़
कापड़ा
कापड़िया
कापुरीत
काबरिया
काबा
काबिया
काबेडिया
कावेड़िया
कांबेड़िया
कामदार
कामाणी
कायाणी
कारणी
कारपूंडिया
काराजी
काल्या
काला
काला परमार
कावड़िया
कावसा
काविया

कावेड़िया
कांस्टिया
कासतवाल
काँसेरिया
काश्यप, कश्यप
कात्रेला

किमती
किराड़
किरणाट
कींचा
कीटेचा
कीलोला
कीस्तूरिया

कुकड़, कुक्कड़, कुक्कुड़
कुकड़, चोपड़ा
कुगचिया
कुचोरिया
कुचोरिया, कुचोर्या
कुछाल
कुणन
कुणावत
कुदार, कुदाल
कुंकुम
कुंकुम चोपड़ा
कुंकुरोल
कुंजावत
कुंड़
कुंड़लिया, कुंडालिया
कुंदण
कुंपड़
कुंपावत
कुंभारिया
कुंबरदे

कुबड़ीया, कुबाड़िया
कुबेरिया
कुबुद्धि
कुभटा
कुम्मट, कुम्भट, कुमठ
कुम्भा
कुर्कट
कुरकुचिया
कुरा
कुलगुरु
कुलधरा
कुलभाणा
कुलवट
कुलवंत
कुलहट
कुलहणा
कुसलोत
कुहाड़, कुआड़
कुवाँड़, कुवाड़
कुकड़ां

कूमढ़, कूमठ
कूहड़

केड़
केदार
केराणी
केल
केलवाल
केलाड़ी
केसरिया
केसवाणेचा
केहड़ा

कोकड़ा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोकलीया
कोचर
कोचरमूंथा
कोचेटा
कोट
कोटड़िया
कोटलिया
कोटारी
कोटीका
कोटी
कोटेचा
कोठरिया
कोठारी
कोठारी मेहता
कोठारी चोपड़ा
कोठिया
कोठीफोढ़ा
कोठेचा
कोणेजा
कोबर
कोबेड़ा
कोराणी
कोल्या
कोलर, कोलड़
कोलोरा
कोहेचा
कौसीया

ख

खगाणी
खड़ भंडारी
खड़ भंसाली
खड़बड़
खड़िया
खजांची
खटवड़, खटहड़
खटेड़, खाटेड़, खटेर
खटाड़, खंटेड़
खटेल
खटोड़, खाटोड़ा
खटोल
खंडिया
खपाटिया
खमसरा
खमेसरा
खरधरा
खरहत्थ
खरे
खरेड़, खरोड़
खवाड़

खाव्या, खाबिया
खाभईया
खाबड़िया
खारड़
खारा
खारिया
खारींवाल
खारेड़

खिंदावत
खिलची
खीचा, खीचिया
खीची
खीमसरा, खींवसरा
खीमसिरि
खीमसी
खीमाणदिया
खीया
खुड़धा
खुतड़ा, खुथड़ा
खुमाणा

खेचा
खेड़िया
खेड़ेचा
खेतपालिया
खेतरपाल
खेतलाणी
खेतसी
खेमासरिया
खेमानन्दी
खेमाहास्या
खेरवाल
खोखरा
खोखा
खोड़िया
खोपर

ग

गगोलिया
गड़िया, गडिया
गजसरा
गजा
गट्टा
गटागट
गटिया
गटियाला
गडवाणी
गढ़वाणी
गणधर
गणधर चोपड़ा
गदा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गदैया, गदईया
गधैया, गधईया
गद्हैया, गदेहिया
गदीया
गंग, गांग
गंगवाल
गंधिया
गंधी
गन्ना
ग्रथलीया
गर
गर्जा
गरुड़
गलाणी
गलुंडक
गलूंडिया
गहलोत

गागा
गागाणी
गांगलिया
गांधी, गांधी मेहता
गांधी सहसगुणा
गांची
गाढ़िया
गादिया
गाय
गाल्हा, गाला
गावड़िया

गिडिया
गिणा
गिरमेर
गिरिया
गींगा

गुजराणी
गुजराती
गुणपालाणी
गुणहंडिया
गुणिया
गुंगलेचा
गुंदेचा, गोंदेचा, गुदेचा
गुनेचा
गुलगुलिया
गुवाल
गूगलिया
गूजड़िया, गूजरिया
गूजर गोत्ता
गूजर नागड़ा
गूडलिया
गूंगलिया
गूंदिया
गेमावत
गेरा
गेलाणी
गेवरिया, घेवरिया
गेहलड़ा, गेलड़ा
गेहलोत

गोकड़
गोखरू
गोगड
गोगरी
गोगालिया
गोगेड़ा
गोड़ावत
गोड़ावत
गोड़वाड़िया
गोटावत

गोटेचा
गोठा
गोठी
गोढ़ा
गोतम
गोतम गोत्ता
गोताणी
गोधरा
गोदावत, गोधावत
गोदिबा
गोंध
गोध
गोंधा
गोप
गोपाउत, गोपावत
गोमावत
गोरा
गोरावत
गोरीसाल
गोरेचा
गोलीया
गोलेच्छा, गोलेचा
गोलछा
गोलवछा
गोवरिया
गोसा
गोसल
गोसलाणी
गोसलिया
गोहीलाण
गौड़

घ

घघेरवाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

घंघवाल
घट्टा
घंटेलिया
घरघटा
घरवेला
घांघरोल
घांघारी
घासाल
घिया, घीया
घीवाल
घुल्स
घुलिया
घेमावत
घेरिया
घेवरिया
घोखा
घोरवाड़
घोंसल
घोष

च

चतकरिया
चतर
चतुर
चतुर मूंथा
चतुर मेहता
चंचल
चंडालिया, चिंडालिया
चंदावत
चन्द्रावत
चंडालेचा
चपलावत
चपलोत
चपरौत
चम्प
चम
चम्ब
चमकीया
चमनीया
चरड़
चरवेड़िया
चवा
चरेहरा
चहुआण

चाचिगाणी
चांचिया
चाणोदिया
चांपड़
चापड़
चापड़ा
चामड़
चावत
चामण
चाल
चावा

चिड़चिड़
चितालिया
चितोड़ा
चितोड़िया
चित्रवाल
चींचड़
चीचंड़ा
चींचंट
चींपड़
चींपड़ा
चींपट
चील
चीलिया

चुखंड
चुंगा
चुदालिजा
चुंदोलिया
चुतर
चुत्र
चेलावत
चैनावत

चोक्खा
चोथाणी
चोढू
चोधरी, चौधरी
चोपड़ा
चोरड़िया
चोरवेड़िया
चोलू
चोवटिया
चोसरिया
चोहान, चौहान

चौमोला
चौहाना, चौहना
चौहरना

छ

छकलसीया
छछोहा
छजलाणी
छत्तीसा
छपनिया
छलाणी, छेलाणी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

छल्लाणी
छत्रवाल
छत्री
छत्र
छत्रिया

छागा
छाछा
छाड़ोरिया
छाड़ोत
छाजेहड़, छाजेड़
छाँटा
छापरवाल
छापरिया
छालिया
छाव
छावत

छिंगाणी
छीलिया

छेड़ा
छेदवाल
छेर
छेवटाणी
छैल
छोगाला
छोलिया
छोरिया
छोहरिया
छोड़ा

ज

जख
जग
जगडू
जगावत
जड़िया
जड़िया तेलवाणी
जडीया
जण्कारी
जणिया
जदिया
जत्राणी
जंड
जडूँ
जनारात
जम्मड़, झम्मड़
जामड़
जमघोटा
जरगड़
जल
जलवाणी
जलावत
जविया
जवेरी, झवेरी
जस्साणी
जसेरा
जक्षगोता

जाईल
जाईलवाल
जागा
जाटा
जाणेचा
जाजेचा
जातड़िया
जादव
जाँगी
जांगड़
जांगड़ सिंघवी
जागड़ा, जांघड़ा
जांजी
जांतड़ा
जांबड़
जाबक
जाबलिया
जामड़ा
जारड़ा
जारोडीया
जारोली
जालाणी
जोलोखा
जालेरा, जालोरी
जालोत
जावक
जासल
जाहड़

जिंद
जिंदाणी
जित्राणी
जीजाणी
जीत
जीतोत
जीमणीया
जीरावत
जीरावला
जीरावाला
जुगलिया
जुंजाड़ा
जुंजाणा
जुनीवाल, जूनीवाल
जुबर्डा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जुष्टत
जुष्टल

जेलमी
जेसगाणी
जैन
जैलावतजोखेला
जोगड़, जोगड़ा
जोगनेरा
जोगनी
जोगणेचा
जोगपोचा
जोगिया
जोड्या
जोगाणी
जोधड़
जोधपुरा
जोधा
जोधावत
जोरुडा
जौहरी
जौहा

झ

झगड़ावत
झंड़
झंबक
झबेरी
झलोरी

झाकुलिया
झागड़
झाड़चूर
झांबड़
झांबावत
झांबरपाल
झांबरवाल
झांबाणी
झामड़
झाबक
झालाई
झोटा

ट

टकुलिया
टंक, टांक
टंच
टप
टहुलिया
टागी
टांटिया, टाटिया
टापरिया
टिंडीवाल
टिंबाणी
टीकायत
टीकोरा
टीबाणी
टीलिया
टुंकलिया, टुंकालिया

टेका
टेबा
टोडरवाल, टोडरवाह्मा
टोडरमालोत

ठ

ठकी
ठकुर
ठगा
ठगाणा
ठंठवाल
ठंठेर, ठंठेरा
ठाकराणी
ठाकुर
ठाकुरा
ठाकुरोत
ठावा
ठीकरिया
ठेलिया

ड

डक
डंड
डफ
डफरीया
डहत्थ

डाक्टर
डाकले
डाकलिया, डाकुलिया
डाकूलीया
डागरिया
डागरेचा
डागलिया
डागा

डाँगी
डाडेचा
डाबर
डावा
डावरिया

डीडू

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

डीडुल
डीडूता
डींडुम
डीडुया

डुक
डूँगरवाल
डूंगराणी
डूँगरिया
डूँगरोवाह
डूँगरोल
डूबरीया

डोठा
डोडिया
डोडोयालेचा
डोडेचा
डोलण
डोलसगर
डोसी

ढ

ढ़ाढ़ा, ढ़ड्ढ़ा
ढ़ाकलिया
ढ़ाँचालिया
ढ़ाबरिया
ढ़ासरिया
ढ़िल्लीवाल
ढ़ींक

ढ़ेढ़िया, ढ़ेडिया
ढ़ेलड़िया
ढ़ोर

त

तप्तभट्ट
तरवेचा
तलवाड़ा
तलेरा, तालेरा, तालेड़ा
तलेसरा
तलेबड़ा
तवाह

ताकलीया
तोंतेड़, तातहड़
ताँण
ताम्बी
तारावल
ताल
तालड़
ताला
तालाणी
तालेड़ा

तिरणाल
तिरपंखिया
तिरपेकिया
तिरवेकिय
तिलखाणा
तिलहरा
तिलाणा
तिलेरा, तिल्लेरा
तिलाणी
तिलोरा
तिहुयणा
तीवट

तुंग
तुंड
तुला
तुलावत
तुहाणा
तुंगा
तूता

तेडपालाणी
तेजाणी
तेजारा
तेजावत
तेलड़िया
तेलहरा
तेलिया
तेलिया बोहरा
तेलेरा

तोडरवाल
तोड़ीवाल
तोडयाणि
तोलावत
तोलीया
तोसटीया
तोसरिया
तोसलिया

थ

थटेरा
थंभोरा
थरदावत

थांभलेचा
थानावट
थारावत

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थावराणी
थाहर
थिरवाल
थिराणी
थिरावाल

थोरवाल
थोरिया

द

दईया
दक
दख
दड़ा
दंड
दहा
दणवट
दनेचा
दफ्तरी
दरगड़
दरगेड़ा
दरड़
दरड़ा
दरड़िया
दलाल
दंवरी
दस्सानी, दासानी
दसाणी
दसवाणी
दशलहरा
दसोरा

दाउ
दाखा
दाढ़ीवाल
दाणी
दातारा
दादलिया
दाना
दानेसरा
दांठडिय
दांतेवाड़िया
दालिया
दासोत
दिल्लीवाल
दित्राणी
दीपक
दींग
दीपग

दुग्ग
दुग्गड़, दूगड़
दुठाहा
दुडिया
दुढ़ाहा
दुणीवाल, दुनिवाल
दुद्धोणी
दूदवाल
दूधवेड़िया
दूधिया, दुधिया
दूधीया गांधी
दूधेडिया, दुधोड़िया
दूधोरिया
दूधोड़ा
दूसाज
दुसाझा

देडिया
देढ़िया
देधराणी
देपालाणी
देपरा
देपारा
देमारा
देदाणी
दैयाणी
देरासरिया
देलडीया
देलवाड़िया
देवड़
देवड़ा
देवराजोत
दैवलसखा
दैवाणदंसखा
देवाणी
देवानन्दा
देवानन्दी
देशरला, देसरला
देशलहरा, देसलरा
देशवाल
देसरला
देसलाणी
देसरडा, देसड़ला
देशाई, देसाई
देहरा, देहड़ा

दोलताणी
दोसाखा
दोषी, दोसी

ध

धंग
धडवाई

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

धतूरिया
धन
धनचा
धनचार
धनड़ाया, धनडाय
धनंतरी
धनपाल
धन्नाणी
धनारी
धनेचा
धनेजा
धनेरिया
धबड़िया
धम्मल
धम्माणी
धामाणी
धर
धरकट, धर्कट
धरकूट्टा
धरा, धर्म
धरमाणी
धलईया

धाकड़
धाकड़िया
धांगी
धाड़ावत
धाड़ीवाल, धारीवाल
धाड़ेवाल
धाड़ेवा, धाड़ेवाह
धातुरिया
धाबाल
धांधालिया
धांधिया

धाया
धारा
धारीया
धारोत
धारोला
धावड़ा
धावरिया
धावाड़

धींगा
धींग, धीग
धींगड़
धीया
धीर
धूँधिया
धुपड़
धुप्या
धुपिया
धुर
धुरीयाणी
धुल्ल
धुवगोता
ध्रुवगोता
धूमावत

धेनडाया
धेनावत
धेलाणी
धोका
धोखा
धोखिया
धोल
धोप्य

न

नकीयाणी
नखत
नखरा
नखा
नखित्रेत
नग
नगगोता
नथावत
नन्दक
नन्दावत
ननगाणी
नपावलिया
नरवरा, नरुवरिया
नरसिंघा, नरसिंह
नरायण
नलवाया, नलवाह्या
नलिया
नव कुद्दाल
नवलखा, नौलखा
नवाब
नक्षत्र
नक्षत्रगोता

नाग
नगगोत्त
नागोत्ता
नागोथा
नागण
नागड़ा
नागड़
नागपुरा
नागपुरिया
नागार्जुनाणी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नागीयाणी
नागदौन
नाग सेठिया
नागणा
नागर
नागौसी
नाचाणी
नाडुलीया
नाडोलीया
नाणा
नाणा गोता
नाणवट
नाणी
नाथावत
नानकाणी
नानावटी
नानावट
नानेचा
नांदेचा
नापड़ा
नामाणी
नायकाणी
नारणवाल
नारण
नारिया
नारेला
नारेलिया
नारोलिया
नालेरिया
नीवटा
नावटी
नावरिया
नावसरा
नावेड़ा
नारेडार

नाहर, नहार
नाहरलाणी
नाहउसरा
नाहटा, नाहटा

निंबड़िया
निंबाड़ा
निबरड़ा
निंबणिया
निंबड़ा
निबोलिया
निधि
निरखी
निमाणी
निलड़िया
नीसटा
नियाणी
निसाणिया

नेणवाल
नेणसर
नेणेसरा
नेर
नेरा
नैनावटी
नोडाणी
नेपत्ता
नोपाली
नोपोला
नौलखा

प

पगाटिया
पगारिया
पगोरिया

पड़गतिया
पड़ाईया
पड़ियार, पड़िहार
पचनावत
पचीसा
पठाण, पठान
पटणी, पटनी
पछोलिया
पटोल
पटवा
पटवारी
पटावरी
पटोलिया
पंचकुदाल
पंचलोढ़ा
पंचवना
पंचायणेचा
पंचावत
पंचवया
पंचाणेचा
पंचायाणी
पंचोरी
पंचोली
पंडरीवाल
पंवार, परमार
पमार
पटविद्या
पटोलिया
पदमावत
परडीया
पबाणी
परजा
परधान
परघला
परघाला

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परमार
पलीवाल
पल्लीवाल
पसला
पंसारी
पहाड़िया
पहु

पाका
पाचोरा
पाटणी
पाटनी
पाटणिया
पाटोतिया
पाटोत
पाटणिया
पाटोतिया
पातावत
पांचावत
पांचारीया
पांडुगोता
पानगढ़िया
पानगड़िया
पानोत
पापड़िया
पामेचा
प्रामेचा
पारख,पारेख
पारीख
पारणीया, पाराणीया
पारसन
पालगोता
पालखीया
पालणीया
पालाणी

पालावत
पालरेचा, पालड़ेचा
पालणेचा
पालणपुरा
पालेचा
पावेचा
पाहणिया

पिछोलिया
पिरगल
पीतलिया
पीथलिया
पीथाणी
पींचा
पींपाड़, पींपाड़ा
पीपलिया
पीपला
पीहरेचा

पुकारा
पुगलिया

पूंगलिया
पुजारा
पुजारी
पूण
पुनराजाणी
पुनमिया, पूनम्यां
पूनियाणी
पुनीत
पुराणी
पूर्विया
पुहाड़
पुष्करणा

पेंचा, पैचा
पेथडाणी
पेथाणी
पेंतीसा
पेपसरा
पोकरणा

पोखरणा
पोकरवाल
पोतदार
पोपाणी
पोपावत
पोमसीयाणी
पोमाणी
पोसालीया
पोरवाल
पोसालेचा
पोसालेवा
प्रोचाल

फ

फतहपुरिया
फलसा
फलोदिया
फाकरिया
फाल
फालसा
फाफू

फितूरिया
फिरोदिया
फूमड़ा
फूलगरा
फूलफगर
फुलेचा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

फूसला

फोकटिया
फोफलिया
फोलिया

ब व

बकरा
बकील
बकीयाणी
बगड़िया
बगचार
बगाणी, बागाणी
बंगाणी
बगला
बघेरवाल
बड़गौता
बड़जात्या
बड़ला
बड़लौता
बड़लोया
बडाला
बड़ोल
बड़ोला
बच्छावत, बछावत
बच्छस
बजाज
बट
बटवटा
बड़बड़ा
बड़भटा
बड़हरा
बड़ेर
बड़ेरा
बड़हरा

बडोरा
बड़ोदिया
बढ़ाला
बण
बणभट, बणवट
बदलोटा, बलदोठा
बदलोढ़ा
बदालिया, बदलिया
बद्धड़
बद्धण
बघाणी
बंका
बंग
बंगाला
बन्दा
बन्दा मेहता
बंब, बम्ब
बंभ
बंबोई
बबोईया
बंबोरी
बम्बोली
बंश
बंबोड़ा
बंहद
बनबट
बनावत
बब्बर
बवाल
बबाला
बबूकिया
बबेर
बया
बरकीया
बरड़

बराड़
बरड़ा
बरण
बरड़िया, बरहड़िया
बरहूड़िया
बरडेया
बरदिया
बर्धन
बर्धमान
बरमेचा, ब्रह्मेचा
बिरमेचा
बरपत
बरलद्ध
बरलेचा
बरसाणी
बरहुड़िया
बरादुपिया
बरुआ
बरुड़िया
बरोदिया
बृद्ध
ब्रह्मेवा
बला
बलदेवा
बल्लड़
बलदोबा
बलदोटा
बलहरी
बलाहारा
बलाई, बलाही, वलही
बलोटा
बवाल
बवेला
बसाह
बहड़ा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बहाणी
बहरा
बहुड़
बहुबोल
बहुरा
बहोरा
वप्पनाग

बाकरमार
बाकुलिया
बाखेटा
बाखोटा
बागड़िया
बागड़ेचा/बागरेचा
बागचार, बाघचार
बाग जयाणी
बाग जयासी
बागरेचा
बागला
बागानी
बाघ
बाघड़ी
बाघमार, बागमार
बाघणा
बाड़भटा
बाड़ोना
बातड़िया
बातोकड़ा
बादरिया
बादवार, बादवोर
बादलिया, बादलीया
बादोला
बाधाणी
बांका
बागाणी, बंगाणी

बांवलिया
बांठिया
बांदोलिया
बांबल
बांबड़ा
बांभ
बानीगोता
बानुणा
बानेत
बानेता
बापड़ा
बापना
बाफणा, बहुफणा
बापावत
बाबेल, बबेल
बाबो
बामाणी
बायरगोता
बारडेचा
बाराणी
बाल
बालड़
बालड़ा
बालगोता
बालत्य
बालवा
बालोटा
बालोत
बालह
बाला
बालिया
बावरिया
बावरेचा
बावेला
बाहड़ा

बाहणी, वहाणी, वाहणी
बाहला
बाहरिया
बाहबल, बाहुबली

बिछावत
बिजोत
बिदाणा
विद्याधर
बिदामिया
बिनय
बिनायक
बिनायका
बिनायकिया, बिनायि
बिनायक्या
बिनसट
बिनसर
बिम्बा
बिमल
बिरदाल
बिरमेचा
बिलस
बिरहट
बिशाल
विषापहार

बीजल
बीजाणी
बीजावत
बीजोत
बोतरागा
बीर
बीराणी, वीराणी
बीरावत
बीसाणी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बीसराणी
बीसलाणी
बीसरिया

बुचस
बुरड़
बुच्चा
बुचाणी
बुटीया
बुन्देचा
बूहड़
बूजड़िया ,बूझड़िया
बूवकिया, बूबकिया
बुम्ब बुपक्या
बुलीया, बुलिया
बूड़

बेगड़
बेगवाणी
बेगाणिया
बेगाणी, बेंगाणी
बेछात
बेताल
बेताला
बेतालिया
बेताली
बेद, वेद
बेद्य, वैद्य,
बेद गांधी, वैद्य गांधी
बेद मेहता
बेद मूथा, बेद मूँथा
बेद मूता
बैकर, बैंकर
बेंगाणी, बंगाणी
बेराठी, बैराठी

बेलावत
बेला भंडारी
बेलिए
बेलीम
बेलहस
बेवल
बेहड़

बोक
बोकड़ा
बोकड़िया
बोकरिया
बोकड़ासा
बोगावत
बोचाणी
बोडाने
बोटाउरा
बोत्थाणी
बोथरा, बोहत्थरा
बोपीचा
बोरड़
बोरड़ा
बोरड़िया
बोर्डिया
बोरदिया, बोरधिया
बोरधा
बोरा
बोराणा
बोरीया
बोरुदिया
बोरेचा
बोरीचा, बोरोचा
बोलिया
बोसूदिया
बोहड़, बुहड़

बोहरा
बोहरा काग
बोहरिया
बोहित्थरा

भ

भक्कड़
भगत
भगालिया
भड़कतिया
भड़गतिया
भड़गोता
भड़भेचा
भटेरा
भटेवड़ा
भटेवरा
भटनेरा
भट्टारकिया
भट्ट
भणवट
भद्र
भद्रा
भद्रेश्वर
भणेत
भणूकिया
भंडलिया
भंडसाली
भंडासर
भंडारा
भंडारी
भंसाली, भणसाली
भँवरा
भमराणी
भमावत
भयाण, भयाणा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भर
भरकीयाणी
भरथाण
भरह
भरवाल
भलगट
भल्ल
भल्लड़िया
भलभला
भलणिया
भला
भवालिया
भसौड़

भाईचणा
भाखरीया
भागू
भाड़ेगा
भाणेश
भादर
भादनिया
भादानी
भाटी
भाटिया
भाणद
भाद्रगोता
भाद्रा
भांचावत
भाडावत, भंडावत
भांड़िया
भांभड़
भाभट
भानावत
भामड़
भामराणी

भाभू
भाभू पारख
भाया
भाराणी
भाला
भावड़ा
भावसरा, भींवसरा

भीटड़िया
भींड
भीनमाल, भीनमाला
भीमावत
भीर
भीलमार

भुगड़ी
भुगतरिया
भुणिया
भूटी
भुंडलिया
भुतड़ा
भुतेड़ा
भूतेड़िया, भूतोड़िया
भुतिया
भूय
भूरटिया
भुरट
भुरंट
भुरदा
भूरा
भूरी
भूलाणी
भूसल
भूषण
भेलड़ा

भेलड़िया
भेला
भैंसा
भोगर
भोजाणी
भोजावत
भोपावत
भोपाला
भोभलिया
भोढा
भोर
भोरड़िया
भोल

म

मक्कलवाल
मकवाणा
मकुयाणा
मकाणा
मगदिया
मच्छा
मछराला
मड़िया
मघासरिया
मट्ठा
मट्ठड़
मठा
मणहरा
मणहाड़िया
मणहेड़ा
मणियार
मथाल
मथुरा
मथाणा
मथाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मदारिया
मदरेचा
मंगलिया
मंगीवाल
मंडलीक
मंडोचित
मंडोचिया
मंडोवरा
मत्रा
मंसाणिया
मन्म
मंत्री
मंहोरा
मनहनी, मनिहानी
ममईया, ममैया
मरड़िया
मरडेचा
मरलेचा
मरवाणा
मरवाणी
मरुवा
मरुथलिया
मरोठी
मरोठिया
मल्ल
मल्हाड़ा
मल्लारा
मल्लावत
मल्लावत, बांठिया
मलटिया
मला
मलेशा
मसरा मवडीकार
मसाणा
मसाणिया

महड़
महत्था
महणोत, मनोत
महता
महतियाण
महरोड़
महा
महाजन
महाजनिया
महाभद्र
महावत
महिवाल
महीरोलन
महेच
महेचा
महेला
महिपाल
महोता
महोरा

मांगेत
माघवाणी
माडलीया
माणकाणी
माणावत
माथुरा
मादरेचा, मुदरेचा
माधोटिया
माधोरिया
मांडलिक
मांडलेचा
मांडोत
मांडोता
मानी
मारलेचा

मारू
मालक
मालकस
मालखा
मालतिया
मालनेसा
मालविया
माल्हणु
माल्हाजा
माला
मालाणी
मालावत
मालू, माल्हू
मालोत
माहालाणी
मिचकिन
मिछेला
मिण
मिणियार
मित्री
मिनिया
मित्री, मिनिया
मिठा
मित्री
मीठड़िया
मीठड़िया सोनी
मीनागरा
मीनारा
मीहा

मुकीम
मुखतरपाल
मुणोत, मुहनोत
मुत्थड़
मुठलिया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुंगड़िया
मुंगोरल
मुडणेचा
मुत्री बोहरा
मुन्हानी
मुमणिया
मुलल
मुरगीपाल
मुरगीवाल
मुरड़िया
मुरदा
मुसलीया
मुहणाणी
मुहाणाणी
मुहिमवाल
मुंहियड़
मुहिलाण
मुहाल्या
मूधा
मुंथड़ा
मूंथा, मूथा
मूदा
मुधाला

मूंगरवाल
मूंगरेचा
मूंछाला
मूंधड़ा
मूलमेरा
मूलाणी
मूसल

मेघा
मेघालजाणी
मेड़तवाल
मेड़तीया
मेताला
मेनाला
मेमवाल
मेर
मेराण
मेलाणी
मेहमवाल
मेहर
मेहता
मेहसा
मेंहू
मैराण

मोगरा
मोगिया
मोघा
मोडत
मोडोत
मोटावण
मोटाणी
मोता
मोतीया
मोतीयाण
मोदी
मोमाया
मोर
मोरख
मोरच
मोरचीया
मोराक्ष
मोल्हाणी
मोलाणी
मोहड़ा
मोहनाणी
मोहब्बा
मोहलाणो
मोहणोत
मोहता
मोहीवाल
मोहीवाला
मौतियाण

य

यति
यक्ष
यादव
योगड़
योगेसरा
योद्धा

र

रंक
रखवाल
रणधीरा
रणधीरोत
रणशोभा
रणसोत
रतनगोता
रतनपुरा, रतनपुर
रतनसुरा
रतनावत
रत्ताणी
रहेड़

रांका, राका
राक्यान
राकावाल
राखड़िया बोहरा
राखेचा
रागली
राजड़ा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राजदा
राज गांधी
राज बोहरा
राज ध्याना
राजसरा
राजाणी
राजावत
राजोत
राठोड़, राठौड़
राठौड़िया
राठी
राठा
राडा
राणावत
राणाणी
राणोत
रातड़िया
रामपुरिया
रामसेन्या
रामाणी
रामायत
राय
रायगांधी
रायजादा
रायपुरिया
राय भंसाली
राय भंडारी
राय सुराणा
राय सोनी
राव
रावत
रावल
राहड़

रीखब
रींसाण
रीहड़
रुणवाल, रुणिवाल
रुंणियां
रुगवाल
रुंगलेचा, रुंघलेचा
रूप
रूपधरा
रुपाणी
रूपावत
रूपावर
रूमाल

रेखावत
रेड़
रेणु
रेहड़
रैदानी
रैदासनी, रैदासणी

रोआँ
रोटागण
रोहिल

ल

लक्कड़
लघु कुम्मट
लघु खंडेलवाल
लघु चमकीया
लघु चिंचट
लघु चुंगा
लघु चौधरी
लघु नाहटा
लघु पोकरणा
लघु पारख
लघु भुरंट
लघु रांका
लघु राठी
लघु सुरवा
लघु संघवी
लघु समदड़िया
लघु सोढ़ती
लघु सोढ़ाणी
लघु संचेती
लघु हिंगड़
लघु श्रेष्ठि
ललवानी, ललवाणी
ललानी
ललूंडिया
ललित
लसोड़
लहरिया

लाखाणी
लाछी
लाडवा
लाडलखा
लाभाणी
लाम्बा
लामड़
लालण, लालन
लाला
लालाणी, लालानी
लालेन
लालोत
लाहोरा

लीगा
लीगे, लिगे
लींगा, लिंगा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लींबड़िया
लीरूणा
लुंकड़, लूंकड़
लुंग
लुंडा
लुंबक
लूंगावत
लूँछा
लुणा
लूणिया, लूनिया
लूणावत, लूनावत
लूणवाल
लूणेचा
लूसड़

लेरखा
लेल
लेवा
लेहेरिया
लोडाया
लोटा
लोढ़कर
लोढ़ा
लोढ़ा राय
लोलग
लोला
लोलेचा
लोसर
लौकड़

स

स्याल, स्याला
सकलेचा
सकलाद
सखण
सखला
सखलेंचा
सखाणी
सगरावत
सचिंती
सचिया
सचोपा
सणवाल
स्थूल
सध्याणी
सधरा
सधराणी
संकलेंचा
संखला
संखलेचा, संखवालेचा
संखवाल
संघवी
संघी
संचयि
संचेती
संड
संडासिया
संधि
संभरिया
संभुआना
संवला
संवलिया
सवां
सदावत
सफला
सभद्रा, सबदरा
समदड़िया, समदरिया
समधड़िया
समरखी
समुदरिख
समुद्रडिया
समुद्रिया
समूलिया
स्याल
स्याला
सरा
सराफ, सर्राफ
सरभेल
सरला
सरवला
सराह, सराहा
सरुपिया
सरूपरिया
सलगणा
सलगवा
सवा
सरवला
सवाया
सहचेती
सहचिंती
सरजाणी, सजाणी
सहजावत
सहलोत
सहसगुणा
सहसगुणा गाँधी
सही

साखेचा
सागाणी
सागावत
साचा
साचावट
साचा संधि
साचोरा
साचोरी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साढ़ेराव
साढ़ा
सादावत
साधि मेहता
साधु
सांईयां
सांख्या
सांखला, साखला
सांखला परमारा
सांखलेचा
सांगाणी
सांचोपा
सांड
सांडेला
साढ़
सांढ़ा
सांढिया
सानी
साँपद्राहा
सांपुला
सारंगणि
साँवरा
सांवला
साँवलिया
सामडा
सामसुखा, स्यामसुखा
सांभरिया
साभद्रा
सामर
सामोता
सायाणी
सायलेचा बोहरा
सारूप्रिया
सारूपारिया
साल्हणेचा
सालीपुरा
सालेचा, सालेसा
सावन
सावणसुखा
सावलसखा
सावलिया
सांसला
साह
साहिब गोता
साहिला
साहलेचा
साहुला

सिखरिया
सिचिवाल
सिणगार
सिंघल
सिंघी
सिंघवी
सिंघलोरा
सिंघाला
सिंधी
सिंधड़
सिंधुड़ा
सिंदरिया
सिंहावट
सिंहावत
सियाल, सीयाल
सिरहट
सिरोदिया सिरोलिया
सिरोहिया, सिरोया

सीखा
सीखाणी
सीगाला
सींगी
सींघाड़िया
सींचा
सीप
सींपानी, सीपानी
सींपाणी
सीरोह्या संघवी
सीरोहिया, सीरोह्या
सीलरेचा
सीवाणी
सीसोदिया

सुखनिया
सुखलेचा
सुखा
सुखाणी, सुखानी
सुखिया, सुखीया
सुगंधी
सुगणिया
सुचंति, सुंचिती
सुचिंतित
सुघड़
सुजन्ती
सुदेवा
सुजंती
सुधेचा, सुँधेचा
सुट
सुधड़
सुधरा
सुंडाल
सुन्दर
सुन्धा
सुन्धेचा
सुबाजिया
सुभना
सुभादा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुरती
सुरपिया
सुरपारिया
सुरपुरिया
सुरयरा
सुरणा
सुराणीया
सुरहा
सुरहिया
सुरोवा
सुसाणी
सुसाँखुला
सुवर्णगिरी

सूकाली
सूघड़
सूचा
सूधा
सूंडाल
सूर
सूरपुरा
सूरमा
सूरिया, सूर्या
सूहा

सेखाणी, शेखाणी
सेठिया
सेठिया पावर
सेठिया वैद्य
सेठ
सेठी
सेठीपारा
सेणा
सेमलानी
सेल्होत
सेलोत
सोपड़िया
सेलवाड़िया
सेवड़िया
सेवाजी
सेहजावत

सोजन
सोजतवाल
सोजतिया
सोठिल
सोढ़ा
सोढ़ाणी
सोधिल
सोनगरा
सोना
सोनाणा
सोनारा
सोनावट
सोनावत
सोनी
सोनीगरा
सोनी बाफणा
सोनीमिंडे
सोनेचा
सोफाड़िया
सोभावत
सोमाणी
सोमालिया
सोलंखी, सोलंकी
सोसलाणी
सोसरिया
सोहनवाडिया
सौवर्णिक

श

शंखी
शंखेश्वरीया
श्यामसुखा, शामसुखा
शठे
शाह, शाहा
शाह-छाजेड़

शिवा
शीगाला
शीशोदिया

शुकनिया
शूरमा
शूरवा
शेखावत
शेठ
शौराण

ह

हगुड़िया
हड़िया, हरिया, हरीया
हठीला
हठुड़िया
हथुड़िया
हमीर
हलदीया
हरखावत, हरकावत
हरगणाणी
हरण
हरपावत
हरसोरा
हरसोत, हरसोट
हरियाणी
हंस

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हंसा
हंसारिया
हस्ती
हर्षावत

हाका
हाकड़ा
हाड़ा
हाड़ेरा
हाटिया
हांडिया
हाथाल
हापाणी
हाला
हांसा
हाहा

हिरण
हिरणा
हिराउ
हिराणी
हिंगड़, हींगड़
हींगल
हीडाउ
हीपा
हीया
हीराऊ
हीराणी
हीरावत

हुकमिया
हुड़िया
हुडिया
हुंडिया
हुना
हुब्बड़
हुला
हुवा

हेम
हेमपुरा
हेमादे

त्र

त्रिपंखी
त्रिपंखिया

ऋ

ऋषभ

श्र

श्राफ
श्रावणसुखा
श्री
श्रीपति
श्रीपणा
श्रीमाल
श्रीवंश
श्रीवर लद्ध
श्री श्रीमाल
श्रेष्ठि

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।।

–भ० महावीर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

अष्टम

ओसवाल : इतिहास स्रोत व लेखन

इतिहास स्रोत

ओसवाल जाति एवं उसके विभिन्न गोत्रों का प्रामाणिक इतिहास जानने का मुख्य एवं प्रामाणिक स्रोत है—अनेक ग्रन्थ भंडारों में उपलब्ध हस्तलिखित एवं प्रकाशित जैन ग्रन्थ। मूलतः इस जाति का उद्भव जैन धर्म की प्रभावना के लिये हुआ। अतः जैन ग्रन्थकारों ने विभिन्न धार्मिक एवं अन्यान्य ग्रन्थों में इस जाति के श्रेष्ठियों का नामोल्लेख किया है। विभिन्न साम्प्रदायिक चैत्यों, मठों एवं उपासरों में उनके अनुयायियों की वंशावलियाँ रखने का प्रचलन प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वे वंशावलियाँ जाति के इतिहास को उजागर करने में सहायक हैं। राजस्थान में बही भाटों द्वारा उनके आश्रयदाता श्रेष्ठियों के गोत्रों का पीढ़ी दर पीढ़ी पद्य बद्ध इतिहास रचने की परम्परा रही है, जो उनकी बहियों में सुरक्षित हैं। एक और महत्वपूर्ण इतिहास स्रोत है शिलालेख। भारत के विभिन्न स्थानों पर अनेक शिलालेख उपलब्ध हैं, जिनमें मन्दिर के निर्माता या बिम्ब की प्रतिष्ठा कराने वाले श्रेष्ठि का नाम उत्कीर्णित है। अनेक शिलालेखों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में उनके सद्‌गुणों की प्रशस्ति एवं वंश वर्णन भी है। इनके अलावा एक और स्रोत है—जनश्रुति। हालांकि जनश्रुति एवं किंवदन्ति पर आधारित तथ्य पूर्णतः प्रमाणित नहीं माना जाता, परन्तु उसे किसी अकाट्य साक्ष्य के बिना नकारा भी नहीं जा सकता। ऐसा भी समय था, जब ग्रन्थ लेखन या शिलालेख का प्रचलन नहीं था। पच्चीस सौ वर्षों के बृहद् काल की समस्त घटनावलियाँ लिखित या उत्कीर्णित हों—यह असम्भव है। अतः इतिहास लेखन में जनश्रुति के परम्परागत स्रोत का सहारा लेना अनिवार्य है।

जैन ग्रंथ

ओसवाल जाति एवं उसके विभिन्न गोत्रों का प्रामाणिक इतिहास जानने का सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत है—जैनाचार्यों/श्रावकों द्वारा समय-समय पर रचित विभिन्न धार्मिक ग्रन्थ, कथाएँ, रास, प्रशस्तियाँ। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि विक्रम की छठी सदी तक भारत में ग्रन्थ लेखन की परम्परा ही नहीं थी। संवत् ५१० में सर्वप्रथम देवर्धगणि क्षमाश्रमण ने जैनागम पुस्तकारूढ़ किये। उस काल के कुछ ग्रंथों में ओस वंश का प्रासंगिक उल्लेख है। आचार्य हरिभद्र सूरि का 'समराईच्च कहा' एवं आचार्य सिद्धर्षि का 'उपमिति भव प्रपंच कथा' ऐसे ही ग्रंथ हैं। विभिन्न सम्प्रदायों एवं गच्छों की पट्टावलियों, गुर्वावलियों आदि में भी ओस वंश के प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र संग्रहीत हैं। विक्रम की १४ वीं सदी में रचित 'उपकेश गच्छ पट्टावली' और 'उपकेश गच्छ चरित्र' में उपकेश गच्छीय आचार्यों के विवरण के साथ ही उपकेश जाति की उत्पत्ति और उसके गोत्रों का इतिहास संग्रहीत है। 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रंथ में शत्रुञ्जय तीर्थ के १५ वें उद्धारक समरसिंह का जीवन चरित्र देते हुए विद्वान् कथाकार ने उनकी जाति और वंश की उत्पत्ति से प्रारम्भ कर आद्योपांत इतिहास अंकित कर दिया है।

मध्य काल में धर्म प्रेमी श्रेष्ठि आगमों की प्रतियाँ लिखवाकर विभिन्न प्रदेशों के ग्रंथ भण्डारों में वितरित एवं संग्रहीत कर पुण्य लाभ लेते थे। ऐसे ग्रंथों के अन्त में लिपिकार आश्रयदाता श्रेष्ठि की प्रशस्ति में उसकी वंशावली एवं परिवार की यशोगाथा भी अंकित कर देते थे। ये प्रशस्तियाँ इतिहास का विशिष्ट स्रोत हैं।

शिलालेख

ओसवाल गोत्रों के इतिहास जानने का एक और प्रामाणिक स्रोत है—शिलालेख। ओसवालों से सम्बन्धित शिलालेख अधिकतर जैन मन्दिरों या तीर्थों में पाये जाते हैं। ये लेख मन्दिरों में प्रस्थापित मूर्तियों पर खुदे होते हैं या मन्दिर की दीवारों में जड़े होते हैं। बहुधा जब लोग किसी तीर्थ की यात्रा या दर्शन् एवं पूजा-दान दक्षिणा करते हैं तो वहाँ अपने नाम का शिलालेख भी लगवा देते हैं। ऐसे हजारों शिलालेख राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश एवं भारत के अन्य प्रदेशों में जैन मन्दिओं एवं तीर्थ स्थानों में पाये जाते हैं। ऐसे लेखों में कालांतर में परिवर्तन की सम्भावना नहीं रहती, अतः विश्वसनीय है। इन शिलालेखों की तरफ सर्व प्रथम ध्यान दिलाया पाश्चात्य विद्वानों ने। सन् १९०८ में पेरिस के डा० ए० गेरीयेनर ने अपने अमूल्य ग्रंथ 'रीपोर्टेयर डेपीग्राफी' में ई० पू० २४२ से सन् १८८६ तक के ८५० लेखों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का सार प्रकाशित किया। भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं में इस ओर पहल की श्री पूर्णचन्द्र जी नाहर ने। सन् १९१५ से १९२८ के बीच नाहर जी के कष्टसाध्य प्रयत्नों से 'जैन लेख संग्रह' (तीन भागों में) में करीब तीन हजार लेखों का हूबहू पाठ प्रकाशित हुआ। मुनि जिन विजय जी ने जैसलमेर के भंडारों एवं अन्य शोधों पर आधारित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह' सन् १९१७ में प्रकाशित किया। इनके अलावा और भी कई उल्लेखनीय लेख संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें आचार्य बुद्धि सागर जी का १९१७ से १९२४ के बीच प्रकाशित 'जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह' (प्रथम एवं द्वितीय भाग), आचार्य विजय धर्म सूरि का सन् १९२९ में प्रकाशित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह', मुनि जयन्त विजय जी का १९३७ में प्रकाशित प्राचीन अर्बुद लेख संग्रह एवं १९४८ में प्रकाशित 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेख संग्रह', मुनि विजय सागर जी का सन् १९५३ में प्रकाशित 'प्रतिष्ठा लेख संग्रह' एवं अगरचन्द जी भंवरलाल नाहटा द्वारा सन् १९५५ में प्रकाशित 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' प्रमुख है।

यह स्रोत प्रामाणिक तो है किन्तु इतिहास की दृष्टि से नाकाफी। एक ढाँचा मात्र शिलालेखों के नामोल्लेख के आधार पर खड़ा किया जा सकता है, उनमें विस्तार व विवरण के लिए अन्य स्रोतों का सहारा लेना होगा, घटनात्मक विवरण वाले शिलालेख बहुत कम उपलब्ध हैं।

वंशावलियाँ

जैन धर्म के आचार्यों महात्माओं द्वारा अनुयायी गोत्रों एवं विशिष्ट श्रावकों की वंशावलियाँ रखने का प्रचलन प्राचीन समय से चला आ रहा हैं। पं० हीरालाल हंसराज ने अपने ग्रंथ 'जैन गोत्र संग्रह' में सं० ७७५ में राजा भाण के समय हुई वासक्षेप सम्बन्धी तकरार का जिक्र करते हुए लिखा है कि 'उस समय सभी गच्छों के आचार्यों ने हस्ताक्षर कर ऐसी मर्यादा बाँधी कि जिस गच्छ या आचार्य के प्रतिबोधित श्रावक हों, भविष्य में वे ही वासक्षेप दें। वे ही उनकी वंशावलियाँ रखें।' जब सं० ८०२ में पाटण की स्थापना हुई तो भिन्नमाल व मारवाड़ के अन्य प्रदेशों के उपकेश वंशीय लोग भी वहाँ जाकर बसे। उनके कुलगुरु वहाँ जा कर उनकी वंशावलियाँ लिखने लगे।

मध्य युग यानि विक्रम की सातवीं से १५ वीं शताब्दी में जैन सम्प्रदायों एवं उसके गच्छों में जैनेतर लोगों को जैन बनाने की प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक थी कि वह आपस की खींचातानी में परिणत हो गयी। अमुक श्रावक आज खरतर गच्छ के प्रभाव में था तो कुछ ही दिन बाद वह उपकेश गच्छ के आचार्य के प्रभाव में चला गया। गच्छों का आपसी मतभेद यहाँ तक बढ़ा कि उनकी बहियाँ, पट्टावलियाँ, वंशावलियाँ उससे अछूती नहीं रहीं। एक ही गोत्र का उल्लेख कई गच्छों की बहियों में मिलता है। इससे यह निर्णय करना मुश्किल हो गया कि किस गोत्र को सर्वप्रथम प्रतिबोध देकर किस गच्छ के आचार्य ने जैन बनाया एवं ओसवाल वंश में शामिल किया। विक्रम की १३ वीं से १५ वीं सदी के बीच ओसवाल बने लोगों पर खरतर गच्छ के आचार्यों का प्रभाव अधिक था। मारवाड़, मेवाड़ आदि प्रदेशों में खरतर गच्छीय साधु निरन्तर चतुर्मास करते रहते थे। पर गुजरात में तपागच्छीय आचार्यों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का अधिक प्रभाव था। सम्प्रदायों के इस आपसी मतभेद के कारण धर्माचार्यों का महत्व भी घटता गया। मतभेद के कारणों को समझकर ही सम्भवतः सं० १६०० के आस-पास जैन धर्म अंगीकार करवा कर ओसवाल कुल में जैनेतर लोगों को शामिल कर नये गोत्र बनाने की प्रथा बन्द कर दी गयी।

किन्तु अतीत में प्रतिबोधित गोत्रों को लेकर यह विवाद काफी समय तक चलता रहा। यति रामलाल जी ने अपने ग्रंथ 'महाजन वंश मुक्तावली' में श्रावकों एवं उनके विभिन्न गोत्रों की वंशावलियों को लेकर महात्माओं (गृहस्थों) और यतियों के बीच छिडे विवाद का जिक्र करते हुए लिखा है कि 'महात्मा लोगों ने श्री जिनचन्द्र सूरि की अवज्ञा करी थी। महाजनों (ओसवाल) की वंशावली पास रहने से मस्त हो रहे थे। करमचन्द (बछावत) ने सोचा—जब लोक बही बट्टों को धन देते रहेंगे तो जैन धर्म के आदि कारण यती-साधुओं का बहुमान लोक नहीं करेंगे—ऐसा विचार कर धेखेबाजी से गृहस्थी महात्माओं को इकट्ठा करके वंशावली की बहिये माणक चौक (बीकानेर) के कुएँ में गिरा दी।' उक्त घटना की प्रामाणिकता संदिग्ध है। परन्तु यह भोजकों/सेवगों एवं बही भाटों द्वारा ओसवाल गोत्रों की संग्रहीत वंशावलियों को अमान्य कर यतियों द्वारा संकलित वंशावलियों को स्थापित करने के प्रयासों की ओर इंगित अवश्य करती है।

यह विवाद कालान्तर में गोत्रों की भिन्न-भिन्न उत्पत्ति कथाओं के रूप में प्रकट हुआ। यतियों ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न आचार्यों द्वारा चमत्कार प्रदर्शन कर जैन धर्म अंगीकार कराने एवं विभिन्न गोत्रों की स्थापना के कथानक दिये। मुख्य चमत्कार थे—सर्प दंश एवं विष से मुक्त करना, धातुओं को स्वर्ण बना देना, पुत्र प्राप्ति का वरदान देना, रोग-शोक मिटाना आदि। यति रामलाल जी ने अपने ग्रन्थ 'महाजन वंश मुक्तावली' में ओसवाल गोत्रों की उत्पत्ति के ऐसे ही कथानक दिये हैं। परवर्ती इतिहास कारों-भंडारीजी, भंसालीजी, नाहटा बन्धुओं ने भी ऐसे चमत्कारिक कथानकों को मान्य ठहराया है। उपकेश गच्छीय मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने उन्हें अविश्वसनीय मानकर चुनौती दी है एवं धर्म देशना से प्रभावित होकर जैन धर्म अंगीकार करने को ही गोत्रों की उत्पत्ति का मुख्य कारण माना है।

भाटों, भोजकों की बहियों में दर्ज वंशावलियाँ एवं उनके द्वारा रचित कवित्त, गीत, रास, लोककथाएँ इतिहास के अजस्र स्रोत हैं। परन्तु बढ़ा-चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति के कारण वे भी कहीं-कहीं संदिग्ध प्रतीत होती है। यह सामग्री ग्रामांचल में छितराई हुई होने के कारण बड़ी कठिनाई से प्रकाशित हो पाती है। विभिन्न ग्रन्थ भंडारों में संग्रहित गुटके एवं हस्तलिखित ग्रन्थ जाति एवं गोत्रों के इतिहास की संरचना में अवश्य सहायक हैं।

इतिहास लेखन : प्रकाशन

२० वीं सदी के शुरू में ओसवाल जाति का प्राचीन इतिहास सहेजने का अभियान आरम्भ हुआ। २४०० वर्षों तक भाटों-चारणों पर निर्भर रहने के बाद कुछ पुरातत्ववेत्ता और विद्वानों का ध्यान इस जाति के अनमोल खजाने को लिपिबद्ध कर प्रकाशित करने की ओर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गया। बीकानेर के खरतर गच्छीय यति श्री पालचन्द्र जी ने सर्व प्रथम अपने वृहद् ग्रन्थ 'जैन सम्प्रदाय शिक्षा' में ओसवाल जाति के विभिन्न गोत्रों का संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ प्रकाशित तो हुआ संवत् १९६७ में, किन्तु विद्वान् लेखक ने संवत् १९५४ के राजनियमानुसार इस ग्रन्थ का पंजीयन (रजिस्ट्री) बहुत पहले करवा लिया था एवं समस्त अधिकार स्वयं में नियोजित रखे थे। दुर्भाग्यवश बम्बई के जिस 'निर्णय सागर प्रेस' में ग्रन्थ छप रहा था, उसके छपाई बिलों का भुगतान न हो सका। इसी बीच यति जी का स्वर्गवास हो गया। प्रेस के मालिकों ने कोर्ट में नालिश कर ग्रन्थ के अधिकार खरीदे एवं उन्होंने ही इसे संवत् १९६७ में प्रकाशित किया। इस तरह यह 'ओसवाल गोत्रों के इतिहास' का सर्वप्रथम प्रकाशित ग्रन्थ माना जा सकता है।इस ग्रन्थ में खरतर यतियों एवं महात्माओं की बहियों के आधार पर ओसवाल जाति एवं उसके अनेक गोत्रों की उत्पत्ति कथाएँ एवं विशिष्ट घटनाएँ दी गयी हैं। जैन धर्मावलम्बी अन्य जातियों यथा—पोरवाल, श्रीमाल, खंडेलवाल, माहेश्वरी आदि की उत्पत्ति की कथाएँ एवं उनके विशिष्ट गोत्रों का विवरण भी इसमें सम्मिलित है। इसी ग्रन्थ में उन्होंने ओसवालों के कुल ६०९ गोत्रों की एक तालिका प्रकाशित की है।

संवत् १९६७ में बीकानेर के खरतर गच्छीय यति रामलाल जी ने उपासरों में संग्रहित वंशावलियों एवं ख्यातों के आधार पर 'महाजन वंश मुक्तावली' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इस ग्रंथ में ओसवाल जाति की उत्पत्ति कथा विस्तार से दी गई है। ओसवाल जाति के अनेक गोत्रों एवं उपगोत्रों की उत्पत्ति कथाएँ एवं विशिष्ट व्यक्तियों के विवरण भी ग्रन्थ में शामिल हैं। यह ग्रन्थ संक्षिप्त होते हुए भी बहुत लोकप्रिय हुआ एवं परवर्ती ग्रंथकारों की उत्पत्ति कथाओं का आधार बना।

इस काल में धार्मिक एवं सामाजिक प्रभेदों ने आपसी वैमनस्य को बहुत तीव्र कर दिया था। मूलतः क्षत्रिय जुझारू जाति का जैन धर्म एवं अहिंसा के प्रभाव में शनैः शनैः वणिक जाति में परिवर्तन भी अनेक समस्याओं को जन्म दे गया। वैभवशाली श्रेष्ठियों की समाज में कमी न थी, पर अधिकांश लोग तो गरीब और अशिक्षित थे। और, वैभव टिकता है शोषण पर। अतः नई-नई समस्याएँ उठ खड़ी हुई। मुख्य थी ओसर मोसर के जीमनवार,पंचायतों पर श्रेष्ठियों का एकाधिकार, विधवाओं की दुर्दशा, रखेलों एवं पासवानों की बढ़ती तादाद, वृद्ध विवाह, विवाहों के खर्च, भगतणों के नाच, कर्जदारी एवं बाल विवाह। सर्वप्रथम इस ओर ध्यान आकर्षित किया नासिक के नैण सुख केवलचन्दाणी निमाणी ने। संवत् १९४७ में मारवाड़ी भाषा में प्रकाशित आपकी पुस्तक 'ओसवाल लोका री आजकाल री स्थिति' में इन सभी समस्याओं को उठाया गया। वर्धा (चाँदा) के खुशाल चन्द खजांची ने 'ओसवाल दुर्दशा दर्पण' काव्य लिखा।

संवत् १९७० में रतलाम के रावत शेरसिंह जी ने 'जैन क्षत्रिय इतिहास' (भाग-१) प्रकाशित किया, जिसमें इस जाति के लिए जैन क्षत्रिय या जैन राजपूत नामों का ही व्यवहार किया गया है। इसमें वर्णित उत्पत्ति कथानक यति श्रीपालचन्द्र जी के 'जैन सम्प्रदाय शिक्षा' तथा यति रामलाल जी के 'महाजन वंश मुक्तावली' में वर्णित कथानक के समान हैं। 'ओसवाल'

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लेखक के अनुसार—'कुछ वर्ष बाद खण्डेला में १२ जातियों की एक महासभा हुई, जिसमें ओसिया से आये प्रतिनिधि 'ओसवाल' नाम से पुकारे जाने लगे।' यह पुस्तिका इतिहास नहीं, इतिहास की रूपरेखा मात्र ही थी।

संवत् १९७२ में दिल्ली के श्री उमराव सिंह टाँक, जो पंजाब की मुख्य अदालत के माननीय वकील थे, ने 'ओसवाल एवं उनके परिवार' नामक अँग्रेजी पुस्तिकाओं की सीरीज मे समाज के इतिहास पुरुषों की गौरव गाथाएँ प्रकाशित की। आपके शोध प्रबन्धों में 'बीये बाईसे' को गुप्ता संवत् २२२ मानते हुए ओस वंश की उत्पत्ति संवत् ५९८ में निर्धारित की गई है। वे भी ओसिया बसाने वाले उप्पल देव को परमार वंश का मान कर चले हैं।

संवत् १९८५ में श्री धीरजमल वच्छावत ने उपकेश वंश नाम से ओसवाल जाति का संक्षिप्त पद्यमय इतिहास लिख कर सादड़ी (फलौदी) से प्रकाशित किया।

बम्बई में ओसवाल मित्रमंडल ने संवत् १९८२ में एक इनामी निबंध योजना का आयोजन किया। विषय रखा गया 'ओसवाल समाज की परिस्थिति और उसके उत्थान के उपाय।' इस योजना में कई विद्वानों के शोध प्रबंध पुरस्कृत किये गये एवं संवत् १९८६ में उन्हें पुस्तकाकार (उक्त शीर्षक से) प्रकाशित किया गया। इन प्रबंधों में समाज की तत्कालीन समस्याओं का विश्लेषण किया गया। यथा-ओसवालों की घटती जनसंख्या, समाज में फैली तंत्रमंत्र व देव पूजा की प्रवृत्ति, अन्य धर्मावलम्बियों के द्वारा जोर जबरदस्ती से धर्म परिवर्तन, दसा-बीसा, पांचा ढाया प्रभेद, औरतों के लिए प्रसव की घिनौनी प्रथाएँ, ओसर-मौसर के जीमनवार, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, भगतणों के नाच, रखेल और पासवान स्त्रियों की दशा, घरों में जतियों का प्रभाव, पर्दा प्रथा के दोष, विधवा विवाह की वांछनीयता, धार्मिक व सामाजिक अंधविश्वास, उच्च शिक्षा एवं संगीत शिक्षा से अरुचि आदि विषयों का विश्लेषण किया गया।

गुजरात में पण्डित हीरालाल हंसराज ने गुजराती भाषा में 'श्री जैन गोत्र संग्रह' नाम से संवत् १९८० में एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। लेखक के अनुसार गोत्रों का इतिहास पहले उनके कुलगुरु ही लिखा करते थे। भाट भोजकों की बहियों में जो बिरुदावलियाँ अंकित थीं, वे उन तक ही सीमित थीं। उनको छपवाना उनकी आजिविका को ही खतरा पैदा करता था, अतः उनकी मीमांसा कभी हो ही नहीं सकी। इस छोटे से ग्रन्थ में कच्छ प्रदेश में फैले ओसवालों एवं उनके गोत्रों का विशद विवेचन है। उनके शोध प्रबंध का आधार भी एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ है। उक्त सभी ग्रन्थों मे ओसवाल वंश की उत्पत्ति की कथा मूलतः एक सी है।

कलकत्ता में श्री पूर्णचन्दजी नाहर शिलालेखों के संग्रह के कष्टसाध्य कार्य में जुटे हुए थे। उएस, उकेश, उपकेश, ओसवाल एवं ओसवंश के शिलालेखों के आधार पर विभिन्न गोत्रों की स्थिति एवं श्रेष्ठियों के विवरण, उनका समय आदि निश्चय करने का कार्य आगे बढ़ा। नाहरजी ने संवत् १९७५ और १९८५ के बीच ३ खण्डों में 'जैन लेख संग्रह' प्रकाशित कर इस जाति के इतिहास के अंधेरे हिस्सों को रोशन किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसी समय के आसपास एक और भगीरथ प्रयत्न हुआ सादड़ी (मारवाड़) में। उपकेश गच्छीय श्री मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने इस जाति की सदियों की नींद उड़ा दी। संवत् १९८६ में प्रकाशित आपके 'जैन जाति महोदय' नामक ग्रन्थ को ओसवाल जाति का महाभारत कहा जा सकता है। आपके ग्रन्थ का मूल आधार 'उपकेश गच्छ चरित्र' है। आपका विशेष जोर उत्पत्ति के काल निर्णय पर है। आपने अनेकानेक तर्कों एवं विभिन्न ग्रन्थों, शिलालेखों एवं ख्यातों के आधार पर इस वंश की उत्पत्ति विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व निर्धारित की है। हालांकि अनेक विद्वान् उससे सहमत नहीं हैं, पर उन्हें नजर अन्दाज भी नहीं किया जा सकता और इस प्रबंध के लेखक के मतानुसार वे अधिक सटीक भी हैं। मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने इस विषय पर एक नहीं, अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनका शोध कार्य निरंतर उक्त ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद भी चलता रहा। मुश्किल यह है कि कभी-कभी धर्म भी सत्य शोध में बाधक बन जाता है। किसी एक गच्छ को मानने वाले विद्वान् भी द्वेष वश अन्य गच्छ के लेखक द्वारा वर्णित विवरणों को अस्वीकार कर दें, यह भी सम्भव लगता है।

अजमेर में श्री सुख सम्पतराय भंडारी एवं उनके सहयोगियों ने ओसवाल जाति के इतिहास को सहेजने का वृहद् प्रयत्न संवत् १९८२ के लगभग शुरू किया। बड़ी लम्बी लम्बी यात्राएँ कर, अनेक पट्टों, सनदों, लेखों, ग्रन्थों एवं घर-घर जाकर आँकड़ों तथा विवरणों को संग्रहित कर प्रायः हर मुख्य गोत्र का इतिहास सहेजना हंसी खेल नहीं था। परन्तु आपके अथक परिश्रम से प्रायः ८०० पृष्ठों का 'ओसवाल जाति का इतिहास' संवत् १९९१ में प्रकाशित हुआ। ओसवाल जाति एवं गोत्रों की उत्पत्ति की कथाएँ भंडारी जी ने भी उक्त ग्रन्थों के आधार पर वर्णित की हैं। जहाँ जहाँ कथाएँ अविश्वसनीय लगती थीं, उन अंशों को छोड़ दिया है। आपके ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है—ओसवाल जाति की महान् विभूतियों का प्रामाणिक इतिहास। भारत के विभिन्न राज्यों में ओसवाल जाति के अनेक दीवान, कमाण्डर, कोषाध्यक्ष हुए, उन सबका लेख-जोखा पढ़कर किस ओसवाल का हृदय गर्व से फूल नहीं जायेगा? इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता है विभिन्न गोत्रों की प्राचीन वंशावलियों, प्रमुख घटनाओं एवं महापुरुषों का अद्यतन विवरण। प्रायः हर गोत्र के लिए यह एनसाईक्लोपीडिया का काम देता है।

इन ऐतिहासिक शोध प्रयत्नों का एक और सुफल हुआ कि समाज में अपनी समस्याओं के प्रति जागरूकता आई जिसका परिणाम संवत् १९८९ के प्रथम ओसवाल महासम्मेलन, अजमेर में स्पष्ट दिखाई दिया।

इनके अलावा अन्य भारतीय इतिहासकारों ने भी अपने अखिल भारतीय एवं क्षत्रिय इतिहास ग्रन्थों में ओसवालों के इतिहास को सम्मिलित किया है। परन्तु प्राचीन सन्दर्भ ग्रन्थों के अभाव में उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। संवत् २०११ में प्रकाशित श्री बजरंगलाल लोहिया के 'राजस्थान की जातियाँ' ग्रन्थ में ओसवालों की उत्पत्ति संवत् २८२ में हुई, लिखा है। लोहिया जी ने कुछ विशिष्ट गोत्रों-महनोत, भंडारी आदि का भी संक्षिप्त इतिहास दिया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् २०३२ में अजमेर से श्रीमती मनमोहिनी ने 'ओसवाल : दर्शन-दिग्दर्शन' नामक एक वृहदाकार ग्रन्थ प्रकाशित किया। विदुषी लेखिका ने इस ग्रन्थ में ओसवाल जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी मतमतान्तरों की समीक्षा दी है एवं जाति का गौरव बढ़ाने वाले इतिहास पुरुषों तथा विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख किया है। उत्पत्ति सम्बन्धी समीक्षा भण्डारीजी के इतिहास ग्रंथ में दी समीक्षा से प्रायः मिलती-जुलती है। ओसवालों के १५०० गोत्रों की क्रमवार सूची ग्रन्थ में है। सौ-सवा सौ पृष्ठों के इतिहास के साथ लगभग २५० वृहद् पृष्ठों में हजारों ओसवालों का परिचय मय उनके फोटो प्रकाशित करने से ग्रंथ का कलेवर बढ़ा एवं नाम की उपादेयता सिद्ध हुई है।

श्री सोहनराज जी भंसाली ने सं० २०३९ में प्रकाशित शोधग्रंथ 'ओसवाल वंश अनुसंधान के आलोक में' में मुख्यतः शिलालेखों के आधार पर ओसवाल गोत्रों से सम्बन्धित कतिपय ऐतिहासिक तथ्य उद्घाटित किये हैं। ग्रन्थ के प्रथम खंड में विद्वान् लेखक ने ओसवाल जाति के उद्भव सम्बन्धी विभिन्न मतों की चर्चा की है ।निष्पत्ति भंडारीजी के समान होते हुए भी अनेक तर्क मौलिक हैं, जिनकी सम्यक् समीक्षा इस ग्रन्थ में अन्यत्र की गयी है। राजस्थान में जैन धर्म के प्रचार एवं विभिन्न ओसवाल गोत्रों के प्रतिबोधक खरतर गच्छीय आचार्यों का संक्षिप्त परिचय भी इस खण्ड में समाविष्ट है। ग्रन्थ के दूसरे खण्ड में ओसवालों के खरतर गच्छीय आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित कुछ विशिष्ट गोत्रों के उत्पत्ति कथानक तथा संक्षिप्त इतिहास है। विभिन्न गोत्रों के उपलब्ध शिलालेखों की तालिकाएँ देकर भंसाली जी ने ग्रंथ को संग्रहणीय बना दिया है।

आदरणीय भण्डारीजी का वृहद् इतिहास ग्रंथ मील का पत्थर बन गया। परवर्ती अनेक ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ओसवाल जाति एवं विभिन्न गोत्रों का इतिहास भंडारीजी के ग्रंथ से हूबहू उद्धृत कर दिया जाता है। यहाँ तक कि अनेक लेखकों ने भण्डारीजी के ग्रंथ का बिना कोई सन्दर्भ दिये अपना ही नाम मौलिक लेखक के रूप में प्रचारित/प्रकाशित किया। यह लेखकीय संहिता के विरुद्ध एवं मूल लेखक के प्रति अन्याय है। ओसवाल जाति के इतिहास की अनुपम भेंट के लिए श्री भंडारी जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन आवश्यक है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जं इच्छसि अप्पणतो,
जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि मा,
एति यग्गं जिण-सासणं।।

जैसा व्यवहार हम अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही दूसरों के साथ करें—यही जिन-शासन है और यही जैन संस्कार है।

अध्याय

नवम

जैनाचार्य और ओसवाल

जैनाचार्यों ने ओसवंश की उत्पत्ति एवं श्रीवृद्धि में बहुत योग दिया—यह सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य है।

भगवान् महावीर के समय पार्श्वनाथ परम्परा के श्रमण ही नहीं, अपितु समकालीन परम्परा के पांच अन्य श्रमण संघ भी विद्यमान थे, जिनका नेतृत्व पूरण काश्यप, मंखलि गोशालक, अजित केश कंबलि, पकुध-कात्यायन तथा संजय बेलट्ठि पुत्र कर रहे थे। कालान्तर में ये संघ महावीर के संघ या काल गर्भ में विलीन हो गये। पार्श्वनाथ परम्परा के अनेक श्रमणों ने महावीर के पंच आयाम धर्म को अंगीकार कर लिया। परन्तु पार्श्वनाथ परम्परा की श्रमण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पीठ इतनी विशाल थी कि अनेक श्रमण संघों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा—यह विक्रम पूर्व १७० के सम्राट् खारवेल के प्रसिद्ध शिलालेख से सिद्ध है।

इस युग को इतिहासकारों ने अंध युग कहा है। उसके बारे में बहुत कम तथ्य ज्ञात हैं। इस काल का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। उस वक्त लेखन की परम्परा भी नहीं थी। सूत्र-आगम कंठस्थ रखना शक्य था। जब श्रुत ज्ञान का क्रमशः लोप होने लगा एवं अर्थ भेद और विवाद होने लगे, तभी देवर्धिगणि क्षमा श्रमण ने विक्रम की ६ठी शताब्दी में आगमों को पुस्तकारूढ़ किया। बाद के उपलब्ध इतिहास ग्रन्थों या गच्छों की पट्टावलियों में आचार्यों की धर्म प्रभावना का वर्णन है, परन्तु उनके माता-पिता या गोत्र का नामोल्लेख अधिकांशतः नहीं मिलता। उस समय ये सन्दर्भ गौण समझे जाते रहे होंगे। अस्तु, आगम कालीन जैनाचार्यों के ओसवाल वंश की श्रीवृद्धि में योगदान का वर्णन तो प्राप्त है किन्तु उनके गोत्र का निश्चित उल्लेख सम्भव नहीं। जहाँ उन्हें 'वणिक' घोषित किया गया है, अनुमानतः वे महाजन वंश (जो कालान्तर में ओसवाल वंश हुआ) से सम्बन्धित रहे हों, पर निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

उपकेश गच्छीय आचार्य

भगवान् पार्श्वनाथ की चतुर्याम श्रमण परम्परा के वाहक उपकेश गच्छ एवं ओसवंश के जनक एक ही माने जाते हैं—आचार्य रत्नप्रभ सूरी, जो पार्श्व प्रभु के छठवें पट्टधर थे। अधिकांश धर्म संघों द्वारा भगवान महावीर की पंचयाम साधना पद्धति ग्रहण कर लेने के बाद भी इन उपकेश गच्छीय आचार्यों ने पार्श्व प्रभु की सचेल श्रमण परम्परा कायम रखी, जो कालान्तर में श्वेताम्बर परम्परा के अनुरूप हो गयी।

उपकेश गच्छ पट्टावली के अनुसार विभिन्न आचार्यों द्वारा धर्म प्रभावना के लिये किये गये सद्प्रयत्नों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है, जिन्हें अनेक जैन विद्वानों द्वारा मान्य ठहराया गया है। उपकेश गच्छीय आचार्यों के नामों में चार नामों की पुनरावृत्ति मिलती है। उस गच्छ की परम्परा के अनुसार आचार्य पदारोहण के समय आचार्य का मूल नाम बदल कर क्रमशः वे चार नाम रख दिये जाते थे—जैसा कि हिन्दुओं के चार पीठाधीशों का 'शंकराचार्य' नाम दिया जाता है या तिब्बत के बौद्ध धर्माचार्य दलाई लामा कहलाते हैं, जो क्रमशः प्रथम दलाई लामा, द्वितीय दलाई लामा.....आदि नामों से पुकारे जाते हैं या खरतर गच्छ के हर चौथे आचार्य का नाम जिनचन्द्र सूरि रखा जाता है। अनेक ऐसे जैनाचार्य हुए, जिन्होंने स्वयं ओसवाल न होते हुए भी जैनेतर लोगों को जैन बनाकर ओसवाल जाति में शामिल किया एवं विभिन्न गोत्रों का निर्माण किया। इन सभी जैनाचार्यों से ओसवंश गौरवान्वित हुआ। उनका जीवनवृत्त हमारे लिये प्रेरणास्पद है।

आचार्य रत्नप्रभ सूरि

२३वें जैन तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में उनके पाँचवें पट्टधर स्वयं प्रभु सूरि हुए। उपलब्ध पट्टावलियों के अनुसार उन्होंने श्रीमाल नगर में सर्व प्रथम ब्राह्मणों के वर्ण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बन्धन को तोड़कर हजारों लोगों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। मूलतः यहीं से महाजन वंश का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रदेश के जैन कालान्तर में 'श्रीमाल' कहलाने लगे। सूरि जी के उपदेश से प्रभावित हो रत्नचूड़ विद्याधर ने उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की। वीरात् ५२ वर्षे वे आचार्य रत्नप्रभ नाम से सूरि पदासीन हुए। इस तरह पार्श्वनाथ की परम्परा में वे छठे पट्टधर थे। अठारह वर्ष अनन्तर वे उपकेश नगर पधारे। उन्होंने उपकेश नगर के क्षत्रिय राजा उपलदेव एवं वहां के लाखों लोगों को जैन धर्म अंगीकार करवाया एवं उनकी महाजन जाति बनाई। महाजन उपकेश नगरीय होने से उपकेशीय या उकेश वंशी कहलाने लगे, जो कालान्तर में ओस या ओसवाल के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

रत्नप्रभ सूरि ने विक्रम संवत् ४०० वर्ष पूर्व उपकेश या ओसवंश की नींव रखी। उनका कार्य इतना प्रभावी हुआ कि उनके आज्ञानुवर्ती संतों का समूह भी उसी समय से उपकेश गच्छ कहलाने लगा। मध्य काल में उपकेश गच्छ भगवान् महावीर के श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रभाव में रहा। इसका मूल कारण दोनों का सचेल साधना पद्धति में विश्वास माना जाता है।

सूरि जी ने ओसवंश की नींव ही नहीं रखी, उसके प्रथम १८ गोत्र भी स्थापित किये। इन्हीं १८ गोत्रों की शाखाएँ-प्रशाखाएँ होकर यह वंश वट वृक्ष की तरह फैला। सूरि जी ने कुछ अन्य गोत्र भी स्थापित किये। जैन धर्म की प्रभावना में इस ऐतिहासिक योगदान के लिये वे चिर स्मरणीय हैं। उन्होंने उपकेशपुर एवं पार्श्ववर्ती कोरंटपुर के मन्दिरों में भगवान् महावीर के बिम्बों की प्रतिष्ठा की। उन्होंने इक्कीस बार श्री सिद्धगिरी तीर्थ की संघ यात्रा की। वे १४ वर्ष अनन्तर समाधि मरण को उपलब्ध हुए।

आचार्य यक्षदेव सूरि

आचार्य रत्नप्रभ सूरि के विद्वान् शिष्य वीर धवल उपाध्याय ने राजगृह में यक्ष को प्रतिबोध देकर नगर को संकट से बचाया था। ये ही यक्षदेव सूरि नाम से उपकेश गच्छ के दूसरे पट्टधर आचार्य हुए। इन्होंने सिंध प्रदेश के शिवनगर में चातुर्मास किया। वहाँ के राजा रुद्राट ने प्रतिबोध पा वहाँ एक आलीशान महावीर मन्दिर का निर्माण करवाया। शिवनगर के राजकुमार कक्कव ने आचार्य से दीक्षा ली। ये कालान्तर में कक्कसूरि नाम से उपकेश गच्छ के तीसरे आचार्य (वीरात् १२८-१८२) हुए।

आचार्य रत्नप्रभ सूरि (द्वितीय)

आप उपकेशपुर के क्षत्रिय राजा उपलदेव, जो कालांतर में जैन बने एवं उपकेश जाति के आदि पुरुष माने जाते हैं, के वंशज थे। इन्होंने आचार्य सिद्ध सूरि से दीक्षा ली। आप अनेक लब्धियों में सिद्धहस्त थे। आपने आचार्य पदासीन होकर पंजाब, सिन्ध, कच्छ आदि अनेक प्रान्तों में विहार किया। विक्रम संवत से २१२ वर्ष पूर्व आपने पंजाब के लोहाकोट (लाहौर) नगर में चातुर्मास किया। वहाँ श्रेष्ठि धनपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिर में बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य कक्क सूरि (द्वितीय)

आचार्य यक्षदेव सूरि (द्वितीय) एक बार उपकेशपुर पधारे। तात्कालिक उपकेशपुर नरेश खेतसी एवं उनके छोटे पुत्र लखणसी सूरि जी से प्रतिबोध पाकर जैन धर्म में दीक्षित हुए। ये ही लखणसी कालान्तर में आचार्य पदासीन हो कक्क सूरि के नाम से विख्यात हुए। ये लब्धिधारी प्रकाण्ड तत्वज्ञ थे।

'उपकेश गच्छ चरित्र' एवं 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रन्थों में आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा वीरात् ७०वें वर्ष में उपकेशपुर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करने के ३०३ वर्ष बाद यानि विक्रम संवत से ९७ वर्ष पूर्व महावीर प्रतिमा के ग्रन्थी छेदन की घटना का उल्लेख है। कहते हैं कि किन्हीं श्रावकों द्वारा प्रतिमा के वक्षस्थल पर स्थित दो ग्रन्थियों को छेद कर अलग कर देने से बड़ा उपद्रव हुआ। श्रावक बहुत घबड़ा गये। तब आचार्य श्री कक्क सूरि श्रावक समाज के आग्रह पर उपकेशपुर पधारे। उन्होंने वहाँ शान्ति अनुष्ठान किया एवं स्नात्र पूजा करवाई, जिससे उपद्रव शान्त हुआ।

आचार्य कक्क सूरि (वि.सं. ३३६-३५७)

उपकेश गच्छीय पंचम कक्क सूरि का काल धर्म प्रभावना की दृष्टि से उत्कृष्ट रहा। भावड़ा श्रेष्ठि माला शाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया। लाहौर के श्रेष्ठि रणवीर ने सम्मेद शिखर तीर्थ के लिये संघ निकाला। तक्षशिला से ओसवंशीय करणाट गोत्रीय श्रेष्ठि रावत ने शत्रुञ्जय के लिये संघ निकाला, जिसका नेतृत्व आचार्य कक्क सूरि ने किया।

आचार्य सिद्ध सूरि (वि. सं. ३७०-४००)

उपकेश गच्छीय सिद्ध सूरि (पंचम) ने मरुप्रदेश, पंजाब एवं सिन्ध प्रदेशों में दूर दूर तक विहार एवं चातुर्मास किये। आपका वीरपुर चातुर्मास धर्म प्रभावना की दृष्टि से विशिष्ट रहा। मरुकोट (मलोट) में आपने शान्तिनाथ भगवान के भव्य मन्दिर की स्थापना करवाई। विक्रम संवत् ३७२ में ओसवाल श्रेष्ठि धवल पि. गोसल शाह गोत्र भूरि ने आपकी अध्यक्षता में वीरपुर से शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये विशाल संघ निकाला।

आचार्य कक्क सूरि (वि.सं. ४४०-४८०)

उपकेश गच्छीय आचार्य कक्क सूरि (षष्ठ) विख्यात पंड़ित । आपके काल में अनेक तीर्थों की यात्राएँ एवं चतुर्विध संघ समायोजन हुए। वीरपुर से श्रावक नारायण ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला। वि.सं. ४७० में चोरड़िया गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि गोकुल शाह पुत्र सोभा ने मरुकोट (मलोट) से शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला।

आचार्य सिद्ध सूरि (वि.सं. ५२०-५५८)

उपकेश गच्छीय आचार्य सिद्ध सूरि (षष्ठ) ने भारत के उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में जैन धर्म के प्रचारार्थ ऐसे समय में पद विहार किया, जब वह समस्त प्रदेश विदेशी हूणों के आक्रमण से आक्रान्त हो रहा था। आपने लोहाकोट (लाहौर) उमरेल, वीरपुर, शिवनगर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आदि स्थानों में चातुर्मास किये एवं अनेक मुमुक्षुओं को धर्म में दीक्षित किया। आपकी अध्यक्षता में वीरपुर से सांखला गोत्रीय ओस वंशीय श्रावकों ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया।

आचार्य देवगुप्त सूरि (वि.सं. ६०१-६३१)

उपकेश गच्छीय आचार्य देवगुप्त सूरि (सप्तम) ने धर्म प्रभावना में प्रबल योगदान किया। आपके समय में डमरेल में पार्श्वनाथ भगवान् के भव्य मन्दिर का निर्माण हुआ। ओश वंशीय गोलेच्छा गोत्रीय श्रेष्ठि भोपतशाह के पुत्र अगरे ने जोगनीपुर (दिल्ली) से वि. संवत् ६१३ में तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाला। उनका नेतृत्व सूरि जी ने ही किया। रांका गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि खेता ने स्यालकोट में एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। उसमें मल्लिनाथ भगवान् की बिम्ब प्रतिष्ठा आचार्य देवगुप्त सूरि के कर कमलों से सम्पन्न हुई।

आचार्य देवगुप्त सूरि (वि.सं. ८३७-८९२)

उपकेश गच्छीय आचार्य देवगुप्त सूरि (नवम) ने अपने दीर्घकालीन अधिनायकत्व में अनेक जिन मन्दिरों का निर्माण करवाया। वीरपुर पधारने पर राव सोनग ने बड़े आडम्बरपूर्वक आपका नगर प्रवेश कराया। उसी समय आपने महावीर मन्दिर में बिम्ब प्रतिष्ठा की। डमरेल में श्रीमाल वंशीय श्रेष्ठि देवल ने एक अपूर्व मन्दिर का निर्माण कराया एवं आचार्य देवगुप्त सूरि के हाथों उसमें वीर वीहरमान (जीवंत स्वामी) की प्रतिमा की प्रतिष्ठापना करवाई। आपकी अध्यक्षता में शिवनगर से कोरपाल मन्त्री ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये एक संघ समायोजित किया। आपके गोसलपुर चातुर्मास काल में (वि.सं. ८९१) ओसवाल श्रेष्ठि आर्य गोत्रीय श्री भानुजी शाह के पुत्र काबड़ ने ८४ न्यातों का जीमनवार किया।

ओसवाल जाति से संदर्भित ऐसे अनेक उद्धरण 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' 'परम पावन श्री हस्तिनापुर महातीर्थ' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, जो उपकेश गच्छीय जैनाचार्यों की धर्म प्रभावना एवं ओस वंश की श्रीवृद्धि को उजागर करते हैं। विक्रम की ७वीं से १२वीं शताब्दी के बीच उपकेश गच्छीय आचार्यों ने ओस-वंश के अनेक नवीन गोत्रों को प्रतिबोधित कर उन्हें जैन धर्म अंगीकार करवाया। उनके विवरण ग्रन्थ में अन्यत्र दिये जा चुके हैं।

आचार्य कक्क सूरि

विक्रम की १४वीं शताब्दी में उपकेश गच्छ के पट्टधर आचार्य कक्क सूरि हुए। वे शास्त्रों के महान् ज्ञाता एवं इतिहास मर्मज्ञ थे। उन्होंने संवत १३९३ में 'उपकेश गच्छ चरित्र' नामक बृहद् प्रबन्ध की संस्कृत भाषा में रचना की। इसमें उपकेशाचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा संस्थापित ओस वंश का आद्योपांत प्रामाणिक इतिहास पद्यबद्ध है। आचार्य कक्क सूरि ने एक और संस्कृत प्रबन्ध की रचना की—'नाभिनन्दन जिनोद्धार' जिसमें उनके समकालीन ओस वंशीय श्रेष्ठि गोत्रीय दानवीर समरसिंह का चरित्र वर्णित है। इसमें ओस वंश की उत्पत्ति एवं श्रेष्ठि गोत्र का वंश वृक्ष दिया गया है। समरसिंह ने वि. सं. १३७१ में शत्रुञ्जय तीर्थ का पन्द्रहवां उद्धार करवाकर पुण्यार्जन किया था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वर्णकालीन अन्य आचार्य:

मध्य एशिया और पंजाब में जैनधर्म ग्रन्थ के लेखक पं. हीरालाल दूगड़ न्यायतीर्थ के अनुसार विक्रम से १७ वर्ष पूर्व जैनाचार्य कालिक के समय सिन्ध जनपदों में बहुत संख्या में महाजन (ओसवाल) श्रावक आबाद थे। कालिकाचार्य का गच्छ भावहार या भावड़ा था। अतः सिन्धु सौवीर का ओसवाल महाजन समाज 'भावड़ा' कहलाया। यह गच्छ विक्रम की १७वीं शताब्दी तक विद्यमान था। प्राचीन लेख संग्रह में ऐसे ही वि. सं. १५०३ के एक शिलालेख का उल्लेख है, जिसमें भावडार गच्छ संस्थापक श्री कालिकाचार्य के उपासक श्रीमाल गोत्रीय शाह हमीर द्वारा श्री वासु पूज्य स्वामी के बिम्ब की प्रतिस्थापना उत्कीर्णित है।

भगवान् महावीर के १९वें पट्टधर श्री मानदेव सूरि ने पंजाब और सिन्ध में अनेक महाजन बनाए। आपने विक्रम संवत् २८० में लघु शान्ति स्तवन की रचना की। नडुलाई (राजस्थान) के चातुर्मास में तक्षशिला नगर में महामारी फैली। वहाँ के संघ की प्रार्थना पर एक स्तवन बनाकर आपने संघ को भेजा, जिससे महामारी शान्त हुई। मानदेव सूरि ने उच्चनगर तक्षशिला में अनेक महाजन (ओसवाल) बनाये। कहते हैं कश्मीर के महाजन वस्तुतः ओसवाल ही थे, जो जम्मू कश्मीर में जा कर बसे एवं राज्य धर्म के प्रभाव में शनैःशनैः ब्राह्मण धर्म के अनुयायी बन गये।

विक्रम की सातवीं से १६वीं शताब्दी के बीच श्वेताम्बर सम्प्रदाय के तपागच्छ, खरतर गच्छ एवं अन्यान्य गच्छों में ओसवंश उत्थान हेतु होड़ सी लगी रही। उपकेश गच्छ पीछे पड़ गया। इन एक हजार वर्षों में लाखों लोग जैन बने एवं ओसवंश में शामिल हुए। इसी बीच ओसवालों के अनेक नये गोत्रों का निर्माण हुआ।

आचार्य हरिभद्र (वि. ५३० से ५८५)

शास्त्र विशारद आचार्य हरिभद्र का जन्म चित्तौड़ के ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे राजपुरोहित थे। वे साध्वी महत्तरा (पं. हीरालाल के अनुसार साध्वी याकिनी) से प्रभावित हो आचार्य जिनभद्र के पास दीक्षित हुए। वे निर्मल ज्ञान के धनी थे। वे आगमों के सर्व प्रथम टीकाकार थे। 'समराइच्च कहा' उनका अत्यन्त प्रसिद्ध प्राकृत कथा ग्रन्थ है। उन्होंने विपुल साहित्य का निर्माण किया। उनके ग्रन्थों की संख्या १४४४ बताई जाती है। प्राचीन विद्वानों के अनुसार उनका समय विक्रम संवत् ५३० से ५८५ माना जाता है। पं. हीरालाल हंसराज के अनुसार उनकी मृत्यु विक्रम संवत ५३५ में हुई। मुनि जिन विजय जी उनका समय वि.सं. ७५७ से ७८७ मानते हैं।

'समराइच्च कहा' मूलतः प्रथम इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ में उएश नगर की उएस या उपकेश (कालान्तर में 'ओस') जाति का उल्लेख बड़ी श्रद्धा से किया गया है। इसके अनुसार उस वक्त उपकेश जाति ब्राह्मण कर से मुक्त थी। सम्भवतः आचार्य हरिभद्र का उपकेश जाति के श्रेष्ठियों से अच्छा सम्पर्क था। वे श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न मतावलम्बी थे—यह भी उल्लेखों से सिद्ध है। आचार्य हरिभद्र श्वेताम्बर परम्परा के विद्याधर गच्छीय आचार्य जिनधर के शिष्य थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य उद्योतन

विक्रम की ९वीं शताब्दी में प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ 'कुवलयमाला' के रचनाकार आचार्य उद्योतन हुए। वे उपकेश गच्छीय आचार्य हरिगुप्त सूरि की शिष्य परम्परा में आचार्य यक्ष के शिष्य थे। इन्होंने जाबालिपुर (जालौर) में 'कुवलयमाला' ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थान्त में दी प्रशस्ति के अनुसार ग्रन्थ की रचना शक संवत् ७०० यानि वि. सं. ८३५ में समाप्त हुई। उद्योतन सूरि आचार्य हरिभद्र को अपना गुरु मानते थे। इसलिये कुछ इतिहासकार आचार्य उद्योतन का समय ६ठी सदी मानते हैं। इस प्रसाद पूर्ण कथा ग्रन्थ में श्वेत हूण सम्राट् तोरमाण के पुत्र मिहिरगुल के अत्याचारों से भयभीत हो भिन्नमाल वासी उपकेश जाति के व्यापारियों का गुर्जर प्रदेश (गुजरात) पलायन वर्णित है। तब जो ओसवाल गुजरात जाकर बसे उनके वंशज आज भी वहां निवास करते हैं।

उक्त उद्योतन सूरि, बड़ गच्छ एवं ८४ अन्य गच्छों के संस्थापक आचार्य उद्योतन ही हों-यह सम्भव है। उनका समय भी विक्रम की ८वीं (कुछ इतिहासकारों के अनुसार १०वीं) शताब्दी माना जाता है।

आचार्य सिद्धर्षि

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सिद्धर्षि द्वारा रचित प्राकृत कथा ग्रन्थ 'उपमिति भव प्रपञ्चकथा' साहित्य जगत् की सर्वांग सुन्दर कृति माना जाता है। आचार्य सिद्धर्षि विक्रम की ५वीं/६ठी सदी में हुए। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के अनुसार उनकी माता का नाम लक्ष्मी और पिता का नाम शुभंकर था। वे श्रीमालपुर (भिन्नमाल) के श्रीमाल गोत्रीय श्रेष्ठि थे। ग्रन्थ के 'सिद्धर्षि प्रबन्ध' अध्याय का निम्न श्लोक दृष्टव्य है:

''श्रीमाल पुरे दत्त-शुभंकरौ भ्रातरौ महर्द्धिकौ श्रीमाल ज्ञातीयौ''

श्री प्रभाचन्द्र विरचित संस्कृत भाषा के प्राचीन प्रबन्ध ग्रन्थ 'प्रभावक चरित' में शुभंकर के पिता सुप्रभदेव, जो श्रीमाल नगर के राजा वर्मलात के मन्त्री थे, को 'सर्व व्यापार मुद्रा भृन्मुद्रा कृद्युर्जनानने' बताया है। दोनों भ्राताओं को 'वित्तोऽनुजीविभ्यो' कहा है। इससे भी श्रेष्ठि शुभंकर के पुत्र आचार्य सिद्धर्षि के श्रीमाल गोत्रीय श्रेष्ठि होने की पुष्टि होती है। शुभंकर के अग्रज दंत या दत्त भी समृद्ध श्रेष्ठि थे। दत्त के पुत्र माघ राजा भोज के प्रिय सखा और सुप्रसिद्ध कवि थे। यही कवि माघ 'शिशुपालवधम्' आदि उत्कृष्ट काव्यों के रचयिता थे। इस तरह महा कवि माघ का भी ओसवाल होना सिद्ध है।

सिद्धर्षि गृहस्थावस्था में बड़े द्यूत व्यसनी थे। मां के क्रुद्ध वचनों से पुत्र का मन सदैव के लिये परिवर्तित हो गया और कठोर मुनिव्रत ग्रहण किया। 'प्रबन्ध कोष' के अनुसार श्रीमालपुर के एक धनी जैन उपासक ने युवा सिद्धर्षि का द्यूत ऋण चुकाया।

इनके दीक्षा गुरु आचार्य हरिभद्र थे। उन्हीं की आज्ञा से सिद्धर्षि ने बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया। कहते हैं इक्कीस बार मुनि सिद्धर्षि ने बौद्धों और जैनों के बीच आवृत्ति की। आचार्य हरिभद्र के 'ललित विस्तार' ग्रन्थ के अध्ययन से उन्हें बोध प्राप्त हुआ। 'प्रभावक चरित' के

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अनुसार सिद्धर्षि के गुरु गर्गर्षि थे। उन्होंने सिद्धर्षि को 'ललित विस्तार' ग्रन्थ पढ़ने को दिया, जिसे पढ़कर उन्हें बोध हुआ। सिद्धर्षि के अनमोल ग्रन्थ 'उपमिति भव प्रपंच कथा' की रचना भिन्नमाल नगर के देरासर में संवत ९६२ में सम्पन्न हुई, जैसा कि निम्न श्लोक से परिलक्षित है:

संवत्सर शत नव द्विषष्टि सहितेऽतिलंघिते चास्याः
ज्येष्ठे सित पंचम्यां पुनर्वसौ गुरु दिने समाप्तिरभूत्।

यह संवत्सर वीर संवत् समझना चाहिये। आचार्य हरिभद्र की मृत्यु विक्रम संवत् ५८५ में हुई। श्री चन्द्र केवली चरित्र में सिद्धर्षि का समय ५९८ अंकेषु दिया है। अगर ९६२ को वीर संवत् मानें तो यह समय विक्रम संवत् ४९२ ठहरता है। पाश्चात्य विद्वान् प्रो. पीटरसन ने इसे वीर संवत् ही माना है। पं. हीरालाल हंसराज ने अपने इतिहास ग्रन्थ में 'वि. सं. ५९२ में सिद्ध सूरि दिवंगत हुए'—लिखा है। अतः निश्चित रूप सिद्धर्षि का समय छठी शताब्दी से पूर्व ठहरता है। कहा जाता है इस रचना की प्रेरणा उन्हें 'कुवलयमाला' के रचनाकार आचार्य उद्योतन सूरि ने दी, जो उनके गुरु भाई थे। उपमिति भव प्रपंच कथा ग्रन्थ भारतीय रूपक ग्रन्थों में शिरोमणि माना गया है। डा. हरमन जैकोबी ने इसे भारतीय वाङ्मय का प्रथम रूपक ग्रन्थ माना है। धर्म एवं नीति विषयक संस्कृत ग्रन्थों में भी इसे अनमोल एवं सर्वोपरि माना गया है। आचार्य सिद्धर्षि ने सिद्धसेन दिवाकर के 'न्यायवतरण' तथा धर्म कीर्ति के 'उपदेशमाला' ग्रन्थ पर भी अत्युत्तम टीकाएँ लिखी हैं।

आचार्य बप्प भट्ट

विक्रम की ९वीं शताब्दी में आचार्य बप्प भट्ट सूरि हुए। इनका जन्म वि.सं. ८०० में माना जाता है। इनके पिता का नाम बप्प तथा माता का नाम भट्टि था। सं. ८०७ में वे दीक्षित हो भद्रकीर्ति कहलाए। ये श्वेताम्बर परम्परा के मोढ़ गच्छीय आचार्य सिद्ध सेन के शिष्य थे। इन्हीं बप्प भट्ट सूरि ने कन्नौज के राजा नागभट्ट प्रतिहार (जो आम राजा के नाम से प्रसिद्ध था) को प्रतिबोध देकर जैनी बनाया। इसी आम राजा ने कन्नौज में एक सौ हाथ ऊँचा जिनालय बनवाकर उसमें आचार्य बप्प भट्ट सूरि के हाथ से महावीर स्वामी की स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई। इन्हीं की प्रेरणा से आम राजा ने मथुरा, अणहिलपुर, पट्टण, सतारक, मोदेरा आदि जगहों पर जैन मन्दिर बनवाए। आचार्य बप्प भट्ट गौड़ देश (बंगाल) की राजधानी लक्षणावती गये और वहां के राजा को उपदेश दे आम राजा के प्रति बढ़ते जा रहे वैमनस्य को शान्त किया। इसी आम राजा का पुत्र भोज भारत के इतिहास का मशहूर जनश्रुति नायक रहा है। आम राजा की मृत्यु सं. ८९० में हुई। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान धर्मानन्द कौसाम्बी के अनुसार आम राजा की मृत्यु पर उसका पुत्र दुन्दुक राजा बना। वह एक वेश्या के वश में हो गया। उसने अपने ही पुत्र को मारना चाहा। भोज राज्य छोड़कर मामा के पास पाटलिपुत्र चले गये। दुन्दुक के बार बार आग्रह करने पर बप्पभट्ट उसे लेने गये। इसी संकट में २१ दिन का अनशन कर वे दिवंगत हुए। भोज कान्यकुब्ज चला गया एवं वहां के राजा को मारकर राजा बन बैठा। भोज ने अपने बुद्धि कौशल से एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य बप्पभट्ट ने आम राजा की एक रानी जो वणिक पुत्री थी, की सन्तान को ओसवंश में शामिल कर उनका राजकोष्ठागार गोत्र निर्धारित किया। आज भी 'राज कोठारी' अपने को आम राजा की सन्तान बताते हैं। कालान्तर में इन्हीं परिवारों में सिद्धाचल का अन्तिम उद्धार कर्ता करमाशाह हुआ। शत्रुञ्जय तीर्थ के विमल वासी आदीश्वर मन्दिर में उत्कीर्णित शिलालेख उक्त तथ्यों का साक्षी है। आचार्य बप्पभट्ट ने ओस वंश की प्रभावना में बड़ा योग दिया। ९वीं शताब्दी तक ओस वंश अन्य जैन सम्प्रदायों के प्रभाव में आ चुका था। इनका स्वर्गवास वि. सं. ८९५ में हुआ।

आचार्य नेमिचन्द सूरि

'गोमट्टसार' जैसे प्रसिद्ध प्राकृत जैन ग्रन्थ के रचनाकार नेमिचन्द सूरि दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य थे। वे गंग वंशीय राजा मल्ल के प्रधान मंत्री चामुण्डराय के गुरु थे। उनके अगाध शास्त्र ज्ञान पर उन्हें सिद्धान्त चक्रवर्ती की उपाधि दी गयी। समस्त दक्षिण में जैन धर्म की प्रभावना का श्रेय उन्हीं को है। 'गोमट्टसार' के अलावा उन्होंने लब्धिसार, त्रिलोकसार, क्षपणसार आदि ग्रन्थों की रचना की। ये इतिहास प्रसिद्ध आचार्य उद्योतन सूरि के गुरु कहे जाते हैं। आपने मालव देश में वि. सं. ९५४ में ओसवालों के बरड़िया गोत्र की स्थापना की। ओसवाल जाति के अभ्युदय में आपका विशेष योगदान रहा।

आचार्य वर्धमान सूरि

चैत्यवासी परम्परा में पनपते शिथिलाचार से हटकर सुविहित मार्गीय साधना पद्धति की नींव रखने वाले आचार्य वर्धमान सूरि प्रद्योतन सूरि के शिष्य थे। इनका समय वि.सं. १००० से १०८८ माना जाता है। इनके द्वारा प्रतिष्ठित कटिग्राम की प्रतिमा का लेख वि.सं. १०४५ का है। ये चन्द्र गच्छ के थे। इन्होंने अनेक टाकाएँ लिखीं। 'उपदेश माला बृहद्' नामक ग्रन्थ के रचनाकार वर्धमान सूरि ही थे। इनके उपदेश से प्रभावित होकर विमल शाह मंत्रीश्वर ने आबूतीर्थ पर अठारह करोड़ तिरपन लाख रुपये खर्च कर मन्दिर बनवाए। इन्हें १३ राज्यों के राजा-बादशाहों से सम्मान मिला। लोढ़ा एवं पीपाड़ गोत्र स्थापित करने का श्रेय भी आप ही को है।

आचार्य हेमचन्द्र सूरि

आचार्य हेमचन्द्र सूरि का जन्म वि.सं. ११४५ में धन्धक निवासी ओढ़ (हंसराज हीरालाल के अनुसार मोढ़ जाति) वणिक परिवार में हुआ। इनका मूल नाम प्रद्युम्न था। ये राजसचिव थे। इनकी चार पत्नियाँ थीं। ये चन्द्र गच्छीय देवचन्द्र सूरि के शिष्य थे। इनका दिक्षा महोत्सव खम्भात में राजा उदयन के सान्निध्य में बड़ी धूमधाम से हुआ। इक्कीसवें वर्ष में ये नागौर में आचार्य नियुक्त हुए।

गुजरात के सिद्धराज जयसिंह की प्रेरणा से आपने संस्कृत में 'सिद्ध हेम व्याकरण' की रचना की। ग्रन्थ समाप्ति पर उसे हाथी के सिंहासन पर रखकर सुन्दरियों द्वारा चंवर डुलाते हुए राज्य सभा में लाया गया था। उसकी प्रतिलिपियाँ अनेक देशों को भेजी गयीं। इस व्याकरण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का वही स्थान है जो पाणिनी एवं शकटायन के व्याकरणों का है। आपका सर्वाधिक मूल्यवान ग्रन्थ 'त्रिषष्ठीशलाका पुरुष चरित्र' है। कहते हैं यह ग्रन्थ निवृत्ति गच्छ के मानदेव सूरि के विद्वान् शिष्य शिलाचार्य द्वारा वि.सं. ९२५ में रचित प्राकृत ग्रन्थ 'महापुरुषद्मर्य' की संस्कृत छाया है। प्रमाण मीमांसा, अभिधान चिन्तामणि, देशीनाम माला, निघंटू कोष, हेम अनेकार्थ संग्रह आदि उनके विशिष्ट ग्रन्थ हैं। योग शास्त्र उनकी अनूठी कृति है। उन्होंने कुल साढ़े तीन करोड़ परिमाण श्लोक रचे। वे भविष्यवक्ता भी थे। कुमार पाल सम्बन्धी उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। कुमारपाल ने सिंहासनारूढ़ होते ही उनकी प्रेरणा से 'अमारि' की घोषणा कर दी। उनके सर्व धर्म समन्वयात्मक दर्शन से कुमारपाल बहुत प्रभावित था। वे वि.सं. १२२९ में पाटण में स्वर्गस्थ हुए। पाश्चात्य विद्वान् पिटर्सन ने उन्हें 'ज्ञान का सागर' कहा है।

आपने ओसवालों के सांखला, सुराणा, सियाल, सांड, सालेचा, पूनमिया आदि गोत्रों की स्थापना की।

अंचल गच्छीय आचार्य

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अंचल गच्छ का उदय विक्रम की बारहवीं शताब्दी में हुआ। सुविहित मार्गीय आचार्य आर्य रक्षित सूरि (वि.सं. ११६९-१२५८) इसके संस्थापक माने जाते हैं। एक अनुश्रुति के अनुसार चालुक्यराज जयसिंह सिद्धराज द्वारा पुत्रकामिष्टि यज्ञ के समय आचार्य ने मरी गाय में विधि द्वारा परकाया-प्रवेश कर उसे यज्ञस्थल से बाहर निकाल दिया। राजा ने यह चमत्कार देखकर सूरि जी को वचन-पालन में 'अचल' कहकर अभिनन्दित किया। इसी से उनके गच्छ का नाम अचल गच्छ हुआ। एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार चालुक्य राज कुमारपाल के समय आचार्य आर्य रक्षित सूरि के सुश्रावक मन्त्री कपर्टी द्वारा अपने उत्तरासंग (वस्त्रांचल) से भूमि साफ कर आचार्य हेमचन्द्र सूरि की वन्दना करने पर उसे विधि संगत बताया। इससे उनके गच्छ का नाम अंचल गच्छ पड़ा। गच्छ की पट्टावलियों में इस गच्छ की स्थापना वि.सं. १२१३ में हुई बतायी जाती है। इस गच्छ को 'विधि पक्ष' भी कहा जाता है।

अंचल गच्छ का गुजरात एवं राजस्थान के दक्षिणी प्रदेशों में बहुत प्रभाव रहा। इस गच्छ के अनेक आचार्य श्रीमाल ओसवाल वंशीय हुए। ओसवाल जाति की श्रीवृद्धि में उनका अनुपम योगदान रहा।

आचार्य आर्यरक्षित सूरि (वि. सं. ११६९-१२५८)

आपका जन्म दन्ताणी नगर में 'प्राग्वाट' (पोर वाल) जाति के श्रेष्ठि द्रोण के घर वि.सं. ११३९ में हुआ। आप सुविहित मार्ग में दीक्षित हुए। सं. ११६९ में आप सूरि पदासीन हुए। श्रावक यशोधन भंशाली द्वारा आपका पाट महोत्सव मनाया गया। बेणप नगर के श्रीमाल वंशीय श्रेष्ठि वशीकोडि (सुपुत्र राका वंकाशाह) ने सूरि जी से श्रावकत्व ग्रहण किया। उसकी पुत्री सोमाई करोड़ों के आभूषणों का त्याग कर विधि पक्ष में दीक्षित हुई। कालान्तर में वे 'समय श्री' नाम से महत्तरा (अग्रणी) साध्वी हुईं। उन्होंने अद्वितीय कीर्ति पाई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वि.सं. ११७२ में आचार्य आर्यरक्षित ने सिंध के पारकर देश में विहार किया। वहाँ के राजा महिपाल ने जैन धर्म अंगीकार किया। सूरिजी की कृपा से नगर की महामारी शान्त हुई। राजा ओसवाल कुल में शामिल हुआ। उसके वंशजों का महिपाल गोत्र हुआ। संवत् १२१० में भीनमान प्रदश के रतनपुर गाँव में परमार वंशीय राजा हमीर सूरि जी के उपदेश से जैन-ओसवाल बना। उसके पुत्र जयसिंह का 'सहस गुणा गांधी' गोत्र स्थिर हुआ। जयसिंह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। उसके कुछ वंशज कच्छ जाकर बस गये, जो 'माल्दे' कहलाते हैं। सं. १२१६ में सूरिजी ने बाडमेर में भिन्नमाल के राजा सोमकरण के वंशज गुणचन्द्र को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाया। उसके वंश में 'आल्हा' नामक प्रतापी पुरुष हुआ। उसका कुटुम्ब गाँव के समस्त ओसवाल समाज में सम्मानित हो 'वडेरा' कहलाया। आल्हा ने तीन वर्ष के दुष्काल में गरीबों को मुफ्त अन्न देने के लिये दानशाला खोल दी थी।

बाड़मेर के गुराँसा की बही के अनुसार आचार्य आर्यरक्षित ने अपने शासनकाल में २२०२ साधु एवं १३१५ साध्वियाँ दीक्षित कीं। उन्होंने १४ विभिन्न स्थानों के मन्दिरों में एक ही समय में बिम्ब प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई—ऐसी भी जनश्रुति है। सं. १२३६ में बनासकांठा नगर में आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य जयसिंह सूरि (वि.सं. १२०२-१२५८)

आपका जन्म कोंकण प्रदेश (गुजरात) के सोपारा ग्राम में ओसवाल वंश के कोट्याधिपति दाहड़ (द्रोण) के घर वि.सं. ११७९ में हुआ। बचपन से ही संसार के प्रति विरक्त रहने लगे। सं. ११९७ में आचार्य आर्य रक्षित से दीक्षित होकर शास्त्रों के अध्ययन में लगे और जल्दी ही व्याकरण, न्याय, आगम आदि के प्रकाण्ड विद्वानों में गिने जाने लगे। सं. १२०२ में आप सूरि पदासीन हुए। सिद्धराज जयसिंह आपसे बहुत प्रभावित थे। सम्राट् ने आपको 'युग प्रधान' की पदवी से विभूषित किया। परमार्हत कुमारपाल ने भी आपको सम्मानित किया। पाटण में दिगम्बराचार्य छत्रसेन भट्टारक को आपने शास्त्रार्थ में हराया। उन्होंने सूरिजी से नई दीक्षा ग्रहण की। सं. १२१७ में इनसे अंचल गच्छ की 'हर्ष शाखा' निकली।

सूरिजी ने ओसवाल वंश की श्रीवृद्धि में कोई कसर नहीं छोड़ी। वि.सं. १२०८ में हस्तिकुण्ड नगर पधारे। वहाँ का राजा अनन्तसिंह राठौड़ आपके उपदेशों से प्रभावित हो जैन बना। उनके वंशज हथुपुड़िया राठौड़ कहलाए। मारवाड़ के कोटरा ग्राम में यदुवंशी सोमचन्द लूटपाट करते थे। सं. १२११ में सूरिजी उधर से गुजरे। कहते हैं कि जनसाधारण की प्रार्थना पर आपने सोमचन्द को स्तम्भित कर दिया। माँ की विनती पर मुक्त होकर उसने जैनधर्म अंगीकार किया और ओसवाल कुल में शामिल हुआ। उसके पुत्र गला के वंशजों का गला गोत्र हुआ। इसी तरह मीठड़िया, लोलड़िया, पड़ाईया, नागड़ा आदि गोत्रों की स्थापना भी सूरि जी के उपदेशों से हुई। सं. १२२९ में सिन्ध के पीलुड़ा ग्राम के राव राजा के पुत्र लालन को कंठ रोग से मुक्त कर उसे जैन ओसवाल बनाया। उनके वंशज 'लालन' कहलाए। इतिहास प्रसिद्ध मन्त्री-श्रेष्ठि वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह इसी गोत्र के थे। इन्होंने अनेक जिनालयों का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्माण कराया। इनके जीवन प्रसंग ग्रन्थ में अन्यत्र दिये जा रहे हैं। ओसवालों के कटारिया पोलडिया, देवड़ा, ढेढिया, छाजेड़ आदि गोत्रों की संस्थापना का श्रेय भी सूरि जी को दिया जाता है।

सूरिजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'कर्म विपाक, ठाणांग टीका, जैन तर्क वार्तिक प्रसिद्ध है। सं. १२५८ में आपने समाधि मरण प्राप्त किया।

आचार्य धर्मघोष सूरि (वि. सं. १२३४-१२९८)

आपका जन्म वि.सं. १२०८ में मारवाड़ के महावपुर नगर में श्रीमाल श्रेष्ठि श्रीचन्द के घर हुआ। आप ८ वर्ष की अल्प आयु में आचार्य जयसिंह के करकमलों से दीक्षित हुए। सं. १२३४ में आप सूरिपदासीन हुए। आप बड़े चमत्कारी सन्त थे। मुक्तेसर गढ़ में आपने ऊर्ध्वासन का अद्‌भुत प्रयोग किया। १०८ कम्बलों पर पद्‌मासन लगाकर आप ध्यानस्थ हो गये। एक एक कर सारे कम्बल निकाल दिये गये—किन्तु सूरिजी ऊँचे आसन पर अविचलित बने रहे।

आपने शाकम्भरी के राजा प्रथमराज को उद्‌बोधन दिया। सं. १२४६ में खीमली नगर के डोड़िया जाति के राजपूत रावत बोहड़ी को जैन धर्म अंगीकार करवाया। उसके वंशजों से ओसवाल जाति का बहुल गोत्र बना। इस परिवार ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजित किया। मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल ने उन्हें संघ नरेन्द्र के विरुद से विभूषित किया। महावपुर में सूरिजी के चमत्कारों से प्रभावित होकर दिनकरभट्ट नामक ब्राह्मण पंडित जैन बना। जब ब्राह्मणों ने उसे न्यात बाहर कर दिया तो वह ओसवाल कुल में शामिल हो गया। उसके वंशज देवानन्द सखा कहलाए। इस गोत्र से कालान्तर में गोठी, गोसलीया, चोथाणी, बीसलाणी, देसलाणी, हीराणी, भुवाणी, कोकलिया, मूलाणी, थावराणी आदि खापें निकलीं।

सं. १२६५ में सूरिजी के प्रतिबोध से जालौर के चौहान सामन्त भीम ने जैन धर्म अंगीकार किया। उसने डोड गांव में वासुपूज्य स्वामी का विशाल जिनालय बनवाया। भीम के वंशज डोडियालेचा कहलाए—जिनसे कालान्तर में गोपावत, सुवर्ण गिरा, संघवी, पालणपुरा आदि शाखाएँ निकलीं। सं. १२६९ में भालाणी नगर के रणमल परमार के कुँवर हरिया को सूरिजी ने सर्प दंश से विष मुक्त कर दिया। उसका परिवार जैन बना। वे 'हरिया' कहलाए। कालान्तर में इस गोत्र की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हुईं—सहस्र गुणा, कका, साईंया, ग्रथलिया, मरुथालिया, बिजल, नपाणी, कपाइया आदि।

सं. १२६३ में उपकेश जाति के श्रेष्ठि आबड़ के पुत्र जगासिंह ने जीरावली तीर्थ में भव्य देव कलिका बनवाई। इसी वर्ष आचार्य ने 'शतपदी' की रचना की। धर्म घोष सूरि की एक और रचना 'ऋषि मण्डल प्रकरण' बहुत प्रसिद्ध है। इस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयीं। ये अंचल गच्छ के महाप्रभावक आचार्य माने जाते हैं। आपने गुजरात, कच्छ, सिन्ध, मारवाड़, मालवा, महाराष्ट्र एवं सोरठ प्रदेशों में अप्रतिहत विहार किये। सं. १२९८ में आप स्वर्गस्थ हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य मेरुतुंग सूरि (वि. सं. १४२६-१४७१)

अंचल गच्छ के अत्यन्त प्रभावी आचार्य मेरु तुङ्ग सूरि का जन्म सं. १४०३ में प्राग्वाट वंशीय श्रेष्ठि वचरसिंह वोरा के घर मारवाड़ के नाणी ग्राम में हुआ। जन्म से पूर्व आपकी माता ने सहस्र किरण सूर्य को स्वप्न में मुख-प्रवेश करते हुए देखा था। मात्र ७ वर्ष की अल्प वय में आप महेन्द्र प्रभ सूरि द्वारा दीक्षित हुए। सं. १४२६ में आप सूरि पदारूढ़ हुए। आपने अनेक मुसलमान सुल्तानों को प्रतिबोध दिया। आप बड़े मन्त्र प्रभावक थे। आपके चमत्कारों की अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित हैं। आपकी प्रेरणा से अनेक नगरों में जिनालयों का निर्माण हुआ। सं. १४४५ में आप गच्छ नायक पद से विभूषित हुए। आपने 'षड् दर्शन समुच्चय' एवं 'नेमीदूत महाकाव्य' ग्रन्थों की रचना की। आप उग्रबिहारी एवं महातपस्वी थे। आप सर्वत्र ऋषि नाम से सम्बोधित किये जाते थे। आपके विशाल शिष्य परिवार में गुर्जर भाषा के प्रसिद्ध कवि माणिक्य सुन्दर सूरि जी ने 'श्रीधर चरित' महाकाव्य की रचना की। महत्तरा साध्वी महिमा श्रीजी ने 'श्री उपदेश चिन्तामणि' ग्रन्थ की रचना की।

ओसवंश के मीठड़िया गोत्रीय बहुरा श्रेष्ठि मेंघा शाह ने आपकी प्रेरणा से ही गौड़ी पार्श्वनाथ तीर्थ का निर्माण कराया। सन् १४३२ में पाटण के एक भव्य जिन मन्दिर में गौड़ी पार्श्वनाथ के बिम्ब की प्रतिष्ठा हुई थी। । वह प्रतिमा सं. १४४५ के मुस्लिम आक्रमण से जमींदोज हो गई। सं. १४६५ में हुसेन खां पाटण का सरदार बना। उसकी बीबी एक जैन कन्या थी। उसके प्रयास से प्रतिमा प्रकट हुई। आचार्य मेरु तुङ्ग सूरि सं. १४७० में पाटण पधारे। उन्होंने मेघा शाह को वह चमत्कारी प्रतिमा पारकर (सिंध) ले जाकर प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी। मेघा शाह ने विपुल धन खर्च कर पारकर में गौड़ीपुर गाँव बसाया एवं भव्य जिनालय का निर्माण कराया। सं. १४८२ में जिनालय तैयार हो गया। मेघा शाह की कीर्ति खूब फैली। इर्ष्यावश मेघा शाह के साले काजल शाह ने सं. १४९४ में विष देकर मेघा शाह की हत्या करवा दी। काजल ने जिनालय का रंग मण्डप बनवाकर बिम्ब प्रतिष्ठा की। पश्चात्ताप स्वरूप उसने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। पारकर गाँव अब पाकिस्तान में है। पार्श्वनाथ की वह चमत्कारी प्रतिमा अब कहाँ है, यह विवादग्रस्त है।

सं. १४७१ में पाटण में आचार्य मेरुतुङ्ग सूरि स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य जय केसरी सूरि (वि.सं. १४७१-१५४१)

अंचल गच्छीय पट्टावलियों में 'तेरमा गणधर' रूप में प्रतिष्ठित आ. जय केसरी श्रीमाल वंशीय पांचाल देश स्थित थान नगर के श्रेष्ठि देवसी के पुत्र थे। आपका जन्म सं. १४७१ में हुआ। आ. धर्ममूर्ति सूरि कृत पट्टावली में उन्हें ओसवाल कुल का दीपक एवं जन्म सं. १४६१ में हुआ लिखा है। नाहटा बंधुओं के संग्रह में उपलब्ध एक पट्टावली में जन्म समय १४६९ दिया गया है। सभी ग्रन्थों में उनका दीक्षा स्थान आबू एवं समय सं. १४७५ दिया गया है। मात्र ४ वर्ष की आयु में दीक्षा ली हो यह कम संभव लगता है। शास्त्र ज्ञान वेष्ठित होने पर सं. १४९४ में उन्हें सूरिपद प्रदान किया गया। आ. जयकीर्ति सूरि के देहावसान पर सं. १५०१ में चांपानेर में वे गच्छेश पद से विभूषित हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अंचल गच्छीय आचार्यों में सर्वाधिक प्रतिष्ठा लेख इन्हीं के समय के उपलब्ध हैं। इन्होंने अनेक नरेशों एवं मुस्लिम शासकों को प्रतिबोधित किया। उनके ताप हरण की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। निःसंदेह उनका प्रभाव असाधारण था एवं सभी उनका सम्मान करते थे। भीमसी माणेक कृत पट्टावली में अनेक चमत्कारपूर्ण कथानक वर्णित हैं। उनके श्रावक समाज में तत्कालीन सभी वैश्य समाज सम्मिलित थे। यथा ओस (उकेश वंश) श्रीमाल जाति, प्राग्वाट, नागर, श्रीवंश, वीर वंश, गुर्जर वंश आदि।

वे खम्भात नगर में सं. १५४१ में स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य धर्म मूर्ति सूरि (वि.वि. १६०२-१६७०)

प्रसिद्ध क्रियोद्धारक आचार्य धर्म मूर्ति का जन्म खम्भात नगर में श्रीमाली श्रेष्ठि हंसराज के घर सं. १५८५ में हुआ। सं. १५९९ में आपकी दीक्षा हुई। सं. १६०२ में आप सूरि-पदासीन हुए। आप बड़े क्रान्तिकारी संत थे। संघ में आचार शिथिलता देखकर सं. १६१४ में शत्रुञ्जय तीर्थ में आपने क्रियोद्धार किया। आगरा के ओसवाल वंशीय लोढा गोत्रीय श्रेष्ठि ऋषभदास के पुत्र मंत्री सोन पाल कुँवरपाल आपके अनन्य भक्त थे। आपकी प्रेरणा से उन्होंने सं. १६६५ में २००० यात्रियों का सम्मेद शिखर तीर्थ का संघ समायोजन किया। अहमदाबाद के नगर संघ ने आपको 'युग प्रधान' की पदवी दी। सं. १६७० में पाटण में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य कल्याण सागर सूरि (वि.सं. १६४९-१७१७)

आपका जन्म गुजरात के लोथड़ा गाँव में श्रीमाली सेठ नानी कोठारी के घर सं. १६३३ में हुआ। सं. १६४२ में आप दीक्षित हुए। सं. १६४९ में आप सूरि पदारूढ़ हुए।

सं. १६५० में आपकी अध्यक्षता में भद्रावती के ओसवंशीय लालन गोत्रीय श्रेष्ठि अमरसिंह के पुत्र मंत्रीश्वर वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह द्वारा १५००० यात्रियों का शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजन हुआ। शाह बन्धुओं ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया। सं. १६७१ में आपने आगरा के प्रसिद्ध श्रावक ओसवंशीय लोढ़ा गोत्रीय कुंवरपाल सोनपाल के जिनालय में ४५० नूतन भव्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। बादशाह जहाँगीर ने आपके चरित्र से प्रभावित होकर आपसे दर्शन देने की प्रार्थना करवाई तो सूरिजी ने आकाशगामिनी विद्या द्वारा वहाँ पहुँच कर सबको चमत्कृत कर दिया—ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है। सं. १६७२ में सकल संघ द्वारा उदयपुर में आपको 'युग प्रधान' की पदवी से विभूषित किया गया। आपकी प्रेरणा से शाह पद्मसिंह की भार्या कमला देवी ने जामगढ़ में ७२ जिनालयों का निर्माण कराया। सं. १६७८ में आपने वहाँ ५०१ बिम्बों की प्रतिष्ठा की।

सं. १६५४ में कच्छ में आपकी प्रेरणा से ७५ पुरुषों तथा १२७ महिलाओं ने दीक्षा ली। आपने कच्छ व जामनगर के राजाओं को प्रतिबोध दिया। सं. १७१७ में भुज में आपका देहावसान हुआ। वर्धमान शाह के पुत्र जगडूशाह ने इस अवसर पर पाँच हजार मुद्रिकाओं की उछाल की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अठारहवीं सदी के अन्चल गच्छीय आचार्यों में श्री विद्या सागर सूरि (सं. १७४७) कच्छ प्रदेश के नागड़ा गोत्रीय दसा ओसवाल थे। श्री उदय सागर सूरि (सं. १७६३) एवं कीर्ति सागर सूरि (सं. १७९६) भी ओसवंशीय श्रेष्ठि पुत्र थे। उन्नीसवीं सदी के आचार्यों में श्री मुक्तिसागर सूरि (सं. १८५७) एवं रत्न सागर सूरि (सं. १८९२) ओसवंशीय थे। बीसवीं सदी के आचार्यों में विवेक सागर सूरि (सं. १९११), जिनेन्द्र सागर सूरि (सं. १९२९) एवं दान सागर सूरि (सं. १९४४) बीसा ओसवाल वँशीय श्रेष्ठि पुत्र थे। इन सभी आचार्यों से ओसवंश की श्रीवृद्धि हुई।

आचार्य गुण सागर सूरीश्वर

विक्रम की इक्कीसवीं सदी के प्रमुख अंचल गच्छीय आचार्य गुण सागर सूरीश्वर का जन्म सं. १९६९ में कच्छ प्रदेश के ढेढिया गाँव में बीसा ओसवाल श्रेष्ठि लालजी देवशी के घर हुआ। आप बचपन में शीतला से आक्रान्त हो गये। रोग मुक्त होने पर आपने सम्मेद शिखर की तीर्थ यात्रा की। १८ वर्ष की अवस्था में बरसी तप किया। सं. १९९३ में आपकी दीक्षा हुई। सं. २०१२ में बम्बई नगर में आप सूरि पदारूढ़ हुए। आपकी प्रेरणा से संघ में अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ चालू हुईं। सं. २०२४ में भद्रेश्वर में अंचल गच्छ के चतुर्विध संघ का प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन हुआ। सं. २०२९ में समस्त अंचल गच्छीय संघों की तरफ से आपको 'तीर्थ प्रभावक' विरुद से विभूषित किया गया। आप अंचल गच्छाधिपति बने। सं. २०३० में आपकी प्रेरणा से नागलपुर में श्राविका विद्यापीठ की स्थापना हुई। आपकी अध्यक्षता में समाज में अनेक तीर्थों के लिये संघ समायोजन हुए।

खरतर गच्छीय आचार्य

आचार्य जिनेश्वर सूरि : (वि.सं. १०६१-१११९)

विक्रम की पाँचवीं शताब्दी में जैनों में चैत्यवासी परम्परा परिलक्षित थी। साधु जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, औषधि, उपचार आदि का सहारा लेने लगे थे। आचार शिथिल हो गये। चैत्यों के आचार्य राजाओं के उत्थान पतन में दिलचस्पी लेने लगे। चैत्य शिथिलाचार के केन्द्र बन गये। वे धन संग्रह करते, मिष्ठान्न, घृत, ताम्बूल सेवन करते, नृत्य संगीत का आनन्द लेते, धार्मिक विषय श्रावक गम्य नहीं-कह कर टाल देते, स्त्रियों की संगति करते एवं मन्दिर में वेश्याओं का नाच करवाते थे। यह सब असह्य समझकर आचार्य हरिभद्र सूरि ने शिथिलाचार के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। परन्तु आन्दोलन को गतिशीलता जिनेश्वर सूरि ने दी। उस समय पंचाक्षरा पार्श्वनाथ चैत्य (यति रामलाल जी के अनुसार-उपकेश गच्छीय) के मुख्य अधिष्ठाता थे सुराचार्य। पाटन (गुजरात) के राजा दुर्लभराज की सभा में वि. सं. १०७४ में (यति श्री रामलाला जी के अनुसार सं. १०८० में) जिनेश्वर सूरि ने सुराचार्य को शास्त्रार्थ करके हराया। राजा ने 'तमे खराछो' कहकर जिनेश्वर सूरि का सम्मान किया। इन्होंने अपने संघ का नाम रखा—'सुविहित पक्ष' इसी से खरतर गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ और चैत्यवासी परम्परा प्रायः समाप्त हो गयी।

आचार्य जिनेश्वर सूरि सुविहित मार्गीय आचार्य वर्धमान सूरि के शिष्य थे। इनका समय वि. सं. १०६१ से १११९ माना जाता है। आपने लीलावती कथा कोष, वीर चरित्र, पंचलिंगी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रकरण आदि ग्रन्थों की रचना की। आचार्य हरिभद्र के अष्टकों पर निर्मित आपकी टीका जैन जगत् की अमूल्य निधि मानी जाती है।

ओसवाल समाज से आपका अगाध सम्पर्क रहा। आपने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था किन्तु जैन धर्म की प्रभावना हेतु अनेक ब्राह्मण व क्षत्रिय परिवारों को प्रतिबोधित कर जैन बनाया एवं ओसवाल वंश में सम्मिलित किया। ओस वंश के श्रीपति गोत्र की स्थापना आपके गार्हस्थीय नाम श्रीपति के नाम पर हुई, जिनसे कालान्तर में ढढा, तिलैरा आदि गोत्र बने। भणसाली एवं चील मेहता गोत्रों की धर्म-स्थापना का श्रेय भी आपको ही है।

आचार्य जिनचन्द्र सूरि

आचार्य जिनेश्वर सूरि द्वारा सूरि पद से विभूषित आचार्य जिनचन्द्र सूरि शास्त्रों में पारंगत थे। आपने वि.सं. ११२५ में अठारह हजार प्रमाण वाले 'संवेग रंगशाला' ग्रन्थ की रचना की। श्री जिनचन्द्र सूरि श्रीमाल जातीय शैव धर्मियों को उपदेश देकर जैन धर्म अंगीकार करवाने के लिये प्रसिद्ध हैं। श्रीमाल जाति की उत्पत्ति जैनाचार्यों से हुई, किन्तु कालान्तर में वे शंकराचार्य के प्रभाव से शैव हो गये। उनका महतियाण गोत्र था। श्रेष्ठि धनपाल श्रीमाल के साथ श्रीमालों के १३५ गोत्रों ने जैन धर्म पुनः अंगीकार किया। दिल्ली, आगरा, लखनऊ, भिवानी, जयपुर, झुन्झुनू आदि स्थानों में बसे श्रीमाल परिवार श्रावक बने।

आचार्य अभयदेव सूरि (वि.सं. १०७१-११३५)

इतिहास प्रसिद्ध धारा नगरी में महीधर श्रेष्ठि के घर वि.सं. १०७२ में जन्म लेने वाले अभयदेव सूरि बाल वय में आचार्य जिनेश्वर सूरि से दीक्षा ले आगम सिद्धान्तों के गम्भीर ज्ञाता बने। सोलह वर्ष की अल्प वय में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ। शासन देवी की प्रेरणा से आपने निरंतर आयंबिल तप के साथ आगमों पर टीकाएँ लिखनी प्रारम्भ कीं। एक निष्ठ सतत साधना एवं तपोबल से वे ९ अंगों की टीकाएँ लिखने में सफल हुए। उनके तप चमत्कार की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं, उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था, जो खम्भात में पार्श्वनाथ प्रतिमा के प्रकट होने से समाप्त हो गया। आपके चमत्कार से पाल्हउदा ग्राम के श्रावक समाज ने खोये हुए मालवाही जहाज अकस्मात् मिल जाने की खुशी में समाज द्वारा प्रदत्त धनराशि से समस्त टीकाओं की प्रतिलिपियाँ करवाकर तत्कालीन प्रमुख आचार्यों में वितरित की। इन नवांगी टीकाओं का रचनाकाल वि.सं. ११२०-११२४ है। आपकी मृत्यु वि.सं. ११३५ में हुई।

इन्होंने ओसवालों के खेतसी, पगारिया, मेड़तवाल आदि गोत्रों की धर्म-स्थापना की।

आचार्य जिनवल्लभ सूरि (११६७)

धर्म साहित्य के सर्जक एवं गणी रूप में धर्म की प्रभावना करने वाले आचार्य जिनवल्लभ सूरि मृत्यु से ४ मास पूर्व ही वि.सं. ११६७ में आचार्य नियुक्त हुए। आपके दीक्षागुरु जिनेश्वर सूरि शिथिलाचार के शिकार हो रहे थे। वे धन का उपयोग करते, नृत्य-गीत का आनन्द लेते थे। चैत्यवासी परम्परा की इस अवनति को देखकर आपने विद्रोह किया। आपने अभयदेव सूरि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के पास पुनः दीक्षा ली। ज्योतिष शास्त्र पर आपका अच्छा अधिकार था। आपने विधि चैत्यों की स्थापना की। आपने मेवाड़, बागड़ आदि प्रदेशों में विहार कर लाखों जैन बनाये। धारा नगरी के राजा नरवर्मा की सभा में आपने बहुत ख्याति अर्जित की। नागौर में आपने नेमि जिनालय की प्रतिष्ठा की। आपने विक्रम संवत् ११५६ में ओसवालों के चोपड़ा, गणधर चोपड़ा, कूकड़ चोपड़ा, बडेर, कुकड़, सांड आदि गोत्रों की एवं वि.सं. ११६७ में बांठिया, ललवाणी, ब्रहोचा, हरकावत, मल्लावत, शाह, कांकरिया सिंघी आदि गोत्रों की धर्म-स्थापना की।

आचार्य जिनदत्त सूरि (वि.सं. ११३२-१२११)

खरतर गच्छ के आचार्यों का ओसवाल जाति के अनेक गोत्रों की स्थापना में प्रमुख हाथ था। विक्रम की ११वीं से १६वीं शताब्दी के बीच खरतर गच्छ के अनेक प्रभावी आचार्य हुए, जिन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, माहेश्वरी, कायस्थ आदि कौमों के हजारों लोगों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया एवं ओसवाल वंश में शामिल किया। जिनेश्वर सूरि की परम्परा के चार प्रमुख आचार्य 'दादाजी' के नाम से विख्यात हैं जिनदत्त सूरि (वि.सं. ११३२-१२११), जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. ११९७-१२२३), जिनकुशल सूरि (वि.सं. १३३७-१३८९) एवं अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. १५९५-१६७०)। इनमें से पहले आचार्य जिनदत्त सूरि को छोड़कर बाकी तीनों आचार्यों का जन्म ओसवाल परिवारों में हुआ।

आचार्य जिनदत्त का जन्म वि.सं. ११३२ में धन्धुक (धोलका) नगर के हुँबड़ जातीय (कुछ इतिहासकार इसे ओसवालों का ही एक गोत्र मानते हैं) श्रेष्ठि बाछिग के घर हुआ। वि.सं. ११४१ में ९ वर्ष की अल्पवय में आप दीक्षित हुए। वि.सं. ११६९ में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ। आप चमत्कारी आचार्य कहे जाते हैं। समाज में आप प्रथम दादा गुरु के नाम से विख्यात हुए। चैत्यवासी परम्परा को समाप्त करने में आपका प्रमुख योग था। उस समय चैत्यों में शिथिलाचार व्याप्त था। धनाधिक्य के कारण वे विलासी बन गये थे। मन्दिरों में वेश्या नृत्य होते थे। आपने इस अनाचार का विरोध किया। फलस्वरूप मन्दिरों में रात्रि में स्त्री-प्रवेश का निषेध करना पड़ा। बागड़, रुद्रपल्ली, नागौर आदि प्रदेशों के चैत्यवासियों को आपने उपसम्पदा दी।

सूरि जी ने त्रिभुवनगिरि में महाराजा कुमारपाल को प्रतिबोध दिया। यहाँ से सूरिजी उज्जैन पधारे। यहाँ ६४ योगिनियों को प्रतिबोध दिया। आपने अनेक स्तोत्र रचे। प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश में रचे ये स्तोत्र बड़े मन्त्र गर्भित एवं प्रभावक हैं। आप संघ द्वारा 'युग प्रधान' पद से विभूषित किये गये।

आपने कुल एक लाख छत्तीस हजार जैन बनाकर एक कीर्तिमान स्थापित किया। खरतर गच्छीय इतिहास लेखकों के अनुसार आपने वि.सं. ११६९ से १२२० के बीच ओसवालों के अनेक गोत्रों की धर्म-स्थापना की। उनमें मुख्य हैं—घाड़ेवा, पाटवा, टांटिया, कोठारी, (११६९) बोरड़, खीमसरा, समदडिया (११७५), कठौतिया (११७६), रत्नपुरा, कटारिया, ललवाणी (११८१), डागा, मालू, भाभू (११८१), सेठी, सेठिया, रांका, बांका

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(११८५), रांगेचा, पूगलिया (११८७), चोरडिया, सावण सखा, गोरमेछा, लूनिया (११९२), सोनी पितलिया, बोहित्थरा (११९७), लूनावत, बापना (११९८), भंडसाली, चंडालिया (११९६), खटोल (१२०१), गडवाणी, मेड़गतिया, पोकरणा (१२०२) आदि। भारत के अनेक नगरों में स्थापित दादा बाड़ियों में आपके चरण प्रतिष्ठित हैं।

आपने अजमेर में संवत १२०३ में मात्र ६ वर्ष की वय के जिनचन्द्र को दीक्षा दी एवं ज्ञान बल से शासन की उन्नति जानकर सं. १२०५ में उन्हें अपने पाट पर बिठाया। आठ वर्ष के बालक को अपना उत्तराधिकार सौंपकर आपने दूरदर्शिता का परिचय दिया। वि.सं. १२११ में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य मणिधारी जिनचन्द्र सूरि (११९७-१२२३)

खरतर गच्छ के सर्वाधिक प्रभावी दादा आचार्यों में आपकी गणना है। आपका जन्म वि.सं. ११९७ में हुआ। नितान्त अल्पवय ६ वर्ष में दीक्षा लेकर ८ वर्ष की अवस्था में (वि.सं. १२०५) आचार्य पद पर नियुक्त होने वाले जिनचन्द्र विक्रमपुर के ओसवंशीय रासल श्रेष्ठि एवं माता देल्हणदे के पुत्र थे। जिनपाल उपाध्याय रचित युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार आचार्य जिनचन्द्र सूरि के वृद्ध होने पर एक बार श्रावक श्रेष्ठि रामदेव ने प्रश्न किया—'पट्ट योग्य शिष्य कौन है?' आचार्य ने फरमाया—'अमुक दिन देवलोक से च्यव कर विक्रमपुर के साह रासल की लघु पत्नी की कुक्षि से अवतीर्ण होगा।' श्रेष्ठि रामदेव ने विक्रमपुर जाकर यह सम्वाद रासल को सुनाया एवं हार पहना कर उत्सव मनाया। पुत्रोत्पन्न होने पर रासल ने ६ वर्ष की वय में ही बालक को गुरुदेव को समर्पित कर दिया। गुरुदेव ने सं. १२११ में स्वर्गस्थ होने से पूर्व आपका युवा वय में मृत्यु योग देख कर योगिनीपुर (दिल्ली) जाने से मना किया। जिनदत्त सूरि के स्वर्गस्थ होने पर वे गच्छ नायक बने।

संवत् १२१४ में जिनचन्द्र सूरि त्रिभुवन गिरी पधारे। संवत् १२२२ में रुद्रपल्ली में चैत्यवासी आचार्य पद्मचन्द्र से शास्त्रार्थ किया। 'अंधकार द्रव्य है' प्रश्न पर हुए इस विवाद में सूरि जी की विजय हुई। श्रावकों ने उन्हें 'जयति हट्ट' विरुद से विभूषित किया। यहाँ से विहार कर चले तो चोरसिदान ग्राम निकट म्लेच्छों के आने की खबर लगी। सूरिजी ने संघ को एक जगह इकट्ठा कर रेखा खींच दी। कहते हैं, म्लेच्छ उन्हें देख भी न सके।

उनके मस्तक के बीच मणि का आकार होने से उन्हें मणिधारी कहा जाता था। वे अगाध ज्ञान एवं तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी थे। दिल्ली के महाराज मदनपाल उनसे बहुत प्रभावित थे। कुछ इतिहासकार उन्हें श्रीमाल जातीय श्रावक लिखते हैं। ठक्कर फेरु के द्रव्य परीक्षा ग्रन्थ में मदनपाल के सिक्कों का उल्लेख है। गुरु की निषेधाज्ञा के बावजूद महाराज मदनपाल के विशेष अनुरोध पर जिनचन्द्र सूरि दिल्ली पधारे। वहाँ सूरिजी द्वारा श्रेष्ठि कुलचन्द्र, जो दरिद्र था, को मंत्राक्षर युक्त यंत्रपट्ट देने का उल्लेख गुर्वावली में है। कहते हैं यंत्रपट्ट की पूजा कर वासक्षेप डालने से कुलचन्द्र को स्वर्ण की प्राप्ति हुई और वह अल्पकाल में ही करोड़पति हो गया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वि.सं. १२२३ में अल्प आयु में ही ये स्वर्गस्थ हो गये। दिल्ली के निकट महरौली की दादा बाड़ी में उनका चमत्कारिक स्तूप है। मणिधारी जिनचन्द्र सूरि इतने प्रतिभाशाली आचार्य थे कि खरतर गच्छ में प्रति चौथे पट्टधर का नाम यही रखने की परिपाटी प्रचलित होने का उल्लेख पट्टावलियों में है।

उन्होंने अनेक जैनेतर लोगों को प्रतिबोध देकर धर्म अंगीकार करवाया एवं ओसवाल वंश में सम्मिलित किया। वि.सं. १२१४ से १२१७ के बीच आछारिया, छाजेड़, खजांची, भगड़ी, श्री श्रीमाल, सालेचा, दूगड़, सूगड़, कोठारी, आलावत, पालावत, आदि गोत्रों की धर्म-स्थापना उन्हीं की प्रेरणा से हुई है।

आचार्य जिनपति सूरि (वि.सं. १२१०-१२७७)

आचार्य जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर थे। उनका जन्म संवत् १२१० में मालू गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ। सात वर्ष की अल्प वय में दीक्षित होकर १३ वर्ष की वय में पट्टासीन हुए। सं. १२२८ में आशिका नगरी में पंडितराज दिगम्बराचार्य से शास्त्रार्थ में विजय पाई एवं राजकीय सम्मान प्राप्त किया। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' के अनुसार संवत् १२३९ में अजमेर में उपकेश गच्छाचार्य पद्मप्रभ को राज्यसभा में शास्त्रार्थ कर हराया। इसी तरह पूर्णिमा गच्छ के श्री अकलंकदेव सूरि एवं तिलकप्रभ सूरि से भी आपका शास्त्रार्थ हुआ। सं. १२७७ में आपका संग्रहणी रोग के कारण शरीरांत हुआ।

आचार्य जिनप्रभ सूरि

लाडनूँ मोहिल वाटी क्षेत्र में श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय ओसवाल परिवार में आपका जन्म हुआ। खरतर गच्छ पट्टावली में नगर का नाम 'झुँझनू' बताया गया है। आपके गुरु जिन सिद्ध सूरि थे। उनसे खरतर गच्छ की लघु शाखा का विकास हुआ। 'विविध तीर्थ कल्प' आचार्य जिनप्रभ सूरि की ऐतिहासिक कृति है। जिसमें ३८ तीर्थ स्थानों का विशद वर्णन है। इसमें विभिन्न प्रदेशों में उनकी यात्राओं, जनश्रुति के आधार पर उन प्रदेशों से सम्बन्धित विशेष घटनाओं का विवरण है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से वि.सं. १३८९ में रचित यह बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्य जिनप्रभ अपने स्तोत्र साहित्य के लिये भी प्रसिद्ध हैं।

आचार्य जिनप्रभ की सर्वाधिक ख्याति उनके मुस्लिम शासकों पर प्रभाव के कारण हुई। वि.सं. १३८५ में उन्होंने सुल्तान मुहम्मद तुगलक को प्रतिबोध दिया। वे पहले जैन आचार्य थे जिन्हों ने मुगलिया सल्तनत को प्रभावित कर जैन तीर्थों की रक्षार्थ फरमान जारी करवाये। उन्हें सुलतान ने 'सुलतान सराई' विरुद से विभूषित किया।

आचार्य जिनकुशल सूरि (वि.सं. १३३७-१३८९)

ये खरतर गच्छ के तीसरे आचार्य थे, जो दादा विशेषण से प्रसिद्ध हुए। आपका जन्म वि.सं. १३३७ में छाजेड़ गोत्रीय शिवाना (समियाणा) के ओसवाल परिवार में हुआ। आपके पिता राजमन्त्री जैसल (जिल्हा) थे। दस वर्ष के लघुवय में दीक्षित हो आप वि.सं. १३७७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। राजस्थान और सिन्ध आपके धर्म प्रचार के मुख्य क्षेत्र थे। ये बड़े चमत्कारिक आचार्य थे। भक्तगण उन्हें कल्पवृक्ष के समान फलदायक मानते थे। 'चैत्यनन्दन कुलक वृत्ति' आपकी प्रमुख रचना है।

आपके शासनकाल में धर्म की महती प्रभावना हुई। आपकी प्रेरणा से पोरवाल श्रेष्ठि साह तेजपाल ने पाटण में नन्दि महोत्सव करवाया एवं योगिनीपुर (दिल्ली), उच्च नगर देवगिरि, चित्तौड़, खम्भात के संघ निकाले। आपने भीमपाली, जैसलमेर, जालौर, आदि नगरों में पार्श्वनाथ मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। दिल्ली के श्रीमाल श्रेष्ठि रयपति ने सं. १३८० में एवं भीमपट्टी के ओसवाल श्रेष्ठि धीरदेव ने सं. १३८१ में आपकी प्रेरणा से सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक से फरमान प्राप्त कर शत्रुञ्जय के संघ निकाले। आपने जैनेतर लोगों को जैन धर्म अंगीकार करवाकर ओसवालों के विभिन्न २१ गोत्र धर्म-स्थापित किये, जिनमें बावेल, संघवी, जड़िया, डागा आदि प्रमुख हैं। सं. १३८५ में आपने सिंध देश एवं उच्च नगर की यात्राएँ कर धर्म प्रचार किया।

आपको 'युग प्रधान' की उपाधि से विभूषित किया गया। वि.सं. १३८९ में आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य जिनलब्ध सूरि (वि.सं. १३७८-१४०६)

आपका जन्म वि.सं. १३७८ में मालू गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ। संवत् १३८८ में पाटण में आपने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य जिनपद्म सूरि के स्वर्गवासोपरान्त संवत् १४०० में आपका पट्टाभिषेक हुआ। पाटण के नवलखा गोत्रीय साह अमरसी ने नन्दि महोत्सव सम्पन्न कराया। आप सिद्धान्तज्ञों के शिरोमणि एवं अष्ट विधान पूरक माने जाते हैं। संवत् १४०६ में नागपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. १३८५-१४१४)

आपका जन्म वि. संवत् १३८५ में मरु प्रदेश के कुसुमाण गांव में छाजहड़ गोत्रीय मन्त्री श्रेष्ठि केल्हा के ओसवाल परिवार में हुआ। माता सरस्वती ने आपका नाम पाताल कुमार रखा। संवत् १३९० में दिल्ली के संघपति रयपति ने शत्रुञ्जय तीर्थ के यात्रार्थ संघ निकाला। कुसुमाण आने पर श्रेष्ठि केल्हा का परिवार भी संघ में शामिल हो गया। शत्रुञ्जय में गच्छनायक श्री जिनकुशल सूरि के उपदेश से बालक को वैराग्य उत्पन्न हुआ। पाँच वर्ष के अल्पवय बालक को माता ने प्रव्रज्या की अनुमति न दी। परन्तु चतुर्विध संघ के अनुनय पर माता राजी हुई। आचार्य ने आपका दीक्षा नाम यशोभद्र रखा। संवत् १४०६ में जैसलमेर में आप आचार्य पदारूढ़ हुए। नागपुर निवासी राखेचा गोत्रीय साह हाथी ने नन्दिमहोत्सव सम्पन्न कराया। संवत् १४१४ में स्तम्भ तीर्थ में आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य जिनोदय सूरि (वि.सं. १३७५-१४३२)

आपका जन्म वि.सं. १३७५ में पाल्हणपुर निवासी मालू गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि रुद्रपाल के घर हुआ। सं. १३८९ में आचार्य जिनकुशल सूरि द्वारा दीक्षित हो सं. १४१५ में स्तम्भतीर्थ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में पट्टासीन हुए। आपने मेवाड़ के चौरासी गाँवों में अमारि की घोषणा कराने वाले बोथरा गोत्रीय मन्त्रीश्वर अरिसिंह के पौत्र धीणाक को दीक्षित किया। शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर आपने वहाँ ६८ मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। सं. १४३२ में पाटण में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनभद्र सूरि (वि.सं. १४४९-१५१४)

आप खरतर गच्छ के प्रभावी आचार्यों में से थे। आपने वि.सं. १४४९ में देउलपुर (मेवाड़) के छाजेहड़ गोत्रीय ओसवाल परिवार में सेठ धीणिग भार्या खेतलदे के घर जन्म लिया था। कुछ इतिहासकारों ने आपको भणशाली गोत्रीय लिखा है। सं. १४६१ में आप दीक्षित हुए। सं. १४७५ में आप आचार्य पदासीन हुए। आपही के प्रयत्नों से जैसलमेर, जाबालिपुर (जालौर) पाटण, देवगिरि, माण्डवगढ़, आशापल्ली, खम्भात, कर्णावती आदि स्थानों पर पुस्तक भण्डारों की स्थापना हुई। आपने गिरनार, चित्तौड़, मण्डोर आदि स्थानों पर बड़े बड़े जिन मन्दिर बनवाये। वि.सं. १४९४ में साह शिवा आदि चार भाइयों ने आपकी प्रेरणा से जैसलमेर में एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। जिसमें ३०० बिम्बों की प्रतिष्ठा की गयी। आपने 'जिन सत्तरी प्रकरण' एवं 'अपवर्गमाला' नामक ग्रन्थों की रचना की।

इन्होंने वि.सं. १४७८ में ओसवालों के भण्डारी गोत्र की धर्म-स्थापना की। सं. १५१४ में कुम्भलमेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. १४८७-१५३०)

आपका जन्म संवत् १४८७ में जैसलमेर निवासी चम्म गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि साह बच्छराज के घर हुआ। आप ५ वर्ष की अल्प वय में दीक्षित हुए। सं. १५१५ में कुम्भलमेर में आप आचार्य पदासीन हुए। कूकड़ चोपड़ा गोत्रीय साह समरसिंह ने आपका नन्दी महोत्सव सम्पन्न किया। सं. १५३० में जैसलमेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनसमुद्र सूरि (वि. १५०६-१५५५)

बाड़मेर निवासी पारख गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि देको साह के घर सं. १५०६ में आपका जन्म हुआ। सं. १५२१ में दीक्षित हुए। सं. १५२३ में आचार्य पदासीन हुए। श्रीमाल वंशीय संघपति सोनपाल ने आपका नन्दी महोत्सव कराया। सं. १५१५ में अहमदाबाद में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनहंस सूरि (१५२४-१५८२)

सेत्रवा निवासी चोपड़ा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि साह मेघराज के घर सं. १५२४ में आपका जन्म हुआ। आपकी माँ कमला देवी आचार्य जिनसमुद्र सूरि की बहन थी। सं. १५३५ में आप दीक्षित हुए। सं. १५५५ में अहमदाबाद में आचार्य पदासीन हुए। बोहित्थरा गोत्रीय मन्त्रीश्वर करमसी ने बीकानेर में आपका पद महोत्सव कराया। 'युग प्रधानाचार्य गुर्वावली' के अनुसार जब आप आगरा पधारे तो बादशाह ने आपको धवलपुर में रक्षित कर चमत्कार दिखाने को कहा। तब आपने अपनी दैविक शक्ति से बादशाह का मनोरंजन कर ५०० कैदियों को छुड़वाया। सं. १५८२ में पाटण में आप स्वर्गस्थ हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य जिनमाणिक्य सूरि (वि.सं. १५४९-१६१२)

आपका जन्म सं. १५४९ में कूकड़ चोपड़ा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि साह राउल देव के घर में हुआ। ग्यारह वर्ष की आयु में आप दीक्षित हुए। सं. १५८२ में पाटण में आप आचार्य पदासीन हुए। सं. १६१२ में आपका स्वर्गवास हुआ।

युगप्रधान आचार्य जिनचन्द्र सूरि (वि. १५९५-१६७०)

आचार्य जिनचन्द्र चतुर्थ दादा संज्ञक खरतर गच्छीय आचार्य थे। उनका जन्म वि.सं. १५९५ में बडली गाँव के ओसवाल वंश में बीसा रीहड़ गोत्रीय श्रीवंत श्रेष्ठि के घर हुआ। आपने मुसलमान शासकों में सर्वाधिक ख्याति अर्जित की। ९ वर्ष की अल्पवय में दीक्षित होकर आप वि.सं. १६१२ में आचार्य पद पर आरूढ़ हुए। बीकानेर के यतियों में फैले शिथिलाचार के विरुद्ध इन्होंने बड़े क्रान्तिकारी कदम उठाये। उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया। उन्हीं संयम से असमर्थ यतियों का मत्थेरण सम्प्रदाय बना। संवत् १६२४ में आपने क्रियोद्धार किया। सं. १६१७ में जब तप गच्छ के धर्मसागर उपाध्याय ने 'अभयदेव सूरि (जो सर्व गच्छ प्रिय थे) खरतर गच्छ में नहीं हुए'— कहकर विवाद सृष्टि की तो आचार्य जिनचन्द्र के उद्योग से ८४ गच्छों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में मतपत्र लिखवाकर धर्मसागर जी को जैन संघ से बहिष्कृत किया गया।

ओशवंशीय रोहड़ गोत्रीय श्रीवंत श्रेष्ठि के घर जन्मे खरतर गच्छीय युग प्रधान दादा आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जिनके योगबल से घटित चमत्कार देखकर बादशाह अकबर आश्चर्यान्वित हुए बिना न रह सके। आपका उपदेश सुनकर बादशाह दुश्चिन्ताओं से मुक्त हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बीकानेर राज्य के मन्त्रीवर कर्मचन्द जी बच्छावत के आग्रह पर आचार्य जी खम्भात से नागौर, राजलदेसर सरसा होते हुए लाहौर पधारे। वहां वि.सं. १६४८ में बादशाह अकबर को सदुपदेश दिया। आपकी उपस्थिति में हुई चमत्कारपूर्ण घटनाओं से प्रभावित होकर बादशाह ने जैन तीर्थों की रक्षार्थ कई फरमान जारी किये। बादशाह उन्हें 'बृहद् गुरु' कहकर सम्बोधित करते थे। शहजादा सलीम की पुत्री मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने से ज्योतिषियों ने उसे अनिष्टकारी बताया था। बादशाह बहुत चिन्तित थे। आचार्य जी के उपदेश से उनका मन शान्त हुआ।

आपके कहने से बादशाह अकबर ने द्वारका, शत्रुञ्जय, पालीताना, गिरनार तीर्थ के समस्त जैन मन्दिरों की व्यवस्था मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बछावत के सुपुर्द कर दी एवं तत्सम्बधी फरमान जारी किया। जैन तीर्थों पर होने वाले अत्याचार बन्द कर दिये गये।

आपके सद्प्रयत्नों से बादशाह ने राज्य में निर्धारित दिनों पर जीव हिंसा न करने के फर्मान जारी किये। सिंधिया बहादुर के यहाँ सुरक्षित एक फरमान में साफ लिखा मिला है कि "यदि कोई आदमी शाही फरमान का उल्लंघन करेगा और वर्जित काम को नहीं छोड़ेगा तो वह समझ ले कि उसको सुल्तानी गजब में, जो ईश्वरीय कोप का एक नमूना है, फंसना पड़ेगा और वह दंडनीय होगा।"

बादशाह अकबर ने संवत् १६४९ में इन्हें 'युग प्रधान' घोषित किया। इनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। अकबर के दरबार में मौलवी जी की टोपी को रजोहरण से

आचर्य जिनजन्द्र सूरि के चमत्कारों की अनेक घटनाएँ कही जाती हैं। एक बार एक मौलवी ने मंत्रबल से अपनी टोपी आकाश में उड़ा दी। कहते हैं आचार्य श्री के रजोहरण की मार से टोपी पुनः यथा स्थान आ गयी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पीटते हुए आकाश से नीचे लाना—एवं अमावस्या के दिन आकाश में चाँद के दर्शन कराना आदि चमत्कारों सम्बन्धी जनश्रुतियाँ उनके नाम से जुड़ी हैं।

बादशाह जहाँगीर ने वि.सं. १६६८ में एक फरमान जारी कर समस्त साधुओं को देश से बाहर निकालने की ठानी तो आचार्य जिनचन्द्र सूरि पाटन से विहार कर आगरा पधारे एवं आपके समझाने से बादशाह जहाँगीर ने वह फरमान रद्द कर दिया।

आचार्य श्री ने अपने एक शिष्य की भूल सुधारने के लिए स्वर्णथाल आसमान में उड़ा कर अमावस्या को पूर्णिमा में परिवर्तित कर दिया।

आपने जैन धर्म की प्रभावना एवं ओसवाल वंश की श्रीवृद्धि में बहुत सहयोग दिया। आपने जैनेतर लोगों को जैन धर्म अंगीकार करवा कर वि.सं. १६२७ में ओसवालों के पींचा गोत्र की धर्म स्थापना की। आप वि.सं. १६७० में दिवंगत हुए।

आचार्य जिनसिंह सूरि (वि.सं. १६१५-१६७४)

आपका जन्म खेतासर ग्राम (सूरचन्द्र कृत रास के अनुसार—बीठावास) में संवत् १६१६ में चोपड़ा गोत्रीय शाह चांपसी के घर हुआ। आठ वर्ष की अल्पायु में आप दीक्षित हुए। आचार्य जिनचन्द्र बादशाह के आमन्त्रण पर जब लाहौर पधारे तो आपको इससे पूर्व ही लाहौर भेज दिया था। शहजादा की पुत्री की मूल नक्षत्र में उत्पत्ति होने पर शांति स्नात्र पूजा भी आपने ही सम्पन्न करवाई थी। आपकी उत्कृष्ट साधुता से प्रभावित होकर बादशाह ने काबुल और कश्मीर में अमारि की घोषणा करवाई। बादशाह के अनुरोध पर संवत् १६४९ में आपको आचार्य पदासीन किया गया। बादशाह जहाँगीर ने आपको 'युग प्रधान' पद प्रदान किया। मेड़ता निवासी चोपड़ा गोत्रीय शाह आशकरण ने आपकी अध्यक्षता में शत्रुञ्जय तीर्थ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का संघ निकाला। सं. १६७४ में बादशाह के आमन्त्रण पर आगरा आते हुए राह में ही (मेड़ता) आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य जिनराज सूरि (वि.सं. १६४७-१६९९)

आपका जन्म बीकानेर के बौहिथरा गोत्रीय श्रेष्ठि धर्मसी के घर सं. १६४७ में हुआ। नौ वर्ष की अल्प वय में आप दीक्षित हुए। जैसलमेर में आपने तपागच्छीय सोमविजय जी से शास्त्रार्थ किया। सं. १६७४ में आप आचार्य पदासीन हुए। सं. १६७५ में आपकी निश्रा में ही थाहरूह शाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। आपने तीर्थ पर ७०० मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। आपने आठ बार शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। आप न्याय, सिद्धान्त और साहित्य के उद्भट विद्वान् थे। आपने अनेक ग्रन्थ रचे। सं. १६९९ में पाटण में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनरत्न सूरि (वि.सं. १६७०-१७११)

आप सैरूणा गाँव के लूणिया गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि साह तिलोकसी के पुत्र थे। आपका जन्म सं. १६७० में हुआ। सं. १६८४ में जोधपुर में आप दीक्षित हुए। सं. १७०० में आप पट्टधर घोषित हुए। आप शुद्ध क्रिया चरित्र के अभ्यासी थे। आप सं. १७११ में आगरा में स्वर्ग सिधारे।

आचार्य जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. १७११-१७६३)

आप बीकानेर के निवासी गणधर चोपड़ा गोत्रीय साह सहसकिरण के पुत्र थे। बारह वर्ष की अवस्था में आप दीक्षित हुए। सं. १७११ में आप सूरि पदारूढ़ हुए। गच्छ में क्रिया शैथिल्य देख कर सं. १७१८ में बीकानेर में आपने व्यवस्था पत्र लिख कर शैथिल्य दूर किया। आपने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। सं. १७६३ में आप सूरत में देवलोकवासी हुए।

आचार्य जिनसुख सूरि (वि.सं. १७३९-१७८०)

आपका जन्म फोगपत्तन निवासी साहलेचा बोहरा गोत्रीय साह रूपसी के घर सं. १७३९ में हुआ। सं. १७५१ में आप दीक्षित हुए। सं. १७६३ में आप आचार्य पदासीन हुए। आपने शत्रुञ्जय तीर्थों की यात्रा की। सं. १७८० में आप स्वर्ग सिधारे।

आचार्य जिनभक्ति सूरि (वि.सं. १७७०-१८०४)

आपका जन्म इन्द्रपालसर निवासी श्रेष्ठि गोत्रीय साह हरिश्चन्द्र के घर सं. १७७० में हुआ। नौ वर्ष की अल्पवय में आप दीक्षित हुए। सं. १७८० में रिणी में आप आचार्य पदासीन हुए। आपने अनेक तीर्थों की यात्रा की। सं. १८०४ में आप दिवंगत हुए।

आचार्य जिनलाभ सूरि (वि.सं. १७८४-१८३४)

आप बीकानेर निवासी बोहित्थरा गोत्रीय साह पंचायणदास के पुत्र थे। सं. १७९६ में बारह वर्ष की आयु में आपने दीक्षा ग्रहण की। सं. १८०४ में आप आचार्य पदासीन हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

छाजहड़ गोत्रीय साह भोजराज ने आपका पट्ट महोत्सव कराया। आपने अनेक तीर्थों की यात्राएँ कीं एवं अनेक प्रतिमाएँ स्थापित कीं। सं. १८३४ में आपने गूढ़ा में देवगति प्राप्त की।

आचार्य जिनचन्द्र सूरि (वि.सं. १८०९-१८५६)

आपका जन्म सं. १८०९ में कल्याणसर गाँव में बच्छावत मुंहता श्री रूपचन्द्र के घर हुआ। सं. १८२२ में मंडोवर में आप दीक्षित हुए। सं. १८३४ में गूढ़ा नगर में आपका सूरि पदाभिषेक हुआ। आपने अनेक तीर्थों की यात्राएँ कीं एवं सुदूर पूर्व में विहार कराए। लखनऊ के सुश्रावक राजा बच्छराज नाहटा ने आपके चातुर्मास बड़े महोत्सव पूर्वक कराये। सं. १८५६ में आप सूरत में देवलोक सिधारे।

आचार्य जिनहर्ष सूरि

आपका जन्म मीठड़िया बुहरा गोत्रीय सेठ तिलोकचन्द के घर हुआ। वि.सं. १८४१ में आपने दीक्षा ली। १८५६ में आचार्य पदासीन हुए। वि. १८६६ में आपने जोधपुर के राजाराम गिड़िया और तिलोकचन्द लूणिया के संघ के साथ शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थों की यात्रा की। इस संघ में ११०० साधु और सवा लाख श्रावक थे। वि. १८७० में सम्मेद शिखर की यात्रा की। सं. १८७१ में कलकत्ता में शान्तिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा की। आपने अन्य अनेक तीर्थों की यात्राएँ सम्पन्न कीं एवं भव्य जिनमूर्तियों की स्थापना की।

आचार्य लब्धिचन्द्र सूरि

आपका जन्म बीकानेर निवासी छाजेड़ गोत्रीय शाह गिरधर की पत्नी गौरमदे की कुक्षि से सं. १८३५ में हुआ। सं. १८४९ में आपकी खम्भात में दीक्षा हुई। आप सं. १८५४ में आचार्य पदासीन हुए। उज्जैन में आपको 'भट्टारक' पद से विभूषित किया गया। सं. १८६७ में आपने कलकत्ता पधार कर अनेक बिम्बों का प्रतिष्ठा की। आपने सिद्धान्त रत्निका व्याकरण, ज्योतिष जातक आदि ग्रन्थों की रचना की। सं. १८८३ में आपका बीकानेर में स्वर्गवास हुआ।

गणाधीश सुखसागर जी

आपने सरसा के दूगड़ गोत्रीय ओसवाल परिवार में जन्म लिया। आप यतियों के साधु आचार में शिथिलाचार देखकर वि.सं. १९१८ में सुविहित मार्ग का प्रचार करने लगे।

आचार्य जिनकृपाचन्द्र सूरि (वि.सं. १९१३-९४)

आपका जन्म चोम के ओसवाल बापना गोत्रीय श्रेष्ठि के परिवार में हुआ। आपने भी यतियों के परिग्रह एवं कर्मकाण्ड के विरोध में क्रियोद्धार कर आत्म साधना की।

आचार्य जिन उदयसागर सूरि (वि.सं. १९५८)

आपका जन्म वि.सं. १९५८ में सोजत के ओसवाल श्रेष्ठि मुल्तानमल जी भण्डारी के घर हुआ। आपकी मातु श्री जतनबाई धर्मपरायण महिला थीं। सं. १४८८ में आ. जिन आनन्द सागर सूरि के कर-कमलों से आप बीकानेर में दीक्षित हुए। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राजस्थानी, एवं गुजराती भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। आप मधुर वक्ता हैं। प्रायः समस्त भारत आपका विहार क्षेत्र रहा है। सं. २०३८ में जयपुर में आप आचार्य पद से विभूषित हुए। प्रायः २०० शिष्य आपकी धर्म प्रभावना के द्योतक हैं। आपको गच्छाधिपति होने का श्रेय प्राप्त है।

बड़ (बृहद्) गच्छ के आचार्य

श्री शेखर सूरि (वि. १४वीं सदी)

दूगड़ गोत्र के आदिपुरुष दूगड़ की आठवीं पीढ़ी में जसदेव जी हुए। वे आघाट (राजस्थान) में निवास करते थे। इनके पुत्र ईश्वरचन्द १३वीं शताब्दी में उच्चनगर (तक्षशिला) में जा बसे। ये जैन धर्मानुयायी थे। इनके पुत्र मुनि शेखर हुए। उन्होंने आ. मणिरत्न सूरि से दीक्षा ली। मणिरत्न सूरि भी दूगड़ गोत्रीय थे। मणिरत्न सूरि के देहावसान पर आचार्य शेखर सूरि उनके पट्टधर हुए। बृहद् गच्छ गुर्वावली के अनुसार ये बड़े चमत्कारी महात्मा थे। बड़गच्छ की भट्टनेर (हनुमानगढ़) शाखा के आप श्री पूज्य थे। गुर्वावली में 'युग प्रधान' कह कर आपकी प्रशस्ति की गयी है। आप विशेष लब्धि सम्पन्न थे। कहते हैं ६४ योगिनियाँ सदैव आपकी हाजिरी में रहती थीं। आप 'दादा' नाम से भी प्रसिद्ध थे। आज भी बड़गच्छ में आपका कायोत्सर्ग किया जाता है। वि. संवत् १३४५ में इनके भाई थिरदेव ने शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला। उसमें आप भी साथ रहे।

श्राभावदेव सूरि (वि.सं. १६०४)

आप बड़गच्छीय जैनाचार्य पुण्यप्रभु सूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। आप बीसा ओसवाल लोढ़ा गोत्रीय शाह डूमा एवं माता लक्ष्मी के एकमात्र पुत्र थे। वि.सं. १६०४ में आप यति सम्प्रदाय में आचार्य हुए एवं 'श्री पूज्य की पदवी दी गयी। आप बड़े चमत्कारी सन्त माने जाते थे। भटनेर (हनुमानगढ़) में आपकी प्रमुख गद्दी थी। कहते हैं क्षेत्रपाल देव उनका सेवक था, अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं। एक बार भटनेर के शासक खेतसी ने समस्त जैन श्रावकों को बन्दी बना लिया। खेतसी भस्म रोग का रोगी था। उस रोग का कोई उपचार न बताने से उसने आचार्य को भी बन्दी बनाकर कुएँ में लटकवा दिया। क्षेत्रपाल की सहायता से आचार्य कुएँ से निकले और लाहौर जाकर उन्होंने बादशाह को अनेक चमत्कार दिखाए। बादशाह ने प्रसन्न होकर आपकी सेवा की। बादशाह बाबर के पुत्र कामरान की सेना ने भटनेर पर आक्रमण कर दिया। भटनेर के शासक खेतसी लड़ते हुए युद्ध में काम आए। इस घटना का प्रामाणिक विवरण 'छन्दराउ जइतसी' नामक समसामयिक रचना में उपलब्ध है। बादशाह ने सामाना में मस्जिद के समीप एक जैन मन्दिर बनवाया, जिसमें सूरि जी ने अनन्त जिन प्रतिमा प्रतिष्ठित की। उनकी प्रशस्ति में संवत् १७८४ में भटनेर में बड़ गच्छीय यति जगरूप जी ने 'भावदेव सूरि रास' की रचना की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तपागच्छ के आचार्य

आचार्य हीर विजय सूरि (वि. १६१०-१६५२)

आप तपागच्छ के प्रमुख आचार्य थे। आप वि.सं. १५८३ में पालुपुर के ओसवाल कुरां गोत्रीय बीसा श्रेष्ठि कुमार के घर जन्म लेकर तपागच्छाचार्य विजय सूरि के पास सं. १५९६ में दीक्षित हुए। सं. १६०७-८ में पंडित, वाचक एवं उपाध्याय उपाधि मण्डित हो आप वि.सं. १६१० में आचार्य बने। नाडेलाई के राज्य मन्त्री श्रेष्ठि चांगा सिंघी ने इस अवसर पर महोत्सव किया। आचार्य के पाटन पधारने पर राज्य मन्त्री श्रेष्ठि समर्थ भंसाली ने महोत्सव का समायोजन किया। मुगल बादशाह अकबर उनसे बहुत प्रभावित थे। बादशाह के आमंत्रण पर वि.सं. १६३९ में वे फतेहपुर सीकरी पधारे, जहाँ उनका राजकीय सम्मान किया गया। स्वयं एकबर ने समस्त सभासदों सहित खड़े होकर सूरि जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। 'आइने अकबरी' का लेखक एवं अकबर की सभा का उद्भट विद्वान अबुल फजल उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित था। वि.सं. १६४० में बादशाह ने उन्हें 'जगद्गुरु' की उपाधि से विभूषित किया।

आपकी प्रेरणा से वि.सं. १६४२ में बादशाह ने फरमान जारी कर पर्युषण पर्व के उपलक्ष्य में १२ दिनों तक समस्त साम्राज्य में हिंसा बन्द करवाई। 'आइने अकबरी' के लेखानुसार स्वयं बादशाह ने शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। वि.सं. १६४० में नवरोज के अवसर पर जब आचार्य जी को जगद्गुरु का विरुद प्रदान किया गया, बादशाह ने राज्य के समस्त कैदियों को छोड़ दिया। फारसी इतिहासकार बदाउनी के अनुसार वर्ष में कुल ६ महीने ६ दिन सारे साम्राज्य में कोई भी जीव हिंसा न करे—इस प्रकार के फरमान बादशाह ने जारी किये एवं इन आज्ञाओं के उल्लंघन पर सख्त सजाएँ निर्धारित कीं। आचार्य जी संवत् १६४२ में गुजरात लौट गये। उनके शिष्य उपाध्याय मुनि शान्ति चन्द्र अकबर के पास ही रहे। इन्होंने अकबर के सुकृत्यों पर 'कृपारस कोष' नामक ग्रन्थ की रचना की। सं. १६४५ में वे सहध्यायी मुनि भानुचन्द्र एवं शिष्य सिद्धिचन्द्र को अकबर के पास छोड़ कर गुरु हीर विजय जी के पास गुजरात चले गये। ये दोनों ही शतावधानी थे। मुनि सिद्धिचन्द्र को 'खुशफहम' का विरुद मिला।

सं. १६४९ में आचार्य जी ने अपने पट्टधर शिष्य विजयसेन सूरि को अकबर के निमन्त्रण पर लाहौर भेजा, जहाँ उनका शाही सम्मान किया गया। आपके शिष्य नन्दी विजय ने अकबर के दरबार में अष्टावधान किया और 'खुशफहम' की पदवी पाई। विजयसेन सूरि जी ने यहाँ ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में हरा कर 'सवाई' विरुद पाया।

आचार्य जी के संवत् १६५० में पालीताना पधारने पर भारी उत्सव हुआ। तत्पश्चात् ऊना पधारने पर जामनगर के नरेश और मन्त्री अब्बजी भंसाली ने ढाई सेर स्वर्ण मुद्राओं से पूजा की। जैन शासन का व्यापक प्रसार करने वाले आचार्य हीर विजय सं. १६५२ में ऊना नगर में दिवंगत हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिद्धिचन्द्र गणि (वि.सं. १६४२-१७२२)

सिद्धिचन्द्र गणि बादशाह अकबर एवं जहाँगीर की राज्य सभा के सम्मानित सदस्य थे। उनका जन्म संवत् १५८५-८७ के बीच हुआ होगा। वे अपने अपरिमित सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध थे। उस युग में १०८ अवधान कर उन्होंने बहुत ख्याति अर्जित की। अकबर ने उन्हें 'खुशफहम' की पदवी से सम्मानित किया। बादशाह ने उन्हें महल में अपने पुत्रों के साथ रह कर उन्हें शिक्षा देने की जिम्मेदारी दी। अकबर की धार्मिक मान्यताओं पर उनकी छाप थी। गुजरात में शहजादा सलीम ने बगावत कर जजिया कर फिर से लगा दिया तब सिद्धिचन्द्र ने फरमान जारी करवा कर उसे रद्द करवाया। अकबर की मृत्यु के बाद वे राज्य सभा छोड़ कर अहमदाबाद चले गये। जहाँगीर ने गद्दी पर बठते ही उन्हें फिर बुला लिया। सिद्धिचन्द्र के सौन्दर्य से प्रभावित हो जहाँगीर और नूरजहाँ ने उनसे साधुभेष छोड़कर जीवन के सुख भोगने का आग्रह किया और सुन्दर बेगम देने का लालच दिया। सिद्धिचन्द्र विरचित 'भानुचन्द्र गणि चरित' में इन संवादों का उल्लेख है। जहाँगीर ने उनकी 'ना' से क्रोधित होकर उन्हें सं. १६१३ में देश निकाला दे दिया। सिद्धिचन्द्र ने जयपुर के निकट मलपुरा में रह कर सं. १६५८ में 'चन्द्र चन्द्रिका' एवं सं. १६६६ में 'काव्य प्रकाश खण्डन' ग्रन्थों की रचना की।

भानुचन्द्र गणि

बादशाह अकबर को प्रभावित कर धर्मादेश (फर्मान) प्राप्त करने वालों में भानुचन्द्र गणि अग्रणि थे। बादशाह की प्रथम कश्मीर यात्रा में भानुचन्द्र साथ गये। उन्हें किसी भी समय महल में जाने की इजाजत थी। आचार्य हीरविजय सूरि ने उन्हें 'प्रज्ञ' एवं 'वाचक' (उपाध्याय) की उपाधि से सम्मानित किया। बादशाह ने उन्हें 'खुशफहम' की पदवी दी। बादशाह की उन पर बड़ी आस्था थी। सं. १६०५ में अकबर की मृत्यु के बाद वे अहमदाबाद चले गये। अनेक शाही फर्मान निकलवा कर उन्होंने जैन धर्म की प्रभावना में योग दिया।

सत्यवीर मुनि बुद्धिविजय जी (बूटे राय)

वि.सं. १८६३ में लुधियाना के दलुआ ग्राम के सिक्ख-जाट जमींदार सरदार टेकसिंह गिल के घर जन्मे बूटासिंह ने २५ वर्ष की आयु में जैन ढूंढक मत के साधु नागरमल से दिल्ली में दीक्षा ली और आगम अध्ययन में जुट गये। वि.सं. १८९१ में तेरापंथी आचार्य जीतमल जी के जोधपुर चातुर्मास के समय उनके आचार-विचार का गहरा अध्ययन किया। वि.सं. १८९७ में गुजरानवाला में आप तपागच्छीय मूर्ति पूजक सम्प्रदाय के अनन्य श्रावक एवं जैनागमों के मार्मिक विद्वान् लाला कर्मचन्द दूगड़ के सम्पर्क में आये। वि.सं. १९०३ में आपने मुंहपत्ती छोड़ दी। आपने जैन तीर्थों की यात्रा की एवं अनेक ओसवाल सद्धर्मियों अमरसिंह तातेड़, मूलचन्द, भावड़ा-बरड़, कृपाराम भावड़ा गद्दहिया आदि को दीक्षा दी। वि.सं. १९१२ में आपने तपागच्छीय गणि मणि विजय जी से मूर्ति पूजक संघ की संवेगी दीक्षा ग्रहण की- तब से आपका नाम बुद्धि विजय जी हुआ। पंजाब में अनेक जिन मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराने का श्रेय आपको है। वि.सं. १९३२ में आपने अहमदाबाद में पंजाब से आये ऋषि आत्माराम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जी एवं उनके शिष्यों को स्थानकवासी अवस्था का त्याग करवाकर संवेगी दीक्षा प्रदान की। ऋषि आत्माराम जी विक्रम संवत् १९४३ में आचार्य पदासीन हुए, तब से उनका नाम विजयानन्द सूरि हुआ। संवेगी परम्परा की पहचान स्वरूप मुनियों के पीली चादर ओढ़ने का प्रचलन वि. सं. १७०९ में पंन्यास सत्य विजय जी ने किया था।

मुनि बुद्धि विजय जी धमक्रान्ति के वाहक थे। आपने सदैव चैत्यवासी यतियों के परिग्रह-संचय, स्थानकवासी मुनियों की प्रतिमा विरोधी मान्यताओं, संवेगी साधुओं के शिथिलाचार का डटकर विरोध किया। आपने पंजाब में सदैव एकाकी विहार किया एवं घोर उपसर्गों, कठिन परिषहों को बरदास्त किया। वास्तविक सत्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिये आप सदैव प्रयत्नशील रहे। आज तपागच्छ में अधिकतम साधु-साध्वी समुदाय बुद्धि विजय जी का ही है।

आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी)

पंजाब के लहरा ग्राम (जिला फिरोज़पुर) में वि.सं. १८९४ में कलश क्षत्रिय कपूर गोत्रीय श्री गणेशचन्द्र के घर आत्मारामजी का जन्म हुआ। अल्पवय में ही पिता का देहान्त हो जाने से लालन-पालन समस्त पिता के परम मित्र ओसवाल भावड़ा नौलखा गोत्रीय जीरा निवासी लाला जोधामल जी के घर हुआ। लाला जी ढूँढक मतावलम्बी थे। वि.सं. १९१० में १६ वर्ष की अवस्था में बालक आत्माराम ने ढूँढक मुनि जीवनराम जी से दीक्षा ली। ५-६ वर्षों में बालक मुनि सूत्रों में निष्णात हो गये। मूल आगम, चूर्णि, टीका निर्युक्ति भाष्यों आदि के सूक्ष्म अध्ययनोपरान्त आपने सत्य धर्म का बिगुल फूँका। वि.सं. १९३२ में उन्होंने अपने १५ साथियों के साथ अहमदाबाद में तपागच्छीय मुनि बुद्धिविजय जी से दीक्षा ग्रहण की। १९३५ में वापिस पंजाब पधार कर आपने अनेक जिन मंदिरों का निर्माण एवं प्रतिमा प्रतिष्ठाएँ करवाईं। अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा दी। वि.सं. १९४३ में पालीताना में तपागच्छ धर्म संघ द्वारा पिछली चार शताब्दियों में आप पहली बार आचार्य पदवी से विभूषित किये गये एवं तब से आप आचार्य विजयानन्द सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपने अनेक जैन तीर्थों की यात्रा की। वि.सं. १९५० में आपने अमरीका (शिकागो) में हुई प्रथम 'विश्व धर्म परिषद' में जैन श्रावक श्री वीरचन्द राघव जी गांधी को अपने प्रतिनिधि के रूप में धर्म प्रचारार्थ भेजा। उस वक्त समाज में वीरचन्द्र भाई को संघ बहिष्कृत करने का आन्दोलन उठा, पर गुरुदेव आत्माराम जी के प्रभाव से वह अपनी मौत स्वयं मर गया। रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के तत्कालीन मन्त्री डा. रुडोल्फ हारनाल ने आपको जैनधर्म की धुरी माना। वि.सं. १९५३ में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके पट्टधर श्री विजय वल्लभ सूरि ने वि.सं. १९८१ में गुजरानवाला में 'श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल की स्थापना कर आपकी स्मृति अक्षुण्ण बना दी।

वर्तमान युग के आप ही ऐसे युगप्रधान आचार्य हुए हैं जिनकी एक मात्र प्रतिमा श्री सिद्धगिरि पर विराजमान की गयी है। आप स्वभाव से परम विनोदी एवं शास्त्रीय राग-रागिनियों के जानकार थे। आपका अगाध शास्त्र ज्ञान सदैव शास्त्रार्थ में विजयश्री दिलाता रहा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य विजयवल्लभ सूरि

बींसवी सदी के सुप्रसिद्ध धर्मगुरु, तत्त्वज्ञ शिक्षा प्रेमी एवं समाज सुधारक आचार्य विजय वल्लभ सूरि तपागच्छीय आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) के पट्टधर थे। आपने सारे भारत विशेषतः पंजाब में 'जैन धर्म' को लोकप्रिय एवं सुदृढ़ बनाया। आपका जन्म वि.सं. १९२७ में बड़ौदा में हुआ। आपके पिता बीसा श्रीमाल शाह दीपचन्द जी एवं माता इच्छाबाई ने आपका नाम छगनलाल रखा। वि.सं. १९४४ में आपने १७ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. १९८१ में लाहौर में आपको जैनसंघ द्वारा आचार्य पद से विभूषित किया गया। भृगुसंहिता में दी हुई आपकी कुण्डली एवं फलाशय के अनुसार आपका दूसरे जन्म में मोक्ष सुनिश्चित है।

आप जैन समाज की फिरका परस्ती पर बराबर चोट करते रहे। आपने अपने को सदैव परमात्मा के सत्पथ का यात्री बताते हुए उद्घोषणा की—'न मैं जैन हूँ, न बौद्ध, न वैष्णव, न शैव, न हिन्दू, न मुसलमान।' शान्ति की खोज सबसे पहले अपने मन में होनी चाहिए। आपने वर्ण व्यवस्था को कर्तव्यगत बताते हुए हरिजनोद्धार के लिये अनेक कार्य किये। आचार्य विजयानन्द जी सूरि के अन्तिम आदेशानुसार शिक्षा प्रसार को अपना मिशन बना लिया। आपने भारत के विभिन्न भागों में २ जैन गुरुकुल, ७ जैन विद्यालय डिग्री कालेज, ७ पाठशालाएँ एवं अनेक पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित करवाए। स्त्री-शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे। राष्ट्रपिता गान्धी के अहिंसा प्रचार एवं स्वदेशी आन्दोलन को बराबर प्रोत्साहन देते रहे। राष्ट्रीय नेताओं में आपका बड़ा सम्मान था। पंजाब में राष्ट्रीय आन्दोलन एवं खादी को लोकप्रिय बनाने में आपका प्रमुख हाथ था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पं. मदन मोहन मालवीय को प्रेरित कर जैन चेयर स्थापित करवा कर वहाँ प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल जी सिंघवी की नियुक्ति करवाने का श्रेय आपको ही है। पाकिस्तान बनने के समय आप गुजरानवाला में थे, जहाँ के मुसलमानों ने उपाश्रय पर बम फेंका, पर कहते हैं उसका विस्फोट नहीं हुआ। बम फेंकने वाला अपने ही साथी की गोली से मारा गया। मुस्लिम जनता ने इसे करिश्मा मानकर पूरी हिफाजत से आपको पूरे श्वेताम्बर एवं स्थानकवासी जैनसंघ के साथ हिन्दुस्तान पहुंचाया। आपके साथ इस काफिले में आने वालों में सुप्रसिद्ध आगमविद् स्थानकवासी संत अमोलक ऋषि भी थे।

वि.सं. १९९० में अहमदाबाद में आपने जैन श्वेताम्बर सर्व गच्छीय मुनि सम्मेलन करवाया। वि.सं. १९८२ में गुजरानवाला में आत्मानन्द जैन महासभा के मंच से आपकी निश्रा में ओसवाल, खण्डेलवाल, पोरवाल, आदि जैन जातियों में परस्पर बेटी-बेटों के रिश्ते करने का प्रस्ताव पास हुआ एवं पंजाब में निःसंकोच भाव से ऐसी शादियाँ होने लगीं। आपके अभिग्रह एवं प्रतिज्ञा बल से समाज को अनेक शिक्षण संस्थाएँ एवं कल्याणकारी अभियान प्राप्त हुए। उनके वासक्षेप से चमत्कार की अनेक जनश्रुतियाँ कहीं जाती हैं।

वि.सं. २०१० में बम्बई में आपका स्वर्गवास हुआ। आपने अनेक राजा महाराजा एवं राष्ट्रीय नेताओं को प्रतिबोधित किया। अनेक तीर्थ यात्राएँ कीं एवं जिन मन्दिरों में बिम्ब एवं अंजन शलाका की प्रतिष्ठा करवाई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य विजय समुद्र सूरि

वि.सं. १९४८ में पाली नगर (राजस्थान) में बीसा ओसवाल बागरेचा गोत्रीय सेठ शोभाचन्द्र के घर पुत्र सुखराज का जन्म हुआ। १९ वर्ष की वय में सुखराज ने आचार्य विजय वल्लभ सूरि से दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. १९९४ में आपको गणि पद २००८ में उपाध्याय एवं २००९ में आचार्य पद से विभूषित किया गया। वि.सं. २०२७ में सरकार द्वारा गठित अखिल भारतवर्षीय भगवान् महावीर २५००वीं निर्वाण महोत्सव समिति के सदस्य मनोनीत होने वाले एक मात्र जैनाचार्य थे। वि.सं. २०३१ में आपके ८४ वें जन्मदिन पर धर्म संघ की ओर से आपको 'जिन शासन रत्न' की पदवी से विभूषित किया गया। आप हाथ के कते खादी-वस्त्र धारण करते थे। वि.सं. २०३४ में मुरादाबाद में आपका स्वर्गवास हुआ, जहाँ धर्मसंघ ने भव्य समाधि मन्दिर का निर्माण करवाया है।

उपाध्याय सोहन विजय जी

कश्मीर के जम्मू नगर में ओसवाल कुल भूषण दूगड़ गोत्रीय लाला विशनदास राज्य के दीवान रह चुके हैं। वि.सं. १९३८ में इसी नगर के ओसवाल जैन श्रेष्ठि दूगड़ गोत्रीय लाला निहालचन्द्र को पुत्र प्राप्ति हुई, जिसका नाम बसंतामल रखा गया। अल्प वय में माता पिता का देहान्त हो जाने से बसंतामल का लालन-पालन बहन के घर जंडियाला (अमृतसर) में हुआ। वि.सं. १९६० में २२ वर्ष की वय में आपने ढूँढक मत के साधु ऋषि भेड़ाराज से दीक्षा ग्रहण की, किन्तु चार मास पश्चात ही साधु वेश त्याग दिया और सत्य की खोज में लगे रहे। आचार्य विजय वल्लभ सूरि की प्रेरणा से गुजरात जाकर मुनि ललित विजय जी के पास आगम शास्त्रों का अध्ययन किया। वि.सं. १९६१ में आपकी संवेगी दीक्षा हुई तभी आपका नाम सोहन विजय रखा गया। वि.सं. १९७१ में रतलाम में आपको पन्यास और गणि की पदवी से अलंकृत किया गया। वि.सं. १९७२ तक गुजरात में रह कर आपने तीर्थ-यात्राएँ कीं। आप प्रभावशाली प्रवचनकार थे। वि.सं. १९७५ में उदयपुर के चातुर्मास में आपकी प्रेरणा से समाज में बालविवाह, वेश्या नृत्य, वृद्ध विवाह, मोसर आदि के विरुद्ध अभियान चला एवं अनेक कुरीतियों का बहिष्कार हुआ। वि.सं. १९७८ में गुजरानवाला में लाला मोतीलाल जी गद्दैया (जौहरी) की अध्यक्षता में 'आत्मानन्द जैन महासभा' की स्थापना का श्रेय भी आपको ही है। लाला मोतीलाल लाहौर एवं बनारस के प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता प्रकाशक 'मोतीलाल बनारसी दास' के मालिक थे। इस अधिवेशन में आपकी प्रेरणा से जैन बिरादरियों— दसा, बीसा, ओसवाल, खण्डेलवाल, पोरवाल आदि समाजों में परस्पर विवाह का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित एवं क्रियान्वित किया गया। सनखतरा में सैकड़ों अजैन भाई, कसाई, मुसलमान आपके उपदेशों से प्रभावित होकर हिंसा एवं कुव्यसनों से मुक्त हुए।

वि.सं. १९८२ में गुजरानवाला में आपका देहान्त हुआ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य विजय विद्या सूरि

होशियारपुर (पंजाब) के वासी ओसवाल भावड़ा नाहर गोत्रीय अच्छरमल और मच्छरमल दो भाई वि.सं. १९४४ में युगल (जोड़ा) जन्मे। दोनों भाइयों ने जयपुर में वि.सं. १९६५ में आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी से दीक्षा ग्रहण की। अच्छरमल का नाम मुनि विद्या विजय तथा मच्छरमल का नाम मुनि विचार विजय रखा गया। मुनि विद्याविजय जी क्रमशः गणि, पन्यास एवं आचार्य पद से विभूषित हुए। आचार्य पदासीन होने पर आपका नाम विजय विद्या सूरि हुआ। आप बाल ब्रह्मचारी, रूपवान, सरल स्वभाव, मिलनसार महा तेजस्वी थे। दोनों भाइयों का चेहरा इतना मिलता था कि कभी-कभी पहचानना दुष्कर हो जाता था। आचार्य विजय विद्या सूरि जी का स्वर्गवास वि.सं. २०१० में दिल्ली में हुआ। मुनि विचार विजय जी के शिष्य बीसा ओसवाल नौलखा गोत्रीय मुनि वसन्त विजय जी बड़े तपस्वी हैं।

आचार्य दर्शन सागर सूरि (वि.सं. १९६४)

आपका जन्म वीसा श्रीमाली गोत्रीय श्रेष्ठि पीताम्बरदास के घर सौराष्ट्र के धोली ग्राम में सं. १९६४ में हुआ। आपकी माता हरख बहन बड़ी धर्मपरायण महिला थीं । सं. १९८६ में आपको सागर समुदाय के प्रेरणा स्रोत आचार्य सागरानन्द सूरि ने खंभात में दीक्षा दी। आप बड़े मेधावी थे। आगम निष्णात होकर सं. २००८ में पालीताना में गणिपद एवं सं. २०२२ में उपाध्याय पद प्राप्त किया। सं. २०४४ में बम्बई चातुर्मास में आप आचार्य पद से विभूषित किये गये। हिन्दी, गुजराती, प्राकृत, संस्कृत एवं पाली भाषाओं के आप विद्वान् हैं। सं. २०४८ में बम्बई के प्रार्थना समाज ने आपको ८०० साधु-साध्वी संकाय का गणाधिपति घोषित किया।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रभावक आचार्य

विक्रम की १६वीं शताब्दी में श्वेताम्बर परम्परा के चैत्यवासी यतियों के शिथिलाचार के विरुद्ध गुजरात में लोंकाशाह ने क्रान्ति का शंख फूंका। कल्प सूत्र में भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर भस्म ग्रह के संक्रमण को लेकर इसके परिणाम को लक्ष्य कर इन्द्रभूति गौतम द्वारा भगवान् से की गयी प्रार्थना का विवरण है, जहाँ भगवान् ने उत्तर दिया कि इस ग्रह के कारण दो हजार वर्ष तक संघ में जड़ता बढ़ेगी एवं मिथ्याचारों की वृद्धि होगी। सत्य ही यह शिथिलाचार बढ़ा। श्रमण संघ विविध गच्छों में ही नहीं बंटा, आचार में भी फरक आ गया। परिग्रह बढ़ने लगा, पूजा में जड़त्व घर करने लगा। लोकाशाह की प्रेरणा से वि.सं. १५३१ में ४५ व्यक्तियों ने उनके सिद्धान्तों के अनुसार श्रमण दीक्षा ली, शीघ्र ही वे 'लोकागच्छ' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस गच्छ के आचार्य पट्टधर लोकाशाह द्वारा निर्धारित साध्वाचार का अनुसरण करते रहे। तदनन्तर आचारों में ढिलाई आ गयी एवं संगठन की जड़ें खोखली होने लगी। सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में ऋषि लवजी जैसे क्रियोद्धारक आचार्य का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने सम्प्रदाय को फिर से व्यवस्थित किया। वि.सं. १७०२ में आचार्य धर्मदास जी की मृत्यु के बाद सम्प्रदाये २२ शाखाओं में विभक्त हो गया एवं 'बाइस टोला' कहलाने लगा। इन्हें साधु मार्गी या स्थानकवासी भी कहा जाता है। वि. की २१वीं सदी के प्रथम दशक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में स्थानकवासी मुनियों का सादड़ी में वृहद् सम्मेलन हुआ; जिसमें आचार्य आत्माराम जी समस्त शाखाओं के प्रमुख चुने गये।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के जनक–लोंकाशाह

वि.सं. १४७२ में सिरोही के अरहट्टबाड़ा गाँव में ओसवाल वंश के दफ्तरी गोत्रीय हेमाशाह के घर लोकाशाह का जन्म हुआ। वे पेशे से जैहरी थे एवं अहमदाबाद के सुल्तान मुहम्मद के खजांची थे। लोकाशाह यति ज्ञान सुन्दरजी के सम्पर्क में आये। उनकी प्रेरणा से चैत्य में शास्त्रों की प्रतिलिपि करने का कार्य संभाल लिया। आगम लेखन के साथ चिन्तन मनन ने सिद्धान्तों का यथारूप उजागर कर दिया। चैत्यों के परिग्रह और मूर्तिपूजा के रूढ़ विधानों एवं अन्य धार्मिक आडम्बरों का खोखलापन उन्हें कचोट गया। वे खुलेआम इनकी निन्दा और आलोचना करने लगे। सिद्धान्त और साध्वाचार की भेद रेखा स्पष्ट होते ही उन्होंने निर्भयता पूर्वक क्रान्ति का उद्घोष किया एवं सर्वप्रथम विक्रम संवत् १५०८ में अहमदाबाद में जिन प्रतिमा का उत्थापन प्रारम्भ किया। अणहिल पाटन के कोट्याधीश शाह लखमसी उनके भक्त बन गये। वि.सं. १५३१ में भाण आदि ४५ श्रमणों ने उनकी आगम परुपणा के अनुसार दीक्षा ग्रहण की। इसी तरह लोकागच्छ की नींव पड़ी। कालान्तर में इनको २२ विभिन्न आचार्य होने से 'बाइस पंथी' या 'बाइसटोला' कहा जाने लगा। सत्य के साधकों का जो हस्र इतिहास प्रसिद्ध है वही हस्र लोकाशाह का हुआ। विद्वेषी यतियों की प्रेरणा से अलवर में वि.सं. १५४६ में पारणें में विष युक्त आहार बहरा दिया गया, इसी से लोकाशाह दिवंगत हुए।

आचार्य ऋषि लवजी

स्थानकवासी परम्परा में प्रथम क्रियोद्धारक आचार्य ऋषि लवजी सूरत के ओसवाल (श्रीमाल) परिवार में जन्मे। पिता श्री वीर जी बोहरा का वियोग अल्पवय में ही हो गया। तदनन्तर नाना के घर रहे, जो श्रीमाल गोत्रीय वोहरा थे। बचपन में ही जैन संस्कार मिले। नाना की करोड़ों की सम्पत्ति का व्यामोह छोड़कर वि.सं. १६९२ में यति बजरंग जी के पास दीक्षित हुए। जेल्द ही यति वर्ग के शिथिलाचार के प्रति असन्तोष होने से विद्रोह कर दिया एवं क्रियोद्धार की अपेक्षा से वि.सं. १७०४ में नई दीक्षा ग्रहण की। वे जैनागमों के ज्ञाता थे। उन्होंने सर्वप्रथम मुंहपत्ती का चलन प्रारम्भ किया। सत्य को ढूँढ कर प्रचलित करने के कारण इन्हें ढूँढिया कहा जाने लगा। उस समय उनके साथ २१ अन्य यतियों ने इस पंथ को स्वीकार किया। कई लोग उनके ढूँढ (जयपुर प्रदेश) में अधिक विहार करने से 'ढूँढिया' नाम प्रचलित हुआ, मानते हैं। उनके आचार-विचार की सर्वत्र चर्चा होने लगी। यह यतियों को सहन नहीं हुआ। उनकी शिकायत पर खम्भात के नवाब ने उन्हें जेल में डलवा दिया। जेल में भी वे साधना रत रहे। इससे नवाब की बेगम बहुत प्रभावित हुईं एवं उनके हस्तक्षेप से नवाब ने उन्हें मुक्त कर दिया। गुजरात उनका धर्म प्रचार का मुख्य क्षेत्र रहा। यति सम्प्रदाय का विद्वेष बना ही रहा। अन्ततः बुरहानपुर में बेले की तपस्या के पारणे में विद्वेषी व्यक्ति द्वारा बहराये गये विष मिश्रित मोदक खा लेने से उनकी मृत्यु हुई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य धर्मसिंह

विलक्षण स्मरण शक्ति के धनी आचार्य धर्मसिंह स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रभावी आचार्य थे। उनका जन्म गुजरात के सखानियाँ ग्राम के दसा श्रीमाली ओसवाल परिवार में हुआ। आपके पिता श्री जिनदास चैत्यानुयायी थे। धर्मसिंह जी ने यति देवजी से दीक्षा ली। आपने भी यतिवर्ग के शैथिल्य के प्रति क्रान्ति की। वे आगम मर्मज्ञ और गम्भीर साधक थे। वि.सं. १६९२ में अहमदाबाद में उन्होंने लोकागच्छ के नीति दर्शन का समर्थन किया। उनका विचरण क्षेत्र भी गुजरात सौराष्ट्र था। उन्होंने २७ आगमों पर गुजराती में टब्बे लिखे, जो जैन साहित्य में बड़े प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण माने जाते हैं। वे प्रसिद्ध अवधान-कार थे। संयम साधना के क्षेत्र में वे दृढ़ क्रियोद्धारक आचार्य माने जाते हैं। वि.सं. १७२८ में आचार्य धर्मसिंह का स्वर्गवास हुआ।

आचार्य धर्मदास जी (वि.सं. १७०२-१७७३)

धर्मदास जी महाराज एक अलौकिक महापुरुष थे। सिद्धान्तों के प्रति अडिग आस्था एवं धर्म के प्रति अपना जीवन न्यौछावर करने वाले ऐसे महापुरुष बिरले ही होते हैं। मुनि अमरचन्द्र जी लिखित प्राचीन पट्टावली (सं. १९५७) के अनुसार अहमदाबाद के निकट सरखेज गाँव के भावसार जातीय श्री जीवणभाई के घर सं. १७०२ में धर्मदास जी का जन्म हुआ। मुनि धनचन्द जी लिखित आपके जीवन चरित्र में जन्म सं. १७०३ एवं पिता का नाम कान्हजी जीवन पटेल एवं माता का नाम जीवा बाई लिखा है। बचपन से ही लूंका गच्छीय यतियों के सम्पर्क से सूत्रों का अध्ययन किया। सं. १७१६ में पोतिया संघ श्रावक प्रेमचन्द जी से श्रावक व्रत धारण कर उनके शिष्य बने। पाँच वर्षों के श्रावकत्व एवं वैराग्य उपरान्त पोतीया पंथ की श्रद्धा छोड़कर अपने २१ साथियों के साथ सत्य की खोज में निकल पड़े। सर्वप्रथम ऋषि लवजी स्वामी से शास्त्र चर्चा की उन पर भी श्रद्धा नहीं जमी। तत्पश्चात् धर्मसिंह जी से धर्म चचा हुई। वहाँ भी अनेक प्रश्नों का समाधान न हो सका। तब मुनि जीवराज जी के पास आये। उनसे धर्मचर्चा कर उन्हें पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। सं. १७२१ में अपने २१ साथियों के साथ अहमदाबाद के बाहर स्थित बादशाह बाड़ी में दीक्षा ग्रहण की। वे आचार्य प्रस्थापित हुए एवं २१ साथियों के अलग सिंगाड़े बने। इन दीक्षाओं के १५वें दिन ही जीवराज जी स्वामी का देहान्त हो गया। इससे लोगों में यही प्रचलित हो गया कि धर्मदास जी व उनके साथियों ने स्वयं ही दीक्षा ली।

धर्मदास जी ने सिद्धान्तों के आचार की शिथिलता कभी बर्दाश्त नहीं की। उक्त दीक्षाओं के उपलक्ष में आपने अष्टम तप किया एवं चौथे दिन पारणे के लिये भिक्षाचरी में एक कुम्हार के घर से उन्हें राख बहरा दी गयी। गुरु ने यह बात सुनकर फलितार्थ बताते हुए कहा कि हमारा शिष्य समुदाय चारों तरफ फैलेगा। वैसा ही हुआ—३८ वर्षों के आचार्य काल में उन्होंने ९९ दीक्षाएँ दीं। संवत् १७७२ में आपने मालवा के राजा भोज की प्रसिद्ध धारा नगरी में अपने एवं २१ अन्य शिष्यों के २२ समुदायों की प्रस्थापना घोषणा की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इन्हीं दिनों आपके एक शिष्य ने अपनी नाजुक शारीरिक स्थिति देख कर संथारा कर लिया। भवितव्यता से उसकी व्याधि कम हो गई—अब उसका मन संथारा से विचलित होने लगा। आचार्य धर्मदास जी को ज्यों ही मालूम हुआ उन्होंने दर्शन देकर उपदेश दिया एवं प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की प्रेरणा दी। परन्तु कोई असर होता न देखकर धर्मरक्षार्थ उसके बदले स्वयं संथारा स्वीकार कर लिया। इस तरह अपने निरोग शरीर का बलिदान कर वे शरीर की नश्वरता एवं आत्मा की नित्यता का अनुपम उदाहरण बन गए। वे सहर्ष संथारा पालन कर सं. १७५९ में दिवंगत हुए।

आचार्य भूधर जी

मारवाड़ के नागौर शहर के निवासी ओसवाल वंशीय माणकचन्द जी मुणोत के घर वि.सं. १७१२ (मुनि अमरचन्द जी कृत 'प्राचीन पट्टावली' के अनुसार सं. १७२७) में भूधर जी का जन्म हुआ। उस समय ओसवाल मुसद्दी एवं प्रधानों का रियासतों में बोलबाला था। आपकी शिक्षा भी उसी तरह की हुई। सोजत के शाह दलाजी रातड़िया (मून्था) की पुत्री से आपका विवाह हुआ। आप राज्याधिकारी मनोनीत हुए। वि.सं. १७४० में कंटालिया ग्राम में डाकुओं का आतंक शान्त करने में आपने प्रमुख भूमिका निभाई। वहीं युद्ध में घायल घोड़े की मरणान्तक वेदना देख कर आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तत्काल आप राज्य सेवा से अवकाश लेकर पोतिया बन्ध सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। आपने वि.सं. १७५१ (मुनि अमरचन्द जी के अनुसार १७७७) में मालवा में लोकागच्छीय आचार्य धन्ना जी से आर्हती दीक्षा ली।

एक बार दिल्ली प्रवास के समय बादशाह की शाहजादी को निकाह के पूर्व गर्भ ठहर गया। बादशाह क्रोध से संतप्त हो शाहजादी को दण्डित करना चाहता था। खींवसी भण्डारी उन दिनों दरबार में आते जाते थे। वे बादशाह से कुछ दिन दण्ड न देने का आश्वासन लेकर आचार्य भूधर जी से मिले। उन्होने स्थानांग सूत्र में उल्लिखित गर्भ के ५ कारण बतायेः (१) जल में पुरुष स्नान के बाद स्त्री का निर्वस्त्र स्नान करना, (२) ऋतुमती स्त्री का निर्वस्त्र खुले में सोना, (३) वीर्य लिप्त वस्त्र का योनि स्पर्श करना, (४) सम्भोग, (५) देवयोग।

साथ ही यह भी समझा दिया कि मनुष्य सम्भोग के अलावा किसी अन्य कारण से गर्भ रहने पर बच्चे के शरीर में हड्डी नहीं होती। वह रुई की तरह मुलायम होता है। बादशाह ने प्रसव तक इन्तजार किया। बात ठीक थी। शहजादी निर्दोष निकली और दण्ड से बच गई। आचर्य भूधर जी ने बादशाह के आग्रह पर दिल्ली चातुर्मास किया। बादशाह ने आचार्य के सम्मान में फरमान जारी किये ताकि अन्य प्रदेशों में कहीं राह में उन्हें कोई कष्ट न हो।

वि.सं. १७८० में भूधर जी मेड़ता पधारे। इन्हीं दिनों उनके गुरु आचार्य धन्नाजी का स्वर्गवास हो गया। कालू में जाटों में धर्म प्रचार कर आचार्य जी ने नये कीर्तिमान स्थापित किये। यतियों का विरोध अपनी चरम सीमा पर था। उनके बहकाये रामा जाट द्वारा आचार्य जी को कांटों में घसीटने से शरीर पर घाव हो गये। सिर पर कुल्हाड़ी का आघात करने से रक्तस्राव से पृथ्वी लाल हो गयी। फिर भी, आचार्य ने करुणा कर आक्रान्त दिग्भ्रमित रामा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जाट को थाने से छुड़वा दिया। पं. दुखमोहन झा ने सन् १९५८ में प्रकाशित 'आदर्श विभूतियाँ' में कालू में आ. भूधर जी के हमलावर को 'बाबा' बताया है जिसने नदी तट पर आतापना लेते भूधर जी के सर पर डण्डे से प्रहार किया और भाग खड़ा हुआ। सोजत में एक बार फिर उन्हें मारने का षड्यन्त्र रचा गया। संयोग से वह भी विफल हुआ। आचार्य भूधर जी ने अनेक बार इन उपद्रवों का सामना अनशन करके किया।

आपने अपने २० वर्ष के आचार्य काल में ९ दीक्षाएँ दीं। सं. १८०४ में आप दिवंगत हुए।

आचार्य रघुनाथ जी

स्थानकवासी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के श्रमण कुल तिलक आचार्य रघुनाथ जी ने ओसवाल वंश के वल्लावत उपगोत्र (बाफणा गोत्र) में शाह नथमल जी के घर सं. १७६६ में जन्म लिया। नथमल जी का परिवार प्रारम्भ में रामानुज (वैष्णव) सम्प्रदाय का अनुयायी था। माता-पिता ने सोजत के शाह कुन्दनमल जी बैदमूँथा की कन्या रत्नावली से आपकी सगाई कर दी। उसी दिन आप सोजत के हाकिम (न्यायाधीश) नियुक्त हुए। अचानक एक परम मित्र की अकाल मृत्यु से आपको वैराग्य हुआ। किसी तान्त्रिक ने अमरत्व सिद्धि के लिये सिर काट कर चामुण्डा को भेंट चढ़ाने का विधान बताया—आप तत्पर हो गये। संयोग से तभी स्थानकवासी आचार्य भूधर जी नगर में पधारे। तीन दिन तक उनसे चर्चा चली। समाधान पाकर आप दीक्षा के लिये उद्यत हो गये। रत्नावली के घर वालों को सन्देश भेजा गया। यह सुनते ही रत्नावली किसी अन्य से विवाह न करने का निश्चय कर आत्महत्या के लिये उद्यत हो गयी। आचार्य भूधर जी को जब इस नई समस्या की जानकारी हुई तो उन्होंने रघुनाथ जी से चार वर्ष तक गृहस्थ रहने का आग्रह किया एवं तदनन्तर दीक्षा देने का आश्वासन दिया। रघुनाथ जी कठोर साधना में लग गये। इसी बीच माता-पिता का देहान्त हो गया। श्वसुर ने घर पर पहरा बैठा दिया। उधर रत्नावली भी वैराग्य साधना में लग गई। चार वर्ष व्यतीत हो गये। एक रात रघुनाथ जी मकान की छत से कूद कर २२ कोस रात में पैदल चल कर जोधपुर आये एवं आचार्य भूधर जी से दीक्षा देने की प्रार्थना की। खींवसी जी भण्डारी के घर सात दिन तक उत्सव मनाया गया। तदनन्तर वि.सं. १७८८ में धूमधाम से उनकी दीक्षा हुई। उधर रत्नावली की साधना भी रंग लाई। वि.सं. १७८८ में वे ११ अन्य बहिनों के साथ दीक्षित हुईं। वह मारवाड़ में प्रथम नारी दिक्षा थी।

विद्वेषी यतियों एवं पोतिया बन्ध सम्प्रदाय वालों ने आपका जबरदस्त विरोध किया। जालौर में लाठियों के प्रहार हुए—स्थानक तक देने से इन्कार कर दिया। भिक्षा तक नहीं मिली। आपको तीन दिन तक जालौर में हाकिम ने अपने बंगले पर ठहराया। यतियों से आप शास्त्रार्थ में विजयी हुए। वहीं वि.सं. १७८९ का चातुर्मास किया। करीब १००० घरों ने आपकी श्रद्धा स्वीकारी। वि.सं. १८०३ में सोजत में आपका आचार्य पदारोहण हुआ। वि.सं. १८०८ में भीखण जी आपके पास दीक्षित हुए। १८१३ में मेड़ता चातुर्मास में भगवती सूत्र की वाचना को लेकर भीखण जी से आपका विवाद हुआ। 'अव्रती के प्राण बचाने में एकान्त पाप होता है'—यह स्थापना भीखण जी ने एक हस्तलिखित गुटके के आधार पर की। उन्होंने इस स्थापना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का प्रचार भी शुरु कर दिया। अन्ततः वि.सं. १८१६ में भीखण जी ने संघ का परित्याग कर दिया।

आचार्य रघुनाथ जी के समय यतियों का समाज पर बहुत प्रभाव था। गोडवाड जिलें में उपद्रव हुए। यातनाएँ दी गयीं। सादड़ी में भी कम उपद्रव नहीं हुए। वि.सं. १८४६ में ६०वाँ चातुर्मास पाली में किया। वहां स्वास्थ्य गिर गया एवं आपको समाधि-मरण प्राप्त हुआ। आपके उत्तराधिकारी आचार्य टोडरमल जी हुए।

आचार्य जयमल जी

इन तपोनिष्ठ स्थानकवासी आचार्य का जन्म राजस्थान के ताम्बिया ग्राम में समदड़िया गोत्रीय बीसा ओसवाल श्रेष्ठि मोहनदास मेहता के घर हुआ। विवाह हुए ६ मास भी न हुए थे कि जयमल जी आचार्य भूधर के पास वि.सं. १७८९ में सपत्नीक दीक्षित हो गये। उन्होंने १३ वर्ष निरन्तर एकान्तर तप किया। सो कर नींद न लेने के महासंकल्प को ५० वर्षों तक पूर्ण जागरूकता से निभाने वाले वे एकमात्र जैन श्रमण थे। वे उच्च कोटि के साहित्यकार थे। उनके धर्म का प्रचार क्षेत्र दिल्ली, पंजाब, मालवा व राजस्थान रहा। तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भीखण जी के साथ उनके सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे। आचार्य भारमल जी के पिता किसनौजी की कठोर प्रकृति के कारण भीखण जी ने उन्हें आचार्य जयमल जी को सौंप दिया था। क्षमा मूर्ति आचार्य जयमल जी ने उन्हें भी संभाल लिया।

आचार्य हम्मीरमल जी (सं. १८५२-१९१२)

नागौर की वैभव सम्पन्न नगरी में ओसवंशीय छोटे साजन शाखा के गांधी गोत्रीय श्रेष्ठि नगराज जी नामक धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ रहते थे। उनकी धर्म परायण पत्नी ज्ञानकुमारी की कुक्षि से सं. १८५२ में एक संस्कारी बालक का जन्म हुआ। माता-पिता की वात्सल्यमयी गोद में ११ वर्ष व्यतीत होते ही कुटिल कालचक्र ने अबोध बालक के सर से पिता का साया छीन लिया। माँ अपने पुत्र को लेकर पीहर पीपाड़ में रहने लगी। यहीं संत सतियों के समागम एवं सत्संग से दोनों में वैराग्य के बीजांकुर लहलहाने लगे। आचार्य रत्नचन्द्र की सेवा में उपस्थित हो मां ने अपने ११ वर्षीय पुत्र को समर्पित कर दिया। सं. १८६३ में आचार्य जी ने बालक हम्मीर मल को भगवती दीक्षा प्रदान की। माता ने भी महासत्ती बरजूजी से दीक्षा ग्रहण की। हम्मीर मल जी ने ज्ञान की आराधना के साथ ही तप की आराधना प्रारम्भ कर दी। आप स्वभाव से प्रदर्शन एवं आडम्बर के विरोधी थे। आपके संयमी जीवन की कतिपय विशेषताएँ थीं। जीवन रक्षा निमित्त मात्र दस द्रव्य उपरान्त समस्त द्रव्यों का त्याग कर दिया था, भयंकर ठंड के समय भी मात्र एक पछेवड़ी ही धारण करते थे। वे अपने युग के एक आदर्श संत माने जाते थे। आपके उपदेशों में जन-रंजन के स्थान पर कुमति निकंदन की प्रधानता रहती थी। आचार्यश्री के सदा ही वे कृपापात्र थे। संवत १९०२ में आचार्य रत्नचन्द्र जी ने स्वर्गारोहण से पूर्व उन्हें अपनी पछेवड़ी ओढ़ाकर आचार्य मनोनीत कर दिया था। आपने चतुर्विध संघ के आग्रह पर आचार्य पदासीन हो संघ की अच्छी उन्नति की। प्रसिद्ध 'विनयचन्द्र चौबीसी'

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के रचयिता भक्त प्रज्ञाचक्षु विनयचन्द जी कुंभट की भक्ति मंदाकिनी आपकी प्रेरणा से ही प्रवाहित हुई थी। आपकी लेखन कला उत्कृष्टतम थी। आप द्वारा लिपिबद्ध अनेक सूत्रों एवं शास्त्रों की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। आपने कुल ४८ चातुर्मास किये परन्तु विहार क्षेत्र मारवाड़ ही रहा। आपके शासनकाल में ५ मुनि दीक्षाएँ हुईं।

संवत् १९१० में आपको अन्न से अरुचि होने लगी—ऐसी अवस्था में भी देह के प्रति आपका निर्मम भाव अविचल बना रहा एवं परिषह सहन करते रहे। व्याधि की गंभीरता एवं असाध्यता से चतुर्विध संघ विचलित हो गया। परन्तु आप सदैव प्रसन्न चित्त रहते। अन्ततः आपने संथारा लेकर लगभग ६१ वर्ष की वय में समाधि मरण प्राप्त किया।

आचार्य कजोड़ीमल जी (सं. -१९३६)

अनुपम दैहिक कान्ति एवं आत्मिक तेज के धनी आचार्य कजोड़ीमल जी स्थानकवासी सम्प्रदाय में आचार्य रत्नचन्द की परम्परा के तृतीय पट्टधर थे। आपका जन्म किशनगढ़ के ओसवंशीय श्रेष्ठि शंभूमल जी के घर हुआ। आपकी माता वदना जी बड़ी धर्मपरायण थीं। शुभाशुभ संचित कर्मफल कहिये या होनी, आठ वर्ष के अबोध बालक को वात्सल्य मूर्ति माता-पिता का वियोग सहना पड़ा। माता-पिता की अकाल मृत्यु के बाद आप अजमेर आ गये एवं अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं पुरुषार्थ से जीवन यापन करने लगे। इन्हीं दिनों मुनि भेरुमल्ल जी का सत्संग हुआ एवं शीघ्र ही संयोगवशात् आचार्य रामचन्द्र जी का अजमेर पदार्पण हुआ। उनके उपदेशों से कजोड़ीमल जी के हृदय में वैराग्य बीज अंकुरित हुआ। दीक्षा के लिये अर्ज करने पर आचार्यश्री ने संयम आराधना की भूमिका के रूप में जीव-दया की साधना करने की प्रेरणा दी। कजोड़ीमल जी ने उसे अपना जीवन आधार बना लिया। बंधु-बांधवों ने दीक्षा रोकने के लिये बहु प्रपंच किये। अन्ततः न्यायाधीश की अनुमति से सं. १८८७ में आपने भगवती दीक्षा ग्रहण की। मुनि हम्मीरमल जी की निश्राय में रह कर आपने सूत्रों का अध्ययन किया। आपकी प्रभावोत्पादक वाणी से जैन धर्म की प्रभावना होने लगी।

आपके गौर वर्ण, लम्बी सुडौल देहयष्टि, तेजस्वी नेत्र और गम्भीर वाणी में एक अनोखा आकर्षण था। आचार्य हम्मीरमल जी के स्वर्गवासोपरान्त चतुर्विध संघ ने सं. १९१० में आपकी सम्प्रदाय के आचार्य रूप में वन्दना की। आपके छब्बीस वर्षीय शासनकाल में १३ मुनि दीक्षाएँ हुईं। साध्वी दीक्षा के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। विभिन्न क्षेत्रों में ४९ चातुर्मास हुए मुख्य विहार क्षेत्र मारवाड़ ही रहा।

संवत् १९३३ का चातुर्मास अजमेर में हुआ। यहीं आपका शरीर ऐसा व्याधिग्रस्त हुआ कि फिर पूर्ण स्वस्थ न हो सका। किन्तु आत्मबल उच्च कोटि का था। संवत् १९३६ वैशाख में भयंकर उदरशूल उठा। अन्तिम समय जान कर संथारा करना चाहा और वे पूर्ण उपयोग एवं विधि सहित पचखान करते रहे कि प्राण पखेरू उड़ गये—मानों उन्हें इसी का इंतजार था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य विनयचन्द्र जी (सं. १८९७-१९७२)

मरुधर के प्रसिद्ध तीर्थ फलौदी में ओसवंशीय पूंगलिया गोत्रीय श्रेष्ठी प्रतापमल जी के घर सं. १८९७ में एक प्रतापी बालक ने जन्म लिया। प्रतापमल जी अपने समय के राजमान्य प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ थे। आपकी धर्मपत्नी रम्भाकुंवर पुत्र रत्न की प्राप्ति से हर्ष विभोर थी। शैशव पार कर बालक तीक्ष्ण बुद्धि एवं व्यवहार ज्ञान से सक्षम हो ही रहा था कि अचानक आपके माता-पिता का देहान्त हो गया। छोटे भाई-बहनों की जिम्मेवारी भी आप पर ही आ पड़ी। संयोग से पाली में स्थानान्तरित हो व्यापार में समुचित लाभ भी कमाया। परन्तु आपका हृदय किसी अलब्ध वस्तु की खोज में संलग्न था।

इन्हीं दिनों उन्हें आचार्य कजौड़ीमल जी के दर्शन एवं उपदेश श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वैराग्यांकुर फूटते ही आपने अपने छोटे भाई कस्तूरचन्द्र जी से अपनी मंशा व्यक्त की। संयोग ऐसा मिला की कस्तूरचन्द्र जी भी दीक्षा के लिये तत्पर हो गये। सं. १९१२ में अपने बंधु-बाँधवों की अनुमति से दोनों भाइयों ने कजौड़ीमल जी से भगवती दीक्षा ग्रहण की। दुर्दैव से छोटे भाई मुनि कस्तूरचन्द जी का अचानक असामयिक निधन हो गया।

सं. १९३३ में आचार्य कजौड़ीमल जी व्याधिग्रस्त हुए। उन्होंने विनयचन्द्र जी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। आचार्य जी के देहावसान पर सं. १९३७ में चतुर्विध संघ ने उन्हें आचार्य पद देकर अभ्यर्थना की। अपने ३६ वर्षीय शासन काल में आपने संघ की महिमा बढ़ाई। आपकी ही प्रेरणा से सं. १९५१ में विपुल वैभव के स्वामी जयपुर के श्रेष्ठि सुजानमल जी की आदर्श दीक्षा सम्पन्न हुई। सुजानमल जी ने तीन विवाह किये थे एवं ऐश्वर्यशाली थे। एक बार पाँव में पीड़ा हुई, डाक्टरों के इलाज से भी नहीं मिटी। अनायास यह संकल्प कर डाला कि यदि पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँ तो दीक्षा धारण कर लूंगा। और मजा यह कि वे स्वस्थ हो गये। बात के धनी सेठजी ने ६० वर्ष की वय में समस्त सम्पत्ति त्याग कर साधुत्व की तैयारी की। तात्कालीन बड़े बड़े श्रीमन्तों ने उनकी दीक्षा शिविका (पालकी) को कंधा देकर अपने को धन्य माना—उनमें रीवां के सेठ चांदमल जी, अजमेर के सेठ सौभाग्यमल जी, जयपुर के दीवान नथमलजी, एवं कुचामन के सेठ फतेमल जी प्रमुख थे।

आचार्य जी की आगम मर्मज्ञता एवं स्मरण शक्ति विलक्षण थी। सभी अन्य जैन सम्प्रदायों पर भी आपकी प्रगाढ़ विद्वत्ता की धाक थी। वे साम्प्रदायिक सहिष्णुता के आदर्श प्रतीक थे। स्वाध्याय से आपकी आँखों की ज्योति मन्द हो गई थी—सं. १९५९ में जयपुर में आँखों का आपरेशन भी हुआ। चक्षु शक्ति और मन्द हो गई परन्तु ज्ञान चक्षु अति विलक्षण हो गये। जयपुर के संवत् १७७२ के चातुर्मास में आपका शरीर क्रमशः शिथिल होने लगा एवं मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष के दिन आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य अमरसिंह जी

अमृतसर के ओसवाल श्रेष्ठि तातेड़ गोत्रीय लाला बुद्धसिंह के घर सं. १८६२ में एक कांतिवान तेजपुञ्ज अवतरित हुए—जिन्होंने बड़े होकर सं. १८९८ में स्थानकवासी सम्प्रदाय

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में दीक्षा ली। ये बड़े प्रभावी संत थे। सं. १९१३ में आचार्य पद से विभूषित हुए। आपने पंजाब में नये धार्मिक संगठन की सृष्टि की एवं जन-मानस में स्फूर्ति फूंकी। सं. १९३९ में आपका निधन हुआ।

आचार्य सोहनलाल जी

सियालकोट जिले के सम्बड़पाल गाँव में गधैया गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि मथुरा दास जी के घर सं. १९०६ में सोहनलाल जी का जन्म हुआ। आप ३० वर्ष की वय में स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। आप बड़े साहसी, मेधावी, एवं तर्कनिष्ठ संत थे। शास्त्रों एवं ज्योतिष के ज्ञाता थे। सं. १९५८ में आप आचार्य पदासीन हुए। अनेक वर्षों के धर्म प्रचार के बाद आपने अमृतसर में एकान्त वास किया।

आचार्य शोभाचन्द्र जी (सं. १९१४-१९८३)

रत्नवंशीय परम्परा के षष्टम पट्टधर आचार्य शोभाचन्द्र जी का जन्म सं. १९१४ में जोधपुर के ओसवंशीय श्रेष्ठि भगवान दास जी छाजेड़ के घर हुआ। आपकी माता का नाम पार्वती बाई था। छोटी वय से आपकी प्रकृति गम्भीर थी अतः पिता ने उन्हें दस वर्ष की वय से ही धन्धे में लगाने का प्रयत्न किया। किन्तु बालक संसार से उदासीन ही रहा एवं आचार्य कजोड़ीमल जी के सान्निध्य में वैराग्य पथ पर आरूढ़ हुआ। सं. १९३७ में आचार्यश्री ने जयपुर चातुर्मास में उन्हें दीक्षित किया। सं. १९७२ तक आप आचार्य कजोड़ीमल एवं आचार्य विनयचन्द्र जी की ही सेवा में रहकर धर्म की प्रभावना करते रहे। जब आचार्य विनयचन्द्र जी का स्वर्गवास हुआ तो चतुर्विध संघ की सम्मति से आपने शासन भार सम्भाला। अन्य सम्प्रदायों के विद्वान् साधुवृन्द से भी आपके अत्यन्त प्रेममय संबंध रहे। पूज्य श्री लालजी महाराज ने तो आपको आचार्य पद की चादर भी ओढ़ाई।

आपने कुल ५६ चातुर्मास किये जिनमें ११ स्वतंत्र थे। आपके शासनकाल में ४ संत एवं १६ महासतियाँ भी संघ में दीक्षित हुए जिनमें मुनि हस्तीमल जी विशेष थे। आपकी उपदेश शैली आकर्षक थी। अनेक इतर सम्प्रदाय के लोग आपको अपना गुरु मानते थे। पीपाड़ में प्लेग की महामारी फैल जाने के कारण सं. १९७४ का चातुर्मास बड़लू हुआ एवं सं. १९७६ का चातुर्मास जोधपुर। पधारते समय स्वयं को दाहूजला की शिकायत एवं भयंकर ज्वर हो जाने से वर्षामास पीपाड़ में व्यतीत हुआ। शरीर की अस्वस्थता के कारण सं. १९७९ में जोधपुर में ही आचार्य जी का स्थिरवास रहा। धीरे-धीरे वाक्शक्ति क्षीण हो गयी। आप १९८३ में समाधि मरण को उपलब्ध हुए।

आचार्य अमोलक ऋषि

स्थानकवासी सम्प्रदाय की ऋषि परम्परा में आचार्य अमोलक ऋषि अपने युग के विश्रुत विद्वान् थे। उनका जन्म मेड़ता निवासी कांसटिया गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि केवलचन्द जी के घर वि.सं. १९३४ में हुआ। माँ की मृत्यु के बाद पिता एवं पितामह भी श्रमण संघ में दीक्षित

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हो गये। वि.सं. १९४४ में अमोलक ऋषि रत्न ऋषि के पास दीक्षित हुए। वि.सं. १९८९ में वे आचार्य पद से विभूषित हुए। उन्होंने ३२ सूत्रों का हिन्दी में अनुवाद किया, जो आगम पिपासु प्राकृत न समझने वाले भक्तों में बहुत लोकप्रिय हुआ। उनका प्रमुख विचरण क्षेत्र मालवा था। उनके कुल १०२ ग्रंथ हैं जिनमें अनेक ग्रन्थों की आवृत्तियाँ गुजराती, मराठी, कन्नड़, उर्दू आदि भाषाओं में हुई हैं। वे वि.सं. १९९३ में स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य आत्माराम जी (वि.सं. १९३९-२०१९)

स्थानकवासी बृहद् श्रमण संघ के मनोनीत आचार्य आत्माराम जी महान् तत्त्वज्ञ थे। उनका जन्म पंजाब के राहो नगर में ओसवाल वंश के चोपड़ा गोत्रीय मनसाराम जी के घर में हुआ। दो वर्ष की वय में माता का वियोग हुआ। ८ वर्ष की अवस्था में पिता का भी देहान्त हो गया। निराश्रित बालक में वैराग्य का बीज वपन हुआ। आप वि.सं. १९५९ में दीक्षित हुए। पहले आप उपाध्याय बने, फिर २००३ में आचार्य पद से विभूषित हुए। वि.सं. २००९ में सादड़ी सम्मेलन में समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय ने उन्हें श्रमण संघ का प्रमुख चुना। वे आगमों के प्रभावकारी व्याख्या थे। पं. नेहरू तथा अनेक जर्मन विद्वान् उनसे प्रभावित हुए। उन्होंने सूत्रों के हिन्दी अनुवाद किये। अन्यान्य धर्म दर्शनों की रचना कर जैन वाङ्मय को अनेक मूल्यवान उपहार दिये। उन्हें 'जैनागम रत्नाकर' की उपाधि से विभूषित किया गया।

आचार्य आनन्द ऋषि (वि.सं. १९७७-२०४९)

स्थानकवासी सम्प्रदाय की ऋषि परम्परा में आचार्य आनन्द ऋषि उल्लेखनीय हैं। उनका जन्म वि.सं. १९५७ में अहमदनगर (महाराष्ट्र) जिले के सिराल चिंचोड़ी गाँव में ओसवंश के गूगलिया गोत्रीय सेठ देवीचन्द जी के घर हुआ। धर्मपरायणा माँ से प्रेरणा प्राप्त कर आचार्य रत्न ऋषि से वि.सं. १९७० में उन्होंने भगवती दीक्षा ग्रहण की। वे वि.सं. १९९९ में आचार्य पद से विभूषित हुए। आपकी प्रेरणा से सं. २००६ में व्यावर में पाँच सम्प्रदायों का संगम हुआ एवं श्री वर्धमान श्रमण संघ की स्थापना हुई। आपके सद्प्रयत्नों से समस्त श्रमण संघ सादड़ी में फिर मिला। आचार्य आत्माराम जी के नायकत्व में वि.सं. २००९ के सादड़ी सम्मेलन में समस्त श्रमण संघ ने उन्हें प्रधानमन्त्री चुना, एवं उसी वर्ष भीनासर में उपाध्यक्ष चुना। वि.सं. २०२० में अजमेर में वे श्रमण संघ के आचार्य मनोनीत हुए। आपके कुशल संचालन में श्रमण संघ ने बहुत उन्नति की। आप प्रसिद्ध वक्ता ही नहीं, पंडित रत्न भी हैं। आपने विपुल साहित्य सृजन किया है। हिन्दी, संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में आपने ५० से अधिक ग्रन्थ रचे हैं। आप आचार्य सम्राट की पदवी से विभूषित हुए। वि.सं. २०४४ के पूना के श्रमण संघ सम्मेलन में आपने अपने उत्तराधिकारी के रूप में श्री देवेन्द्र मुनि को उपाचार्य एवं श्री शिव मुनि को युवाचार्य घोषित किया। आप संवत् २०४९ में अहमदनगर में दिवंगत हुए।

आचार्य हस्तीमल जी (सं. १९६७-१९९३)

आध्यात्मिक जगत् को अपनी प्रभा से आलोकित करने वाले आत्म साधक आचार्य हस्तीमल जी का जन्म सं. १९६७ में निम्बाज ठिकाने के पीपाड़ गाँव में बोहरा कुल श्रेष्ठि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

केवलचन्द जी के घर हुआ। आपने आधुनिकता एवं सुविधाओं की प्रचण्ड आँधी में भी उत्कृष्ट साध्वाचार का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। गर्भ से ही आपका जीवन विपदाओं एवं परिषदों के तूफान झेलने का आदी हो गया। जब वे गर्भ में ही थे पिता काल कवलित हो गये। सं. १९७४ की महामारी प्लेग ने नाना गिरधारी लालजी मुणोत के समस्त परिवार को ही समाप्त कर दिया। इस वज्राघात से उबरे ही न थे कि तीव्र ज्वर से पीड़ित हो दादी चल बसीं। इस तरह आश्रयहीन बालक का माँ रूपा देवी की वात्सल्यमयी गोद ही सहारा बनी। पिता के अवसान से व्यवसाय चौपट हो गया, कर्ज डूब गया पर इन विषम परिस्थितियों में भी मां ने हिम्मत न हारी। वैराग्य के अंकुर माँ और बालक दोनों के ही हृदय में पनप चुके थे। आचार्य शोभाचन्द्र जी बालक की कुशाग्र बुद्धि वाक्पटुता एवं विनयशीलता देखकर अभिभूत हो गये। तत्काल अजमेर के रत्नवंशीय श्रावकों ने माता-पुत्र के शिक्षण-दीक्षण का प्रबंध किया। संस्कृत के विद्वान पं. रामचन्द्र ने सं. १९७६ के अजमेर चातुर्मास तक बालक हस्ती को प्रवज्या एवं श्रमणशील जीवन के लिये आवश्यक जैन शास्त्रों का समुचित अध्ययन करवा दिया। सं. १९७७ में मात्र १० वर्ष की वय में आचार्य शोभाचन्द्र ने उन्हें भगवती दीक्षा अंगीकार करवाई।

आचार्यश्री अस्वस्थ थे। अतः सं. १९७९ से १९८३ तक पाँच चातुर्मास जोधपुर में स्थिर वास करना पड़ा। इसी दरम्यान आचार्य श्री ने मुनि हस्तीमल जी को मात्र १५ वर्ष की वय में अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। संघनायक के प्रतिष्ठित पद पर इतनी छोटी वय में मनोनयन का जैन इतिहास में यह प्रथम उदाहरण था। सं. १९८३ में आचार्य शोभाचन्द्र जी के महाप्रयाण के बाद चतुर्विध संघ के निवेदन पर मुनि हस्तीमल जी ने अपने पूर्ण वयस्क होने तक वयोवृद्ध मुनि सुजानमल जी को संघ व्यवस्थापक एवं मुनि भोजराज जी को परामर्श दाता नियुक्त करना उचित समझा। पाँच वर्ष की इस अवधि के दौरान मुनि हस्तीमल जी ने प. दुखमोचन झा से संस्कृत, प्राकृत, न्याय, दर्शन आदि का सांगोपांग अध्ययन सम्पन्न किया। सं. १९८७ में जोधपुर में आप मात्र १९ वर्ष की किशोर वय में रत्नवँशीय श्रमण संघ के आचार्य पद पर सुशोभित हुए।

आपका पहला चातुर्मास जयपुर में हुआ। यहीं से आपने अनेक लोककल्याण मूलक प्रवृत्तियों की प्रेरणा दी। इनके संचालनार्थ विभिन्न संस्थाएँ संस्थापित हुईं जिसके फलस्वरूप शिक्षण एवं धर्म क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। उन्होंने अपने शासनकाल में ७० चातुर्मास किये एवं भारत के सुदूर प्रदेशों यथा—राजस्थान, मध्य प्रदेश, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा की यात्राएँ कीं।

उनका व्यक्तित्त्व बहुआयामी था, वे एक सम्पूर्ण युग थे। उनकी प्रेरणा से संस्थापित जैन विद्वद् परिषद में अन्य सम्प्रदायों के विद्वानों को भी सदस्य मनोनीत किया गया। वे सरलता, करुणा एवं माधुर्य की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने विपुल साहित्य सर्जन किया। आगामिक व्याख्या साहित्य एवं जैन इतिहास के क्षेत्र में आपका अवदान सदा स्मरणीय रहेगा। नन्दी सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, प्रश्न व्याकरण सूत्र, अन्तगउदसा पर टीकाएँ एवं उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक सूत्रोंके पद्यानुवाद एवं व्याख्याएँ प्रकाशित कर आपने आगामिक रहस्यों को सर्वसाधारण के लिये

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुलभ कर दिया। जैन धर्म के मौलिक इतिहास के प्रथम दो खण्ड आपने स्वयं लिखे एवं अन्य दो खण्ड आपकी प्रेरणा से लिखे गये। पट्टावली प्रबन्ध संग्रह एवं आचार्य चरितावली आपकी अन्वेषी कृति के ही सुफल हैं। आपके आध्यात्मिक प्रवचन 'गजेन्द्रव्याख्यानमाला' के रूप में प्रकाशित हुए हैं। आपकी प्रवचन शैली कथात्मक थी, तत्त्वज्ञान भी बड़े सहज व सरल भाषा में उद्घाटित कर समझा देते थे। आचार्यश्री प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं हिन्दी के उद्भट कवि एवं विद्वान् थे। आप सूक्तियाँ, चरित्र एवं उपदेश छन्दबद्ध पद्यों में सहज ही अभिव्यक्ति कर देते थे।

आपके शासनकाल में संतों की ३१ एवं साध्वियों की ५४ कुल ८५ दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। सं. २००९ में सादड़ी श्रमण संघ सम्मेलन में आप प्रायश्चित्त एवं साहित्य शिक्षण एवं सह मन्त्री मनोनीत हुए एवं सं. २०१३ से २०२४ तक उपाध्यक्ष रहे। पाली के अन्तिम चातुर्मास में आपका स्वास्थ्य गिरता गया। सं. २०४८ के निमाज प्रवास में आपने तेले की तपस्या के बाद संथारा ग्रहण किया एवं २१ अप्रैल को ८१ वर्ष की वय में समाधि मरण को उपलब्ध हुए। आपने रत्नवंश श्रमण परम्परा के अष्टम पट्टपर आचार्य श्री हीराचन्द जी को मनोनीत किया।

आचार्य नानालालजी (वि.सं. १९७७)

आगम पुरुष के विशेषण से विभूषित दाँता (राजस्थान) की माटी से उभरा यह बहुआयामी नक्षत्र जैनधर्माकाश को अपनी आभा से रोशन कर रहा है। आपका जन्म वि.सं. १९७७ में दाँता के श्रेष्ठि मोड़ीलाल जी पोखरणा के घर हुआ। आपकी माता शृंगार बाई ने बड़े लाड़ से इस रूपस् शिशु को पाला। आठ वर्ष की वय में पितृ-वियोग ने बालक के कोमल हृदय में विराग-अंकुर को जन्म दिया। भाद सौड़ा में मुनिश्री चौथमाल जी के उपदेश सुनकर तो सत्यशोध की प्यास गहराने लगी। संसार में व्याप्त अज्ञान, अन्धविश्वास, रूढ़ि, दमन, शोषण देखकर उनका हृदय संतप्त हो उठा। सं. १९९७ में कपासन में युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज से भगवती दीक्षा ग्रहण की। आगम शास्त्राभ्यास के साथ विनय, विवेक और तीर्थयात्रा को जीवन साथी बनाया। सं. २०२० में वे आचार्य पद से विभूषित हुए। व्यक्तित्व की दृढ़ता, कथन धर्मिता, एवं सत्यानुसंधान की वृत्ति ने उनकी अन्तर्मुखता को समृद्ध किया। इस आध्यात्मिक मोड़ ने सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। गुजराती बलाई समाज में आपने धर्मपाल प्रवृत्ति का श्रीगणेश कर हृदय परिवर्तन की जीवन्त मिसाल कायम की। बलाई जैन बने एवं वे आज सुसमृद्ध एवं प्रसन्न हैं। इस हेतु आपने शाखाओं, छात्रावासों की स्थापना एवं शिविरों सम्मेलनों का समय-समय पर आयोजन कर ३०० वर्गमील क्षेत्र में फैले ६०० ग्रामों के लाखों लोगों को व्यसन मुक्त कर उन्हें संयमपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित किया।

सं. २०३८ में दाँता से आचार्यश्री ने एक त्रिमुखी अभियान का श्रीगणेश किया जो आदिवासी जागरण, ब्रह्मचर्य और दहेज उन्मूलन द्वारा संस्कार क्रान्ति का कल्पवृक्ष बना। सं. २०४८ में आपने समीक्षण ध्यान के प्रयोग से समाज में समूहगत चेतना जागृति की दिशा में सफल प्रयास किया है। तेजस्विता का यह सूरज अभी चढ़ रहा है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तेरापन्थ सम्प्रदाय के आचार्य

जैन सम्प्रदायों का इतिहास धर्म क्रान्ति की मशाल जलाये रखने वाला है। भ. पार्श्वनाथ प्रभु के चतुर्याम धर्म में ब्रह्मचर्य का महाव्रत जोड़ना एवं साधना को अपरिग्रह के उच्चतम शिखर– नग्नत्व तक पहुंचा देना—महावीर प्रभु जैसे बुद्ध पुरुष का ही काम था। कालान्तर में यह धर्म संघ राज्याश्रय पाकर सुख-सुविधा भोगी हो गया। श्रुत केवली महाश्रमण आचार्य भद्रबाहु के बाद बारह वर्षीय दुर्भिक्ष को निमित्त बनाकर इस संघ ने सचेल और अचेल (निर्वस्त्र) साधना पद्धतियों के कारण दिगम्बर और श्वेताम्बर भेद को जन्म दिया—उसके मूल में भी क्रान्ति की प्रक्रिया ही थी। विक्रम की पांचवीं शताब्दी में चैत्यवासी परम्परा का जन्म उसी प्रक्रिया का अंग था। कालान्तर में चैत्यवासी शिथिलाचार से ग्रसित हो गये।

जिस तरह चैत्यवासी श्वेताम्बर सुविहित यानि संवेगी यति सम्प्रदाय के शिथिलाचार एवं कर्मकाण्ड के विरोध में विक्रम की १६वीं शताब्दी के मध्य लोंकाशाह ने क्रान्ति का शंख फूंका और भगवत पूजा के नाम पर पल रही संग्रह वृत्ति और बाह्याडम्बर का विरोध किया, जिससे स्थानकवासी सम्प्रदाय का जन्म हुआ, उसी तरह १९वीं शताब्दी के शुरू में एक और वैचारिक आंधी स्थानकवासी सम्प्रदाय में दान-दया सम्बन्धी आचार को लेकर उठी, जिसके नायक थे आचार्य रघुनाथ जी के शिष्य भीखण जी स्वामी। वि.सं. १८१७ में उन्होंने रघुनाथ जी से अलग होकर तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। अपनी संगठनात्मक क्षमता से इस सम्प्रदाय ने ओसवाल समाज में अपना अग्रणी स्थान बना लिया। २२५ वर्षों की अवधि में इस सम्प्रदाय के नौ आचार्य हुए हैं।

यों तो सभी जैन सम्प्रदायों में ओसवालों का विशिष्ट योगदान रहा है। किन्तु तेरापन्थ का इतिहास मूलतः ओसवाल आचार्यों एवं ओसवाल श्रमण-श्रमणियों का ही इतिहास है। आज भी यह सम्प्रदाय थली प्रदेश के ओसवाल समाज का धार्मिक नेतृत्व संभाले हुए है। वैसे अगरवाल, पोरवाल, सरावगी, माहेश्वरी, सुनार, कुम्हार आदि अनेक कौमों के व्यक्ति इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुए हैं परन्तु ९२ प्रतिशत श्रमण-श्रमणियाँ ओसवाल जाति की हुई हैं। आज भी इनके ८५ प्रतिशत अनुयायी मारवाड़, मेवाड़ एवं थली प्रदेश के ओसवाल हैं।

आचार्य भीखण जी (वि.सं. १८१७-१८६०)

तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भीखण जी का जन्म वि.सं. १७८३ में कंटालिया ग्राम (जोधपुर) के बड़ साजन ओसवाल वंश के सकलेचा गोत्रीय शाह बल्लू जी के घर हुआ। उनकी धर्मपत्नी दीपांजी ने स्वप्न में तेजस्वी सिंह देखा। इस स्वप्न के ठीक १८३ दिन बाद पुत्र का जन्म हुआ। उनकी तेजस्विता देखकर भीखण नाम रखा गया। बड़े होकर वे महाजनी विद्या में निपुण हो गये। भीखण जी के पड़दादा कपूर जी ने ढूँढिया समाज में दीक्षा ली। बाबा पेमोजी पोतिया बँध सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। बल्लू जी गच्छ (चैत्य) वासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। भीखण जी की आध्यात्म यात्रा में ये तीनों पड़ाव आये। उनका विवाह बगड़ी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गाँव के बाँठिया परिवार की कन्या से हुआ। एक पुत्री का भी जन्म हुआ जिसका विवाह कालान्त में नीभावत के बाफणा परिवार में हुआ। भीखन जी एवं उनकी पत्नी ने संयम साधना के लि तांबे के लोटे में वैंगे का धोवण डालकर दिन भर धूप में रखकर उसे पीना शुरू कर दिय भीखण जी की पत्नी रोगग्रस्त हो गई और रोग की भयंकर वेदना में ही उनका अकस्म देहान्त हो गया। पत्नी की अकाल मृत्यु के उपरान्त संयम साधना में लीन भीखण जी ने वि. १८०८ में स्थानकवासी परम्परा के आचार्य रघुनाथ जी से बगड़ी गाँव में दीक्षा ग्रहण और भिक्षु स्वामी कहलाने लगे। शास्त्रों के गम्भीर मनन एवं सत्यान्वेषी मानस ने शीघ्र प्रचलित परम्परा से विद्रोह कर दिया। उन्होंने देखा कि साधु अपने लिये बनाये गये स्थान में रहते हैं, दोषपूर्ण क्रियाओं को शुद्धाचार बताते हैं। वि.सं. १८१४ में आचार्य जयम जी, उनके शिष्य और अनेक श्रावकों ने पोरवाल श्रावक चतरोजी के नेतृत्व में राजनगर विद्रोह का झण्डा गाड़ा। आचार्य रघुनाथ जी ने अपने प्रिय शिष्य भिक्षु को वि.सं. १८१ में विद्रोह शमन करने के लिये राजनगर भेजा। भिक्षु स्वामी ने उन्हें समझाया बुझाया पर स उनका अन्तर्मन भी विद्रोह कर उठा। उन्हें तीव्र ज्वर का प्रकोप हुआ। उन्होंने इस प्रवंच से मुक्त होने का इरादा कर लिया। वि.सं. १८१६ का चातुर्मास जोधपुर हुआ। वहां आच जयमल जी ने उनके प्रति सद्भावना प्रकट की। चातुर्मास समाप्त होते ही बगड़ी में आच रघुनाथ जी के दर्शन किये एवं स्पष्टतः अपना मन्तव्य रखकर ४ अन्य संतों के साथ र का परित्याग कर दिया। आचार्य जयमल जी के ६ अन्य प्रशिष्य भी उनसे आ मिले। आच श्यामदास जी के दो साधु भी भिक्षु स्वामी के साथ हो गये। जोधपुर में उनकी श्रद्धा के श्रावकों को उपासना में लगा देख कर एक सेवक ने फब्ती कसी:

साध साध रो मिलो करे, ते आप आपरो मंत।
सुणजो रे शहर रा लोकां, ऐ तेरापन्थी संत।।

बस दोहा प्रसिद्ध हो गया। लोगों ने उपहास करते हुए भिक्षु स्वामी के अनुयायियों तेरहपंथी कहना शुरू कर दिया। स्वामी जी ने जब सुना तो इस नाम के अर्थगाम्भीर्य को दे हुए बोले— 'हे प्रभो! यह तेरा पंथ।' इस तरह अप्रत्याशित रूप से यह नामकरण हुआ। नई क्रान्ति का विरोध होता ही है। वही हुआ। भिक्षु स्वामी को ५ वर्ष तक पूरा आहार नहीं मिला। लोग-बाग किनारा काट लेते। सात साधु विचलित होकर साथ छोड़कर चले पूरे ३६ वर्षों तक १३ साधु पूरे न हो सके। स्वामी जी की लोकोपकार की भावना का गई एवं उन्होंने मात्र अपने आत्मकल्याण का मार्ग चुनकर तपस्या प्रारम्भ कर दी। २ तक इसी तरह चला। धीरे-धीरे विरोध की आंच मन्द पड़ी। सं. १८२१ में सर्वप्रथम ३ महि दीक्षित हुईं। स्वामी जी ने कुल ४१ साधु एवं ५६ साध्वियों को प्रव्रज्या दी, जिनमें से साधु और १७ साध्वियों ने कालान्तर में संघ छोड़ दिया।

सं. १८३२ में आचार्य भीखण जी ने संघ की मर्यादा बाँधी एवं सुदृढ़ संगठन नींव डाली। एक आचार्य एक आचार और एक विचार की महत्वपूर्ण त्रिपदी इस सम की आधारशिला बन गई। आचार्य भिक्षु ने राजस्थानी में ३८ हजार पद्यों का प्रचुर स

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्माण किया। उनका विचरण क्षेत्र मुख्यतः मेवाड़ व मारवाड़ रहा। सं. १८६० का चातुर्मास सिरयारी में हुआ, जो उस समय बड़ा कस्बा था। वहां ७०० घर ओसवाल थे, पर अब मुश्किल से ५० घर हैं। वहाँ स्वामी जी का स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्होंने संथारा पचख लिया। कहते हैं अन्तिम समय में उन्हें अवधिज्ञान हो गया था। भाद्र शुक्ला त्रयोदशी को उन्होंने यह नश्वर शरीर छोड़ दिया।

आचार्य भारीमल जी (वि.सं. १८६०-१८७८)

आपका जन्म मेवाड़ के मुहाँ ग्राम में वि.सं. १८०४ में ओसवाल वंशीय लोढ़ा गोत्रीय श्री कृष्णमल (किसनो) जी के घर हुआ। केलवा ग्राम में सं. १८१३ में आपकी दीक्षा हुई। सं. १८१७ में स्थानकवासी संघ से महाभिनिष्क्रमण के बाद केलवा चातुर्मास में अंधेरी ओरी की घटना एवं सर्प का उपसर्ग हुआ, तब आपने अजेय आत्मबल का परिचय दिया। कठिन परिस्थितियों में भी आपने भिक्षु स्वामी का साथ न छोड़ा। सं. १८३२ में उन्हें युवाचार्य का पद दिया गया। आचार्य भीखण जी के स्वर्गारोहण पर वि.सं. १८६० में आपने आचार्य पद ग्रहण किया। आपकी प्रकृति गम्भीर व शान्त थी। आपकी व्याख्यान शैली आकर्षक और आवाज बुलन्द थी। आपकी गम्भीरता एवं निर्मल आत्मा के कारण कई मूर्तिपूजक व स्थानकवासी साधु तक आपके पास प्रायश्चित्त लेने आते। एक बार उदयपुर के महाराणा ने राज्य में वर्षा न होने का दोष तेरापन्थी साधुओं पर थोपकर उन्हें शहर से बाहर निकाल दिया। उसी समय राज्य में महामारी फैल गई। प्रच्छन्न श्रावक केशरजी भण्डारी की विनती पर महाराणा ने पश्चात्ताप किया। पत्र लिखकर आचार्य भारीमल जी से क्षमा मांगी एवं पुनः शहर में पधारने का अनुरोध किया। आपने स्वामी हेमराज जी को भेज दिया पर स्वयं नहीं गये। आपके चातुर्मास भी अधिकांश मेवाड़, मारवाड़ में हुए। आपने कुल ३८ साधु एवं ४४ साध्वियाँ प्रव्रजित कीं। आप कुशल लिपिकर्ता थे। सं. १८७७ में आप अस्वस्थ हो गये। सं. १८७८ में आपका स्वर्गवास हुआ। मुनि हेमराज जी ने 'भारीमाल चरित्र' लिख कर आपकी स्मृति अक्षुण्ण कर दी।

आचार्य रायचन्द जी (वि.सं. १७७८-१९०८)

तेरापन्थ के तृतीय आचार्य रायचन्द जी का जन्म वि.सं. १८४७ में बड़ी रावलिया ग्राम (उदयपुर) के ओसवाल वंश के बम्ब गोत्रीय शाह चतुरो जी के घर में हुआ। आपके मामा खेतसी जी को भिक्षु स्वामी ने दीक्षित किया था। वे संघ के प्रभावक संत थे। आपकी मौसी ने भी नानाविध कष्ट सहकर स्वामी जी से दीक्षा ग्रहण की थी। उन्हीं संस्कारों ने रायचन्द जी को प्रेरित किया। सं. १८५७ में माँ-पुत्र दोनों स्वामी जी से दीक्षित हुए। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर स्वामी जी ने घोषणा की थी—'यह बालक आचार्य पद के योग्य प्रतीत होता है।' भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। आपकी दीक्षा के बाद संघ की श्रीवृद्धि हुई। आपके ओजस्वी मुख मण्डल के कारण स्वामी जी आपको ब्रह्मचारी कहकर पुकारते थे। सं. १८७७ में आपको युवराज पद प्राप्त हुआ। आपने सं. १८७८ में आचार्य बनकर शासन संभाला। आपको ऋषिराय कहा जाता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आपके समय में थली प्रदेश में तेरापंथ आचार्य का प्रथम चातुर्मास हुआ। बीदासर एवं बाद में लाँडनू को यह श्रेय प्राप्त हुआ। इससे पूर्व आचार्य भीखणजी एवं भारीमल जी का पाद विहार एवं चातुर्मास मेवाड़ एवं मारवाड़ तक ही सीमित था।

ऋषिराय ने मेवाड़ मारवाड़ के बाहर पाद-विहार की परम्परा कायम की। सं. १८८३ में मालवा प्रदेश में आपने अपूर्व आध्यात्म जागरण पैदा कर दिया। उज्जैन, रतलाम, झाबुआ आदि क्षेत्रों में बड़ा प्रभाव पड़ा। बीदासर में एक यति के शिथिलाचार एवं पाखण्ड से लोग परेशान थे। सं. १८८६ में आप थली प्रदेश में पहली बार पधारे। १८८७ का चातुर्मास बीदासर किया। उस समय तेरापंथ संघ का जो बीजारोपण किया उसी का परिणाम है कि आज बीदासर तेरापंथ का प्रमुख क्षेत्र है। साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविकाओं की दृष्टि से वह सर्वोपरि है। सं. १८८९ में गुजरात, सौराष्ट्र एवं कच्छ की लम्बी यात्रा की। क्षेत्रीय विकास की दृष्टि से यह नई परम्परा बनी। सं. १८९४ में नाथद्वारा चातुर्मास के समय ऐसा भी अवसर आया, जब आचार्य अकेले रह गये। सहवर्ती एक भी साधु पास न रहा। आचार्य परम्परा के इतिहास में ऐसा एकमात्र अवसर घटित हुआ।

वि.सं. १९०८ में श्वांस व्याधि के फलस्वरूप आपका देहान्त हुआ।

आचार्य जीतमल जी (वि.सं. १९०८-१९३८)

तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जीतमल जी बड़े प्रतिभा संपन्न एवं प्रभावक आचार्य थे। उनका जन्म वि.सं. १८६० में रोयट ग्राम (पाली) के ओसवाल वंशीय गोलेछा गोत्रीय सेठ आईदान जी के परिवार में हुआ। भिक्षु स्वामी का स्वर्गवास सं. १८६० भादवा सूदी १३ को हुआ था, ठीक एक मास बाद मानो सूर्य अस्ताचल से उग आया हो। जिस संघ की भिक्षु स्वामी ने नींव डाली उसे भव्यता प्रदान आपने की। आचार्य भिक्षु सूत्रकार थे तो आचार्य जीतमल जी उनके भाष्यकार। तेरापन्थ का वर्तमान स्वरूप उन्हीं की बुद्धि कुशलता एवं दूरदर्शिता का परिणाम है।

आप जब ३ वर्ष के थे, तब मीरखां डाकू ने रोयट में डाका डाला। उसके आघात से आपके पिता की मृत्यु हो गयी। माँ बच्चों को लेकर किशनगढ़ आ गयीं। नौ वर्ष की अवस्था में जीतमल जी आचार्य रायचन्द जी के पास दीक्षित हुए। १८ वर्ष की अवस्था में आपने पन्नवणा सूत्र का राजस्थानी भाषा में पद्यानुवाद किया।

मुनि हेमराज जी के कुशल संरक्षण में ज्ञान दर्शन चरित्र की ऊर्जा ऊर्ध्वरिता होकर आपमें प्रवाहित होने लगी। सं. १८८१ में आपको अग्रणी बना दिया गया। आपने अनेक अन्य सम्प्रदायों के मुनियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें समाधान दिया। जगह जगह भयंकर विरोध के बावजूद आपने भ्रान्तियों का निराकरण किया। एवं सैकड़ों लोगों को प्रभावित किया। सं. १८९० में ७०० कोस की ऐतिहासिक यात्रा की। कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात में विहार कर अनेक अजैनों को श्रद्धा दिलाई। सं. १८९३ में आपको युवाचार्य पद दिया गया। सं. १९०३ में आपने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाथद्वारा चातुर्मास में 'भिक्षु दृष्टान्त' नामक इतिहास, तत्त्वज्ञान एवं साहित्य की बेजोड़ कृति की रचना की। सं. १९०८ में वे आचार्य पदारूढ़ हुए। तब मर्यादाएँ बाँध कर संघ को सुव्यवस्थित रूप दिया। आपने ग्रन्थों का संघीकरण और गाथा प्रणाली का प्रणयन किया। हाजरी की शुरुआत की। मर्यादा महोत्सव आप की ही देन है। आपने महत्वपूर्ण साहित्य सृजन किया। आगमों पर साढ़े तीन लाख पद्यों की रचना कर आपने साहित्य सृजन का एक कीर्तिमान स्थापित किया। मारवाड़ी भाषा में पद्यबद्ध टीका रचना करने वाले आप प्रथम टीकाकार थे।

इतिहास लिखने की परम्परा के सूत्रधार भी आचार्य जीतमल जी थे। उन्होंने संघ में संस्कृत के अध्ययन पर विशेष जोर देकर दूरदर्शिता दिखाई, जो धर्म प्रभावना का आधार बना। भगवती की जोड़, भ्रमविध्वंसनम्, आदि अनेक तात्त्विक ग्रन्थ, भिक्षु यश रसायण, खेतसी चरित्र आदि इतिहास ग्रन्थ, लघुरास, शासन विलास आदि पौराणिक यश आख्यायिकाएँ आपकी महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

आचार्य जीतमल जी ने संवत् १९१० में साध्वी प्रमुखा का पद सृजन कर 'सरदार सती' को पदासीन किया। उन्होंने संघ में तीन महोत्सवों की परम्परा डाली—पट्ट महोत्सव, भिक्षु चरमोत्सव एवं मर्यादा महोत्सव—जो अब तक कायम है। सं. १९१४ में लांडनू के सेवा केन्द्र की स्थापना हुई। इससे संघ की साध्वियों की चित्त समाधि एवं स्थिरता में बड़ा योग मिला। अब तक साधु-साध्वियों की वेशभूषा स्थानकवासी परम्परानुसार ही चली आ रही थी। आचार्य जीतमल जी ने मुंहपत्ती, रजोहरण, चोलपट्टा, चद्दर, पहनने के ढंग को कलात्मक रूप देकर सुन्दरता प्रदान की। आपके शासन काल में ३२९ दीक्षाएँ हुईं—१०५ साधुओं की एवं २२४ साध्वियों की।

जयाचार्य का समूचा जीवन अंतश्चेतना के जागरण का प्रतीक था। अनेक बार उपसर्ग का शमन साधना का अंग बना। कहते हैं संवत् १९१३ (सन् १८५५) में सिरियारी में ५ तपस्वी सन्तों की स्तुति में रची गीतिका से कालों की फौज (गदर) का उपद्रव टला। संवत् १९१४ में 'मुणिंद मोरा' स्तवन से बीदासर में आकाश से अंगार बरसने एवं सन्तों के मूर्छित हो जाने का उपसर्ग शान्त हुआ। संवत् १९२९ में आप घोर वेदना से ग्रसित हुए। भिक्षु संस्तुति गाते गाते ऐसे भाव विभोर हुए कि वेदना स्वतः शान्त हो गयी। आप शकुन शास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। स्वप्न में घटनाओं का पूर्वाभास होता रहता। संवत् १९२० में मुनि पतजी की दीक्षा को लेकर बड़ा बवण्डर उठा। जोधपुर नरेश ने आपकी गिरफ्तारी का वारन्ट जारी कर दिया। योग्य श्रावक जी बादरमल जी भंडारी के प्रयत्नों से वारंट निरस्त कराया गया। संवत् १९३१ में राजलदेसर के लछीराम जी वैद राजा से अनबन के कारण लाँडनू चले आये—वहाँ पहली पट्टी में दो हवेलियाँ बनवाईं—कहते हैं उनमें पीरजी का उपद्रव था। जयाचार्य वहाँ विराजे। आज तक वे हवेलियाँ संत-सतियों का प्रवास स्थान बनी हुई हैं—कभी कोई विघ्न नहीं उपस्थित हुआ।

सं. १९३८ में इस युग प्रवर्तक आचार्य का देहावसान हुआ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य मघवागणि (वि.सं. १९३८-१९४९)

आपका जन्म वि.सं. १९८७ में बीदासर के ओसवाज जाति बैंगानी गोत्रीय सेठ पूरणमल जी के घर में हुआ। आपका पूर्व नाम मघराज ही था। आपका अपनी छोटी बहन गुलाब कँवर से आकार-प्रकार में सादृश्य था। दोनों भाई बहन यौगलिक युगल से लगते थे। अल्पायु में पिता का देहान्त हो गया। सरदार सती की प्रेरणा से भाई बहन में वैराग्य का बीज वपन हुआ। सं. १९०८ में जयाचार्य के बीदासर चातुर्मास में दोनों को दीक्षा का हुक्म हुआ। पूर्वोत्तर में लोगों के व्यंग्यबाण सुनकर चाचा पोमराज जी ने उन्हें घोड़ी से उतार कर गढ़ में छिपा दिया। किन्तु बाद में गढ़ के ठाकुर के हस्तक्षेप से उन्हें दीक्षा की आज्ञा देने हेतु राजी होना पड़ा। कुछ समय के अन्तर से दोनों दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं।

आपने दत्तचित्त होकर विद्याभ्यास किया। संस्कृत एवं व्याकरणविद् बने। आप स्थिर चित्तवृत्ति एवं अपूर्व लगन के लिये प्रसिद्ध थे। सभी सहवर्ती संत उन्हें 'पंडित' कहकर सम्बोधित करते थे। आप शासन की दण्ड व्यवस्था के सरपंच नियुक्त हुए। १९१९ में जयाचार्य ने सामूहिक बोझ भार से आपको मुक्त कर दिया। सं. १९२० में आप युवाचार्य बने। आप बड़े निरभिमानी थे। लिपि-कला में दक्ष थे। आपके व्याख्यान कौशल से जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती थी। आप सं. १९३८ में संघ के पांचवें आचार्य बने।

आपने संस्कृत में स्फुट कविताएँ एवं मारवाड़ी में 'जय सुयश' की रचना की। मेवाड़, मारवाड़, थली आदि प्रदेशों में सर्वत्र धर्म संघ की महिमा फैलाई। सं. १९४९ में रतनगढ़ चातुर्मास के समय आप अस्वस्थ हुए। शासन की बागडोर माणक गणि को युवाचार्य बनाकर सौप दी। आपके अल्प कालीन शासन में ११९ दीक्षाएँ हुईं। ६३ वर्ष की आयु में वि.सं. १९४९ में आप दिवंगत हुए।

आचार्य माणक गणि (वि.सं. १९४९-१९५४)

आपका जन्म वि.सं. १९१२ में जयपुर के खारड़ गोत्रीय श्री श्रीमाल (ओसवाल) श्री हुक्मीचन्द जी जौहरी के परिवार में हुआ। आपका पूर्वनाम माणकलाल था। शिशुवय में माता का देहान्त हो गया। दो वर्ष बाद ही गदर के समय डाकुओं की लूटपाट में दुर्घटनाग्रस्त होने से पिता भी चल बसे। पिता के बड़े भाई लाला लक्ष्मणदास बड़े तत्त्वज्ञ और उदार व्यक्ति थे। बम्बई, सूरत एवं महाराष्ट्र में तेरापँथ के बीज वपन का श्रेय उन्हीं को है। उन्हीं के अभिभावकत्व में माणक गणि में धर्म संस्कार पड़े। संवत् १९२८ के चातुर्मास में जयाचार्य के मार्मिक प्रवचनों से आपमें वैराग्य जगा। लालाजी ने जयाचार्य के अनुग्रह वचन 'मेरा उत्तरदायित्व तो मघ जी संभाल लेंगे, उनका भार संभालने वाला भी तो चाहिए' सुनकर तत्काल दीक्षा की अनुमति दे दी। लाडनूँ में आपकी दीक्षा हुई। संवत् १९३१ में आप अग्रणी बने। संवत् १९४९ में आप संघ के छठें आचार्य बने। आपकी आकृति सुन्दर व कद लम्बा था। प्रकृति कोमल एवं कंठ मधुर था। स्वभाव से दयालु थे। देशाटन की बहुत रुचि थी। हरियाणा प्रान्त में विहार कर सर्वप्रथम वहाँ तेरापन्थ का बीज वपन किया। संवत् १९५४ के सुजानगढ़

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चातुर्मास में आप अस्वस्थ हो गये। आपको ज्योतिष में बड़ा विश्वास था। आपकी कुण्डली में ६२ वर्ष की आयु का योग था। अतः युवाचार्य का मनोनयन अनेक सन्तों के अनुरोध करने पर भी नहीं किया और स्वर्ग सिधार गये। तेरापंथ के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब भावी आचार्य का मनोनयन न किया गया हो। जिस संघ की समस्त व्यवस्था आचार्य केन्द्रित हो, उसके लिये यह चुनौतीमय अवसर था, जिसका समाधान संघ ने बड़े ही मर्यादित ढंग से निकाला। आप ४३ वर्ष की आयु में वि.सं. १९५४ में स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य डाल गणि (वि.सं. १९५४-१९६६)

आप तेरापंथ धर्म संघ के एक मात्र ऐसे आचार्य हैं जिन्हें यह पद गुरुकृपा से नहीं, अपितु अपने पुरुषार्थ और कृतित्व से मिला।

आपका जन्म वि.सं. १९०९ में उज्जैन के पीपाड़ा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि श्री कानीराम जी के घर हुआ। आपका पूर्व नाम डालचन्द था। छोटी अवस्था में ही आपके पिता का देहान्त हो गया। आपकी माता श्री का मन संसार से विरक्त हो गया। अतः उन्होंने परिजनों की अनुमति से सं. १९२० में दीक्षा ले ली। तब ये ११ वर्ष के थे। इससे इनके मन में भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। सं. १९२३ में आपने भी मुनि हीरालाल जी से दीक्षा ले ली। सं. १९३० में जयाचार्य ने आपको अग्रणी बना दिया।

आप सैद्धान्तिक ज्ञान के पण्डित थे। वक्तृत्व कला एवं तर्क चर्चा में निष्णात थे। मघवागाणि के उदयपुर चातुर्मास में संघ को बड़े उग्र विरोध का सामना करना पड़ा। स्थान स्थान पर चर्चा से क्लेश बढ़ता देखकर उदयपुर के महाराणा को आदेश देना पड़ा कि जहाँ तेरापन्थी आचार्य हों वहाँ स्थानकवासी मुनि न जाँय ताकि शान्ति भंग न हो। आपने कच्छ की तीन यात्राएँ कीं और वहाँ इतना प्रभाव छोड़ा कि लोग इन्हें 'कच्छी पूज्य' कहने लगे। आप पालीताणा पधारे। शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। आपने ध्रांगध्रा में ऋषि सन्त अमरसी से भेंट की। वे मन्त्र, तन्त्र के ज्ञाता थे एवं उस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव रखते थे। उन्होंने आपको आग्रहपूर्वक अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ देनी चाहीं, पर आपने अस्वीकार कर दीं। अमरसी जी आपकी निस्पृहता से प्रभावित हुए।

सं. १९५४ में आचार्य माणकगणि के देहावसान पर भावी आचार्य का मनोनयन न होने से बड़ी विकट स्थिति पैदा हो गयी थी। लाडनूँ में समस्त संघ एकत्रित हुआ। अन्तरिम काल में दीक्षा ज्येष्ठ मुनि भीमसिंह जी का शासन रहा। संघ ने आचार्य चयन का भार संघ हितैषी मुनि कालूजी (बड़े) पर छोड़ा। मुनि कालूजी ने डालगणि को संघ का सप्तम आचार्य घोषित किया। उस समय तक डालगणि कच्छ से लाडनूँ न पहुंचे थे। आपने जोधपुर में यह समाचार सुना। लाडनूँ पधारने पर आपका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। तेरापंथ धर्म संघ मे यह घटना निराली थी।

आपका अनुशासन बहुत कड़ा था। सं. १९५९ में आपका स्थानकवासी आचार्य जवाहरलाल जी से दो दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। आपके आचार्य काल में आचार्यों की महिमा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

व गरिमा जितनी बढ़ी, उतनी पहले कभी नहीं थी। आपके अल्पकालीन शासन में १६२ दीक्षाएँ हुईं। संवत् १९६४ से आपका स्वास्थ्य गिरने लगा। संवत् १९६६ तक आपका लाडनूँ में स्थिरवास रहा। इस दरम्यान भयंकर रुग्णावस्था मे भी आप व्याख्यान अवश्य देते एवं सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते थे। १९६६ में लाडनूँ में ही आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य कालू गणि (वि.सं. १९६६-१९९३)

तेरापंथ धर्म संघ के आठवें आचार्य कालूराम जी स्वामी बड़े तेजस्वी एवं प्रभावक थे। आपका जन्म वि.सं. १९३३ में छापर (थली) के ओसवाल वंश के कोठारी गोत्रीय सेठ मूलचन्द जी के घर हुआ। आपकी माता छोगाजी धर्मनिष्ठ महिला थीं। आपकी जन्म कुण्डली देखकर आपके योगीराज होने की भविष्यवाणियाँ हुई। आपका जन्म नाम शोभा चन्द था किन्तु काला भैरू का ईष्ट होने एवं आपका वर्ण श्याम होने से आपका नाम कालू प्रचलित हो गया। मात्र ३ माह की आयु में आपके पिता का देहान्त हो गया। छोगा जी अपने पीहर डूंगरगढ रहने लगी। माँ की प्रगाढ़ ममता के कारण आप कभी स्कूल नहीं गये।

सं. १९४१ में छोगा जी में वैराग्य भाव उदय हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में अपनी माता जी के साथ आप आचार्य मघवागणि से दीक्षित हुए। संस्कृत एवं आगमों का अध्ययन किया। मगनमुनि आपके अभिन्न सखा थे। माणकगणि के देहावसान पर नये आचार्य के चयन के समय भी डालगणि के विकल्प स्वरूप कालूजी का ही नाम उभरा था। डालगणि के देहावसान पर वि.सं. १९६६ में वे आचार्य पद पर आसीन हुए।

उनके शासन काल में तेरापन्थ की अभूतपूर्व प्रगति हुई। साधना, शिक्षा, साहित्य आदि क्षेत्रों में संघ ने कीर्तिमान स्थापित किये। आपके शासन में अनेक विशिष्ट दीक्षाएँ हुईं। संस्कृत व्याकरण के समुचित अध्ययन में पं. रघुनन्दन शर्मा का सहयोग बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ। अनेक मौलिक संस्कृत ग्रन्थों की रचना हुई। 'भिक्षु शब्दानुशासन' एवं 'कालू कौमुदी' सरीखे व्याकरण ग्रन्थों का सृजन हुआ। वि.सं. १९७९ में आपने बीकानेर में चातुर्मास किया। वहाँ तीव्रतम विरोध का सामना करना पड़ा। मगन मुनि की पीठ पर विद्वेषियों ने कोड़ा मारा। वातावरण विषाक्त हो गया। युवराज शार्दूलसिंह जी के प्रयत्न के बावजूद पारस्परिक वैमनस्य न मिटा। जब महाराज गंगासिंह विलायत से आये तो उन्होंने आज्ञा जारी कर समग्र विरोधी सामग्री जब्त कर ली। कतिपय व्यक्तियों को बीकानेर से निष्कासित भी किया। तब कहीं जाकर विरोध की आंच मन्द पड़ी।

इसी तरह संवत् १९९२ की मालवा यात्रा में विरोध का सामना करना पड़ा। भ्रान्तियों का स्पष्ट निराकरण कर आपने विरोध शान्त किया। भिवाणी चातुर्मास के समय दीक्षा-विरोध हुआ, परन्तु वे भी निर्विघ्न सम्पन्न हुईं। इस तरह जोधपुर में सं. १९९१ में जब २२ दीक्षाएँ एक साथ हुईं, तब भी जबरदस्त विरोध हुआ। अनेक प्रान्तों में नाबालिक-दीक्षा विरोधी कानून बने। परन्तु संघ की परम्परा अक्षुण्ण रही।

सं. १९७३ में विदेश यात्रा को लेकर समाज में 'श्रीसंघ' विलायती विवाद उठा। समाज दो धड़ों में बँट गया। आपस में खान, पान, शादी विवाह बन्द हो गया। गाली-गलौज होने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लगा। परन्तु आपने किसी का पक्ष न लेकर धर्मसंघ की एकरूपता बनाए रखी। सं. १९८४ में स्थानकवासी आचार्य जवाहरलाल जी थली पधारे तो शास्त्रार्थ हुआ।

आपके शासन में सिलाई, रंगाई व रजोहरण की कला का बहुत विकास हुआ। खानदेश, बरार, बम्बई, हैदराबाद आदि सुदूर प्रदेशों में साधुओं को भेज कर तेरापन्थ का क्षेत्र व्यापक बनाने का श्रेय आपको ही है। आपके शासन काल में ही कलकत्ता की तेरापन्थी महासभा की स्थापना हुई।

सं. १९९३ में आप अस्वस्थ हो गये। चातुर्मास गंगापुर हुआ। परन्तु डाक्टरी उपचार के बावजूद रोग उपशान्त नहीं हुआ। मगन मुनि की भावी आचार्य संबंधी जिज्ञासा शान्त करते हुए आपने संघ के इतिहास में प्रथम बार खुले रूप में अपने उत्तराधिकारी की घोषणा की एवं तुलसीराम जी को युवाचार्य मनोनीत किया। उन्हें सजगता का मूलमन्त्र दिया। गंगापुर में ही आपका देहावसान हुआ। आपके शासनकाल में कुल ४१० दीक्षाएँ हुईं। कुल ६३ संत-सती संघ से बाहर हुए। आपके शासन काल में अनेक विशिष्ट तत्त्वज्ञ, तपस्वी, सेवा परायण एवं प्रभावक साधु-सती एवं श्रावक-श्राविका हुए, जिनसे संघ की श्रीवृद्धि हुई। वि.सं. १९७० में डा. हरमन जैकोबी जैसे प्राच्य विद्या विशेषज्ञ की प्रशस्ति अर्जित कर आपने तेरापन्थ धर्म संघ का मान बढ़ाया। इटालियन विद्वान् डा. एल.पी. टेसीटोरी, प्रो. गेल्सी आदि विद्वानों ने आपके दर्शन कर आध्यात्मिक आह्लाद प्राप्त किया।

आचार्य तुलसी गणि (वि.सं. १९९३)

तेरापन्थ के नवम आचार्य तुलसीगणि ने अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात कर भारत व्यापीख्याति अर्जित की है। आपका जन्म वि.सं. १९७१ में लाडनूँ के ओसवाल बंश के खटेड़ गोत्रीय सेठ श्री झूमरमल जी के घर में हुआ। पिता का साया अल्प वय में ही उठ गया। आपकी माता बदना जी बड़ी धर्मपरायण थीं। वि.सं. १९८२ में आप भगिनी लाडां जी के साथ आचार्य कालूगणि के पास दीक्षित हुए। इनके ज्येष्ठ भ्राता चम्पालाल जी पहले ही दीक्षित हो चुके थे। माता बदना जी बाद में दीक्षित हुईं। कालूगणि के निजी संरक्षण में शिक्षा प्रारम्भ हुई। ग्यारहवें वर्ष में आपने बीस हजार पद्य प्रमाण श्लोक कंठस्थ कर अपनी मेधा से सबको चमत्कृत कर दिया। शुरू से ही कालूगणि ने संघ का दायित्व संभालने के लिये उन्हें तैयार करना प्रारम्भ कर दिया था।

तुलसी गणि ने २२ वर्ष की आयु में (वि.सं. १९९३) में आचार्य पदारूढ़ हो तेरापंथ धर्म संघ का शासन भार संभाला। साध्वियों की शिक्षा का नया कीर्तिमान आपके शासन काल की उपलब्धि है। इस दौरान पं. रघुनन्दन जी की उल्लेखनीय सेवाएँ संघ को उपलब्ध रहीं। आचार्यश्री कवि, साहित्यकार एवं चतुर शासन संचालक हैं। आपने स्वयं न्याय एवं योग विषयक मौलिक रचनाएँ की हैं तथा आपके नेतृत्व में श्रमण संघ ने विपुल साहित्य सृजन किया है। आपके सान्निध्य में महाप्रज्ञ मुनि नथमल जी ने आगम ग्रन्थों का सम्पादन कर जैन धर्म की महती सेवा की है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वि.सं. २००५ में आपने अणुव्रत अभियान प्रारम्भ किया, जिसकी भारत के राजनेताओं ने भूरि भूरि प्रशंसा की। आपके शासन काल में श्रमण संघ का विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। आप श्रमण-श्रमणियों की अब तक ७७६ दीक्षाएँ सम्पन्न कर चुके हैं। किसी भी जैनाचार्य ने सम्भवतः इतनी दीक्षाएँ नहीं दीं। यह एक कीर्तिमान है।

आचार्य तुलसी ने भारतव्यापी पद यात्रा की। सुदूर दक्षिण के कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल प्रदेशों में आचार्य के पाद विहार एवं एक लाख किलोमीटर की यात्रा का संघ में प्रथम अवसर था। साधु, साध्वियों के असम, सिक्किम, गोवा, कश्मीर, पांडिचेरी एवं विदेशों—नेपाल, भूटान विचरण का भी यह प्रथम अवसर था। सं. २०१७ में 'नई मोड़' का आह्वान कर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पर्दा प्रथा, मृत्यु भोज, रूढ़िरूप में मृतक के पीछे रोना, विधवाओं का काले वस्त्र पहनना आदि कुरीतियों के उन्मूलन में आप प्रेरणा स्रोत बने। सं. २०२८ में बीदासर में आपको संघ द्वारा 'युग प्रधान' आचार्य के रूप में सम्मानित किया गया। सं. २०३५ में आपने मुनि नथमल जी को युवाचार्य घोषित किया एवं 'महाप्रज्ञ' की पदवी से अलंकृत किया। लाडनूँ में जैन विश्व भारती एवं तुलसी आध्यात्म नीड़म की स्थापना समाज को युगों तक अध्यात्म पोषण देती रहेगी। प्रेक्षा ध्यान की अभिनव शुरुआत से साधना क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई है। लाडनूँ में सं. २०३७ में 'समणी दीक्षा' के क्रान्तिकारी कदम से धर्म के विकास को नई दिशा और विदेशों में धर्म प्रचार के नये आयाम मिले हैं। आपके शासन के ५० वर्ष पूरे होने पर लाडनूँ में अमृत महोत्सव का अपूर्व कार्यक्रम हुआ।

आपके शासन काल मे तपस्या के भी अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए। साध्वी राजकुमारी जी (नोहर) ने १४ वर्षों का मौन व्रत, मुनि वृद्धिचन्द जी ने गुणरत्न संवत्सर, मुनि सुखलाल जी ने भद्रोत्तर तप, एवं साध्वी भूरा जी ने महा भद्रोत्तर तप किये। मुनि सुखलाल जी ने ६ महीने का रोमांचकारी जल परिहार तप किया। श्राविका कला देवी ने १२१ दिन की तपस्या की एवं मनोहरी देवी आंचलिया ने ३० बार महीने महीने की तपस्या की। संतों में चित्रकला, शिल्पकला, रंग-रोगन, सिलाई आदि का विकास हुआ। सूक्ष्म लिपि लेखन के कीर्तिमान स्थापित हुए। साहित्य सुरक्षा हेतु पेटियों एवं चश्में, लेंस, जलघड़ी आदि आवश्यक वस्तुओं का निर्माण हुआ। आपके संरक्षण में साधु साध्वी शतावधानी एवं सहस्रावधानी हुए। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी, तमिल, कन्नड़, बंगला आदि भाषाओं के प्रवक्ता, अध्येता एवं कवि हुए। आगमों का सम्पादन एवं समीक्षाएँ हुईं। आचार्य भिक्षु एवं जयाचार्य के साहित्य का सम्पादन प्रकाशन हुआ। मुमुक्षु बहनों के स्वाध्यायार्थ सं. २००५ में पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्थापना हुई। संवत् २०५२ की समग्र जैन श्रमण सूचि के अनुसार आपके अनुशासन में १४६ संत एवं ५४५ सती साधनारत हैं।

आपके शासन काल में अंतरंग एवं बाह्य विरोध भी कम नहीं हुए। सं. २०१२ में मुनि रंग लाल जी प्रभृति १५ संत, २०३०-३२ में मुनि नगराज जी, मुनि महेन्द्र कुमार जी प्रभृति संत, सं. २०३८ में मुनि धनराज जी, मुनि चन्दनमल जी, मुनि रूपचन्द जी प्रभृति संत संघ से अलग हुए। सं. २००६ में जयपुर में बाल दीक्षा विरोध २०१६ में कलकत्ता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में मलमूत्र प्रकरण एवं सं. २०२७ में रायपुर एवं सं. २०२९ में चुरू में अग्निपरीक्षा को लेकर विरोध हुआ।

इनके बावजूद आपका शासन काल सफलताओं की एक लम्बी सूचि संजोए है। धर्म संघ ने आपको युगप्रधान पद से विभूषित तो किया ही, राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर ने आपको 'भारत ज्योति' अलंकरण से सम्मानित किया। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'लिविंग विद् परपज' में विश्व की १४ महान् विभूतियों में आपको ही एकमात्र विद्यमान विभूति माना है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रभावी संत

भगवान् पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा श्वेताम्बर होते हुए भी भगवान् महावीर के श्रमण संघ में अचेल (निर्वस्त्र) एवं सचेल—दोनों साधना पद्धतियाँ प्रचलित थीं। महावीर के निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् उत्तर भारत में भयंकर बारह वर्षीय दुर्भिक्ष की आशंका से भगवान् के १३ वें पट्टधर आचार्य भद्रबाहु ने जब दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, तब जिन संघ छिन्न भिन्न हो गया। दुर्भिक्षोपरान्त धीरे-धीरे श्रमण संघ फिर एकत्रित हुआ। तब तक दिगम्बर श्रमण परम्परा का उत्तर भारत से सर्वथा लोप हो चुका था। श्वेताम्बर परम्परा ने सचेल साधना पद्धति को ही मान्यता दी।

उत्तर भारत के उपलब्ध अभिलेखों में दिगम्बर संघ या परम्परा का विक्रम की ११वीं शताब्दी से पूर्व कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस परम्परा के मूल संघ, द्राविड़ संघ, माथुर संघ आदि की स्थापना दक्षिण भारत मे ही हुई। वहीं से यह परम्परा ११वीं शताब्दी के आस पास उत्तर भारत मे आई।

क्षत्रियों से उत्पन्न अन्य जातियों में माहेश्वरी, अग्रवाल, खण्डेलवाल, (सरावगी) बघेरवाल आदि प्रमुख हैं। विक्रम की १२वीं से १७वीं शताब्दी के बीच अनेक व्यवसायिक जातियों ने जैन धर्म अंगीकार किया। जहाँ ओसवाल जाति ने श्वेताम्बर मान्यता स्वीकार की, वहां अग्रवाल, सरावगी आदि जातियाँ दिगम्बर मतानुयायी हो गयीं। फिर भी यदा कदा अनेक श्रीमाल, ओसवाल गोत्रों एवं परिवारों ने दिगम्बर धर्म एवँ साधना पद्धति अंगीकार की। दिगम्बर परम्परा में भी प्रभावी श्रीमाल ओसवाल संत हुए हैं। ऐसे ही एक क्रान्ति द्रष्टा संत थे श्री कानजी स्वामी।

श्री कानजी स्वामी

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का जन्म सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में संवत् १९४७ में ओसवाल जातीय श्रीमाल (दसा) गोत्रीय श्री मोतीचन्द भाई के घर हुआ। उनका परिवार श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी सम्प्रदाय का अनुयायी था। कानजी को १२ वर्ष की अल्प वय में मातुश्री का वियोग हुआ एवं १६ वर्ष की वय में पिताश्री चल बसे। तब से वे पैतृक दुकान संभालने लगे। उन्हें नाटक देखने का बहुत शौक था। आध्यात्मिक नाटकों के वैराग्यपरक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दृष्यों की गहरी छाप इस महान् आत्मा के वैराग्य का निमित्त बनी। उनका उदासीन जीवन एवं सरल अन्तःकरण देखकर उनके सगे-सम्बन्धी उन्हें भगत कहते थे।

संवत् १९७० में श्री हीराचन्द जी महाराज से कानजी स्वामी ने उमराला में दीक्षा ग्रहण की। चन्द वर्षों में ही अगम आगम अभ्यास कर डाला एवं स्थानकवासी सम्प्रदाय में सर्वत्र उनकी चारित्रिक सुवास फैल गई। वे साधु रूप में 'काठियावाड़ के कोहिनूर' कहलाने लगे। संवत् १९७८ में श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत 'समयसार' के दोहन से कानजी स्वामी के अन्तर्जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। वे वस्तु स्वभाव एवं निर्ग्रन्थ मार्ग के हामी हो गये, क्रियाकाण्ड एवं बाह्य व्रत नियम उनके लिये साधना की अपरिपक्वता के द्योतक बन गये। वेश एवं आचरण की इस विषम स्थिति से पार पाने हेतु उन्होंने संवत् १९९२ में सोनगढ़ में स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्याग कर दिया। फलतः निन्दा की झड़ी लग गई। स्थानकवासी समाज मे खलबली मच गई। किन्तु वे काठियावाड़ी जैन समाज के हृदय में बसे हुए थे। साम्प्रदायिक व्यामोह एवं लौकिक भय छोड़कर सत्संगार्थी जनों का प्रवाह सोनगढ़ की ओर बढ़ता गया।

कहते हैं संवत् १९९४ में साधिका चम्पा बेन को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। संवत् १९९५ में गुरुदेव के प्रवचन एवं निवास हेतु भक्तों ने सोनगढ़ में एक नवीन 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण करवाया एवं गुरुदेव ने 'समयसार' परमागम की मंगल प्रतिष्ठा करवाई। संवत् १९९५ में २०० मुमुक्षुओं के संघ सहित गुरुदेव ने सिद्ध क्षेत्र शत्रुञ्जय तीर्थ की पावन यात्रा की। राजकोट चातुर्मास के पश्चात् गिरिराज गिरनार तीर्थ की यात्रा सम्पन्न कर गुरुदेव संवत् १९९७ में सोनगढ़ लौटे। आपकी ही प्रेरणा से वहाँ सीमंधर भगवान के मन्दिर एवं समवशरण मन्दिर की स्थापना हुई। प्रतिष्ठा महोत्सव संवत् १९९९ में सम्पन्न हुआ। सौराष्ट्र में दिगम्बर धर्म का नवसर्जन उन्हीं ने किया। इसी बीच विद्यार्थियों एवं गृहस्थों के लिये शिक्षण शिविर आयोजित हुए। संवत् २००० से 'आत्मधर्म' नामक गुजराती मासिक पत्र का प्रकाशन शुरु हुआ। सोनगढ़ आध्यात्म तीर्थ धाम बन गया। संवत् २००२ में इन्दौर के सर सेठ हुकुम चन्द आपकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर गुरुदेव के दर्शन हेतु सोनगढ़ आये एवं यहाँ आध्यात्म रसयुक्त वातावरण देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। संवत् २००३ में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद का वार्षिक अधिवेशन सोनगढ़ में हुआ।

गुरुदेव ने विशाल मुमुक्षु संघ सहित संवत् २०१३ से सं. २०२० के बीच पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारत के सकल जैन तीर्थों की यात्रा की। अनेक स्थानों पर मुमुक्षु मण्डलों की स्थापना हुई। नैरोबी में गुरुदेव के प्रयास से सनातन सत्य जैनधर्म का प्रचार हुआ। आत्म साक्षात्कार की झलक सम्प्रेषित करते हुए कानजी स्वामी ने उद्घोषणा की—'बिना स्वानुभूति के सम्यग्दर्शन का प्रारम्भ ही नहीं होता'। रूढ़िग्रस्त सम्प्रदायवाद स्वामी जी की इस चुनौती का उत्तर न दे सका। अन्तिम क्षणों तक स्वानुभव-समृद्ध ज्ञान पीयूष जन-जन में वितरित करते हुए सं. २०३७ (सन् १९८०) में इस क्रान्तिद्रष्टा संत ने महा प्रयाण किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

दशम

प्राचीन तीर्थ एवं ओसवाल

तीर्थों एवं मन्दिरों का निर्माण

पार्श्वनाथ सन्तानीय आचार्य रत्नप्रभ सूरि द्वारा वि० सं० से ४०० वर्ष पूर्व क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाना एक अभूतपूर्व सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात था। अपने परम्परागत क्षत्रिय कर्म को खेती एवं व्यवसाय कर्म से जोड़ कर यह महाजन समुदाय राजनैतिक प्रभुत्व एवं आर्थिक सम्पन्नता में सदैव अग्रणी रहा। जैन धर्म की प्रभावना के लिए ओसवाल श्रेष्ठि सदैव तत्पर रहे। तीर्थों एवं मन्दिरों के निर्माण में उनका अभूतपूर्व योगदान रहा। ओसवाल जाति के इस ऐतिहासिक अवदान को रेखांकित किये बिना ओसवाल जनों की मनोभूमिका को नहीं जाना जा सकता। ओसिया तीर्थ के शिलालेख जड़ित महावीर मन्दिर की विशद चर्चा द्वितीय अध्याय में हो चुकी है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तक्षशिला तीर्थ

सिंधु नदी एवं काबुल के बीच का भू-भाग किसी समय गांधार देश के नाम से प्रख्यात था। महाभारत, बौद्ध तथा जैन शास्त्रों में इस प्रदेश का विशेष उल्लेख मिलता है। कनिष्क का साम्राज्य गांधार देश तक विस्तृत था। प्राचीन समय में प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबलि का राज्य इसी जनपद में था। तक्षशिला उसकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ने कई बार इस प्रदेश में विहार किया। बाहुबलि ने उस उद्यान में, जहाँ भगवान् ऋषभ कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानारूढ़ रहे, प्रभु के चरणबिम्ब प्रतिष्ठित करवाये। आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र' एवं आचार्य जिनप्रभ सूरि कृत 'विविधतीर्थकल्प' से इसकी पुष्टि होती है। तक्षशिला के राज्य के लिए भरत और बाहुबलि में घनघोर युद्ध हुआ था। अन्ततः बाहुबलि विजयी हुए। किन्तु उन्होंने परिग्रह त्याग कर राज्य भरत को सौंप दिया एवं स्वयं प्रव्रज्या ले ली।

जैन धर्म प्रभावक सम्राट् सम्प्रति ने अपने अन्ध पिता कुणाल (सम्राट् अशोक के पुत्र) के लिए तक्षशिला में महल एवं धर्मोपासना के लिए एक जैन स्तूप का निर्माण करवाया।

'मानदेव सूरि प्रबन्ध' के अनुसार कभी इस क्षेत्र में ५०० जैन मन्दिर थे। वि० सं० २८० में वहाँ एक महामारी फैली, तब वीरदत्त श्रावक जैन संघ की प्रार्थना पर आचार्य मान देव सूरि के पास नाड़लाई गया और संघ पर आयी विपत्ति दूर करने की प्रार्थना की। आचार्यजी ने तब 'लघु शांति स्तोत्र' बनाया। उनके बनाये लघु शांति स्तोत्र के जाप से महामारी का उपद्रव शान्त हुआ। कुछ समय पश्चात् ही तुरुष्कों नें इस नगर का विध्वंस कर दिया।

श्री धनेश्वर सूरि कृत 'शत्रुञ्जय महात्म्य' के अनुसार तक्षशिला के महाजन श्रेष्ठि भावड़ शाह के पुत्र जावड़ शाह ने वि० सं० १८७ में शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार किया एवं तक्षशिला से भगवान ऋषभ की मूर्ति ले जाकर वहाँ प्रस्थापित की।

वर्तमान में पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद (रावलपिंडी के निकट) से उत्तर दिशा में २० मील दूर तक्षशिला नगर के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। विक्रम संवत् १९८० में इस स्थान के उत्खनन से पूर्व इस क्षेत्र की जनता इसे 'शाह की ढ़ेरी' नाम से पहचानती थी। 'शाह' प्राचीन काल से ओसवालों की परम्परागत पदवी रही है एवं गुजरात के ओसवालों में शाह नाम का गोत्र भी है।

शत्रुञ्जय तीर्थ

गुजरात (सौराष्ट्र) स्थित पालीताना (पादलिप्तपुर) क्षेत्र का शत्रुञ्जय तीर्थ जैनों के प्राचीनतम तीर्थों में से एक है। सुप्रसिद्ध जैन गुरु पादलिप्त सूरि की पुण्य स्मृति में उनके शिष्य नागार्जुन ने अनुमानतः द्वितीय या तृतीय सदी में इस नगर की स्थापना की। अनेक जैनाचार्यों, कवियों एवं इतिहासकारों ने इसके वैभव एवं माहात्म्य से प्रेरित होकर रास एवं काव्य रचे। ओसवाल जाति के उद्भव काल से ही यह तीर्थ धर्मानुरागी ओसवाल श्रेष्ठियों को

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आकर्षित करता रहा। शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए संघ समायोजन धर्म प्रेम के साथ ही प्रतिष्ठा का भी सूचक था। ओसवालों के अनेक गोत्रों में संघ समायोजक श्रेष्ठि हुए, जिन्हें समाज ने संघवी की उपाधि से विभूषित किया। बाद में उन्हीं के वंशजों का उपगोत्र 'संघवी' हो गया।

सर्व प्रथम संवत् ४७७ (चार सत्योतरे) में आचार्य धनेश्वर सूरि ने महाराजा शिलादित्य के समय 'शत्रुञ्जय माहात्म्य' का बखान किया। जैनों के २३ तीर्थंकरों (सिवाय नेमिनाथ) ने इस तीर्थ पर 'समवशरण' (धर्मोपदेश स्थल) कर इसे वैशिष्ट्य प्रदान किया। पुंडरिक, सिद्ध क्षेत्र तीर्थराज, मुक्ति निलय, सुरगिरि आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध इस तीर्थ का विस्तार ८० योजन एवं मूल पर्वत की ऊँचाई २६ योजन बताई जाती है। सं० १६८२ में समय सुन्दर उपाध्याय रचित 'शत्रुञ्जय रास' के अनुसार इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने यहाँ प्रथम समवशरण किया। चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने संघ समायोजन किया। वे प्रथम संघपति कहलाये। उन्होंने भगवान् का देहरा निर्मित करवाया, उस पर स्वर्ण कलश चढ़ाया एवं रत्न जड़ित प्रतिमा स्थापित की। तीर्थ पर ब्राह्मी एवं सुन्दरी प्रसाद निर्मित करवाये। यह तीर्थ का प्रथम उद्धार था। भरत के ज्येष्ठ पुत्र पुंडरीक इस क्षेत्र में प्रथम सिद्ध हुए।

चक्रवर्ती सम्राट् भरत के आठवें पट्टधर दंडवीर्य ने तीर्थ का दूसरा उद्धार किया। संघ समायोजन कर वे संघवी पद से विभूषित हुए। उन्होंने स्वर्ण बिम्ब प्रतिष्ठित किया। सौ सागरोपम कालान्तर से राजा ईशानेन्द्र ने शत्रुञ्जय का तीसरा उद्धार किया। देवोपम माहेन्द्र नायक इसके चौथे और ब्रह्मेन्द्र पाँचवें उद्धारकर्ता थे। तीर्थ का छठा उद्धार भवन पति इन्द्र, सातवां उद्धार चक्रवर्ती सागर, आठवाँ उद्धार व्यन्तरेन्द्र और नौवाँ उद्धार मल्हार राजा चन्द्रशेखर ने किया, जो चन्दप्रभ स्वामी के पौत्र थे। भगवान शान्तिनाथ की प्रेरणा से चक्रधर राव ने शत्रुञ्जय का दसवाँ उद्धार किया। रास के अनुसार दशरथ नन्दन श्रीरामने मुनि सुव्रत जी के प्रेरणा से तीर्थ का ग्यारहवाँ उद्धार किया। पाँचों पांडवों ने संघ समायोजन कर शत्रुञ्जय का बारहवां उद्धार किया।

उपाध्याय समय सुन्दर ने तीर्थ का तेरहवाँ उद्धारकर्त्ता पोरवाल श्रेष्ठि जावड़ शाह को माना है। उनके अनुसार—'आठोत्तर सो (सं० १०८) बरसां गया विक्रम नृप थी जी वरोजी पोरवाड़ जावड़ करावियो ए तेरमों उद्धारो जी।' प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ श्री भँवर लाल जी नाहटा के अनुसार जावड़ का उद्धार सं० १०८ में वज्रस्वामी के उपदेश से हुआ और वह मधुमती (महुआ) निवासी था। अन्य इतिहासकारों के अनुसार तक्षशिला के महाजन श्रेष्ठि भावड़ शाह के पुत्र जावड़ शाह ने विक्रम सं० १८७ में शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार किया एवं तक्षशिला से भगवान् ऋषभ की मूर्ति ले जाकर वहाँ प्रस्थापित की।

कालान्तर में मुस्लिम आक्रान्ताओं ने तीर्थ को बहुत क्षति पहुँचायी। आचार्य जिनप्रभ सूरि द्वारा वि० सं० १३६४ से १३८९ के बीच रचित 'विविध तीर्थ कल्प' के अनुसार वि० सं० १२२० में चालुक्य राज कुमारपाल के दंडनायक/मंत्रीश्वर वाग्भट्ट ने ३ करोड ३ लाख स्वर्ण मुद्राएँ व्यय कर शत्रुञ्जय तीर्थ के आदीश्वर प्रसाद का चौदहवाँ उद्धार किया। वाग्भट्ट,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रीमाल श्रेष्ठि उदयन का पुत्र था। उपाध्याय समय सुन्दर रचित 'शत्रुञ्जय रास' के अनुसार तीर्थ का १४वाँ उद्धार वि० सं० १२७३ (वार तेहोत्तरे) में श्रीमाल श्रेष्ठि बाहड़दे मुंहते (मूथा) ने किया, जो सम्राट् कुमारपाल के मन्त्री श्रेष्ठि उदयन का पुत्र था। वि० सं० १३६९ में मुस्लिम सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने तीर्थ को तहस नहस कर दिया। उस समय पाटण में ओसवाल वेद मुहता गोत्रीय श्रेष्ठि देशल शाह विद्यमान थे। उन्होंने अपने पुत्र दानवीर समरा शाह से तीर्थ का पुनरुद्धार करने की प्रतिज्ञा करवाई। गुजरात के तत्कालीन शासक अलपखान श्रेष्ठि समरा शाह का बहुत सम्मान करते थे। सं० १३७१ में शाही फरमान प्राप्त कर समराशाह ने लाखों रुपये खर्च कर असराण की खान से संगमरमर पत्थर मँगवाकर बिम्ब निर्मित करवाये। एक रथ के आकार का भव्य मन्दिर बनवा कर बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी। इस अवसर पर हुए महोत्सव में समस्त श्रीसंघ निमन्त्रित था। यह तीर्थ का १५वाँ उद्धार था।

तीर्थ का सोलहवाँ उद्धार 'रास' के अनुसार सं० १५८७ में कर्माशाह दोशी ने किया। कर्मा शाह चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध 'डोसी' गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि थे। शत्रुञ्जय तीर्थ के मुख्य मन्दिर के द्वार पर उत्कीर्णित शिलालेख के अनुसार ग्वालियर के 'आम' राजा ने आचार्य बप्पभट्ट सूरि से जैन धर्म अंगीकार किया। उनकी एक रानी वणिक पुत्री थी, जिसके पुत्रों को ओसवाल कुल में शामिल कर आचार्य ने उनका राजकोष्ठागार गोत्र निर्धारित किया। कालान्तर में इस कुल में सारण देव हुए, जिनकी ९वीं पीढ़ी में श्रेष्ठि तोला शाह हुए। उनके पुत्र कर्मा शाह का सुल्तान बहादुर शाह के दरवार में बहुत सम्मान था। उससे फरमान प्राप्त कर कर्मा शाह ने तीर्थ का पुनरुद्धार किया।

संवत् १६४९ में खम्भात के ओसवाल श्रेष्टि शाह तेजपाल सोनी ने तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया। श्रेष्ठि आभू की छठीं पीढ़ी में तेजपाल हुए। आचार्य हीर विजय जी की प्रेरणा से उन्होंने सं० १६४६ में सुपार्श्वनाथ चैत्य का निर्माण करवाया। इन्होंने अतुल धन राशि खर्च कर शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया। वहाँ एक भव्य नन्दिवर्धन मन्दिर का निर्माण करवा कर आचार्य हीर विजयजी के कर कमलों से बिम्ब-प्रतिष्ठा करवायी। इस आशय का एक शिलालेख मन्दिर के रंग मंडप में लगा हुआ है। प्रतिष्ठा समारोह में सुदूर प्रदेशों के ७२ संघ शामिल हुए।

पाश्चात्य इतिहासकार जेम्स बरजेस ('दी टेम्पल्स ऑफ शत्रुञ्जय'—प्रकाशन सन् १८६९) के अनुसार आचार्य हीर विजयजी ने सं० १६३९ में फतहपुर सीकरी पधार कर मुगल बादशाह अकबर को प्रतिबोध दिया था। शत्रुञ्जय तीर्थ पर उत्कीर्णित एक शिलालेख में बादशाह अकबर पर हीर विजयजी के प्रभाव एवं शत्रुञ्जय पहाड़ आचार्य हीर विजयजी को दिये जाने का उल्लेख है। बादशाह शाहजहाँ के काल में गुजरात के गवर्नर मुरादबख्श द्वारा शत्रुञ्जय की पहाड़ी अहमदाबाद के प्रसिद्ध ओसवाल श्रेष्ठि शान्तिदास जौहरी को दे दी गयी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् १६७५ में जाम नगर के लालन गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठ मन्त्रीश्वर वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह ने लाखों रुपए खर्च कर शत्रुञ्जय तीर्थ पर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया एवं तीर्थंकरों की २०४ प्रतिमाएँ स्थापित करवायी। विमल वसहि क्षेत्र में एक लेख उत्कीर्णित है जिसके अनुसार संवत् १६७५ का संघ समायोजन पद्मसिंह शाह के तीन पुत्रों ने किया था। सं० १६७६ में अंचल गच्छीय आचार्य कल्याण सागर जी के नायकत्त्व में पद्मसिंह शाह ने एक और संघ शत्रुञ्जय के लिए निकाला तथा अनेक बिम्ब प्रतिष्ठाएँ करवायी।

संवत् १६८२ में जैसलमेर के भंसाली गोत्रीय सुप्रसिद्ध ओसवाल श्रेष्ठि थाहरू शाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ पर तीर्थंकरों एवं गणधरों के १४५२ चरण युगल आचार्य जिन राज सूरि के कर कमलों से स्थापित करवाये। इस आशय का एक लेख खरतरवसहि टोंक पर स्थित मन्दिर में उत्कीर्णित है।

ऐसे ही अनेक शिलालेख शत्रुञ्जय तीर्थ के भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्कीर्णित हैं, जिनसे ओसवाल श्रेष्ठियों द्वारा समय -समय पर की गयी बिम्ब प्रतिष्ठा एवं धर्म प्रभावना में उनका अनुदान परिलक्षित है। मुनि जिन विजय जी ने अपने 'जैन लेख संग्रह' में ऐसे अनेक लेख उद्धरित किये हैं। इनमें मुख्य है संवत् १७१० का आगरा निवासी कुहाड़ गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि शाह मानसिंह आदि का लेख, संवत् १७९१ का भण्डारी रत्नसिंह का लेख, संवत् १७९४ का भण्डरी हरकचन्द का लेख, सं० १८८५ का बालूचर निवासी दूगड़ गोत्रीय शाह किशनचन्द का लेख, संवत् १८८६ का राजनगर के सेठ नगीनदास की पत्नी का लेख, संवत् १८८७ का अजमेर के साह गजमल लूणिया का लेख एवं संवत् १९०५ का नागड़ा गोत्रीय सेठ हिरजी का लेख। ये लेख शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा का बखान तो करते ही हैं, ओसवाल श्रेष्ठियों के धर्मानुराग के भी सूचक हैं।

संवत् १८०७ में पालीताना के आंचलिक ठाकुर ने तीर्थ यात्रा पर आने वाले धर्मानुरागी भक्तों पर कर लगा दिया। संवत् १८४५ में इस कर की राशि और बढ़ा दी गयी। संवत् १८६३ में यह क्षेत्र ब्रिटिश सरकार के शासन में शामिल कर लिया गया।

ओसवाल श्रेष्ठि मोतीचन्द नाहटा एवं जौहरी शान्तिदास के वंशज हेमा भाई ने संवत् १८७७ में सरकार से यात्री कर हटा देने की अपील की। तदनुसार संवत् १८७८ में ब्रिटिश सरकार ने शत्रुञ्जय पहाड़ी एवं उस क्षेत्र की व्यवस्था का भार श्री आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी को सौंप दिया

खम्भात के मन्दिर

खम्भात को गुजरात में जलमार्ग के सिंहद्वार के रूप में जाना जाता है। खम्भात (स्तम्भन पुर) के पार्श्वनाथ मंदिर की चमत्कारी पार्श्वनाथ प्रतिमा की महिमा एवं इस प्राचीन तीर्थ का महात्म्य आचार्य जिनभद्र सूरि ने 'विविध तीर्थकल्प' में आलोकित किया है। यह वही प्रतिमा है जिसने रघुपुंगव श्री रामचन्द्र द्वारा पूजित होकर द्वारिका दाह के समय जल समाधि ले ली।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तक्षक नागेन्द्र द्वारा हजारों वर्ष समुद्र में पूजी जाकर धनेश्वर सार्थवाह द्वारा पुनर्स्थापित हुई एवं योगीन्द्र नागार्जुन द्वारा लायी जाकर यहाँ स्तम्भित हो गयी। इस पावन प्रतिमा के प्रताप से ही संवत् ११११ में महा व्याधि से अशक्त नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव सूरि पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त हुए।

राजा कुमारपाल के समय श्रीमाल श्रेष्ठि मंत्री उदयन ने यहाँ 'उदयनवसहि' नामक मन्दिर का निर्माण कराया था। ओसवाल श्रेष्ठि तेजपाल सोनी, संघवी उदय करण एवं कुँवरजी गांधी द्वारा मन्दिर बनवाने के उल्लेख भी हैं। संवत् १२७७ में दण्ड नायक वस्तुपाल ने यहाँ अनेक ताड़पत्रीय ग्रंथ लिखवाये। जगत् गुरु हीर विजय जी सोम सुन्दर सूरि एवं विजय सेन सूरि ने यहाँ अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठा करवायी तथा महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की।

पार्श्वनाथ भगवान् के इस प्राचीन मंदिर में संवत् १३६६ का एक शिलालेख है, जिसके अनुसार उकेश वंशीय शाह जैसल नामक सुश्रावक ने अजीत नाथ भगवान के एक भव्य मन्दिर एवं पौषधशाला का निर्माण कराया। शाह जैसल ने शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थों के लिए संघ निकाले। उसने पाटण में शान्तिनाथ भगवान् का विधि चैत्य एवं पौषधशाला बनवायी।

यहाँ अन्य अनेक जैन मन्दिर हैं।

प्रभास पाटण

सौराष्ट्र में समुद्र के किनारे जग प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर से मात्र ४०० मीटर की दूरी पर प्रभास पाटण ग्राम के मध्य चन्द्रप्रभ भगवान् का एक अति प्राचीन जिन मंदिर है। इस तीर्थ की स्थापना भरत चक्रवर्ती द्वारा सिद्धांचल की यात्रा के समय सरस्वती नदी के कूल पर तपस्या रत मुनियों के मुख से भावी ८वें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ स्वामी के सम्भावित समवसरण की उद्घोषणा सुनकर की गयी थी। वि० सं० ४७७ में धनेश्वर सूरि रचित 'शत्रुञ्जय महात्म्य' मे इस तीर्थ की महिमा वर्णित है।

कालांतर में गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह, मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल, ओसवाल श्रेष्ठि पेथड़ शाह, समरा शाह, राजसी संघवी आदि ने इस तीर्थ के लिए संघ समायोजन कर पुण्य कमाया। आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से जैन सम्राट् कुमारपाल ने यहाँ मन्दिर निर्मित करवाये। संवत् १२६४ में श्री देवेन्द्र सूरि ने यहाँ ५३२५ श्लोकों में 'चन्द्रप्रभ चरित्र' की रचना की।

मुहम्मद गजनी एवं अन्य मुसलमान आक्रांताओं से तीर्थ को भारी क्षति पहुँची थी। परन्तु जगद्गुरु हीरविजय सूरि के शिष्य विजयसेन सूरि जी की निश्रा में संवत् १६६६ में तीर्थ का पुनरुद्धार हुआ। आपने यहाँ पाँच बार अंजनशलाका प्रतिष्ठाएँ करवायीं। सं० १८७६ में विजय जिनेन्द्र सूरि की प्रेरणा से तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ।

भद्रेश्वर

कच्छ में समुद्र के किनारे बसे भद्रेश्वर ग्राम के बाहर एक अति प्राचीन पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर है। महाभारत मे इस क्षेत्र का 'भद्रावती' नाम से उल्लेख है। भू-गर्भ से प्राप्त ताम्रपत्र

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के उल्लेखानुसार वीराब्द २३ में श्रावक देवचन्द्र ने तीर्थ का शिलारोपण किया एवं परमपूज्य कपिल केवली मुनि के हाथों वीराब्द ४५ में पार्श्वनाथ की मनोहारी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी। इस अवसर पर भद्रावती निवासी ब्रह्मचारी श्रावक विजय सेठ एवं विजया सेठाणी ने भगवती दीक्षा ग्रहण की।

संवत् १९३४ में श्रीमाल श्रेष्ठियों द्वारा तीर्थ का पुनरुद्धार हुआ। सं० १९३४ में जगत-प्रसिद्ध दानवीर जगडू शाह ने तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया। इन्होंने संवत् १३१५ में भीषण दुष्काल में जगह-जगह दानशालाएँ खुलवाकर खूब ख्याति पायी। संवत् १६८२ में उपकेश वंशीय लालन गोत्रीय सेठ वर्धमान शाह ने तीर्थ उद्धार करवा कर यहाँ महावीर स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी। संवत् १९३९ में मांडवी के सेठ मोणसी तेजसी की धर्मपत्नी मीठाबाई ने तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया।

लगभग ढ़ाई लाख वर्ग फुट चौरस विशाल मैदान में सुशोभित यह मन्दिर अति आकर्षक है।

अणहिल पाटण

गुजरात के मेहसाणा क्षेत्र में स्थित 'पाटण' नगर अपने स्थापना काल से जैनों का प्रमुख तीर्थ रहा है। चावड़ा वंश के पराक्रमी राजा बनराज ने विक्रम संवत् ८०२ में यह नगर बसा कर इसे अपनी राजधानी बनाया। राजा के आमन्त्रण पर भिन्नमाल से अनेक श्रीमाल एवं उपकेश जाति के लोग यहाँ आकर बस गये। भिन्नमाल वासी जैन श्रेष्ठि नानाशाह श्रीमाल के वंशजों को राजा ने अपना मंत्री एवं दंड नायक नियुक्त किया। तब से यहाँ अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। पंचासरा से लाकर पार्श्वनाथ भगवान की अलौकिक प्रतिमा यहाँ प्रतिष्ठित की गयी। आचार्य सोमप्रभ सूरि रचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र के पाटण प्रवेश के समय यहाँ १८०० करोड़पति जैन श्रावक निवास करते थे। श्री देवसूरि जी को 'वादी' की पदवी से यहीं विभूषित किया गया था।

संवत् १३५३ से १३५६ के बीच बादशाह अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने इस नगर एवं मन्दिरों को नष्ट कर दिया। संवत् १३७१ में शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धारक ओसवाल श्रेष्ठि समरा शाह ने यहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठा के उल्लेख मिलते हैं। चैत्य परिपाटी के मन्दिरों की संख्या सतरहवीं शताब्दी में १०१ हो गई थी। अब भी यहाँ ८४ विशाल मंदिर एवं १३४ देरासर विद्यमान हैं।

सुथरी

विक्रम की १५ वीं सदी में कच्छ प्रदेश के सुथरी ग्राम में दसा ओसवालों की सामान्य बस्ती थी। लोग खेती बाड़ी में संलग्न थे। गाँव की पोशाला में अजितनाथ भगवान की प्रतिमा की पूजा होती थी। सेठ मेघजी को एक रात स्वप्न में पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा लाने का आदेश हुआ। उनकी पत्थरों की खान थीं। उसने प्रतिमा बनवा कर घर मे ही स्थापित की। बड़े आनन्द से विरादरी को न्योता दिया। क्षमता न होते हुए भी प्रभु की कृपा से सारे गाँव

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

को आदर सहित भोजन कराया। तब से प्रभु 'घृत कल्लोत पार्श्वनाथ' नाम से प्रसिद्ध हुए। यह घटना संवत् १६७५ की है। चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन करने दूर दूर से धर्मानुरागी लोग आने लगे। संवत् १७२१ में श्री ज्ञान सागर जी महाराज की प्रेरणा से मेघजी सेठ ने प्रतिमा श्रीसंघ को सौंप दी। संवत् १८८३ में श्री संघ ने भव्य जिनालय का निर्माण करवाया एवं संवत् १८९६ में प्रतिमा की यथा विधि प्रतिष्ठापना हुई। महोत्सव हुआ। तब से सुथरी जैनियों के एक तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध हो गया। इसी मन्दिर में गौतम स्वामी एवं पद्मावती देवी को प्राचीन व निराले ढंग की प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं।

आबू तीर्थ

आबू के गिरी श्रृंगों में स्थित जैनों का यह प्राचीन तीर्थ है। चक्रवर्ती भरत ने यहाँ आदिनाथ भगवान् का मन्दिर बनवाया था। भद्रबाहु स्वामी रचित 'वृहद् कल्पसूत्र' में इस तीर्थ का उल्लेख है। विक्रम संवत् से ५३२ वर्ष पूर्व पार्श्व प्रभु संतानीय आचार्य स्वयंप्रभ सूरि यहाँ पधारे थे। किन्तु उस समय के मन्दिरों का पता नहीं लग रहा है। आचार्य जिनप्रभ सूरि रचित विविध तीर्थकल्प के अनुसार यह पर्वत श्रृंग 'नन्दिवर्धनगिरि' कहलाता था। कालान्तर में 'अर्बुद' कहा जाने लगा और अब लोक भाष में आबू नाम से प्रसिद्ध है। आबू के देलवाड़ा ग्राम में स्थित जैन मन्दिर स्थापत्य की दृष्टि से ताजमहल से भी अधिक आकर्षक है। पाश्चात्य इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड एवं प्रस्तर शिल्प विशेषज्ञ फर्ग्युसन साहब के अनुसार इन मन्दिरों में संगमर्मर में बारीक कोरनी से उत्कीर्णित मनोहारी आकृतियों की विश्व भर मे कोई सानी नहीं।

देलवाड़ा का आदिनाथ मन्दिर

'विविध तीर्थकल्प' के अनुसार इसे परमार नरेश के दण्डनायक विमल शाह ने विक्रम संवत् १०८८ में बनवाया। अन्य इतिहासकारों के अनुसार पाटण के सौलंकी क्षत्रिय चौलुक्यराज भीम देव के मंत्रीश्वर पोरवाड़ श्रेष्ठि 'वीर' के पुत्र विमल कुमार ने चन्द्रावती के परमार वंशीय राजा धन्धुक को हराकर अपनी सत्ता मनवायी थी। कालांतर में राजा भीम ने विमलकुमार को भी मंत्री नियुक्त किया। इन्हीं विमल कुमार ने आचार्य वर्धमान सूरि के उपदेश से देलवाड़ा में संगमर्मर का 'विमलवसहि' प्रसाद बनवाया। मन्दिर के निर्माण में १८ करोड़ ५३ लाख रुपये खर्च हुए। आचार्य वर्धमान सूरि के कर कमलों से आदि जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी गयी।

विविध तीर्थ कल्प के अनुसार कालांतर में मुसलमानों द्वारा मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, तब संवत् १३७८ में श्रेष्ठि महण सिंह के पुत्र लल्ल ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। संवत् १३५० से मंडलेश्वर बीसलदेव ने महाजन श्रेष्ठियों की प्रार्थना पर मन्दिर व्यवस्था के लिए लाग लगा दी। शिल्प की दृष्टि से यह मन्दिर अद्वितीय कहा जाता है। मन्दिर के सम्मुख हस्तिशाला बनी हुई है, जिसके द्वार पर अश्वारूढ़ विमलशाह की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर में स्थापित तोरण, स्तम्भ, गुम्बज, छत, द्वार आदि सभी प्रस्तर शिल्प के अनुपम उदाहरण है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लुणावसही नेमिनाथ मन्दिर

विमलवसहि के समीप ही एक और विश्व विख्यात मन्दिर है, जो स्थापत्य एवं शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ है। विविध तीर्थ कल्प के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण अणहिलपट्टण के पोरवाड़ श्रेष्ठि महामात्य वस्तुपाल तेजपाल ने विक्रम संवत् १२८८ में करवाया। ये चौलुक्य राज जयसिंह के मन्त्री सोम के पौत्र थे। कालान्तर में श्रेष्ठि तेजपाल गुजरात के धोलका प्रदेश के सौलंकी (बघेल) राणा वीर धवल द्वारा मन्त्री नियुक्त हुए। इन दोनों भाईयों ने करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित की। आचार्य नयचन्द्र सूरि के उपदेश से प्रभावित हो सिद्धाचल तीर्थ की १२ यात्राएँ की। जिनहर्ष कृत 'वस्तुपाल' चरित्र के अनुसार सिद्धाचल के संघ समायोजन में कुल सात लाख आदमी शामिल हुए।

तेजपाल के पुत्र लूणासिंह एवं पत्नी अनुपमा देवी के कल्याणार्थ निर्मित इस लूणावसहि प्रासाद में अनेक जिनालय हैं एवं मुख्य मन्दिर में मूल नायक भगवान नेमिनाथ की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। मन्दिर की दीवारों, छज्जों, तोरणों पर जैनधर्म की कथाएँ, जीवन के दृश्य, युद्ध चित्र, नौका शास्त्रीय फलक सजीव हो उठे हैं। मंदिर की हस्तिशाला में संगमरमर की दस हथिनियाँ स्थापित हैं, जिनपर वस्तुपाल तेजपाल एवं उनके पूर्वजों की मूर्तियाँ हैं। इनके पीछे दस ताक बने हैं, जिनमें इन्हीं पुरुषों की सपत्नीक संगमर्मरी मूर्तियाँ हैं। कुटुम्ब का ऐसा स्मारक चिन्ह अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। इस मन्दिर में शिल्पकार शोभनदेव का नाम भी उत्कीर्णित है। 'विविध तीर्थकल्प' के अनुसार कालान्तर में मुस्लिम आक्रांताओं ने मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला तब संवत् १३७८ में श्रेष्ठि चन्द्रसिंह के पुत्र पीथड़ ने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।

लूणावसहि से थोड़ी दूर भीमा शाह (भैंसा शाह) का बनवाया हुआ मन्दिर है, जिसमें १०८ मन की धातु की आदिनाथ की मूर्ति है, जिस पर संवत् १५२५ का श्रीमाल गोत्रीय मन्त्री मण्डन के पुत्र मन्त्री सुन्दर का प्रतिष्ठा लेख है।

अचलगढ़ के मन्दिर

देलवाड़ा से ४की०मी० दूर अचलगढ़ में आदिनाथ, शांतिनाथ, एवं कुँथुनाथ भगवान के तीन प्राचीन मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ धातु की कुल १८ प्रतिमाएँ हैं जिनका कुल वजन १४४४ मन कहा जाता है। ऐसी विशालकाय धातु प्रतिमाएँ अन्यत्र नहीं हैं। इनकी चमक से लगता है इनमें स्वर्ण-अंश की अधिकता है। शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर सम्राट् कुमार पाल द्वारा निर्मित होने का उल्लेख 'विविध तीर्थकल्प' में आता है। आदिनाथ भगवान का मन्दिर प्राग्वाट वंशीय रणकपुर तीर्थ के निर्माता धन्ना शाह के वंशज सहसा शाह द्वारा सं. १५६६ में बनवाया गया था। अन्य प्रतिमाओं पर ओसवाल श्रेष्ठि साल्हा शाह द्वारा प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है। यहाँ एक सर्व धातु की अति प्राचीन चौमुखी प्रतिमा है, जिसके २१०० वर्ष पूर्व की होने का अनुमान है। इस अलौकिक मुद्रा वाली भव्य प्रतिमा का सौन्दर्य वर्णनातीत हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रणकपुर

राजस्थान के जैन तीर्थों में रणकपुर अद्वितीय माना जाता है। यह पाली जिले के सादड़ी कसबे से १२ किलो मीटर पर अरावली श्रृंगमाला की गोद में स्थित है। उदयपुर से यह पावन तीर्थ १५० किलो मीटर लम्बी पक्की सड़क से जुड़ा है।

इस मंदिर का निर्माण विक्रम संवत् १४३३ में घाणेराव के पोरवाल श्रेष्ठि धन्ना शाह ने १८ सहस्र स्वर्ण सिक्कों (सोनईयों) की लागत से करवाया। इस परिवार का पूर्व निवास सिरोही था। उस वक्त यह प्रदेश मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत था। महाराणा कुम्भा ने मंदिर के निर्माण में गहरी रुचि ली। इसे सम्पूर्ण होने में ६३ वर्ष लगे। धन्ना शाह के छोटे भ्राता रतनशाह ने इसे पूर्ण करवाया। धन्ना शाह के वंशज अभी भी घोणेराव में निवास करते हैं। एक अन्य उल्लेख के अनुसार आचार्य सोमसुन्दर की प्रेरणा से प्राग्वाट वंशी नान्दिया निवासी सेठ धरणा शाह ने संवत् १४४६ में मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ कराया एवं संवत् १४९६ में बिम्ब प्रतिष्ठा हुई। इसके निर्माण में कुल ९९ लाख रूपये लगे थे।

यह मन्दिर तत्कालीन श्रेष्ठ कलात्मक अभिरुचि का कीर्ति स्तम्भ है।स्फटिक सी धवल एवं दुग्ध-फेन सी उभरी कोरनी से उत्कीर्णित मूर्तियाँ, फूल-बेल एवं ऐतिहासिक गाथाएँ सजीव हो उठी है। मेवाड़ी प्रस्तर से निर्मित यह मन्दिर अरावली पर्वतमाला की हरियाली उपत्यकाओं के बीच घटाटोप वृक्षावली से घिरा निरभ्र आकाश के तले अनूठे नगीने सा लगता है। ४८ हजार वर्ग फीट में फैले आदिनाथ भगवान् के इस अपूर्व मन्दिर में २४ रंग मंडप १८४ गर्भगृह, ८५ शिखर एवं १४४४ खम्भ हैं। मन्दिर में धर्म प्रेमी धन्ना शाह की मूर्ति एवं शिलालेख भी मौजूद है। प्रसिद्ध इतिहासकार फर्गुसन के कथनानुसार समस्त पश्चिमी भारत में यह मन्दिर बेजोड़ है।

गिरनार

सौराष्ट्र प्रदेश का गिरनार तीर्थ प्राचीनतम, सुरम्य एवं पावन जैन तीर्थों में से एक है। यह पर्वत श्रृंग शास्त्रों में रैवतगिरि एवं उज्जयंत नाम से भी चर्चित है। इसकी तलहटी में जूनागढ़ नगर बसा है। प्रागैतिहासिक काल से यहाँ जैन धर्म का व्यापक प्रचार रहा है। बाईसवें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ के दीक्षा, कैवल्य एवं निर्वाण—ये तीन कल्याणक यहीं हुए। भगवान् के निर्वाणोपरान्त श्रीकृष्ण ने यहाँ तीन स्वर्णरत्नमय प्रतिमा वाले चैत्यों का निर्माण कराया। सती राजुलमती तपस्या कर यहीं मोक्ष सिधारी थीं। आचार्य जिनप्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में इस तीर्थ की महिमा का बखान करते हुए यहाँ की भूमि को स्वर्ण मंडिनी बताया है। आपने यहाँ विद्यमान चमत्कारी द्रव्यों का विवरण भी दिया है, जिनके स्पर्श मात्र से ताँबा सहसा चाँदी बन जाता है एवं लोहा स्वर्ण में रूपान्तरित हो जाता है।

प्रभासपाटण में प्राप्त एक ताम्रपत्र के अनुसार रेवत नगर के राजा नेबुसदनेझर ने विक्रम पूर्व ६ठी सदी में यहाँ नेमिनाथ भगवान् के मन्दिर का निर्माण कराया था। कहते हैं कश्मीर के अजित और रत्न नामक शाह वंशी श्रावकों द्वारा पंचामृत से बिम्ब पूजा के समय श्रीकृष्ण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

द्वारा संस्थापित लेप्यमान बिम्ब गल गये, अतः उन्होंने संवत ६०९ में इस स्थान पर पाषाण प्रतिमाएँ स्थापित करवायीं।

चौलुक्यराज जयसिंह के दण्डनायक सज्जन श्रेष्ठि ने संवत् ११८५ में यहाँ एक अभिनव जिनालय बनवाया। संवत् १२८८ में गुर्जरपति वीर धवल के मंत्री पोरवाड़ वंशीय श्रेष्ठि वस्तुपाल तेजपाल ने लाखों रुपये खर्च कर यहाँ संघ समायोजन किया। वस्तुपाल ने तीन कल्याणक मन्दिर बनवाये। शत्रुञ्जयावतार मन्दिर, अष्टापद शिखर मण्डप एवं मरु देवी प्रसाद उन्हीं के निर्माण कराये हुए हैं। श्रेष्ठि तेजपाल ने गिरनार की तलहटी में तेजलपुर बसाया। वहाँ गढ़ मन्दिर एवं बाग बनवाये 'आसराज बिहार' नामक पार्श्वनाथ जिनालय बनवाया एवं माता कुमार देवी की स्मृति में 'कुमार सरोवर' का निर्माण कराया।

कालांतर में अनेक ओसवाल श्रेष्ठियों ने तीर्थ में स्वर्ण कलश चढाये एवं बिम्बों की प्रतिष्ठा करवायी। चौदहवीं सदी में ओसवाल श्रेष्ठि समरसिंह सोनी ने, सत्रहवीं सदी में ओसवाल श्रेष्ठि वर्धमान शाह ने तथा बीसवीं सदी में ओसवाल श्रेष्ठि नरसी केशवजी ने तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया।

जीरावली तीर्थ

राजस्थान की सुरम्य अरावली पर्वतमाला में जीरापल्ली पहाड़ी की गोद में बसा हुआ जयराजपल्ली ग्राम है। वह भीनमाल के संवत् १३३३ के लेखानुसार कभी स्वयं भगवान महावीर की विहार भूमि रहा है। सुविज्ञ पुरातत्त्वज्ञ श्री गौरीशंकर ओझा ने सम्राट् सम्प्रति से पूर्व इस भूनि को जैन धर्म के प्रचार से पावन हुआ बताया है। सिरोही से ३५ मील पश्चिम में स्थित श्रृंग माला से घिरे इस स्थान पर विक्रम संवत् ३२६ में कोड़ीनगर के महाजन श्रेष्ठि अमरासा ने पार्श्व प्रभु के भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। एक किंवदन्ती के अनुसार सेठ जी को स्वप्न में इस चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन हुए। जमीन खोद कर प्रतिमा निकाली गयी। संवत् ३३१ में आचार्य देवगुप्त सूरि ने प्रतिमा की स्थापना की। शीघ्र ही यह क्षेत्र तीर्थ राज बन गया। आचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा पुनः बिम्ब प्रतिष्ठा के उल्लेख भी मिलते हैं। संवत् ६६३ में महाजन श्रेष्ठि जेता साह और खेभा साह ने तीर्थ का पहला जीर्णोद्धार करवाया।

तदुपरान्त हूण एवं मुस्लिम आक्रान्ताओं के भय से श्रीसंघ ने इस चमत्कारी प्रतिमा को छिपा दिया। मन्दिर खंडहर में परिणत हो गया। संवत् ११०९ में श्रेष्ठि धांधल हुए। एक किंवदन्ती के अनुसार सेठ जी ने एक गाय को गुफा-मुख पर दूध प्रवाहित करते देखा। उन्होंने इसे चमत्कार समझकर प्रतिमा खोज निकाली। श्रीसंघ ने एक चैत्य का निर्माण कराया एवं संवत् ११९१ में आचार्य अजित देव सूरि ने इस चमत्कारी मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा की।

चौहदवीं सदी में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के अत्याचारों से धर्म पर संकट के बादल मण्डराये। सम्भवतया तभी इस चमत्कारी प्रतिमा को स्थानान्तरित कर दिया गया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मन्दिर पर संवत् १८५१ के एक शिलालेख के अनुसार भगवान् नेमिनाथ मूल नायक के रूप में प्रतिष्ठापित किये गये। किन्तु क्षेत्र अब भी जीरावला पार्श्वनाथ के नाम से ही जाना जाता है। मन्दिर की बायीं ओर की कोठड़ी में पार्श्व प्रभु की दो मूर्तियाँ विद्यामान हैं। सम्भव है उनमें से एक वही चमत्कारी बिम्ब हो।

कुँभारिया तीर्थ

आबू पर्वत के निकट ही एक छोटा सा गाँव अपने मन्दिरों के कारण जैन तीर्थ स्थान बन गया है। अरासान पत्थर की खानों के कारण इसे 'आरासन तीर्थ' भी कहते हैं। दानवीर समराशाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ का पुनरुद्धार करते समय इन्ही खदानों का मूल्यवान पत्थर मँगवा कर बिम्ब निर्मित करवाये थे। यहाँ पाँच जैन मन्दिर हैं, जिनमें नेमिनाथ मन्दिर बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक जनश्रुति के अनुसार ये मन्दिर मन्त्रीश्वर विमल शाह ने सं० १०८८ में बनवाये थे। परिकरों एवं देरियों पर सं० १११८ से ११३८ तक के अनेक लेख उत्कीर्ण हैं। उपदेश सप्तती में दी कथा के अनुसार आरासाण निवासी मन्त्री गोगा के पुत्र पासिल ने ये मन्दिर बनवा कर सं० ११७४ में आचार्य वादिदेव सूरि से बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी। नेमिनाथ स्वामी की मुख्य प्रतिमा के नीचे खुदे लेख के अनुसार ओसवंशीय बोहरा गोत्रीय श्रेष्ठि राजपाल ने सं० १६७५ में बिंब प्रतिष्ठा करवायी। मन्दिर के रंग मंडप की दूसरी बाजू पर दरवाजे में एवं खम्भों के बीच की कमानों पर मकराकृति के मुखों से निसृत सुन्दर तोरण कोरा गया हैं जो विमलवसहि के तोरणों सा भव्य है।

उक्त देवालय के पूर्व की ओर एक और मन्दिर है, जिसमें भगवान महावीर की भव्य मूर्ति है। मूर्ति पर खुदे लेख के अनुसार संवत् १६७५ में उपकेश वंशीय सा० नानिया नामक श्रावक ने श्री विजयदेव सूरि के हाथों इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी। प्रतिमा के नीचे की बैठक और भी पुरानी है। उस पर संवत् १११८ का लेख उत्कीर्णित है।

अन्य मन्दिरों की बनावट भी उक्त मन्दिरों के सदृश है, किन्तु उन पर खुदे हुए लेख संवत् ११३८ एवं ११४६ के हैं।

प्रसिद्ध इतिहासविद् श्री भँवरलाल जी नाहटा द्वारा सम्पादित 'विविध तीर्थकल्प' के परिशिष्ट में दिये विवरण के अनुसार गोगा मन्त्री के चतुर और श्रद्धालु पुत्र पासिल ने आरासन स्थित नेमिनाथ भगवान् के उत्तुङ्ग जिनालय का निर्माण कराया, जिसमें बिम्ब प्रतिष्ठा आचार्य मुनि चन्द्र सूरि के शिष्य वादीन्द्र श्री देव सूरि ने सम्पन्न की।

उदयपुर

उदयपुर से ४० मील दूर घुलेवा ग्राम जैनों का प्रमुख तीर्थ स्थल बन गया है। यहाँ भगवान् ऋषभदेव का एक विशाल मन्दिर है। इसमें ऋषभदेव की बड़ी भव्य प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित है। कहते है किसी समय यह प्रतिमा बड़ौदा स्थित जैन मन्दिर में प्रस्थापित थी। इसके विशाल परिकर पर इन्द्रादि देवताओं की मूर्तियाँ बनी है एवं दोनों बाजुओं पर दो नग्न कायोत्सर्ग मुद्राएँ। मूर्ति के चरणों में नवग्रहों की मूर्तियाँ हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मन्दिर में अन्य ७६ मूर्तियाँ हैं, जिनमें से अनेक पर लेख खुदे हुए हैं। मन्दिर में प्राचीनतम शिलालेख संवत् १४३१ का है।

यहाँ आने वाले दर्शनार्थी केशर की मान्यता करते हैं एवं मूर्ति पर केशर चढ़ाते हैं। इसी से तीर्थ का नाम केसरियानाथ हो गया। जैनों के अलावा इस इलाके के आदिवासी भील भी इन्हें अपना इष्टदेव समझते हैं एवं मूर्ति पर केसर चढ़ाते हैं। मूर्ति का रंग काला होने से भील इन्हें कालाजी भी कहते हैं।

संवत् १८६३ में प्रसिद्ध ओसवाल श्रेष्ठि विजयचन्द्र गांधी ने मन्दिर का परकोटा बनवा दिया है। संवत् १८८९ में ओसवाल श्रेष्ठि बहादुरमल जी जोरावरमल जी बापना ने मन्दिर के द्वार पर नक्कारखाना बनवा कर ध्वजा दंड चढ़ाया।

इस मन्दिर की महिमा विचित्र है। हिन्दू धर्मानुयायी भी यहाँ हवन-पूजा करते हैं। यह तीर्थ इतना प्रभावोत्पादक माना जाता है कि लोग मूर्ति पर लाखों की लागत से निर्मित सोने चाँदी एवं जवाहरात की अंगी चढ़ाते हैं। उदयपुर के महाराणा ने ढाई लाख की कीमती अंगी चढ़ाई थी। मन्दिर में पूजा श्वेताम्बर विधि से ही होती है।

चित्रकूट (चित्तौड़)

'गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया'—उक्ति का परिचायक सूरमाओं का यह किला जैनों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल भी है। मौर्य वंशी राजा चित्रांगद ने इसका निर्माण करवाया था, इसी से इसे 'चित्रकूट कहते हैं। विक्रम की प्रथम सदी में आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर यहाँ रहे थे। उनका यह जन्म स्थान है। तब यह मध्यमिका नगरी के नाम से प्रसिद्ध था। विक्रम की ८वीं सदी में मेवाड़ के गुहिलवंशीय राजा बापा रावल ने इस पर अधिकार कर लिया। बारहवीं सदी में पाटण के सिद्धराज जयसिंह एवं कुमार पाल के आधीन रहा। संवत् १२३१ में यह फिर गुहिल वंशी राजा के कब्जे में आ गया।

यहाँ संवत् ११६७ में महावीर मन्दिर के निर्मित होने का उल्लेख है। दादा गुरु आचार्य जिनदत्त सूरि का संवत् ११६९ में यहाँ पाट महोत्सव सम्पन्न हुआ। संवत् १३२२ में महाराणा तेजसिंह की पटरानी जयतल्ल देवी ने यहाँ पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर बनवाया। संवत् १३३५ में युवराज अमरसिंह के सान्निध्य में यहाँ के आदिनाथ मन्दिर पर ध्वजारोहण होने का उल्लेख है। संवत् १३५३ में महाराणा समरसिंह के काल में ११ जिन मन्दिरों में जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गयी थी। महाराणा कुम्भा के खजांची शाह बेला ने संवत् १५०५ में एक पुराने जीर्ण मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया, जो श्रृंगारचौरी के नाम से प्रसिद्ध है। राणा लाखा से सम्मानित श्रेष्ठि बीसल ने किले में भगवान श्रेयांसनाथ का मन्दिर बनवाया। श्रेष्ठि गुणराज के पुत्र बाल ने कीर्ति स्तम्भ के पास एक विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराया। महाराणा मौकल के समय मन्त्री शाह सरणपालने यहाँ अनेक जिन मन्दिर बनवाये। मांडवगढ़ के मन्त्रीश्वर पेथड़ शाह ने भी यहाँ मन्दिर बनवाया था। संवत् १५७३ में रचित 'तीर्थमाला' में भिन्न-भिन्न गच्छों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के यहाँ ३२ जिन मन्दिर होने का उल्लेख मिलता है। अब केवल ६ मन्दिर हैं। शेष मन्दिरों के अवशेष, जगह-जगह दिखाई देते हैं।

अवन्ती

उज्जैन शहर में क्षिप्रा नदी के कूल पर पार्श्वनाथ भगवान् का एक प्राचीन मन्दिर है। इस नगरी का प्राचीन नाम अवन्तिका है। शास्त्रों में नगर की भद्रा सेठाणी के सुपुत्र अवन्ती सुकुमाल का वर्णन है, जिसने आर्य सुहस्ति से दीक्षा लेकर मुक्ति पद पाया। उनके पुत्र ने यहाँ वीराब्द २५० में एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। कहते हैं भगवान् महावीर के समय यहाँ के राजा चन्द्र प्रद्योत ने भगवान की एक चंदन प्रतिमा बनवायी थी। बाद में यह प्रतिमा राजा सम्प्रति के पास रही। आर्य सुहस्ति ने इसी प्रतिमा के दर्शनार्थ बार-बार यहाँ विहार किया।

कालान्तर में इस तीर्थ पर शैव मत के शासकों का अधिकार हुआ, तब राजा विक्रमादित्य की सभा के विद्वान् रत्न आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर ने कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना की, जिसके प्रभाव से मन्दिर में प्रस्थापित ज्योतिर्मय शिवलिंग में से पार्श्व प्रभु की मनोहारी प्रतिमा प्रकट हुई। इससे राज्य में जैन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हुई। विक्रम की सातवीं सदी में आचार्य मानतुङ्ग सूरि ने यहीं राजा भोज को भक्तामर स्तोत्र की रचना द्वारा चमत्कार दिखाकर प्रभावित किया था। ग्यारहवीं सदी में श्री शान्ति सूरिजी यहीं विद्याप्रेमी परमार राजा भोज की सभा में ८४ वादियों को जीतकर राजा द्वारा सम्मानित हुए थे। इस तरह धर्म प्रचार की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ इस तीर्थ से जुड़ी हैं।

बावन गजा जी

मध्यप्रदेश के खरगौन जिले में इन्दौर नगर से १६० किलोमीटर दूर सतपुड़ा पर्वत माला के उच्चतम श्रृंग चूलगिरि पर स्थित आदिनाथ भगवान् की ८४ फुट (२५.६ मीटर) उत्तुंग खड्गासन मुद्रा की पाषाण प्रतिमा विश्व का प्राचीनतम कला-शिल्प है। लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व इस प्रतिमा का निर्माण हुआ होगा, ऐसी मान्यता है। श्रवणबेलगोला स्थित बाहुबलि स्वामी की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा भी इसके समक्ष छोटी है। एक ही पाषाण में उत्कीर्ण इस प्रतिमा का शिल्प विधान अनूठा है। भगवान् के मुख पर जो शान्ति और वीतरागता के भाव अंकित हैं, उन्हें देखकर दर्शक अभिभूत हो जाता है। इस प्रतिमा पर कोई लेख नहीं है, यह भी शिल्पकार एवं प्रतिष्ठापक आचार्य की उदारता की पराकाष्ठा है। शास्त्रों के अनुसार लंकापति रावण के अनुज कुम्भकर्ण एवं पुत्र इन्द्रजीत यहीं स्वर्ग सिधारे थे। विक्रम की तेरहवीं शदी के पूर्वार्द्ध में रचित मदनकीर्तिनी 'शासनचतुस्त्रिंशिका' ग्रंथ के अनुसार नरेश अर्ककीर्ति ने वृहतपुर में ५२ हाथ प्रमाण एक आदीश्वर भगवान् की मूर्ति का निर्माण कराया था। पुराणों में अर्ककीर्ति को प्रथम चक्रवर्ती भरत का पुत्र बताया है। बृहतपुर वर्तमान के बड़वानी का प्राकृत/संस्कृत पूर्व नाम है। इस तरह इस प्रतिमा को पौराणिक आधार प्राप्त है।

संवत् १९६५ में प्रकाशित 'बड़वानी स्टेट गजेटियर' के अनुसार बड़वानी शहर से ५मील दूर जैन सिद्ध क्षेत्र में आदीश्वर मूर्ति का निर्माण विक्रम संवत् १२२३ में श्री मीना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रामचन्द्र द्वारा किया गया। मूर्ति की उँचाई गजट में ७२ फीट लिखी है। किन्तु वास्तविक ऊँचाई ८४ फीट है। गजेटियर के अनुसार बडवानी का पुराना नाम सिद्धपुर प्रसिद्ध था। इस क्षेत्र का प्रथम जीर्णोद्धार वि० सं० १५१६ में हुआ।

इस पहाड़ पर बत्तीस और प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें प्रतिमाओं पर लेख उत्कीर्ण हैं। इनमें एक शान्तिनाथ भगवान की १३ फुट उतुंग खड्गासन मुद्रा की प्रतिमा अति प्राचीन है। पहाड़ की तलहटी में बड़वानी ग्राम में २१ मन्दिर हैं। मूल आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा कच्चे ५२ गज की होने से यह तीर्थ 'बावनगजाजी' नाम से प्रसिद्ध हो गया। बारह वर्षों में एक बार प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक होता है। मुनि विद्यानन्द जी की प्रेरणा से संवत २०४३ से पुरातत्त्व विशेषज्ञों के निर्देशन में प्रतिमा की सुरक्षा हेतु १५ लाख रुपए के खर्च से जीर्णोद्धार का कार्य हो रहा है जो इस सिद्ध क्षेत्र को तीर्थयात्रियों का आकर्षण केन्द्र बना देगा।

जैसलमेर एवं लोद्रवा

भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित मरु प्रदेश जैन आचार्यों एवं श्रमणों के पाद बिहार का प्रचीन क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में विद्यमान जैन मन्दिर एवं मूर्तियाँ स्थापत्य एवं शिल्पकला की दृष्टि से बेजोड़ हैं।

वर्तमान जैसलमेर नगर से १० मील दूर स्थित ऐतिहासिक स्थान लोद्रवा में किसी समय लोढ़ जाति के राजपूतों का राज्य था। संवत् ९०० के लगभग (कहीं-कहीं संवत् १०८२ का उल्लेख मिलता है) भाटी राजपूत रावल देवराज ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया एवं लोद्रवा को इस प्रदेश की राजधानी बनाया। संवत् १२०० के करीब रावल भोजदेव का राज्य रहा। उनके चाचा रावल जेसल ने मुहम्मद गौरी की सहायता से लोद्रवा को तहस-नहस कर डाला। भोजदेव मारा गया। रावल जैसल ने संवत् १२१२ में कुछ दूर जैसलमेर दुर्ग का निर्माण कराया, जो इस प्रदेश की राजधानी बना।

लोद्रवा नरेश सगर के दो पुत्रों—श्रीधर तथा राजधर को आचार्य जिनेश्वर सूरि ने प्रतिबोध देकर जैनधर्म अंगीकार करवाया। उनके वंशजों का 'भणशाली गोत्र' निर्धारित किया। प्राचीनतम पार्श्वनाथ मंदिर उस समय विद्यमान था। विक्रम की तेरहवीं सदी में मुस्लिम आक्रांता मुहम्मद गोरी ने मन्दिर को नष्ट कर दिया। नगर लूटा। विक्रम संवत् १६७५ में सगर के वंशज भणशाली गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि थाहरू शाह ने मन्दिर का पुनरुद्धार करवाया। मूल मन्दिर के चार कोनों पर थाहरू शाह ने संवत् १६९७ में चार नये मन्दिर बनवाये। आचार्य जिनराज सूरि से बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी। ये मन्दिर शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता श्री पूरणचन्द जी नाहर ने अलंकार शास्त्रीय छटा से पूरित यह सम्पूर्ण आलेख अपने ग्रंथ 'जैन लेख संग्रह' (जैसलमेर खंड) में प्रकाशित किया है। इस लेख में भगवान महावीर से लेकर देवर्धिगणि क्षमा श्रमण तक ९८० वर्षों की अवधि में हुए आचार्यों की पट्टावली अंकित है। थाहरू शाह ने एक काष्ठ रथ का निर्माण करवाया था।वह रथ अब भी मन्दिर के अहाते में विद्यमान है। कहते हैं थाहरू शाह ने इसी रथ के साथ शत्रुञ्जय तीर्थ की संघ यात्रा की थी। एक अन्य किंवदंती के अनुसार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पाटण के दो शिल्पी भगवान् की प्रतिमा इस रथ पर रख कर मुलतान जा रहे थे। थाहरू शाह ने प्रतिमाओ के वजन के बराबर स्वर्ण देकर वह प्रतिमा एवं रथ शिल्पियों से ले लिया।

पार्श्वनाथ मन्दिर

जब लोद्रवा का विध्वंस हुआ तो वहाँ ओसवालों की बहुत बड़ी बस्ती थी। जैसलमेर नगर की संस्थापना पर अनेक ओसवाल श्रेष्ठि संवत् १२६३ में जैसलमेर आकर बस गये। एक किंवदन्ती के अनुसार वे अपने साथ भगवान् पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा लाये। संवत् १४५९ में यहाँ मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। उकेश वंशीय रांका गोत्रीय श्रेष्ठि जैसिंह (चोले शाह) एवं नरसिंह (भौजे शाह) ने विपुल धन खर्च कर संवत् १४७३ में उस निर्माण कार्य को पूर्ण कराया एवं आचार्य जिनचन्द्र सूरि के हाथों बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी। 'जैसलमेर दिग्दर्शन' के लेखक श्री दीनदयाल ओझा के अनुसार मूल मन्दिर पहले 'लक्ष्मण विहार' के नाम से जाना जाता था। इस मन्दिर में कुल १२५२ मूर्तियाँ हैं। इसमें ५२ जिनालयों वाला भव्य सभा मंडप है, जिसमें ९ तोरण द्वार हैं। पुरुषार्थ की चार मुख्य प्रवृत्तियों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को पूर्णता देनेवाली पाषाण आकृतियाँ इतनी सजीव हैं कि दर्शक देखते ही रह जाता है। इनमें नग्न एवं मैथुन-रत मूर्तियाँ भी हैं, जिनका कला सौष्ठव उच्चतम है। मन्दिर में उत्कीर्णित प्रशस्ति लेख में रांका गोत्रीय श्रेष्ठियों की वंशावली के अतिरिक्त खरतर गच्छीय आचार्यों की पट्टावली भी दी गयी है।

संभवनाथ जी का मन्दिर

यह भव्य मन्दिर ओसवाल श्रेष्ठि चोपड़ा गोत्रीय शाह शिवराज, महाजन लोला और लाखण आदि ने संवत् १४९४ में बनवाना शुरू किया एवं आचार्य जिनभद्र सूरि जी के हाथों संवत् १४९७ में मूल नायक की बिम्ब प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। श्री सुखसम्पत राय जी भंडारी ने 'ओसवाल जाति का इतिहास' में मन्दिर के निर्माण कर्त्ता श्रेष्ठि का नाम शाह हेमराज लिखा है। उनके अनुसार मन्दिर में ३०० मूर्तियों की प्रतिष्ठा आचार्य जिनभद्र सूरि के हाथों हुई। कुल मूर्तियों की संख्या ५६३ है। इस मन्दिर में उत्कीर्णित एक शिलालेख में यदुवंशी राजाओं की वंशावली तथा प्रशस्ति है। पीले पाषाण में खुदे एक अन्य वृहद् शिलालेख में २४ तीर्थंकरों के च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान आदि चार कल्याणकों की तिथियाँ दी गयी हैं।

चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर

यह मन्दिर भणसाली गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि सा० बीदा द्वारा निर्मित है। मन्दिर की मूल प्रतिमा पर संवत् १५०९ का बिम्ब प्रतिष्ठा का आलेख खुदा है। संवत् १५७३ में सांडा शा ने मन्दिर का रुका हुआ निर्माण पूर्ण करवाया। मन्दिर के निर्माण विषयक चमत्कारों की अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं निर्माण के लिए धन जुटाने के लिए सांडा शा को मुलतान जाना पड़ा। वहाँ के श्रीसंघ से सहायता की प्रार्थना की, पर काम नहीं बना। रात को शासन देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि अमुक स्थान पर स्वर्ण-मुहरें दबी हैं। सांडा शा ने उन्हीं मुहरों से मन्दिर का निर्माण पूर्ण करवाया। इस मन्दिर में कुल ८०९ भव्य मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के गुप्त तहखानों से धातु की अन्य अलभ्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शान्तिनाथ व कुंथुनाथ जी के मन्दिर

स्थापत्य एवं शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से ये मन्दिर अद्वितीय हैं। संखलेचा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि शाह खेता एवं चोपड़ा गोत्रीय शाह पाँचा ने विक्रम की सोलहवीं सदी में एक भव्य अष्टापद मन्दिर बनवा कर उसमें भगवान् कुंथुनाथ का बिम्ब प्रतिष्ठित करवाया। शाह पाँचा विपुल सम्पदा के स्वामी थे। उन्होंने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए १३ बार संघ समायोजन किये। उनकी अनुपस्थिति में घर एवं मन्दिर का कार्य भार उनकी शील-गुण सम्पन्ना धर्मानुरागी सुपुत्री ने संभाला। तीर्थ यात्रा से लौट कर पाँचा सेठ ने अपनी पुत्री की प्रार्थना पर एक और मन्दिर का निर्माण करवाया, जिसमें अपनी पुत्री के आभूषणों से निर्मित भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की। इस आशय का संवत् १५३६ का आलेख मूर्ति पर उत्कीर्णित है। यह मन्दिर शिल्पकला का अनुपम खजाना है। इसमें कुल ८२५ मूर्तियाँ हैं, जिसमें नाट्य शास्त्रीय मुद्राओं का अभिनव दिग्दर्शन है। काम-कला के उत्कृष्ट नमूने यहाँ भी उत्कीर्णित हैं, जिनमें चुम्बन की विशिष्ट मुद्राएँ हैं। रमणी के अंग प्रत्यंगों एवं भाव-भंगिमाओं का सौष्ठव प्रस्तरशिल्प में सजीव हो उठा है।

शाह खेता एवं शाह पांचा के कुटुम्ब में वैवाहिक सम्बन्ध था। खेता ने भी शत्रुञ्जय, गिरनार, आबू आदि तीर्थों के लिए संघ निकाले। संवत् १५८१ में शाह खेता के पुत्र बीदा ने मन्दिर में इस आशय की एक प्रशस्ति खुदवायी एवं मन्दिर के बाहर पाषाण के दो सुन्दर हाथी स्थापित किये, जिन पर अपने माता-पिता की प्रस्तर प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवायीं।

ऋषभदेव का मन्दिर

यह भव्य मन्दिर गणधर चोपड़ा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि सा० सुच्चा के पुत्र शाह धन्ना ने संवत् १५३६ में बनवाया। इस आशय का एक लेख मूर्ति पर उत्कीर्णित है। मन्दिर में स्थापित मूर्तियों की कुल संख्या जैसलमेर दिग्दर्शन के अनुसार ६३१ (भंडारी जी के अनुसार ६०७) है।

महावीर मन्दिर

इस देव स्थान का निर्माण संवत् १४७३ (भंडारी जी अनुसार १४५३) में ओसवंशीय बरड़िया गोत्रीय सा० दीपा ने कराया। इसमें कुल २३२ मूर्तियां स्थापित हैं।

शीतलनाथ जी का मन्दिर

इस मन्दिर का निर्माण संवत् १४७९ में ओस वंशीय डागा गोत्रीय सेठ लूणा सा एवं गणा सा ने करवाया। इस आशय का प्रतिष्ठा लेख मन्दिर में विद्यमान है। मन्दिर में कुल ३१४ मूर्तियाँ स्थापित हैं।

उक्त सभी मन्दिर जैसलमेर के किले में स्थित हैं। शहर में तपागच्छीय श्रावकों द्वारा संवत् १८६९ में बनवाया हुआ सुपार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर उल्लेखनीय है। तपागच्छीय श्रावकों द्वारा निर्मित विमलनाथ भगवान् का एक और मन्दिर दर्शनीय है, जिस पर संवत् १६६६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का प्रतिष्ठा लेख खुदा है। मन्दिरों के सिवाय अनेक श्रेष्ठियों ने अपनी हवेलियों के पास देरासर निर्मित करवाये, जिनमें थाहरू शाह निर्मित देरासर बहुत प्रसिद्ध है।

अमर सागर

जैसलमेर से ५ मील दूर स्थित मरुभूमि का यह सुरम्य उद्यान ओसवंशीय बापना गोत्रीय श्रेष्ठियों ने बनवाया। इसमें एक छोटा मन्दिर सेठ सवाईराम जी बापना ने संवत् १८९७ में बनवाया। समीप ही का भव्य मन्दिर सेठ हिम्मत राम जी बापना ने संवत् १९२८ में बनवाया। इन मन्दिरों में अनेक कलात्मक मूर्तियाँ, सूक्ष्म जाली उत्कीर्णित गवाक्ष, छज्जे और तोरण प्रस्थापित हैं।

जैसलमेर से ८ मील दूर स्थित ब्रह्मसर में ओसवंशीय बागरेचा गोत्रीय सेठ अमोलखचन्द के सुपुत्र माणक लाल द्वारा संवत् १९४४ में निर्मित भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर दर्शनीय है। उक्त मन्दिरों के शिल्प सौन्दर्य की सभी शिल्पकला विशारदों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

ग्रंथ भण्डार

जैसलमेर तीर्थ का विशेष आकर्षण यहाँ स्थित ग्रंथ भंडार हैं, जिन्होंने प्राच्यविद्या मर्मज्ञों का ध्यान केन्द्रित किया है। ओसवाल श्रेष्ठियों ने मन्दिर तो निर्मित कराये ही, साथ ही अलभ्य ताड़पत्रीय प्राचीनतम ग्रंथों का संग्रह करने में भी अतुल धन खर्च किया। मन्दिरों के तहखानों में ग्रंथागार बनवाकर उन्हें सुरक्षित रखा। ऐतिहासिक दृष्टि से ये संग्रह अमूल्य हैं।सुविख्यात पाश्चात्य पुरातत्त्वविद् डाक्टर बुल्हर और डाक्टर हरमन जैकोबी ने सर्व प्रथम इस ओर भारतीय विद्वानों का ध्यान आकर्षित कर शोधकार्य के लिए प्रेरित किया। प्रोफेसर एस० आर० भण्डारकर ने सं० १९०९ में इन ग्रंथागारों का अवलोकन कर एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की। श्री चिमनलाल डायाभाई दलाल व श्री पूरणचन्द जी नाहर ने ग्रंथागारों/शिलालेखों पर विवेचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित किये। इन ग्रन्थागारों में विशिष्ट 'जिनभद्र सूरि ज्ञान भण्डार' संवत् १५०० में स्थापित किया गया था। इस ग्रंथागार में ४२६ अलभ्य ताड़पत्रीय ग्रन्थ हैं, जिनमें प्राचीनतम ग्रन्थ द्रोणाचार्य विरचित 'ओघ निर्युक्ति वृत्ति है', जो संवत् १११७ की है। कागज़ के २२५७ हस्तलिखित ग्रंथों में प्राचीनतम संवत् १२७९ में रचित वाचस्पति मिश्र की 'न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका' की प्रति है। भण्डार में प्राकृत, मागधी, संस्कृत, अपभ्रंश, ब्रज आदि भाषाओं के ग्रंथ हैं। शोधार्थियों के लिए ये ग्रन्थभंडार हमेशा ही आकर्षण केन्द्र बने रहेंगे।

मेड़ता

मारवाड़ का मेड़ता नगर कभी जैन धर्मावलम्बी लक्षाधिपतियों का गढ़ था। यहाँ तपागच्छ एवं खरतर गच्छ के श्रावकों का बाहुल्य था। बादशाह अकबर को प्रतिबोध देने वाले सुप्रसिद्ध तपागच्छीय आचार्य हीर विजयजी तथा खरतर गच्छीय आचार्य जिनभद्र सूरि ने यहाँ कई चतुर्मास बिताये। यहाँ कुल १२ जैन मन्दिर एवं उपासरे हैं। इनमें स्थापित अनेक मूर्तियों पर प्रतिष्ठा लेख खुदे हैं। इन लेखों में तत्कालीन, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थितियों के विवरण भी हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नगर में स्थित 'चोपड़ों का मन्दिर' एक भव्य देवस्थान है। संवत् १६७७ में ओसवाल श्रेष्ठि गणधर चोपड़ा गोत्रीय संघवी आस करणजी ने अपने संगमरमर पत्थर के सुन्दर बिहार में भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति स्थापित की। इस आशय का लेख प्रतिमा पर खुदा है। संघवी आसकरण के पूर्वजों एवं कुटुम्बियों का वंश वृक्ष भी दिया है। संघवी आसकरण ने आबू एवं शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए संघ निकाले, जिससे श्री संघ ने उन्हें संघपति की पदवी से विभूषित किया। इन्होंने संवत् १६७४ में जिनसिंह सूरि के आचार्य पदोपलक्ष में नन्दी महोत्सव का आयोजन किया था। उक्त प्रतिमा लेख में हिन्दुस्तान के तत्कालीन मुगल बादशाह जहाँगीर एवं शाहजादा शाहजहाँ का भी उल्लेख है। प्रतिष्ठापक आचार्य जिनराज सूरि की पट्टावली भी लेख में उत्कीर्णित है।

नगर का दूसरा मुख्य जैन मन्दिर ओसवंशीय लोढा गोत्रीय श्रेष्ठियों द्वारा निर्मित है। इस भव्य मन्दिर में चिंतामणी पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रस्थापित है। प्रतिमा पर संवत् १६६९ का एक लेख खुदा है, जिसके अनुसार शाह रायमल लोढा के सुपुत्र लखा ने इस प्रतिमा का निर्माण कराया एवं जिनचन्द्र सूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

नगर के नये मन्दिरों की प्रतिमाओं और वेदियों पर भी कतिपय लेख उत्कीर्णित हैं। संवत् १५६९ के एक लेखानुसार खम्भात के ओसवाल श्रेष्ठि शाह जी रागजी भगवान् सुमतिनाथ की वह प्रतिमा अपने साथ लाये थे। इसकी प्रतिष्ठा तपागच्छीय श्री हेम विमल सूरि ने सम्पन्न की। एक अन्य प्रतिमा लेख के अनुसार ओसवाल जाति के बोहरा गोत्रीय श्रेष्ठि ने अपने पिता के कल्याणार्थ शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा बनवायी और बिम्ब प्रतिष्ठा जिन सागर सूरि के हाथों करवायी।

कापरड़ा

जोधपुर राज्य के कापरड़ा ग्राम में पार्श्वनाथ भगवान का एक भव्य मन्दिर है। इसे संवत् १६७८ में जेतारण के ओसवाल श्रेष्ठि भंडारी अमराजी के पुत्र भाना जी ने बनवाया। जैनाचार्य जिनचन्द्र सूरि के कर कमलों से बिम्ब प्रतिष्ठा करवायी। इस आशय एक लेख मन्दिर में खुदा हुआ है।

कहते हैं स्वयंभू पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। बड़ी चमत्कारिक है। भानाजी उस समय जैतारण के हाकिम थे। जोधपुर नरेश गजसिंह जी किसी कारण वश उनसे रुष्ट हो गये। भाना जी मार्ग में कापरड़ा इस प्रतिमा का दर्शन कर दरबार में हाजिर हुए। तब तक इस पुण्य के प्रताप से राजा का क्रोध शान्त हो गया। भाना जी को निर्दोष मानकर राजा ने ५०० मुद्राएँ उपहार स्वरूप दी। भाना जी ने उन्हीं मुद्राओं से कापरड़ा में मन्दिर का निर्माण शुरू करवा दिया। निर्माण करीब-करीब सम्पन्न होने तक थैली खाली नहीं हुई। मन्दिर का उत्तुंग शिखर ९५ फुट ऊँचा है। ५ मील की दूरी से दिखाई देता है। वर्तमान में इस मन्दिर की व्यवस्था आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी के अधीन है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाकोड़ा

बालोतरा से १० कि० मी० दूर जंगल में पर्वतों के बीच नाकोड़ा का प्राचीन तीर्थ स्थित है। यह वीरमपुर या नाकोर नगर के नाम से भी जाना जाता था। आर्य स्थूलिभद्र तथा आर्य सुहस्ती की प्रेरणा से सम्राट् सम्प्रति द्वारा यहाँ मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। विक्रमादित्य की सभा के रत्न आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर, भक्तामर स्तोत्र के रचयिता आचार्य मानतुंग सूरि आदि विद्वानों ने इस तीर्थ की यात्राएँ कीं। उनकी प्रेरणा से यहाँ मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ। विक्रम संवत् १२८० में आलमशाह ने इस नगर को बर्बाद कर दिया।

पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ में मन्दिर का नवनिर्माण प्रारम्भ हुआ। संवत् १४२९ में पार्श्वनाथ भगवान की चमत्कारी प्रतिमा यहाँ पुनः प्रतिष्ठित की गयी। संवत् १५६४ में ओसवाल जातीय छाजेड़ गोत्रीय सेठ जुठिल के प्रपौत्र सेठ सदारंग ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। लगभग १७ वीं शताब्दी तक यहाँ ओसवाल श्रेष्ठियों का बहुत दबदबा था। उसके बाद सेठ मालाशाह संकलेचा के भ्राता नानक जी के साथ हुए राज्य के दुर्व्यवहार के कारण समस्त जैन परिवार तीर्थ यात्रा के बहाने नगर छोड़कर चले गये। आज यहाँ जैनियों का एक भी घर नहीं है। श्रीसंघ द्वारा तीर्थ की वव्यवस्था होती है। प्रभु के जन्म कल्याणक दिवस (पौष कृष्णा १०) पर प्रतिवर्ष यहाँ विराट् मेला लगता है। वांछित मनोकामनाएँ पूर्ण होने की भावना रखने वाले यात्रियों का निरन्तर आवागमन होता रहता है।

नाडलाई तीर्थ

गोडवाड़(मारवाड़) प्रांत के देसूरि जिले में स्थित नाडलाई तीर्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। यहाँ ११ जैन मन्दिर हैं। आदिनाथ भगवान के एक प्राचीन मन्दिर पर संवत् ११८६ का शिलालेख खुदा है, जिसमें समस्त ग्रामीणों के सरपंच ओसवाल श्रेष्ठि श्री भंडारी नागसी जी लक्षमण जी का सम्मान पूर्वक उल्लेख है। इसी मंदिर में विद्यमान एक अन्य शिलालेख में उकेस वंश (ओसवाल) के भंडारी गोत्रीय सागर सेठ के वंशज शंकर आदि श्रावकों द्वारा आदिनाथ भगवान् की बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख है। संवत् १२०० के अन्य लेख में महाराजाधिराज रायपाल के दीवान ठाकुर राजदेव के समक्ष नाडलाई के महाजनों द्वारा मिलकर मन्दिर के लिये घी, तेल, आदि सामग्री भेंट करने के निश्चय का उल्लेख है। यहाँ ओसवालों के लिए ही व्यवहृत 'महाजन' शब्द ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भिन्नमाल (श्रीमाल नगर)

पौराणिक कथाओं में राजस्थान के जालोर प्रान्त में 'भिन्नमाल' नगर का महात्म्य वर्णित है। सतयुग में यह नगर 'श्रीमाल' द्वापर में 'पुष्पमाल', त्रेता में रत्नमाल तथा कलियुग में 'भिन्नमाल' नाम से जाना जाता रहा है। इस नगर ने अनेक उत्थान पतन देखे हैं। एक जैन मन्दिर के खंडहर में संवत् १३३३ का एक शिलालेख मिला है, जिसमें भगवान् महाववीर के यहाँ विचरने का उल्लेख है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विक्रम संवत् से ५०० वर्ष पूर्व पार्श्व प्रभु संतानीय आचार्य स्वयंप्रभ सूरि ने यहाँ के क्षत्रियों को जैन धर्म अंगीकार करवाया। वे श्रीमाली कहलाये—ऐसा उल्लेख पट्टावलियों में है। यहाँ के राजकुमार उपलदेव ने नया नगर ओसिया बसाया। वीराब्द ७० वर्ष में पार्श्व संतानीय आचार्य रत्नप्रभ सूरि से उनके जैन धर्म अंगीकार कर लेने से ओसवाल जाति की स्थापना हुई।

किसी जमाने में यह नगर बहुत समृद्ध था। जिनदास गणि द्वारा संवत् ७३३ में रचित निशीथ चूर्णि में इस नगर की अपार समृद्धि का वर्णन है। संवत् ८०२ में चावड़ा वंश के राजा वनराज ने जब अणहिल पाटण नगर बसाया तो भिन्नमाल के अनेक श्रीमाल श्रेष्टि राजा के आमंत्रण पर पाटण जाकर बसे। उनमें मंत्रीश्वर विमलशाह के पूर्वज श्रेष्ठि नानग भी थे।

'शिशुपालवधम्' नामक प्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ यहीं के थे। नवीन शोध के आधार पर वे श्रीमाल श्रेष्ठि पुत्र थे। आचार्य सिद्धर्षि ने 'उपमितिभव प्रपंच कथा' नामक महान उपाख्यान की रचना भिन्नमाल में ही सम्पन्न की।

सारा नगर और आसपास का क्षेत्र प्राचीन मन्दिरों के अवशेषों से भरा है। यहाँ वर्तमान में स्थिति ११ मन्दिरों में पार्श्वनाथ मन्दिर प्राचीनतम है। इसकी एक प्रतिमा पर संवत् १०११ का लेख उत्कीर्ण है।

जालोर (जाबालिपुर)

राजस्थान के जालोर नगर एवं निकट के स्वर्णगिरि पर्वत पर स्थित दुर्ग में अनेक प्राचीन जैन मन्दिर हैं। विक्रम की दूसरी सदी से यहाँ राजाओं, मन्त्रियों, तथा श्रेष्ठियों द्वारा जैन धर्म की प्रभावना निरंतर होती रही है। वि० संवत् १२६ से १३५ के बीच राजा विक्रमादित्य के वंशज नाहड़ राजा द्वारा यक्षवसति व अष्टापद जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ—ऐसे उल्लेख है। अनेक ग्रन्थों में इस गिरि श्रृंग का 'कनकाचल' नाम से भी उल्लेख है। संवत् १२२१ में राजा कुमारपाल ने यक्षवसति मन्दिर का उद्धार करवाया। उन्होंने यहाँ 'कुमार विहार' नाम से पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराया, जिसमें वादी देवसूरि जी ने बिम्ब प्रतिष्ठा की। संवत् १२४२ के एक लेख में ओसवाल श्रेष्ठि भंडारी पांसू के पुत्र यशोवीर द्वारा 'कुँवर बिहार' के जीर्णोद्धार का उल्लेख है।

विक्रम की ६ठीं सदी में यहाँ स्थित आदि नाथ भगवान के मन्दिर में आचार्य उद्योतन सूरि ने 'कुवलयमाला' ग्रन्थ की रचना सम्पन्न की। संवत् १२९३ के एक लेखानुसार राजा उदय सिंह के मंत्री यशोवीर ने आदिनाथ भगवान् के मन्दिर में अद्भुत कलायुक्त मडंप का निर्माण करवाया। खरतर गच्छ गुर्वावली के अनुसार संवत् १३१० में महामंत्री जयसिंह ने भगवान महावीर के मन्दिर में जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा उल्लासपूर्वक करवायी।

कालांतर में अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर के मन्दिर को भारी क्षति पहुँचाई। अनेक मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये गये, जिनके चिह्न अब भी देखे जा सकते हैं। संवत्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१६८१ में राजा गजसिंह के मंत्री मुणोत जयमल जी द्वारा एक भव्य जिन मन्दिर का निर्माण एवं अन्य मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराये जाने का उल्लेख है। जयमल जी की पत्नी सरूप दे व सोहाग दे द्वारा भी अनेक प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवायी गयीं। संवत् १७१४ में जयमल जी के पुत्र मुणोत नैणसी जोधपुर राज्य के दीवान थे। उन्होंने 'नेणसी री ख्यात' नामक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ की रचना की।

सांचोर (सत्यपुर)

राजस्थान के जालोर प्रांत में स्थित सांचोर ग्राम एक ऐतिहासिक स्थल है। इसका प्राचीन नाम सत्यपुर था। भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी द्वारा रचित 'जग चिंतामणि स्तोत्र' में इस तीर्थ का वर्णन है। राजा विक्रमादित्य के वंशज नाहड़ राजा ने संवत् १३० के लगभग एक विशाल गगनचुम्बी मन्दिर का निर्माण करवाकर आचार्य जज्जिग सूरि के हाथों महावीर प्रभु की स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी थी, ऐसा उल्लेख 'विविध तीर्थकल्प' में मिलता है।

यहाँ के प्राचीन मन्दिरों को बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने भारी क्षति पहुँचायी। उसने अनेक मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये। ऐसी एक मस्जिद में संवत् १३२२ का एक शिलालेख लगा है, जिसके अनुसार ओसवाल श्रेष्ठि छाड़ा भंडारी ने भगवान् महावीर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। संवत् ९६८१ में मुणोत नैणसी के पिता जयमल जी ने यहाँ एक जैन मन्दिर का निर्माण कराया था।

कविवर उपाध्याय समय सुन्दर की यह जन्मभूमि है।

पाली

राजस्थान का पाली नगर जैनों का एक प्राचीन तीर्थ है। इसका प्राचीन नाम पल्ली था। सांडेराव तीर्थ के इतिहास से ज्ञात होता है कि संवत् ९६९ में यशोभद्र सूरि ने सांडेराव के मन्दिर का जिर्णोद्धार कराया तो यहां से विपुल मात्रा में घी मँगवाया गया था। घी के मूल्य की राशि नौ लाख मुद्राओं से श्रीसंघ ने यहाँ नवलखा मन्दिर का निर्माण कराया। संवत् ११४४ में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। मन्दिर में कई प्रतिमाओं पर संवत् ११७८ व १२०१ के लेखों में मन्दिर के मूल नायक स्वरूप भगवान महावीर का उल्लेख है। संवत् १६८६ में ओसवाल जाति के श्रीमाल-चंडालिया गोत्रीय श्रेष्ठि डूंगर और भाखर नामक दो भाईयों ने मंदिर का जीर्णोद्धार करवा कर मूल नायक के रूप में यहाँ पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी। इस आशय का लेख नवलखा मन्दिर में विद्यमान है।

नगर के बाहर पुना गिरि टेकरी पर पार्श्वनाथ भगवान् का एक और मन्दिर है। तेरहवीं सदी में निर्मित इस मन्दिर में प्रतिष्ठापित भव्य बिम्ब का निर्माण मेड़ता निवासी ओसवाल जाति के कुहाड़ गोत्रीय श्रेष्ठि हरखा और उनकी भार्या जयवन्त दे ने करवाया। नगर के मध्य 'लोढ़ां रो बास' मुहल्ले में स्थित शांतिनाथ भगवान के मन्दिर की मूल प्रतिमा की प्रतिष्ठापना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भी उक्त ओसवाल श्रेष्ठि के डूँगर और भाखर नामक भाईयों ने करवायी थी, इस आशय का लेख मूर्ति पर उत्कीर्णित है।

पल्लीवाल गच्छ का उत्पत्ति स्थान यही नगर है। इसी नाम पर ओसवालों का पल्लीवाल गोत्र बना।

नाडोल

राजस्थान के पाली जिलान्तर्गत गोडवाड़ प्रदेश में नाडोल ग्राम के मध्य पद्मप्रभ भगवान् का एक प्राचीन मन्दिर है। शास्त्रों में इसका नन्दपुर नाम से भी उल्लेख है। यह तीर्थ राजा सम्प्रति के भी पूर्व का माना जाता है। एक और अति प्राचीन मन्दिर भगवान नेमिनाथ का है। इस मन्दिर में एक भोयरा है। विक्रम संवत् ३०० पूर्व श्री देवसूरि जी के शिष्य आचार्य मानदेव सूरि ने यहाँ चातुर्मास किया। उस समय तक्षशिला में महामारी का प्रकोप हुआ। वहाँ के श्रीसंघ की प्रार्थना पर आचार्य मानदेव सूरि ने इसी भोंयरे में साधना रत रह कर 'लघु शांति स्तोत्र' की रचना की। कहते हैं इस स्तोत्र के जाप से उक्त महामारी प्रकोप शांत हुआ। उक्त भोंयरे के प्रवेश द्वार पर आचार्यश्री की एक मूर्ति विराजित है। लगभग १७६० वर्षों से वहाँ अखण्ड ज्योति प्रज्वलित है।

संवत् १२२८ के भेंट पत्र से प्रतीत होता है कि चौहान वंशीय राजा आलनदेव ने यहाँ महावीर भगवान का एक मन्दिर बनवाया। संवत् ११८१ में शालिभद्र सूरि, संवत् १२१५ में पद्मचन्द्र गणि, संवत् १२३७ में सुमति सूरि, एवं संवत् १६८६ में विजयदेव सूरि द्वारा मन्दिरों की प्रतिष्ठापना का उल्लेख यहाँ उत्कीर्णित शिलालेखों में पाया जाता है। ओसवालों के भंडारी तथा कोठारी गोत्रों का उत्पत्ति स्थान नाडोल माना जाता है। गाँव के आस-पास अनेक प्राचीन अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं।

बीकानेर

बीकानेर शहर एवं राज्य की स्थापना के समय से ही ओसवाल श्रेष्ठि राज्य के प्रमुख ओहदों पर थे। मन्त्रीश्वर बच्छराज जी बोहित्थरा राव बीकाजी के घनिष्ठ सहयोगी थे। बीकानेर शहर में प्रथम मन्दिर भगवान ऋषभनाथ का है, जो सं० १५६१ में बनकर तैयार हुआ। यहाँ भगवान की चतुर्विंशति प्रतिमा, जो मण्डोवर में सं० १३८० में नवलखा गोत्रीय साह नेमीचन्द्र ने बनवायी थी, लाकर प्रतिष्ठित की गयी। इस मंदिर के भूमिगृह में सं० १६३९ में मन्त्रीश्वर कर्मचन्द द्वारा फतहपुर सीकरी से लायी गयी १०५० धातु प्रतिमाएँ रखी हैं। कहा जाता है कि मुगल सरदार तुरसमखान सिरोही लूट में ये प्रतिमाएँ गलाकर स्वर्ण अंश निकालने के इरादे से सीकरी ले आया, परन्तु बादशाह अकबर की निषेधाज्ञा के कारण उन्हें भंडारस्थ करना पड़ा। मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत उन्हें बादशाह से प्राप्त कर बीकानेर ले आये।

अन्य मन्दिरों में बैदों के चोक का श्री महावीर मन्दिर प्रमुख है। उसमें एक धातु प्रतिमा सं० १५५५ में श्री देवगुप्त सूरि द्वारा प्रतिष्ठित विद्यमान है। भांडासर जी का मन्दिर सं० १५७१ में श्रेष्ठि भांडाशाह ने बनवाया। लक्ष्मीनारायण पार्क में अवस्थित श्री नेमिनाथ मन्दिर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सं- १५७० में कर्मसिंह बच्छावत ने बनवाया। यहाँ भोमियाजी का चमत्कारी मन्दिर भी अवस्थित है। इनके अलावा नाहटों की गुबाड़, डागों की पौल, कोचरों की गुवाड़, रांगड़ी चौक, बेंगाणियों की पोल, गोगा दरवाजा, गंगशाहर रोड आदि स्थानों पर अनेक भव्य जैन मन्दिर ओसवाल श्रेष्ठियों के बनवाये हुए हैं। बीकानैर राज्य के अन्य अनेक शहरों—नापासर, राजलदेसर, सुजानगढ़, चूरू, राजगढ, रिणी, सरदारशहर, हनुमानगढ़, नोहर, भादरा, उदरामसर में ओसवाल श्रेष्ठियों द्वारा निर्मित जैन मन्दिर अवस्थित है।

बीकानेर के श्रेष्ठियों द्वारा अन्यान्य तीर्थों पर भी अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण एवं पुनरूद्धार हुआ है। मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत ने शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थों पर मन्दिरों का निर्माण करवाया। शत्रुञ्जय तीर्थ के विमलवसही मण्डप में वैद मुँथा गोत्रीय श्रेष्ठियों द्वारा संवत् १६५४ में निर्मित छतरियाँ अवस्थित हैं।

हस्तिनापुर

दिल्ली से ६० कि०मी० दूर उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर ग्राम स्थित यह प्राचीनतम तीर्थ है। भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्र बाहुबलि को इस प्रदेश का स्वामी बनाया था। अपने पौत्र श्रेयांसकुमार से भगवान ने यहीं इक्षु रस से पारणा किया था। तीर्थंकर शांतिनाथ, कुँथुनाथ एवं अरनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान कल्याणकों से यह भूमि पावन हुई। अनेक स्तूपों व मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख शास्त्रों में है, पर आज उनका कहीं पता नहीं। जगह-जगह उत्खनन में प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। राजा सम्प्रति ने यहाँ अनेक मन्दिर बनवाये थे।

उपकेश गच्छीय आचार्यों ने संघ सहित इस तीर्थ की यात्राएँ कीं। विक्रम सं० से ३८६ वर्ष पूर्व आचार्य यक्षदेव सूरि ने इस तीर्थ की महिमा उजागर की। विक्रम से २४७ वर्ष पूर्व आचार्य सिद्ध सूरि, १९९ वर्ष पूर्व आचार्य रत्नप्रभ सूरि (चतुर्थ) एवं २३५ वर्ष पूर्व आचार्य कक्क सूरि (चतुर्थ) के यहाँ पधारने का उल्लेख 'उपकेश गच्छ पट्टावली' में मिलता है।

'विविध तीर्थकल्प' के रचयिता आचार्य जिनप्रभ सूरि संवत् १३३५ में दिल्ली से एक विशाल संघ लेकर यहाँ पधारे थे। उन्होंने उक्त तीन तीर्थंकरों के मन्दिरों के साथ भगवान् मल्लिनाथ का भी भव्य मन्दिर यहाँ होने का उल्लेख किया है।

श्रावस्ती

उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती ग्राम के निकट जैनों का एक प्राचीन तीर्थ है जिसे आजकल सहेत महेत के नाम से जाना जाता है। 'वृहत्कल्प' एवं 'विविध तीर्थ कल्प' में इस तीर्थ की महिमा वर्णित है। यह भगवान सम्भवनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान—इन चार कल्याणकों से पावन हुई भूमि है। यहाँ के राजा प्रसेनजित भगवान महावीर के परम भक्त थे। पार्श्वनाथ सन्तानीय केशी मुनि और महावीर के गणधर गौतम का सर्व प्रथम मिलन यहीं हुआ। जामाली (भाणजा) ने भगवान से दिक्षा लेकर उन्हीं के विपरीत प्रचार यहीं शुरू किया था। गोशालक ने यहीं भगवान पर तेजो लेश्या से प्रहार किया था। इस ऐतिहासिक नगरी ने अनेक उत्थान-पतन देखे हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विक्रम की दसवीं शताब्दी में यहाँ राजा मयूरध्वज का शासन था। उनके वंशज अनेक पीढ़ियों तक यहाँ राज्य करते रहे। विंसेट स्मिथ ने उन्हें जैन वंशज माना है। उस समय तक यहाँ अनेक भव्य जैन मन्दिर रहे होंगे। बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने यहाँ के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। परन्तु मीलों के विस्तार में अब भी प्राचीन खण्डहर देखे जा सकते हैं। इस क्षेत्र के उत्खनन में अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ, शिलालेख आदि प्राप्त हुए हैं।

अयोध्या

यह अति प्राचीन नगरी है। आचार्य जिनप्रभ सूरि ने 'विविध तीर्थकल्प' में इसकी महिमा का बखान किया है। यह भगवान ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, अनन्तनाथ जैसे जिनेश्वरों की जन्मभूमि है। भगवान अनन्तनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा कैवल्य—चारों कल्याणक इसी नगरी में हुए। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार उक्त अन्य तीर्थंकरों के च्यवन, दीक्षा एवं केवल ज्ञान कल्याणक भी यहीं हुए। यह रघुकुल तिलक मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की लीला भूमि है। 'विमलवाहन आदि सात कुलकर' यहीं उत्पन्न हुए थे। यहीं महासती सीता ने आत्मशुद्धिका परिचय देने के लिए शील बल से अग्नि कुण्ड को जल कुण्ड में परिवर्तित कर दिया था।

इस नगरी के 'अजितनाथजी के मन्दिर' की पाषाण मूर्तियों पर कई लेख खुदे हुए हैं। पंचतीर्थों पर एक लेख संवत् १४९५ का है, जिसके अनुसार ओसवाल जाति के सुचिंती गोत्रीय साहा भींकू के पुत्र साहा नान्हा ने अपने माता-पिता के कल्याणार्थ यहाँ श्री शांतिनाथ भगवान् का बिम्ब स्थापित किया, जिसकी प्रतिष्ठा उपकेश गच्छीय आचार्य कक्क सूरि ने की।

रत्नपुरी

'विविध तीर्थकल्प' के अनुसार फैजाबाद से १० मील दूर स्थित 'रत्नपुरी' (रोताही ग्राम) एक प्राचीन तीर्थ है। पन्द्रहवें तीर्थकर धर्मनाथ स्वामी के च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य—ये चार कल्याणक यहीं हुए।

यहाँ स्थित जैन मन्दिर में कई लेख उत्कीर्णित हैं। संवत् १५६७ के एक लेख में ओसवाल श्रेष्ठि हासा द्वारा पार्श्वनाथ भगवान् के बिम्ब की प्रतिष्ठा करवाये जाने का उल्लेख है। संवत् १६१७ के एक अन्य प्रतिमा लेख में ओसवाल श्रेष्ठि सा० अमरसी के पौत्र कहाना द्वारा पद्मप्रभु के बिम्ब की स्थापना कराने का उल्लेख है।

पावापुरी

बिहार प्रांत में स्थित भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी जैनों का तीर्थ स्थल है। भगवान के परमभक्त मगध नरेश श्रेणिक के पुत्र अजातशत्रु के शासन काल में भगवान चम्पापुरी से पधार कर राजा हस्तिपाल की रज्जुशाला में ठहरे। अंतिम देशना देकर भगवान यहीं निर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दि वर्धन ने संस्कार स्थल पर चरण स्थापित किये। तब से अनेक बार इस तीर्थ का पुनरुद्धार हुआ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एक हजार वर्ष पूर्व से तीर्थ की व्यवस्था श्वेताम्बर ओसवालों के हाथों में है। गाँव के प्राचीन मन्दिर में ओसवाल श्रेष्ठि निर्मलकुमार सिंह नौलखा ने जीर्ण शीर्ण सभा मण्डप की जगह विशाल सभा मण्डप बनवा दिया है। जल मन्दिर में भगवान महावीर की एक धातु प्रतिमा है, जिस पर सं० १२६० का आचार्य अभयदेव सूरि का प्रतिष्ठा लेख है।

गाँव से कुछ दूर एक आम्र उद्यान है। ऐसा अनुमान है कि भगवान् महावीर का प्रथम समवशरण यहीं हुआ था। श्रीसंघ की ओर से यहाँ एक मन्दिर बनवाया गया है। उसके पास ही अजीमगंज की श्रीमती महताब कुँअर का संवत् १९३२ में बनवाया हुआ महावीर मन्दिर है। पावापुरी में जितने मन्दिर एवं धर्मशालाएँ हैं, प्रायः सब में बिम्ब प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार ओसवाल श्रेष्ठियों ने ही करवाया है। उनमें अजीमगंज के नोलखा परिवार एवं बिहार के सुचंती परिवार प्रमुख हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता श्री पूरणचन्दजी नाहर की माता श्रीमती गुलाब कुमारी की स्मृति में बनी दुमंजिली धर्मशाला तथा धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन कुमारी की स्मृति में बनी दानशाला तीर्थयात्रियों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई है। यात्रियों के सुखवास हेतु राय बहादुर बुधसिंह जी ने भी यहाँ एक धर्मशाला बनवायी है।

चम्पापुरी

अंग देश की प्राचीन नगरी चम्पापुरी जैनों का मुख्य तीर्थ माना जाता है। आचार्य जिन प्रभ सूरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विविध तीर्थकल्प' में इसकी महिमा का बखान किया और इसे 'उत्तमोत्तम नर-नारी रूपी मुक्तामणि' प्रदान करने वाली बताया है। बारहवें तीर्थकर श्री वासुपूज्य का च्यवन, जन्म, प्रवज्या, केवलज्ञान, निर्वाण—पांचों कल्याणक यहीं हुए। सुभद्रा महासती के शील महात्म्य की कथा इसी नगरी से सम्बन्धित है। दधिवाहन राजा की पुत्री महासती चन्दनवाला का जन्म इसी नगरी में हुआ। भगवान महावीर ने यहाँ तीन वर्षाकाल बिताये। राजगृह के सुप्रसिद्ध राजा श्रेणिक के पुत्र कूणिक (अजातशत्रु) ने इसे अपनी राजधानी बनाया। पाण्डु वंशी महादानी राजा कर्ण किसी समय इसके अधिपति रहे। सम्यग्दृष्टि सेठ सुदर्शन की रानी अभया को उपसर्ग इसी नगरी में सहन करने पड़े थे। यहीं चौदह पूर्वधर शय्यंभव सूरि ने अपने प्रिय पुत्र मनक को अल्पायु जान उसके बोधार्थ दशवैकालिक सूत्र की रचना की। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावक कामदेव चम्पा के ही रहने वाले थे। यहीं कुमार नन्दी स्वर्णकार ने 'जीवित स्वामी' की अलंकार विभूषित प्रतिमा सर्व प्रथम निर्मित की।

इस पवित्र तीर्थ में समय-समय पर ओसवाल श्रेष्ठियों ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया तथा बिम्ब स्थापित किये। संवत् १७२५ के एक शिलालेख के अनुसार मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सेठ खानदान के पूर्वज गेहलड़ा गोत्रीय शाह हीरानन्द ने एक भव्य मन्दिर बनवाया। उसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ स्वामी का बिम्ब प्रस्थापित किया। संवत् १८५६ में बीकानेर के ओसवाल श्रेष्ठि कोठारी जेठमल ने चन्द्रप्रभु स्वामी के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा जिनचन्द्र सूरि के हाथों सम्पन्न करवायी। इसी समय गोलछा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि ने वासुपूज्य स्वामी की विम्ब-प्रतिष्ठा करवायी। ऐसे अन्य प्रतिष्ठा लेखों में दूगड खानदान के ओसवाल श्रेष्ठियो एवं महिलाओं के अनेक नाम उत्कीर्णित हैं। धातु प्रतिमाओं के निर्माता एवं प्रतिष्ठापक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल श्रेष्ठियों के नाम अनेक प्रतिमालेखों में द्रष्टव्य है। संवत् १५०९ के एक लेखानुसार साहस नामक ओसवाल श्रावक ने नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित करवायी। संवत् १५५१ में ओसवाल जाति सिंघाड़िया गोत्रीय शाह चम्पा आदि ने आदिनाथ भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी।

राजगृह

आधुनिक बिहार प्रान्त ऐतिहासिक दृष्टि से प्रभावी जैन क्षेत्र रहा है। इस प्रान्त के विभिन्न नगरों तथा ग्रामांचलों में अनेक प्राचीन जैन मन्दिर हैं। राजगृह बीसवें जैन तीर्थंकर मुनि सुव्रतजी का जन्म स्थान था। यहीं वे दीक्षित हुए एवं कायोत्सर्ग कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। यहीं वे निर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान महावीर ने यहां चौदह चातुर्मास किये। जम्बू स्वामी, धन्ना सेठ, शालिभद्र जैसे इतिहास पुरुष राजगृह निवासी थे। राजा श्रेणिक भगवान महावीर के प्रमुख श्रोता थे। उनके पुत्र अजातशत्रु भी भगवान के अनुयायी थे। संवत् १३६४ में रचित 'विविध तीर्थकल्प' में आचार्य जिन प्रभ सूरि ने राजगृह तीर्थ की महिमा का वर्णन किया है।

राजगृह के पाँच प्रमुख गिरि श्रृंगों—विपुलाचल, रत्नगिरि, उदय गिरि, स्वर्ण गिरि एवं वैभार गिरि—पर दिगम्बर और श्वेताम्बर—दोनों ही सम्प्रदायों के अनेक मन्दिर हैं, जिनके निर्माण कर्ता तथा बिम्ब प्रतिष्ठापक ओसवाल श्रेष्ठि रहे हैं। सं० १४१२ के एक शिलालेख में विपुलाचल पर्वत पर श्री मण्डन के पुत्र देवराज व बच्छ राज द्वारा श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। सं० १५२४ के एक लेखानुसार श्रीमालवंशीय श्रावक जीतमल ने वैभार गिरि पर धन्ना सेठ व शालिभद्र की प्रतिमाएँ एवं ग्यारह गणधरों के चरण प्रतिष्ठित कराये, जिनके वैभार गिरि पर ही मोक्ष सिधारने का उल्लेख शास्त्रों में है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के उपाध्याय श्री अमर मुनि की प्रेरणा से वैभार गिरि की तलहटी मे 'वीरायतन' की संस्थापना जन-जीवन के स्वस्थ एवं रचनात्मक विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। आचार्य श्री चन्दना जी इस योजना की मुख्य कार्यवाहिका हैं।

पाटलिपुत्र

बिहार प्रान्त का पाटलिपुत्र (पटना) नगर प्राचीन काल मे पुष्पपुर नाम से जाना जाता था। इसे राजा श्रेणिक के पौत्र उदई (उदयन) राजा ने विक्रम संवत् से ४४४ वर्ष पूर्व बसाया। उदई राजा जैन धर्म का अनुयायी था। उसके पश्चात राज्य सत्ता नन्द वंशीय राजाओं के हाथ आयी। महापद्म नन्द के मन्त्री शकडाल के पुत्र स्थूलिभद्र बहुत तीक्ष्ण बुद्धि थे। उन्होंने जैनाचार्य संभूति विजय से दिक्षा ग्रहण की। उनके चारित्र्य बल की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। राजनर्तकी कोशा (वेश्या?) की चित्रशाला में चातुर्मास कर मुनि स्थूलिभद्र ने अपने आत्मबल का परिचय दिया था। इसी नगर में भद्रबाहु स्वामी से दस पूर्व ज्ञान का अभ्यास कर आर्य स्थूलिभद्र ने १२ वर्षीय भीषण दुष्काल के पश्चात् आगम वाचना की और ग्यारह अंग सुव्यवस्थित किये। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इसे अपनी राजधानी बनाया। वे भद्रबाहु स्वामी से जैनधर्म अंगीकार कर, दीक्षित हो, उनके साथ ही दक्षिण-भारत प्रस्थान कर गये, ऐसा उल्लेख शास्त्रों में हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चाणक्य, महागिरि, वज्र स्वामी, उमास्वाति, पादलिप्त सूरि सरीखे महान पुरुषों ने इस नगर की शोभा बढ़ाई। आचार्य उमास्वाति ने यहाँ 'तत्त्वार्थ सूत्र' की रचना सम्पन्न की। पाटलिपुत्र स्थित प्राचीन जैन मन्दिर ओसवाल श्रेष्ठियों का ही बनवाया हुआ है। मन्दिर में प्रतिष्ठित धातु मूर्तियों पर उत्कीर्णित सं० १४८६ के लेख में दूगड़ गोत्रीय शाह उदयसिंह का उल्लेख है। सं० १४९२ के अन्य लेख में ओसवाल जाति के कांकरिया गोत्रीय शाह सोहड़ एवं उनकी भार्या हीरा देवी द्वारा आदिनाथ भगवान की बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख है। सं० १५०८ के एक लेख में ओसवंशीय शाह खेता डूङ्गरसिंह द्वारा धर्मनाथ भगवान की बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख है। एक अन्य लेख ओसवंशीय जगतसेठ महताबचन्द (गेहलड़ा गोत्रीय) का भी है। विक्रम की सतरहवीं सदी में आगरा के प्रसिद्ध ओसवाल श्रेष्ठि कुँवरपाल सोनपाल लोढ़ा यहाँ संघ लेकर आये। बादशाह जहाँगीर के खास जौहरी श्रेष्ठि हीराचन्द यहीं रहते थे। उन्होंने यहाँ एक मन्दिर और दादाबाड़ी का निर्माण कराया।

क्षत्रिय कुण्ड

बिहार प्रान्त के अन्तर्गत लछवाड़ ग्राम से १ कोस दक्षिण में भगवान महावीर का जन्म स्थान क्षत्रिय कुण्ड है। वि० सं० से ५४३ वर्ष पूर्व इस स्थान से २ कोस पर स्थित पहाड़ी पर ब्राह्मण कुण्ड में ऋषभदत्त ब्राह्मण निवास करता था। भगवान का जीव च्यव कर उसकी भार्या देवानन्दा के गर्भ में आया। तत्पश्चात् क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला की कोख में स्थानान्तरित हुआ। श्वेताम्बर सम्प्रदाय भगवान का च्यवन, जन्म तथा दीक्षा—ये तीन कल्याणक इसी स्थान पर मानते हैं। यहाँ के लोग इसे जन्मस्थान कह कर ही पुकारते हैं। कल्प सूत्र एवं संवत् १३५२ में रचित प्रधानाचार्य गुर्वावली में इस तीर्थ का महात्म्य वर्णित है।

पहाड़ की तलहटी में दो छोटे मन्दिर हैं। उनमें वीर प्रभु की श्यामवर्ण की प्रतिमाएँ स्थित हैं। पहाड़ पर के मन्दिर में भी श्याम वर्ण की ही मूर्ति है। इसकी पंचतीर्थी पर सं० १५५३ का एक लेख खुदा है, जिसमें ओसवाल वंशीय वारलेचा गोत्रीय श्रेष्ठि द्वारा कुँथुनाथ भगवान के बिम्ब की प्रतिष्ठा किये जाने का उल्लेख है।

मधुवन तीर्थ

बिहार प्रान्त में स्थित 'मधुवन' के जैन मन्दिर चर्चित रहे हैं। इन मन्दिरों में कई प्राचीन लेख खुदे हैं। सं० १४९६ के एक लेख में श्रीमाल श्रेष्ठि करमसी और उनकी भार्या मटकू के पुत्र द्वारा कुल के श्रेयार्थ कुंथुनाथ भगवान की बिम्ब प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है। सं० १५५३ के एक अन्य लेख में ओसवंशीय साह पनवरद एवं उनकी भार्या मानू के पुत्र साह वदा के पुत्र कुंवरपाल सोनपाल द्वारा वासु पूज्य स्वामी के बिम्ब की प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है। सं० १५७० के एक लेख के अनुसार ओसवाल जाति के सुराणा गोत्रीय सा० केशव के पौत्र पृथ्वीमल ने श्री अजितनाथ भगवान के बिंब की प्रतिष्ठा करायी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्मेद शिखर तीर्थ

बिहार प्रान्त के मधुबन क्षेत्र में स्थित 'सम्मेद शिखर' अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में से ऋषभ, वासु पूज्य, नेमिनाथ, एवं महावीर को छोड़कर अन्य बीस तीर्थंकरों का निर्वाण (शरीरांत) यहीं हुआ। यह क्षेत्र वर्तमान में 'पार्श्वनाथ हिल्स' के नाम से विख्यात है, जो पार्श्व प्रभु के इस क्षेत्र में तत्कालीन प्रभाव का सूचक है। यहाँ से ४ कोस पर ऋजुबालुका नदी है, जहाँ भगवान महावीर को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। यहाँ मूल प्रतिमाएँ सौधर्मेंद्र द्वारा स्थापित मानी जाती हैं। विक्रम की दूसरी सदी में पादलिप्त सूरी आकाश गामिनीविद्या से यहाँ आते थे—ऐसे उल्लेख शास्त्रों में हैं। आचार्य बप्प भट्ट सूरि के बारे में भी ऐसी दन्तकथाएँ प्रसिद्ध हैं। नौंवीं सदी में आचार्य प्रद्युम्न सूरि ने सात बार यहाँ आकर तीर्थ का जीर्णोद्धार कराया। तेरहवीं सदी के आचार्य देवेन्द्र सूरि रचित 'बन्दास वृत्ति' में यहाँ के जिनालयों के उल्लेख हैं।

तीर्थ की टोंक पर ओसवाल श्रेष्ठियों द्वारा तीर्थ के पुनरुद्धार एवं बिम्ब प्रतिष्ठा के बीसों लेख उत्कीर्णित हैं। संवत् १६७० में आगरा के ओसवाल श्रेष्ठि कुँवरपाल सोनपाल ने तीर्थ के लिए वृहद् संघ समायोजन किया। इन्होने तीर्थ का जीर्णोद्धार कराया। लाखों रुपये व्यय किये। श्री जय कीर्ति रचित 'रास' में इस समायोजन का सांगोपांग वर्णन है। संवत् १६४९ में बादशाह अकबर के एक फरमान में आचार्य हीर विजय जी को यह क्षेत्र भेंट करने का उल्लेख है। संवत् १८०५ (या १८०९) में दिल्ली के बादशाह अहमदशाह ने समूचा पारसनाथ पहाड़ ओसवाल श्रेष्ठि जगतसेठ महताबराय को उपहार में दे दिया। जगत सेठ ने इस क्षेत्र का जीर्णोद्धार करवाने एवं तीर्थ यात्रियों के लिए समुचित व्यवस्था करने का संकल्प लिया। इसी बीच महताबराय का देहांत हो गया। उनके पुत्र खुशालचन्द को बादशाह शाहआलम ने संवत् १८२२ में जगतसेठ की पदवी दी। जगतसेठ खुशालचन्द ने पद्मावती देवी की उपासना की। दैवी प्रत्यक्ष्य से २०तीर्थंकरों के २० निर्वाण स्थल निश्चित कर वहाँ स्तूप बनवाये। यह इस तीर्थ का २१ वाँ जीर्णोद्धार माना जाता है।

संवत् १८२५ में सेठ खुशालचन्द ने यहाँ भोमियांजी का मन्दिर बनवाया। तीर्थ का तत्कालीन प्रबन्ध जैन श्वेताम्बर संघ के हाथ में था। संवत् १९२५ से १९३३ के बीच अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया गया। जब जगतसेठ खानदान का सितारा डूबने लगा तो पहाड़ की मिल्कियत पालगंज के राजा को दे दी गयी। संवत् १९६२ में राजा ने पार्श्वनाथ हिल्स का क्षेत्र बिक्री कर देने की ठानी। संवत् १९७५ में आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी ने दो लाख बयालीस हजार रुपये में यह पावन क्षेत्र खरीद लिया तब से वह जैन श्वेताम्बर संघ के अधीन हुआ। संवत् २०१२से २०१७ के मध्य संघ ने तीर्थ का तेईसवाँ जीर्णोद्धार करवाया। वर्तमान में पहाड़ी की ३१ देहरियों एवं मंदिरों की देखरेख अजीमगंज निवासी ओसवाल श्रेष्ठि श्री बहादुर सिंह जी दूगड़ के सुपुत्रों द्वारा की जाती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रवण बेलगोला

कर्नाटक प्रांत के हासन जिले में चन्द्र गिरि पर्वत पर भगवान् बाहुबली की ५७ फुट उत्तुंग कायोत्सर्ग मुद्रा में विश्व विख्यात पाषाण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह क्षेत्र श्रवण बेलगोला के नाम से जाना जाता है। भगवान् महावीर की श्रमण परम्परा में अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी (विक्रम संवत् के २६० वर्ष पूर्व से २४० वर्ष पूर्व तक) ने उत्तर भारत में १२ वर्षीय भीषण दुष्काल की आशंका से चतुर्विध संघ के साथ दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया। श्रवण बेलगोला स्थित शिलालेखों के अनुसार आचार्य भद्रबाहु चन्द्र गिरि पर्वत के क्षेत्र में आवासित रहे। वे यहीं समाधि मरण को प्राप्त हुए। शिलालेखों एवं इतिहासकारों के उल्लेखानुसार मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त भी आचार्य भद्रबाहु के हाथों दीक्षित हो उनके साथ आये एवं चन्द्रगिरि पर्वत पर ही स्वर्गस्थ हुए। तभी से यह क्षेत्र दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बना। श्रमणों का जलाशय सा दिखने से ही क्षेत्र का नाम श्रवण बेलगोला हुआ।

यहाँ सं० ७१५ का एक लेख उत्कीर्ण है, जिससे उक्त तथ्यों की पुष्टि होती है। पहाड़ की तलहटी में पार्श्वनाथ बस्ती में इसी आशय का एक संवत् ६५७ का शिलालेख भी विद्यमान है। गंग नरेश राजमल्ल के महा सामन्त चामुण्डराय की माता की प्रेरणा से विक्रम संवत् ९९० में चामुण्डराय ने बाहुबलि स्वामी की उक्त भीमकाय मूर्ति का निर्माण करवाकर उसे चन्द्रगिरि पर्वत पर प्रतिस्थापित किया। बाहुबली स्वामी की उक्त प्राचीन प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक बारह वर्षों में एक बार होता है। वर्तमान में यहाँ एक जैन मठ भी है। इन पर्वत श्रृंगों पर अन्य अनेक जिन मन्दिर हैं, जिनमें एक आदीश्वर भगवान् का मन्दिर है।

बंग प्रदेश के तीर्थ

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री प्रबोधचंद्र सेन ने अपने ग्रंथ 'बंगाल का आदि धर्म' में जैन धर्म को ही इस प्रदेश का आदि धर्म माना है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भगवान् महावीर ने बंगाल और बिहार में विचरण किया था। उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की पाद रज से भी यह भूमि पवित्र हुई थी। सम्मेदं शिखर २४ में से बीस तीर्थंकरों का निर्वाण स्थल रहा है। प्राचीन जैन संस्कृति को अक्षुण्ण रखने वाली निरामिष भोजी 'सराक' जाति बंगाल, बिहार, उड़ीसा के ग्रामांचलों में अब भी विद्यमान है। इतिहासकार 'सराक' शब्द को 'श्रावक' शब्द का ही अपभ्रंश मानते हैं। श्रावक शब्द जैन शास्त्रों में जैनधर्मानुयायी सद्गृहस्थ के लिये व्यवहृत होता है। ले० क० डाल्टन (जरनल, एशियाटिक सोसाइटी आफ बेंगाल vol. ३५(१)—१८६६) की विशेष खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानभूम जिले में सर्वप्रथम बसने वाली यही प्रथम सभ्य आर्य जाति थी। एक समय सराक बहुत समृद्ध थे। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये। सम्मेद शिखर के इर्द-गिर्द इनकी बस्तियाँ थी। ऐसी ही बस्तियाँ सिंहभूम जिले में भी बसीं। वहां मन्दिर भी बने, जिसके कारण आज भी कोसी और दामोदर नदियों के किनारे पलमा ओर पाक बीरा (पुरुलिया) चूड़ा और डालमा (मानभूम) पावनपुर (वीरभूम) आदि अंचलों में कायोत्सर्ग मुद्रा की मूर्तियों व देवालयों के अवशेष देखे जा सकते हैं। स्थानीय लोग मूर्तियों की 'वीरम्' कह कर पूजा करते हैं, जो शायद वीर प्रभु का ही अपभ्रंश है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुप्रसिद्ध नगर बर्दवान को तीर्थकर महावीर (वर्धमान) से सम्बन्धित माना जाता है। जैनागमों में वर्णित उग्र वंश के लोग अब भी वहाँ निवास करते हैं। उजानी और आउडपल से प्राप्त भगवान शान्तिनाथ की पाषाण प्रतिमाएँ १० वीं सदी की मानी जाती हैं। वे कलकत्ता बंगीय साहित्य परिषद के एक कक्ष में सुरक्षित हैं। इसी तरह बीरभूम जिला भी भगवान महावीर के लिए प्रयुक्त वीर प्रभु शब्द से सम्बन्धित माना जाता है। यहाँ के ग्रामांचलों में 'सराक' जाति के अनेक परिवार निवास करते हैं।

वर्तमान काल में बंग प्रदेश में ओसवालों का आवागमन सोलहवीं सदी से प्रारम्भ हुआ। वे सर्वप्रथम मुर्शिदाबाद जिले में बसे। रेल सेवा प्रारम्भ होने से इस आवागमन में त्वरा आयी। जल्दी ही उन्होंने पाट, कपड़ा आदि का व्यवसाय स्थापित कर लिया। इस प्रदेश में अनेक भव्य जिन मन्दिरों का निर्माण उनके द्वारा कराया गया। जियागंज व अजीमगंज के जिन-मन्दिरों की प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। कठगोला में बाबू लक्ष्मीपत सिंह दूगड़ निर्मित विशाल उद्यान और मन्दिर कला सौन्दर्य तथा आध्यात्मिकता का संगम है। महिमापुर में जगतसेठ महताब राय ने सं० १८०५ में गंगा के किनारे अमूल्य कसौटी पत्थर से एक भव्य जिन मन्दिर का निर्माण कराया था, जिसे नदी में बाढ़ आ जाने के कारण संवत् १९७५ में अन्यत्र स्थानान्तरित किया गया।

कलकत्ता

संवत् १७५५ में बादशाह आलमगीर के पौत्र बंगाल के तत्कालीन नवाब अजीमुशान ने कुल सोलह हजार रुपए लेकर अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी को सुतानटी, कलिकत्ता और गोविन्दपुर के ग्राम बेच दिये। तभी से कलकत्ता व्यापार का केन्द्र बनने लगा। ओसवाल वंशीय जगतसेठ मानिकचन्द गेहलड़ा ने उसी दरम्यान यहाँ अपनी कोठी कायम की। जगतसेठ के अंग्रेजों से अच्छे सम्बन्ध थे। कुछ अर्शे बाद नवाब मुर्शीदकुलीखाँ ने जगतसेठ की सलाह पर मुर्शिदाबाद शहर बसाया और जगतसेठ भी वहीं जाकर बस गये।

शान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर

कलकत्ता में प्राचीनतम जैन मन्दिर नं० १३९ काटन स्ट्रीट स्थित भगवान शांतिनाथ का पंचायती मन्दिर है। यह मन्दिर श्री जैन श्वेताम्बर संघ द्वारा संस्थापित संचालित है। यहीं से कार्तिक महोत्सव की सवारी निकलती है। संवत् १८८३ से सवारी का हर वर्ष आयोजन संघ की एक महती उपलब्धि है।

सर्व प्रथम कलकत्ता आकर बसने वाले ओसवालों में जौहरी खानदान के लोग प्रमुख थे। उक्त स्थान पर पूर्व में श्री धीरजसिंह जी जौहरी का निवास गृह था। उन्होंने घर में श्री आदिनाथ भगवान का देहरासर बनाया। आदिनाथ भगवान की इस प्रतिमा पर सं० १८५६ का अभिलेख उत्कीर्णित है। श्री जिनचन्द्र सूरि के हाथों बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख भी इसमें है। पहले यह प्रतिमा भागलपुर के मन्दिर में प्रतिष्ठित था। सम्भवतः वहाँ से इसे अजीमगंज ले जाया गया। फिर सं० १८६७ के आस पास कलकत्ता लाकर प्रतिष्ठित किया गया। मन्दिर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्माण के बाद श्री जौहरी ने इसे श्री जैन संघ को समर्पित कर दिया। संवत् १८७१ में आचार्य जिनहर्ष सूरि के हाथों शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा मन्दिर के मूल नायक रूप में प्रतिष्ठित हुई। कालांतर में अनेक वेदियों, बिम्बों, यन्त्रों की स्थापना समय-समय पर ओसवाल श्रेष्ठियों ने श्रद्धापूर्वक करवायी। धातु प्रतिमाओं में प्राचीनतम प्रतिमा भगवान् ऋषभदेव की है, जिस पर सं०१०८३ का अभिलेख है। संवत्१९८० तक जौहरी खानदान के लोग ही मन्दिर के व्यवस्थापक थे। सं० १९९३ में व्यवस्था एक ट्रस्ट के अधीन कर दी गयी। मन्दिर में जवाहरात, सोना, चाँदी का अकूत भंडार सुरक्षित है। इसमें उपाश्रय और सभा मंडप भी बने हुए हैं। सं० २०१० से मन्दिर की व्यवस्था में सहयोग देने के लिए समाज के प्रबुद्ध लोगों की सलाहकार समिति का चयन होता है।

दादावाडी

श्री जैन श्वेताम्बर संघ ने मानिकतल्ला के निकट एक विशाल भूखण्ड खरीदकर एक सुरम्य उद्यान का निर्माण कराया। संवत् १८६७ में चारों दादा आचार्यों की चरण पादुकाएँ उद्यान में प्रतिष्ठित करवायी। संवत् १८६८ में श्री स्थूलिभद्र स्वामी के चरण श्रीसंघ ने स्थापित करवाये। इसी उद्यान में एक मनोहारी सरोवर, कोठी आदि का निर्माण समय-समय पर हुआ। कलकत्ता के जौहरी बाजार के धर्मकाँटे की आमदनी की एक पांती दादावाड़ी को जाती है, जिससे प्रतिवर्षहजारों रुपयों की आय है। कार्तिक महोत्सव में भगवान् की सवारी काटन स्ट्रीट स्थित पंचायती मन्दिर से निकलकर दादावाड़ी आती है। सं० १८८३ से इस सम्बन्धी विवरण बहियों में दर्ज है। कलकत्ता श्री संघ के सभी जीमनवार दादावाड़ी में ही होते हैं। पर्यटकों के लिए उद्यान एवं आसपास के मन्दिर विशेष आकर्षण के केन्द्र हैं।

श्री शांतिनाथ जिनालय

दादावाड़ी क्षेत्र में जैन मन्दिर राय बहादुर बद्रीदास जी मुकीम ने बनवाया। एक बार उन्होंने दादावाड़ी के सामने वाला प्लाट निजी उद्यान बनाने के लिए खरीद लिया। माँ के कहने से उस जगह प्रचुर धन खर्च कर जिनालय का निर्माण कराया। आगरा से भगवान् शीतलनाथ जी की प्रतिमा लाकर आचार्य जिन कल्याण सूरि जी के हाथों प्रतिष्ठा करवायी। यह मन्दिर संवत् १९२६ में निर्मित हुआ। इसे पद पद पर मूल्यवान पत्थर, मीनाकारी, काँच एवं चित्रकारी से सजाया गया है। स्थापत्य एवं शिल्प की दृष्टि से मन्दिर दर्शनीय है। हर वर्ष लाखों प्रमणार्थी एवं दर्शनार्थी आते ही रहते हैं। मन्दिर से संलग्न म्युजियम में तामिल-तेलगू भाषाओं के अलभ्य ताड़पत्रीय प्राचीन ग्रंथों का संग्रह है।

महावीर मन्दिर

दादावाड़ी से संलग्न महावीर स्वामी का भव्य जिनालय संवत् १९३६ में जौहरी सुखलाल जी टांक ने बनवाया। मन्दिर में मूल बिम्ब प्रतिष्ठा आचार्य शान्ति सागर सूरि जी के कर-कमलों से सम्पन्न हुई। मन्दिर में अन्य प्रतिमाएँ भी हैं जिन पर संवत् १८८८ के प्रतिष्ठा लेख हैं। सम्भवतया वे इनके पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठापित रही हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चन्द्रप्रभु जिनालय

दादावाड़ी के पास ही दाहिनी ओर चन्द्रप्रभु का शिखरी जिनालय है। इसका निर्माण चौहरी गणेशीलाल जी खरड़ के सुपुत्र कपूरचन्द्र जी ने करवाया। बिम्ब प्रतिष्ठा सं० २००९ में आचार्य जिनरत्न सूरि के हाथों सम्पन्न हुई। इस प्रतिमा पर आगरा के सुप्रसिद्ध ओसवाल श्रेष्ठि कुँवरपाल सोनपाल लोढ़ा के परिवार का निर्मिनि-लेख है। मन्दिर की व्यवस्था निजी न्यास के अधीन है। मन्दिर से संलग्न स्थान में जीमनवार होता है।

पार्श्वनाथ उपवन

बेलगछिया के पार्श्वनाथ मन्दिर एवं उपवन की जमीन को कलकत्ता के श्री छन्नूलाल जौहरी ने खरीद कर समाज के नाम कर दिया। श्री दयाल चन्द जी सरावगी ने काफी धन खर्च कर वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया। विदेशी पर्यटकों के लिए यह सदा आकर्षण केन्द्र रहा है।

जैन तीर्थों का योगदान

भारत में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण की यात्रा करने वाले जानते हैं कि जैन तीर्थों के निर्माण, पुनरुद्धार और विस्तार में ओसवाल श्रेष्ठियों का मुख्य योगदान है। उनमें समायोजित विपुल ऐतिहासिक सामग्री से पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन के उतार-चढ़ाव का अध्ययन करने में मदद तो मिलती ही है, यह भी पता चलता है कि हिंसा से अहिंसा की ओर अग्रसर होने एवं सत्, चिद्, आनन्द को आकार देने में उसका विशेष योगदान है। तीर्थाटन प्रेमी श्री शरद कुमार साधक के अनुसार----

चरण चिह्न अंकित कर हमने महाकाल के वक्षस्थल पर,
सुना सदा जिन प्रतिमाओं से सत्यं शिवं सुन्दरं का स्वर।
शिलालेख गढ़ मन्दिर देखे देखी अनगढ़ सिंह गुफाएँ
जैन तीर्थ इतिहास आप है शुद्ध-बुद्ध जीवन की राहें।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

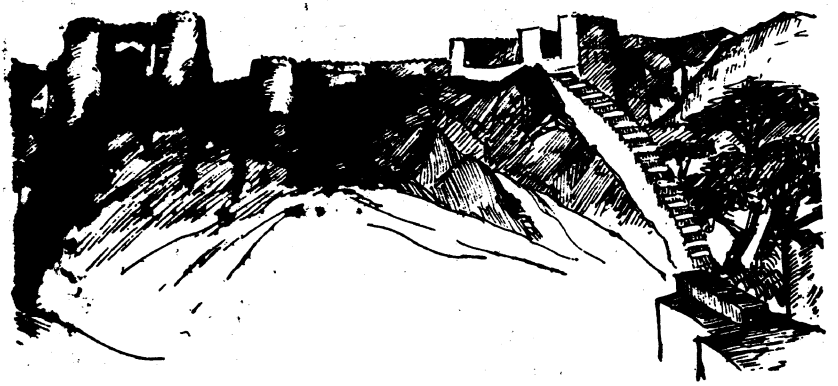

अध्याय

एकादश

ओसवाल इतिहास पुरुष एवं महिलाएँ

ओसवाल जाति के इतिहास पुरुष

महावीर प्रभु के निर्वाण के ७० वर्ष बाद जैन धर्म की प्रभावना के उद्देश्य से संस्थापित ओसवाल समाज में अनेक श्रेष्ठि, सूरमा एवं धर्माचार्य हुए हैं। इतिहास लिखने की परम्परा न होने से उनके वृत्तान्त काल के गर्भ में छिपे रह गये। धर्मग्रन्थों के लेखन की शुरुआत भी वीर निर्वाण के ९८० वर्ष बाद हुई। फिर भी पीढ़ी दर पीढ़ी श्रुत ज्ञान की निर्बाध धारा प्रवाहित रहने से विक्रम की पन्द्रहवीं सदी और उसके बाद रचित ग्रन्थों में उन इतिहास पुरुषों के संक्षिप्त विवरण सुरक्षित हैं, जिन्हें शोधश्रम से सहेज कर प्रस्तुत करने के प्रयास बीसवीं शताब्दी से शुरु हुए।

टॉड एवं उनके बाद की सूची

ल. टेसीटेरी ने राजपूताना के प्राचीन इतिहास को उजागर करने के लिये अनेक दुर्लभ ग्रन्थों एवं गुटकों का अमूल्य संग्रह किया, जो एशियाटिक सोसायटी (तत्कालीन एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल), कलकत्ता के भंडार में अब भी सुरक्षित है। उन्होंने अनेक खोजपूर्ण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रबन्ध एवं रिपोर्टें लिखीं, जो 'बिब्लियोथिका इंडिका' की राजस्थान सीरिज में प्रकाशित हुईं। इसी संग्रह का डिंगल भाषा में लिखित गुटका नं. २७ ओसवालों की गुण-कीर्ति से सम्बन्धित है। 'सेवग मंछाराम का कह्या ओसवालां में दातार हुआ तिणां रा नाम' नामक प्रलेख में ७७ ओसवाल श्रेष्ठियों की सूची है। जिनमें से अनेक नाम और उनसे संबंधित विवरण पूर्णतः अज्ञात हैं। यह सूची ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है एवं इस सम्बन्ध में श्रमसाध्य शोध अपेक्षित है। मैं इस सम्पूर्ण सूची को यथावत दे रहा हूँ:

१. जगडू सोलावत खांप रांका
२. सारंग वास सोरठ
३. करमचन्द मुहतो बछावत सांगेरो
४. भामो बावडियो वास चित्तौड़
५. सूरो गुलहंडियो सम्भवतः वास अकोलै
६. जगडू ललवाणी जोधपुर
७. हीरेजी संघवालेचो, जोधपुर
८. लोढ़ा भैरूदास
९. नेरांभो, अलवलगढ़ (मेवाड़)
१०. श्रीमाल हीरानन्द
११. लोढ़ा कवरो ने सुनपाल तेजसी बरहडियो अकबर पातशाह मानियो
१२. मुंहतो रायमल बैद सोजत
१३. जालौर लोढ़ो हमीर
१४. भीनमाल लोलो
१५. श्रीमाली पदराज नगरथटे
१६. बीजो पारख बाहडमेर
१७. जेठू दीप नगर
१८. हरचन्द नाहटो, नागौर
१९. नरहर सिंघवी, नागौर
२०. डूँगरसी, मांडव नगर खांप फोफलिया
२१. डोसी सूजो पोरवाल जायलवास
२२. कोठारी रणधीर, मेड़ते
२३. राजसी लोढ़ो मेड़ते
२४. ब्रह्मेचो हरखो, मेडते
२५. तेजपाल वस्तुपाल पोरवाल
२६. विमलशाह आबू पर कमठाणां कराया
२७. गाधइयो भैर खरें थारो वास पाटण
२८. व्रधमान वास नये नगर
२९. लालण, अमरावत
३०. श्रीमाल आशकरण नाथावत
३१. बांठियो तेजपाल, भुजनगर
३२. श्रीमाल दिल्ली में
३३. सिरदारमल पैमो ने रत्नो
३४. भारमल बास बैराट देश
३५. साखीदास रेवंत जीरौ-वास तिजारै
३६. अखो चोपड़ो संत्रावे
३७. आसकरण मेड़ते
३८. होला धनावत खांप बागरेचा
३९. साहै मोवास चौकड़ी खांप पोकरणो
४०. आसकरण, नवेनगर
४१. नालसा, मेवाड़
४२. करमो डोसी (७२० में शत्रुञ्जय पर ध्वज चढ़ायो)
४३. पासवीर नाहटो
४४. लोढो गोसल (दुष्काल में अन्न दियो)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४५. डागो रतनसी (८२ में प्रजा थामी)
४६. माँडूगढ सांड कोडियो (मोहर बंटाया)
४७. सोनी भीमवास पाटण
४८. सोनपुर भूमो साह पोपलखार मोहर दिनी
४९. पाल्हो, कुम्भलमेर
५०. मेडते मेघराज
५१. हेमराज नागौर
५२. बलराज छाजू, अजमेर
५३. गोपचन्द दिल्ली जजियो छुड़ायो
५४. साह तालो पीपाड़
५५. हेमौता व्होरो, पीपाड़
५६. सिरदारमल सुराणो, जेतारण
५७. केसराज (७४ अन्न दे प्रजा थामी)
५८. बहत्तर पाल (मेवात में अन्न दियो)
५९. ठाकुरसी
६०. भंवरमल बैराट
६१. केसव धांधियो
६२. बसंतपाल दादरी
६३. गंजबगस गेलड़ो आगरा
६४. राममल हरखारो (अकबर)
६५. श्रीमाल अचलदास, अमरसा
६६. बोहरो बखतौ, देवारो
६७. धेबरो सीहपाल, चाटसू
६८. हीरानन्द साह (पातशाह जहांगीर घर आयो)
६९. आगरे दुर्जण चंद नेमिदास बाणजी
७०. राजसी अमी-शत्रुञ्जय संघ
७१. आसकरण अमीपाल चोपड़ा
७२. खेतसी भोजावत खांप श्रीमाल
७३. साह हरखो नाण जीरो
७४. नाणजी (हाथी दान दियो)
७५. पोरवाल चापंसीदास, पट्टण
७६. श्रीमाल तोतराज
७७. श्रीमाल जसराज, वास खंभायच

उपरोक्त सूची के अवलोकन से यह जाहिर है कि वह २०वीं सदी के प्रारम्भ में बनायी गयी थी। उसमें ११वीं सदी से १९वीं सदी के बीच हुए प्रमुख ओसवाल श्रेष्ठियों के नाम संकलित हैं। श्रीमाल एवं पोरवाल श्रेष्ठियों के नाम भी तालिका में हैं। सम्भवतः उन्हें समग्र ओसवाल समाज का ही एक अंग माना जाता रहा है।

एशियाटिक सोसायटी के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध एक अन्य गुटके (पी.१) में 'सेवग मंछाराम रा कह्या, ओसवालां में दातार हुयां तिणारा नाम' के अतिरिक्त अनेक अन्य ओसवाल श्रेष्ठियों के विविध प्रशस्ति गीत संग्रहित हैं। इतिहास शोधार्थियों के लिये वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनमें से अनेक श्रेष्ठियों की जीवनगाथाएँ और उपलब्ध विवरण ग्रन्थ में दिये जा रहे हैं।

जग्गा शाह

विक्रम संवत् २२२ के लगभग हुए आभानगरी के ओसवाल श्रेष्ठि देशल पुत्र जग्गा शाह का नाम भाट/भोजकों के कवित्तों में बड़ी शान से लिया जाता है। उसने शत्रुञ्जय तीर्थ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के लिये संघ समायोजन किया, जिसमें अनेक राजाओं ने अपने सुरक्षा सैनिक साथ भेजे। अनेक धनपति, यति, साधु, साध्वियाँ, भाट-चारण आदि संघ में शामिल थे। जग्गा शाह ने इस अवसर पर लाखों रूपये मूल्य की गायें, अश्व, सोना, चाँदी, वस्तुएँ आदि दान में दीं। एक कविता निम्नवत है:

आभा नगरी थी आव्यो, जग्गो जग में आण।
साचल परचो जब दियो, तब सीस चढ़ाई आण।।

जुग जीमाड्यो जुगत सु, दीनो दान प्रमाण।
देसल सुत जग दीवलौ, ज्यारी दुनिया माने आण।।

चुप धरी चित भूप, सेना ले आगल चाले।
अडबपति अपार खडबपति मिल्या माले।।

देशासर बहु साथ, खरच सामो कुण भाले।
घन गरजे बरसे नहीं जग्गो जुग बरसे अकाले।।

यति सति साथे घणा, राजा रजवड़ भूप।
बोले भाट विरुदावली, चारण कविता चूप।।

जग जस लीनो दान दे यो जग्गो संघपति भूप।
मिलिया सेवग साँवठा पूरे सक्ख अनूप।।

दान दियो लख गाय, लाखवली तुरंग तबेला।
सोनो सो मण, सात सहस मोतियन की माला।।

रूपा नो नहीं पार, सहस करहा कर माला।
बीये बाइसे भल जागीयो यो ओसवाल भूपाला।।

उपरोक्त कवित्त या उसमें वर्णित तथ्य अन्य प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलते। परन्तु अनेकानेक श्रेष्ठियों की समृद्धि की जो कथाएँ अन्य ग्रन्थों में हैं, उन्हें देखते हुए उक्त विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण भी नहीं लगते।

भैंसा शाह (प्रथम)

विक्रम की छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में उपकेश कुल के आदित्यनाग गोत्र में भैंसा शाह नामक विख्यात महाजन हुए। इनके नाम का विक्रम संवत् ५०८ का एक शिलालेख कोटा राज के अटारू ग्राम में एक जैन मन्दिर के खण्डहरों में मिला है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुन्शी देवी प्रसाद जी (जोधपुर) ने 'राजपूताना की शोध खोज' नामक ग्रन्थ में इन भैंसा शाह का परिचय देते हुए लिखा है कि रोडा विणजारा के साथ भैंसा शाह के व्यापार सम्बन्ध चिरकालीन प्रेम में परिवर्तित हो गये। जिसकी यादगार में दोनों के नाम पर 'भैंसा-रोड़ा ग्राम' बसा, जो आज भी विद्यमान है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाजन श्रेष्टि जेन्तक

उदयपुर से डूङ्गरपुर के मार्ग पर स्थित 'जावर' किसी समय प्रसिद्ध शहर था। यह क्षेत्र मेवाड़ के शासनान्तर्गत रहा। बीच में गुहलोत एवं बागड़ के शासकों के अधीन भी रहा। महाराणा लाखा एवं कुम्भा की जीत के लेख यहाँ मिले हैं। गीत गोविन्द की टीका की प्रशस्ति में इसे 'योगिनीपुर-जावर' लिखा है। यहाँ का मुख्य मन्दिर शान्तिनाथ जिनालय था जो अब भग्नावस्था में है, इसका निर्माण वि.सं. १४७८ में श्रेष्ठि धनपाल ने करवाया था। मराठा काल में यह शहर पूर्णतः उजड़ गया। इस क्षेत्र में बिखरे पड़े अनेक खण्डहर अब भी अपनी कहानी कहने में सक्षम हैं। नाहटा बंधुओं द्वारा प्रकाशित 'बीकानेर जैनलेख संग्रह' में एक सती लेख दिया है जिसमें जावर के ओसवाल श्रेष्ठि बहुरा अभोरा गोत्रीय सुखमल के देवलोक होने पर वि० सं० १७२५ में उनकी भार्या सोभाग दे (सुराणा) के पति से साथ सती होने का उल्लेख है।

जावर प्रदेश प्राचीन काल से ही जस्ते की खानों के लिये प्रसिद्ध रहा है। यहाँ चाँदी भी बड़ी मात्रा में निकलती थी। इसकी पुष्टि कर्नल जेम्स टॉड ने 'राजपूताने का इतिहास' में की है। पहाड़ पर खान उत्खनन से यह समूचा प्रदेश कूपों की शक्ल में परिवर्तित हो गया, अतः कूपगिरी कहलाता है। पुरातत्त्वज्ञों ने इनकी आयु २००० वर्ष मानी है।

इन खानों का स्वामी महाजन जेन्तक था। प्राचीन काल में 'महाजन' शब्द उपकेश वंशीय श्रेष्ठियों के लिये व्यवहृत होता रहा है। यति समलाल जी ने 'महाजन वंश मुक्तावली' में इस तथ्य की पुष्टि की है। मूलतः जेन्तक वट नगर का निवासी था। डा. गौरीशंकर ओझा के अनुसार सिरोही प्रदेश का वसन्तगढ़ ही प्राचीन वट नगर था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री बलवन्तसिंह मेहता ने महाजन जेन्तक का ओसवंशीय होना अधिक सम्भावित माना है।

श्रेष्ठि जेन्तक का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी माना जाता है। उस समय उस प्रदेश पर गुहिल वंशीय राजा शिलादित्य का शासन था। कर्नल टॉड ने भी शिलादित्य के समय जावर की खानों का चालू होना सही माना है। शिलादित्य की राजधानी नागदा थी। जावर नागदा के समीपस्थ प्रसिद्ध उद्योग नगर था, जहाँ खान विशेषज्ञ बेतालियों की बस्ती थी। जेन्तक ने वहां महाजन संघ की अनुमति से अरण्यवासिनी देवी का मन्दिर बनवाया। वह सिद्धासनस्थ हो उसी प्रदेश में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

उक्त तथ्यों की पुष्टि विक्रम संवत् ७०३ के सामोली शिलालेख से होती है। डॉ. ओझा ने यह शिलालेख अजमेर के संग्रहालय को भेंट कर दिया, जहाँ वह आज भी सुरक्षित है। बारह पंक्तियों के इस प्रस्तर लेख की भाषा संस्कृत और लिपी कुटिल है, कहीं-कहीं प्राकृत के लौकिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। लेख की प्रथम पंक्तियों में महिषासुर मर्दिनी देवी चण्डिका की अभ्यर्थना है, फिर राजा शिलादित्य की प्रशस्ति और तत्पश्चात् आरण्यक प्रदेश में आजीविका उत्पन्न करने वाले श्रेष्ठि जेन्तक की जय जयकार। उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु जनता द्वारा स्थापित यह प्राचीनतम शिलालेख है। इसमें 'महाजन' शब्द का प्रयोग तीन बार हुआ है, अतः यह व्यवसाय सूचक न होकर वंश का द्योतक है। प्रो. आदित्यनाथ ने इसमें वर्णित

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अरण्यवासिनी देवी को जैन कुल देवी स्वीकार किया है। ओसवंश के आदि पुरुष उत्पलराज की कुल देवी महिषासुरमर्दिनी चामुण्डा प्रसिद्ध है। श्री मेहता ने अपने अन्वेषण से उक्त शिलालेख के मूल पाठ का शुद्धरूप एवं उसके विशिष्ट अर्थ प्रकाशित कर इतिहास के इस बहुमूल्य पक्ष को उजागर किया है।

महाकवि माघ

संस्कृत के महान् महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' के रचयिता महाकवि माघ भारतीय वाङ्मय के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। विद्वानों के लोक में बड़े गौरव से यह कथन दोहराया जाता है—'मेघे माघे गतं वयः' यानि 'कालिदास के मेघदूत और माघ के शिशुपालवधम् के अध्ययन में ही मैंने अपनी पूरी आयु समाप्त कर दी।' संस्कृत की एक काव्योक्ति में महाकवि माघ के काव्य की श्रेष्ठता व्यक्त करते हुए कहा गया है:

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

भारत के मध्य काल के सांस्कृतिक इतिहास के वाहक ये ही चार महान् ग्रन्थ हैं: कालिदास त्रयी—'रघुवंश, कुमारसम्भव, एवं मेघदूत'; भारवि का 'किरातार्जुनीय'; हर्ष का 'नैषधीय चरित्र' और महाकवि माघ का 'शिशुपालवधम्'—जिनका अध्ययन अध्यापन संस्कृति का अंग माना जाता है। माघ के ब्राह्मण होने की धारणा तर्क संगत नहीं लगती। कालिदास एवं भारवि ब्राह्मण थे। सम्राट हर्ष क्षत्रिय थे। महाकवि माघ ओसवाल कुल के दीपक थे।

माघ के पिता का नाम दंत या दत्त था। ये श्रीमालपुर के श्रीमाल गोत्रीय महाजन श्रेष्ठि थे। दन्त जैनाचार्य सिद्धर्षि के पिता शुभंकर के अग्रज थे। इन्हीं श्रीमाल गोत्रीय श्रेष्ठि पुत्र माघ ने 'शिशुपालवधम्' की रचना की थी। प्रसिद्ध टीकाकार पं. हरगोविन्द शास्त्री ने 'शिशुपाल-वधम्' की टीका में माघ के पिता का नाम 'दत्तक' दिया है। वे सर्वाश्रय नाम से भी प्रसिद्ध थे। माघ के पितामह सुप्रभदेव भिन्नमाल के राजा श्रीवर्मल के धर्म सचिव थे।

माघ श्रीमाल (ओसवाल) थे। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान प्रभाचन्द्र विरचित 'प्रभावक चरित' (रचनाकाल वि.सं. १३३४) में उनके जीवन प्रसंग दिये हैं। इसमें माघ को श्रीमाल गोत्रीय आचार्य सिद्धर्षि का भाई बताया है। सर्वप्रथम डॉ. क्लाट ने 'वियना ऑरयन्टल जरनल' (१८९०) में प्रभावक चरित्र का उदाहरण देते हुए परम्परागत मान्यतानुसार माघ के सिद्धर्षि का भाई होने की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

स्वयं महाकवि माघ ने 'शिशुपालवधम्' के हर अध्याय के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है, जिसमें अपने को श्रीमाल नगर (जो कालान्तर में भिन्नमाल कहलाने लगा) के राजा श्री वर्मल के सचिव श्रेष्ठि सुप्रभदेव का पौत्र कहा है। 'शिशुपालवधम्' की कई हस्तलिखित प्रतियों के अन्त में यह वाक्य मिलता है:

इति श्री भिन्नमालवास्तव्य दत्तक सूनोर्महा-
वैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपाल वधे महाकाव्ये।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस उद्धरण से इस बात की पुष्टि होती है कि माघ भिन्नमाल के रहने वाले थे। उनके पिता का नाम दत्त या दत्तक था। कहते हैं, दत्त बहुत धनाढ्य था। उसकी गिनती श्रीमाल नगर के कोट्याधीशों में थी। महाकवि के पिता महा सुप्रभदेव श्रीमाल नगर नरेश श्री वर्मल के मन्त्री थे। उनकी प्रशस्ति में प्रभावक चरित्र का यह श्लोक दृष्टव्य है:

सुप्रभः पूर्वजो यस्य सुप्रभः प्रतिभावताम्।
बन्धुर्बन्धुरभाग्यश्रीर्यस्य माघः कवीश्वरः।।

ग्रन्थ में इन्हीं सुप्रभदेव को 'सर्व व्यापार मुद्रामृन्मुद्रा कृतार्जनानने' बताया गया है। यह उनके वणिक श्रेष्ठि होने का सूचक है। एक अन्य श्लोक में माघ के पिता, दत्त के 'वित्तौ नुजीवीभ्यो' शब्दों द्वारा वणिक श्रेष्टि होने की पुष्टि होती है। महाकवि माघ के चाचा शुभंकर के नाम के पूर्व जगह जगह श्रेष्ठि शब्द का प्रयोग उनके वणिक होने का परिचायक है। एक अन्य श्लोक में शुभंकर की व्यावसायिक कीर्ति का बखान भी इसी धारणा को पुष्ट करता है। दत्त, शुभंकर, माघ एवं सिद्धर्षि की कल्पवृक्ष की तरह मनचाहा दान देने के लिये ग्रन्थ में जगह जगह प्रशस्ति उनके परम्परा से वणिक श्रेष्ठि होने की ओर इंगित करती है।

जैन आचार्य मेरुतुंग द्वारा सं. १४६१ में रचित प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में राजा भोज द्वारा महाकवि माघ के सत्कार एवं भोजनोपरान्त हुए वार्तालाप का एक श्लोक द्रष्टव्य है—

प्रातस्तं वृत्तान्तमवगम्य श्रीभोजेन श्रीमालेषु
सजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन्पुरुषरत्ने विनष्टे
क्षुधा बाधिते सति भिल्लमाल इति तज्जातेर्नाम निर्ममै।

उक्त श्लोक में महाकवि को श्रीमाल जाति का ही नहीं, अपितु सजातीय भी बताया है। भोज क्षत्रिय थे एवं श्रीमाल जाति भी क्षत्रियों से निस्सृत है। अतः माघ के ब्राह्मण होने का भ्रम यहीं टूट जाता है। एक और संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ पुरातन प्रबन्ध संग्रह में माघ का चरित्र वर्णित है। आचार्य सिद्धर्षि से उनका भ्रातृ संबंध एवं उन्हें श्रीमाल जातीय बताते हुए ग्रन्थकार ने कहा है:

श्रीमालपुरे दत्त-शुभंकरौ भ्रातरौ महर्द्धिकौ श्रीमाल ज्ञातीयौ।
दत्तश्च शुभंकर सुतः सीधाकः दत्तस्य सूनूर्माघः।।

यह निर्विवाद है कि ब्राह्मणों में श्रीमाल शब्द जाति या गोत्र रूप में कभी व्यवहृत नहीं हुआ। ब्राह्मणों में 'श्रीमाल' जाति या गोत्र है ही नहीं। उक्त श्लोकों में माघ एवं शुभंकर को श्रीमाल जातीय बताया गया है। यह माघ के ओसवाल श्रेष्ठि होने का पुष्ट प्रमाण है।

पं. हीरालाल हंसराज ने अपने प्रसिद्ध गुजराती इतिहास ग्रन्थ 'जैन धर्म नो प्राचीन इतिहास' (खण्ड १ प्रकाशित सन् १९०१) में लिखा है: 'राजा श्री वर्मलाम के सुप्रभदेव नामक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मन्त्री था। जिसके दो पुत्र थे—दत्त और शुभंकर। दत्त के माघ नामक महाविद्वान् पुत्र हुआ, जिसकी अवंतीराज भोज से घनिष्ठ मित्रता थी एवं जिसने शिशुपालवध नामक अद्भुत काव्य रचा।'

हिन्दी विश्वकोष में महाकवि माघ को जैनाचार्य सिद्धर्षि का भाई एवं श्रीमाल गोत्रीय श्रेष्ठि का पुत्र लिखा है।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा. रघुवीर सिंह उन्हें ओसवाल वंशीय मानते हैं।

भारतीय दर्शन के मूर्धन्य मनीषी पं. दलसुख भाई मालवणिया के अनुसार 'श्रीमाल नगर से गुजरात आये कई जाति के लोग श्रीमाली कहे जाते हैं—उनमें बनिया भी हैं और ब्राह्मण भी'। मालवणिया जी को भी महाकवि का श्रीमाल गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि होना ही युक्ति संगत लगता है।

जोधपुर विश्वविद्यालय के कला शिक्षा संकाय के अधिष्ठाता एवं जैन दर्शन के उद्भट विद्वान डा. दयानन्द भार्गव के अनुसार "महाकवि माघ के श्रीमाली ब्राह्मण होने की भ्रांत धारणा उनके 'शिशुपालवधम्' में जैनों की आलोचना को लेकर ही बनी होगी। परन्तु उनके श्रीमाली ब्राह्मण होने का उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। अपितु भिन्नमाल (श्रीमाल नगर) में हर साल जैन-वणिक समाज द्वारा महाकवि माघ का जयन्ती उत्सव मनाया जाना एवं भिन्नमाल

महा कवि माघ (बगीचे में)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नगर के त्रिकोणात्मक बगीचे में स्तूप पर संस्थापित महाकवि की मूर्ति में उन्हें धोती पहने हुए एवं सर पर पगड़ी बाँधे हुए दिखाया जाना—इस बात का द्योतक है कि वे जैन वैश्य परिवार में ही जन्मे थे। यह तर्क कि 'संस्कृत का महापण्डित होना वैश्य संस्कृति से मेल नहीं खाता'—खोखला है, क्योंकि मध्यकालीन जैनाचार्यों ने संस्कृत में विपुल साहित्य सृजन किया है।''

भिन्नमाल के शिव बाड़ी (श्रीमालियों की बगीची) के हाल में महाकवि माघ का एक चित्र टंगा हुआ है जिसमें उन्हें श्रीमाली ब्राह्मण बताया गया है। इस चित्र में महाकवि माघ का जन्म सं. ६८२ एवं गोत्र मौदगलस वर्णित है। किन्तु किसी भी ग्रन्थ में उनके इस गोत्र का उल्लेख नहीं मिलता न ही जाति रूप में ब्राह्मण होने का उल्लेख मिलता है। सच तो यह है कि ग्रन्थों में उन्हें 'श्रीमाली' भी कहीं घोषित नहीं किया गया जो ब्राह्मण संदर्भ में अपेक्षित था। माघ का उल्लेख 'श्रीमाल' रूप में ही मिलता है जो उनके वणिक होने की स्पष्ट घोषणा है।

महादानी श्री ''माघ'' महाकवि (शिव बाड़ी में)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उक्त बगीचे में स्थापित मूर्ति एवं शिवबाड़ी में टंगे चित्र का वेषभूषा वैषम्य भी दिलचस्प है। जहाँ मूर्ति में महाकवि के गले में कीमती पत्थरों (जवाहरातों) का गलहार उत्कीर्ण है वहां शिवबाड़ी के चित्र में उन्हें रुद्राक्ष की माला पहने चित्रित किया गया है। मूर्ति की पगड़ी एवं कानों पर भी मणि मुक्ताएँ सज्जित हैं जो चित्र में नहीं हैं।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर महाकवि माघ श्रीमाल गोत्रीय ओसवाल ही थे, इसमें कोई संदेह नहीं।

माघ का समय छठीं शताब्दी है

महाकवि का समय कुछ इतिहासकार विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते हैं, जो सही नहीं लगता। जैन आचार्य सिद्धर्षि ने अपने अनमोल रूपक ग्रन्थ 'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' की रचना भिन्नमाल नगर में संवत् ९६२ में सम्पन्न की—ऐसी मान्यता है। इसे अगर वीर संवत् मानें तो सिद्धर्षि का समय वि.सं. ४९२ ठहरता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान प्रो. पीटरसन ने भी इसे वीर संवत् ही माना है। तदनुसार उनके समकालीन माघ का समय उनसे २५ वर्ष आगे/पीछे तक माना जा सकता है। इस तरह माघ का समय पांचवी/छठीं सदी ठहरता है। आचार्य सिद्धर्षि एवं महाकवि माघ दोनों के समय को लेकर मत वैभिन्य अवश्य है। परन्तु इसकी जनक 'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' की संवत् ९६२ वाली उक्ति ही रही होगी, जिसे कुछ इतिहासकार कोई विशेषण न होने से वि.सं. मान बैठे हैं।

आनन्दवर्द्धनाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में 'शिशुपालवधम्' के श्लोकों को उद्धरण रूप में प्रस्तुत किया है। आनन्दवर्द्धनाचार्य का समय विक्रम की ९वीं सदी माना जाता है। अतः महाकवि माघ का समय निःसंदेह उनके पूर्व ठहरता है।

डा. हरमन जेकोबी माघ का समय सप्तम शताब्दी से पूर्व मानते हैं।

सिरोही जिले के बसन्तगढ़ ग्राम में खीमेल माता के मन्दिर के पास राजा श्रीवर्मल का एक शिलालेख वि.सं. ६८२ का मिला है। सातवीं शताब्दी में भारत आये प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन सांग ने भी भिन्नसाल के शासक राजा वर्मलात का उल्लेख किया है। इस आधार पर राजा के धर्म सचिव सर्वाश्रय सुप्रभदेव के पौत्र माघ का समय, दो पीढ़ियों में ५० वर्षों तक का व्यवधान मानकर, वि.सं. ७३२ के आसपास ठहरता है।

माघ पुरस्कार से विभूषित श्री जगदीशचन्द्र प्राणशंकर आचार्य ने अपने एक शोध प्रबन्ध में (जो महाकवि माघ स्मारिका, १९८७ में प्रकाशित हुआ है) श्रृंगधर नामक कलाकार को माघ का समकालीन माना है। श्रृंगधर का समय विक्रम की सातवीं सदी माना जाता है। लामा तारानाथ के इतिहास में उनकी कला प्रवृत्तियों का संकेत है। प्रतिहार शासक शील के राज्यकाल में श्रृंगधर ने खूब समृद्धि प्राप्त की थी। माघ के ८० वर्ष बाद रचित 'कुवलयमाला' में चित्रकला का सूक्ष्मता से विशद वर्णन है। कदाचित् यह श्रृंगधर का ही प्रभाव था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पं. हीरालाल हंसराज ने अपने इतिहास ग्रन्थ में वि.सं. ५९२ में सिद्धसूरि दिवंगत हुए लिखा है। अतः उनके अग्रज माघ का समय छठीं शताब्दी माना जा सकता है।

आचार्य सिद्धर्षि ने अपने ग्रन्थ 'उपमितिभव प्रपंच कथा' में आचार्य हरिभद्र सूरि को अपना धर्म बोधक गुरु माना है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार हरिभद्र सूरि सं. ५८५ में दिवंगत हुए। इसकी पुष्टि प्रद्युम्न सूरि के विचारसार प्रकरण, समय सुन्दर के गाथा सहस्री, कुलमण्डन के विचारामृत संग्रह, धर्म सागर के तपागच्छ गुर्वावली, मुनिचन्द्र की गुर्वावली, प्रो. के.बी. अभ्यंकर की टीका एवं अन्य अनेक ग्रन्थों से होती है। अतः हरिभद्र के शिष्य सिद्धर्षि एवं उनके समवय चचेरे भाई माघ का समय छठीं सदी मानना न्याय संगत है।

महाकवि के जीवन प्रसंग

महाकवि के जीवन प्रसंगों के बारे में बहुत कम ज्ञात है। वल्लाल पंडित द्वारा रचित 'भोज प्रबन्ध' में माघ कवि एवं उनकी धर्मपत्नी की दानशीलता का वर्णन है। अवन्तीराज भोज के साथ उनकी मित्रता सर्व प्रसिद्ध है। अनेक इतिहासकार महाकवि माघ को धारानगरी के राजा भोज से जोड़ने की भूल कर बैठते हैं जिनका समय अवश्य ही ग्यारहवीं सदी था। जैनाचार्य मेरुतुङ्ग ने वि.सं. १४६१ में रचित अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में उनका चरित्र वर्णन करते हुए उन्हें पुरुष रत्न कहा है। श्री प्रभाचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'प्रभावक चरित' में महाकवि के बारे में कहा है:

तस्य श्री भोज भूपाल बालमित्रं कृतीश्वरः,
श्री माघो नन्दनो ब्राह्मी स्यन्दनः शीलचन्दनः।
एवं युगीन लोकस्य सार सारस्वतायितम्,
शिशुपालवधम् काव्यं प्रशास्तिर्यस्य शाश्वती।।

माघ सरस्वती के पुजारी थे। किसी समय उन पर लक्ष्मी की भी असीम कृपा थी। वे दानशीलता के लिये प्रसिद्ध थे। एक बार राजा भोज माघ की कीर्ति सुनकर उनका वैभव देखने श्रीमाल नगर आया। तभी से माघ उसके अनन्य मित्र बन गये। एक समय ऐसा आया, जब दान देते देते माघ दरिद्र हो गया। वह भोज की धारा नगरी में जा बसा। इसी निर्धनता की अवस्था में उसने अपनी पत्नी माल्हणा देवी को 'शिशुपालवधम्' की प्रति देकर राजा भोज के पास भेजा। भोज ने महाकाव्य खोल कर जो पहला ही श्लोक पढ़ा तो मुग्ध हो गया। 'सारी पृथ्वी उस एक श्लोक पर न्योछावर की जा सकती है'—ऐसा उसका काव्य सौन्दर्य था। भोज ने माल्हणा देवी को एक लाख मुद्राएं देकर विदा किया। जनश्रुति है कि माल्हणा देवी को राह में याचक मिल गये। उसने सारा धन उनकों बांट दिया। घर पहुंचने पर महाकवि को बताया तो कहने लगे—'तुम मेरी मूर्तिमती कीर्ति हो।' ऐसे परम दानी थे पति-पत्नी।

ऐसी दरिद्रावस्था में ही महाकवि का प्राणान्त हुआ। भोजप्रबन्ध के अनुसार जब माघ के पास कुछ न बचा और याचकों की भीड़ बढ़ती ही गयी तो उन्होंने दरिद्रता को कोसा। माघ की ऐसी अवस्था देखकर याचक तो चले गये पर याचकों के निराश लौट जाने पर माघ ने अपने प्राणों को भी निकल जाने को कहा और प्राण त्याग दिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भैंसा शाह (द्वितीय)

विक्रम की दसवीं शताब्दी में हुए चन्देरी राठौड़ राजा खरहत्थ सिंह के चार पुत्र थे: अम्बदेव, निम्बदेव, भैंसाशाह, और आसपाल। एक यवन फौज का सामना करते हुए चारों पुत्र घायल हो गये। राजा ने अनेक वैद्य हकीम बुलवाये, पर दशा बिगड़ती ही चली गयी। उस समय आचार्य जिनदत्त सूरि वहाँ पधारे। उन्होंने अपने मन्त्रबल से राजकुमारों को स्वस्थ कर दिया। तब से इस परिवार ने जैन धर्म अंगीकार किया। राजा के प्रथम पुत्र अम्बदेव से चोरड़िया गोत्र की उत्पत्ति हुई, जिससे आगे चलकर 'रामपुरिया शाखा' का जन्म हुआ। द्वितीय पुत्र निम्बदेव से भटनेरा चौधरी गोत्र बने। चौथे पुत्र आसपाल जी से आसाणी/ओसतवाल गोत्र बने।

तीसरे पुत्र भैंसा बड़े प्रतापी थे। उनके पाँच पुत्र थे : बड़े पुत्र कुँवर जी से सावण सुखा गोत्र बना—जिसकी आगे चलकर गुगलिया-गुलगुलिया शाखाएँ हुईं। द्वितीय पुत्र गेलोजी से गोलछा गोत्र बना। तीसरे पुत्र बुच्चा शाह से बुच्चा गोत्र बना। चौथे पुत्र पाशुजी से पारख गोत्र की उत्पत्ति हुई। पाँचवें पुत्र गदाशाह से गधैया गोत्र बना।

इन भैंसाशाह का निबास स्थान डीडवाणा था। इन्होंने कई जैन मन्दिर एवं कुएँ बनवाये। नागौर का बड़ा जैन मन्दिर इन्हीं भैंसाशाह का बनाया हुआ माना जाता है। इस मन्दिर में एक प्राचीन सर्वधातुमय विशाल प्रतिमा है।

भैंसा शाह की प्रशस्ति में कवि हल्ल का एक प्राचीन कवित्त इस प्रकार है—

छपन कोटि गुजरात बात जग सयल प्रसिद्धि।
सचायिका प्रसिद्ध (प्रसत्र) रहे सिर पै सिधि दिधि।।

नौ खण्ड हुवाज नांव, राव राणा सहु जाणे।
ग्यारा सै ने आठ (११०८) हल्ल कवि कित्ति बखाणै।।

अइच्च (आदित्य गोत्र) गोत मंडण मुगर सुधन सुखेति वाइया।
भैंसेज सेठ खरहथ तणे, अवनी बोल निबाहिया।।

हल्ल कवि के अनुसार भैंसाशाह आदित्य गोत्र के थे। एक अन्य कवि ने उनका गोत्र नाहटा बताया है। उनका निवासस्थान भी भिन्न-भिन्न नगर हैं। हो सकता है कि एक ही नाम के दो अलग-अलग व्यक्ति रहे हों, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे ओसवाल श्रेष्ठि थे। 'भीनमाल दर्शन' (लेखक भँवरलाल सेठिया) में दिये गये वर्णन के अनुसार सुप्रसिद्ध सेठ भैंसाशाह भीनमाल का रहने वाला था। सेठ की पत्नी का नाम सुगनीबाई था। इनके ७ पुत्र तथा ५ पुत्रियां थीं। बड़ा पुत्र धवल गुणी और होनहार था। इन पर लक्ष्मी की कृपा थी। उपकेश गच्छ के ४८ वें पट्टधर कक्कसूरि के आचार्य पद महोत्सव पर भैंसाशाह ने ७ लाख रुपया खर्च किया था। एक कवि ने उस समय का वर्णन इस पद में किया है:

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बप्प नाग नाहटा जाति,
जिनके वीर शिरोमणि थे,
आठ चालीसवें पट्ट विराजे,
कक्कसूरिश सुरमणि थे।
भैंसाशाह का कष्ट मिटाया,
कंडा स्वर्ण बनाया था,
सिक्का चलाया वीर भैंसा ने,
जिसमें गरिया पद पाया था।।

इनकी माता ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला। मार्ग में पाटण नगर में सारा धन खर्च हो जाने से माता ने अपने पुत्र भैंसाशाह द्वारा दी गयी एक डिबिया गिरवी रखकर उधार धन लेना चाहा; किन्तु पाटण के सेठ ईश्वरदास ने धन देने से इन्कार कर दिया और व्यंग्य में कहा कि 'भैंसा तो मेरे यहाँ पानी भरता है।' माता को बड़ा क्रोध आया। भैंसाशाह को खबर भिजवायी गयी। उसने पाटण के बाजार का समस्त उपलब्ध घी-तेल खरीद लेने का आदेश दिया। मुनीम ने ऐसा ही किया। व्यापारियों ने ऊँचे दामों में माल बेच तो दिया पर सारा माल हाजिर न कर पाये। कोई चारा न देखकर भैंसाशाह के पास गये। उसने माँ से माफी मंगवाई एवं पाटण के गुजराती व्यापारियों से धोती की एक लांग खुली रखने का वचन लिया। उक्त घटना का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। यतियों की मनगढ़न्त परिहासोक्ति भी हो सकती है। निःसन्देह भैंसा शाह अतुल वैभव के स्वामी रहे होंगे।

इन भैंसाशाह का समय विक्रम संवत् ११०८ माना जाता है।

श्रीमाल श्रेष्ठि उदयन

चालुक्य राज जयसिंह सिद्धराज के शासन काल में उदयन नामक वणिक श्रेष्ठि ने खूब यश अर्जित किया। आचार्य मेरुतुङ्ग की प्रसिद्ध कृति 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार वे श्रीमाल जाति के प्रसिद्ध उद्योगपति थे। मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित प्राचीन संस्कृत प्रबन्ध 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' में मन्त्री उदयन विषयक निम्न उल्लेख द्रष्टव्य है: 'मरुस्थल्यां जाबालिपुर समीपे बाघराग्रामे श्रीमालज्ञातीय उदयनो वणिकः।' प्रबन्ध के अनुसार वे श्रेष्ठि बोहित्थ के वंशज थे। इनके पिता का नाम वीर देव था। इसकी पुष्टि पंडित हीरालाल हंसराज ने अपने ग्रन्थ 'जैन धर्म नो प्राचीन इतिहास' (१९०२) में की है। उनके अनुसार श्रेष्ठि उदयन मूलतः मारवाड़ के थे। वे कर्णावटी (अहमदाबाद) जाकर बस गये। वहाँ उन्होंने एक भव्य जैन मन्दिर का निर्माण कराया। उदयन के चार पुत्र थे : वाघभट्ट, चाहड, अम्बड और सोला। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में श्रेष्ठि उदयन के पुत्रों—बाहड़ और चाहड़ का उल्लेख है—'स ततः श्रुत्वा पश्चादव्याकृत्य महिलामुत्थाप्य सुत बाहड़—चाहड़ान्वितः आशापल्लीं गतः।' एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार उनका मूलनिवास जालौर था—वही पुरातन प्रबन्ध संग्रह का जाबालिपुर है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उदयन कर्णावटी आकर एक चित्रकार के घर ठहरे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति चारों तरफ फैलने लगी। उन्होंने बहुत सम्पत्ति अर्जित की। चालुक्यराज सिद्धराज ने उन्हें खम्भात का शासक नियुक्त किया। प्रबन्ध चिंतामणि के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र की ८ वर्ष की वय में दिक्षा का श्रेय भी श्रेष्ठि उदयन को ही है। उन्होंने हेमचन्द्र के चाचा-चाची को मना कर दिक्षा सम्पन्न करवाई।

सिद्धराज जयसिंह के कोई पुत्र न था। चाचा त्रिभुवनपाल और उनके पुत्र कुमारपाल से, वे एक रखैल की सन्तानें होने के कारण घृणा करते थे। 'कुमारपालप्रबन्ध' के अनुसार सिद्धराज ने उदयन के पुत्र चाहड को गोद लिया एवं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया। आचार्य मेरुतुङ्ग सूरि ने भी 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में श्रेष्ठि उदयन के 'चाहड़ नामा कुमारः श्रीसिद्धराज प्रतिपन्नपुत्रः' माना है। परन्तु होनी को यह मंजूर नहीं था। कुमारपाल जब देश से बहिष्कृत इधर-उधर भटक रहा था, तब श्रेष्ठि उदयन ने उसे भी शरण दी। बाद में सिद्धराज की मृत्यु होते ही अपने बहनोई कन्हड़देव, जो जयसिंह सिद्धराज के मुख्य सेनापति थे, की सहायता से कुमारपाल ने राज्य पर अधिकार कर लिया। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने उदयन के ज्येष्ठ पुत्र बाघभट्ट को अपना मन्त्री नियुक्त किया। उदयन के तृतीय पुत्र अम्बड को सेनापति बनाया। चाहड़ अन्हिलवाड़ा छोड़कर सपादलक्ष के राजा अर्णोराज से सहायता लेने गया। अर्णोराज ने कुमारपाल का बहनोई होते हुए भी चाहड़ को आश्रय दिया एवं गुजरात पर आक्रमण कर दिया। लेकिन पराजित हुआ। चालुक्यराज कुमारपाल ने अर्णोराज एवं चाहड़ दोनों को माफ कर दिया। अर्णोराज सपादलक्ष लौट गया। चाहड़ को कुमारपाल ने अपना राज्याधिकारी नियुक्त कर दिया। अर्णोराज खिसियाया हुआ तो था ही, उसने कुछ समय बाद (सं. ११५०) रानी देवलदेवी, जो कुमारपाल की बहन थी, को अपमानित करके महल से बाहर निकाल दिया। कुमार पाल को जब यह खबर हुई तो तुरन्त उसने चाहड़ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना सहित सपादलक्ष पर आक्रमण कर दिया। अर्णोराज फिर पराजित हुआ। तब सपादलक्ष चालुक्य साम्राज्य का अंग बना लिया गया। इस युद्ध में कुमारपाला को अपार धन हाथ लगा—७ करोड़ स्वर्ण मोहरें एवं ७०० अरबी घोड़े उसके अधिकार मे आये। आचार्य मेरुतुङ्ग सूरि ने इस युद्ध के सन्दर्भ मे एक प्रसङ्ग का वर्णन किया है। युद्ध में हुए व्यय के आंकड़े सुनकर सेनापति चाहड़ को गरीब प्रजा में एक लाख रूपये दान स्वरूप वितरित करने पर बुरा भला कहते हुए कुमारपाल ने व्यंग्य किया—'इतना धन तो मैं भी दान देने की हिमाकत न करता।' चाहड़ ने प्रत्युत्तर दिया—'क्योंकि सम्राट राजपुत्र नहीं हैं, जबकि मैं राजपुत्र हूँ।' उत्तर सुनकर सम्राट कुमारपाल चुप हो गये।

एक बार कुमारपाल की आज्ञा से उदयन को सोरथ राज्य से युद्ध करने जाना पड़ा। वर्धमानपुरा में सेना का पड़ाव था। उदयन विमलाचल की प्रदक्षिणा करने गया। वहाँ काष्ठ मन्दिर में उसने एक चूहे को पूजा सामग्री अपवित्र करते देखा। तभी उसने प्रतिज्ञा की कि वह एक सुदृढ़ पाषाण मन्दिर बनवाएगा। मन्दिर बनने तक उसने दिन में एक वक्त के सिवाय भोजन का परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् युद्ध में संलग्न हो गया। दुर्भाग्य से युद्ध में उसकी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पराजय हुई और वह गंभीर रूप से घायल हो गया। उसके पुत्र वाग्भट्ट एवं अम्बड के आश्वासन देने पर कि वे अवश्य उसकी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे—उदयन ने शान्तिपूर्वक सांस छोड़ी। कुमारपाल को जब उसकी मृत्यु का समाचार मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ। आचार्य मेरुतङ्ग के अनुसार वि.सं. ११५० में श्रेष्ठि उदयन का निधन हुआ। प्रभावक चरित्र के अनुसार उनके पुत्र वाग्भट्ट ने एक करोड़ मुद्राएँ खर्च कर शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया एवं पिता के अन्तिम मनोरथ को पूर्ण किया।

उदयन के तृतीय पुत्र अम्बड को भी सम्राट् ने अपनी सेवा में सेनापति नियुक्त कर रखा था। सन् ११५६ में दक्षिण के प्रदेशों को जीतने के लिये सम्राट ने अम्बड के नायकत्व में सेना भेजी। युद्ध में कोंकणराज मल्लिकार्जुन पराजित हुआ। उसका सिर काटकर सम्राट की सेवा में अन्हिलवाडा लाया गया। सम्राट इससे बहुत खुश हुए। उन्होंने सेनापति अम्बड़ को 'राज पितामह' घोषित किया।

पाश्चात्य विद्वान् फोरबेस द्वारा सम्पादित 'रासमाला' के अनुसार श्रीमाल श्रेष्ठि मेहता उदयन के तीन पुत्र थे। वाग्भट्ट, बाहड़ और आम्रभट्ट। बाहड़ ने संवत् १२११ में शत्रुञ्जय की तलहटी में वाहड़ पुरा ग्राम बसाया। आम्रभट्ट में भड़ौंच में जैन मन्दिर का निर्माण कराया।

वि.सं. १२३० में कुमारपाल का देहान्त हुआ। उनके पश्चात् उनका भतीजा अजयपाल गद्दी पर बैठा।

दानवीर जगडू शाह

गुजरात के श्रीमाल वंशीय धनकुबेर जगडू शाह ने विक्रम संवत् १३११ से १३२३ के बीच पड़े महादुष्काल के समय लाखों मन अनाज जन साधारण में वितरित कर लाखों लोगों को काल के कराल मुख से बचाया एवं 'जग नो जीवाडणहार' विरुद पाया। भाटों ने इस दानवीर की प्रशस्ति में अनेक पदों एवं ख्यातों की रचना की। श्री सर्वानन्द सूरि ने 'झगडू चरित्र' महाकाव्य की रचना कर उन्हें अमरत्व प्रदान किया।

जगडू सूरत का रहने वाला था। उनके पिता का नाम सोलाहा था। शहर में नागपुरी तपागच्छ के आचार्य सर्वदेव सूरि विराज रहे थे। जगडू गुरु की सेवा किया करता था। आर्थिक दृष्टि से कमजोर था। पेट न भरता था। एक दिन जगडू पौषध कर रहा था। गुरु ने उसके ललाट की रेखाएँ देख ज्योतिष से उसके उज्ज्वल भविष्य का अनुमान कर लिया। कहते हैं उसे धर्म प्रभावक जान गुरु ने 'तेजमतुरो सिद्ध-रसायन विद्या' सिखाई, जिसके फलस्वरूप वह जल्दी ही मालामाल हो गया। 'तेजमतुरी' स्वर्ण बनाने की यौगिक क्रिया है।

गुजरात में उस समय गुर्जर राजा विशाल देव (वि.सं. १२९८-१३१८) का राज्य था। मंत्रीश्वर तेजपाल वस्तुपाल की सहायता से जगडूशाह ने कच्छ में भद्रेश्वर के विशाल प्रकोट का निर्माण करवाया। 'जगडू शाह की ख्यात' के अनुसार उसने विभिन्न नगरों में कुल ७० भव्य मन्दिरों का निर्माण एवं ९०० प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। उसने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये चतुर्विध संघ निकाला।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् १३११ में बारह बरस का भयंकर अकाल पड़ा। अन्न सुवर्ण से महंगा हो गया। जगडू शाह ने अपना अर्थ तथा अन्न भण्डार जन कल्याण के लिये समर्पित कर दिया। कहते हैं आसपास के अन्य प्रदेशों के शासकों की प्रार्थना पर लाखों मन धान अन्य प्रदेशों को भिजवाया।

कुबेर के समान दानवीर इस श्रीमाल श्रेष्ठि का ७२ वर्ष की आयु में देहान्त हुआ। ख्यात के रचनाकार ने इसे इस प्रकार प्रकट किया है:

बरस बहत्तर आव मास षट दाहाड़ों ऊपर।
जगडू कीघो काल धरा सब धूजी थरहर।।

समर सिंह

विक्रम की १४वीं सदी में अणहिलपुर पट्टण में वेद मुहता गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि समर सिंह का उदय हुआ। उन्होंने अनेक जैन तीर्थों का जीर्णोद्धार कराया।

उपकेशपुर के श्रेष्ठि गोत्रीय बेसट विक्रम की १२वीं सदी में किराटकूपनगर जा बसे। उनके पुत्र वरदेव हुए, वरदेव के जिनदेव एवं जिनदेव के पुत्र नागेन्द्र हुए। नागेन्द्र के पुत्र सलक्षण पल्हणपुर जा बसे। सलक्षण के पुत्र आजड़ ने अनेक नए मन्दिर बनवाये। उनके पुत्र गोसल ने संघ निकाला एवं संघपति बने। गोसल के तीन पुत्र—आशधर, देशल एवं लावण्यसिंह हुए। आशधर ने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया। देशल बड़े प्रतापी हुए। वे जवाहरात का व्यापार करते थे। उन्होंने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला। इनके तीन पुत्र सहज, सहण और समरसिंह हुए। समरसिंह जब गुजरात के सूबेदार नियुक्त हुए तो देशल परिवार पाटण आकर बस गया। वि.सं. १३५७ में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने पाटण में अलपखान को सूबेदार नियुक्त किया।

संवत् १३६९ में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अनेक जैन तीर्थों को तहस-नहस कर दिया। उसकी धर्मान्धता का शिकार प्राचीनतम जैन तीर्थ शत्रुञ्जय भी हुआ। खिलजी ने जैन तीर्थ नष्ट कर मन्दिर की जगह मस्जिदें खड़ी कर दी थीं। शत्रुञ्जय में मूल नायक आदीश्वर भगवान की मूर्ति भी उसने खंडित कर दी। जब समरसिंह के पिता देशल शाह को इसका पता चला तो उन्होंने अपने प्रतिभाशाली एवं धर्मानुरागी पुत्र समरसिंह से तीर्थ के जीर्णोद्धार कराने की प्रतिज्ञा ले ली। उपकेशगच्छीय जैनाचार्य सिंह सूरि की प्रेरणा से वह तत्काल इस भीष्म प्रतिज्ञा को पूरा करने में जुट गया।

तत्कालीन दिल्ली सल्तनत पर तुगलक खानदान ने कब्जा कर लिया था। कुतुबुद्दीन तुगलक के दरबार में समराशाह (समर सिंह) का बहुत सम्मान था। मुहम्मद शाह तुगलक (संवत् १३८२-१४०८) ने तो उन्हें तेलंगाना का शासक नियुक्त कर दिया था। समरा शाह ने गुजरात के तत्कालीन मुख्य अधिकारी अलपखान से शाही फरमान प्राप्त कर शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार ही नहीं करवाया, अतुल धन खर्च कर वहां रथ के आकार के भव्य मंदिर का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्माण भी करवाया। अरासण खान से बहुमूल्य संगमरमर मंगवा कर बिम्ब निर्मित करवाये और समस्त श्री संघ को निमंत्रित कर प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया।

विक्रम संवत् १३९३ में समरा शाह स्वर्गस्थ हुए। आचार्य सिद्ध सूरि के पट्टधर आचार्य कक्क सूरि ने श्रावक शिरोमणि समरा शाह की प्रशस्ति में 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की, जो जैन वाङ्मय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

समरा शाह की कीर्ति के तीन शिलालेख शत्रुञ्जय तीर्थ की बड़ी टुक पर अवस्थित हैं। वि.सं. १३७१ के ये लेख संघपति आशधर की सपत्नीक मूर्ति पर, कुलदेवी सच्चिया की मूर्ति पर एवं राणा महिपाल की मूर्ति पर उत्कीर्णित हैं। एक अन्य शिलालेख सिद्धगिरी के उच्च शिखर पर समरसिंह और उनकी पत्नी की मूर्ति पर भी खुदा है जिसे उनके पुत्र सालिग व सज्जनसिंह ने संवत् १४१४ में प्रतिष्ठित किया। वि.सं. १५१६ में देशल वंशज शिवशंकर की धर्मपत्नी देसल दे ने आचार्य कक्कसूरि की प्रेरणा से कल्प सूत्र की स्वर्णाक्षरी प्रति दान दी जिसकी प्रशस्ति में समरसिंह के ६ पुत्रों का उल्लेख है। यह प्रशस्ति आचार्य विजय धर्म सूरीश्वर के प्रयत्न से भावनगर से प्रकाशित हुई है। शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार का आँखों देखा हाल निवृत्ति गच्छीय श्री पासड़ सूरि के शिष्य अंब (आम्र) देव सूरि के वि.सं. १३७१ में विरचित ग्रन्थ 'समरा रास' में वर्णित है जो चिमनलाल दाभाल द्वारा सम्पादित 'प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह' में प्रकाशित हुआ है। उद्धारोपरान्त आदीश्वर भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठा उपकेशगच्छीय आचार्य श्री सिद्धसूरि ने सं. १३७१ में सम्पूर्ण की।

पेथड़कुमार (पेथड़ शाह)

विक्रम संवत् १३२० में इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग मांडवगढ़ के उकेश वंशीय श्रेष्ठि पेथड़कुमार हुए। उन्होंने चौरासी विभिन्न स्थानों में जिन-मन्दिर निर्मित करवाये। वे तपागच्छ के आचार्य धर्मघोष सूरि के भक्त थे। मांडवगढ़ दुर्ग में १८ लाख रुपये खर्च कर ७२ जिनालयों वाला आदि तीर्थकर का प्रसिद्ध सुवर्ण दण्ड कलश वाला मन्दिर बनवाया। गिरनार, शत्रुञ्जय एवं अन्य तीर्थों पर संघ ले गये। शत्रुञ्जय पर कोटि कोटि जिनेन्द्र मंडप बनवा कर सं. १३२० में शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति स्थापित की। सात विभिन्न जगहों पर ग्रन्थ भण्डारों की स्थापना की। आगम-लेखन हेतु भारी दक्षिणा दी। कहते हैं भगवती सूत्र में जहाँ जहाँ गौतम शब्द आया, एक एक स्वर्ण मुहर दान में दी। इस तरह ३६००० स्वर्ण मुद्राओं से आगम पूजा सम्पन्न की। इनके पुत्र झांझन का विवाह दिल्ली के श्रेष्ठि भीम की पुत्री सौभाग्य देवी से हुआ। उसने भी जैन धर्म की प्रभावना की। सत्तारिसयठाणं के रचयिता सोमतिलक सूरि ने इनकी प्रशस्ति में 'पृथ्वीधर साधु पेथड़ साह' ग्रन्थ की रचना की।

शाह ठक्कर फेरू

विक्रम की १३ वीं-१४ वीं सदी के बहुश्रुत विद्वानों में कन्नाणा (हरियाणा) के श्रीमाल वंशीय धांधिया (धंध) गोत्रीय शाह ठक्कर फेरू का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उस समय दिल्ली के बैंकिंग व्यवसाय में श्रीमाल श्रेष्ठियों का बोलबाला था। शाह ठक्कर फेरू का जन्म अनुमानतः विक्रम संवत् १३२७ के आस-पास हुआ। इनके पिताजी का नाम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'चन्द' था। राजदरबार से इनके वंशजों को ठक्कर उपाधि मिली हुई थी। बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने विक्रम संवत् १३५२-७२ में उन्हें अपना भंडारी नियुक्त किया। वे राज्य के जवाहरात के खजानों के मुख्य अधिकारी थे। वि.सं. १३७३ में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने भी शाह ठक्कर फेरू को राज्य की टकसाल का मुख्याधिकारी नियुक्त किया। वि.सं. १३७७ से १३८२ के बीच बादशाह गयासुद्दीन तुगलक के शासनकाल में भी वे इस पद पर बहाल रहे।

उनका रत्न एवं मुद्रा विषयक ज्ञान अनुपम था। लगता है कि उन्होंने बुद्ध, भट्ट, आगत्स्य, बृहस्पति आदि संस्कृत विद्वानों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। भारत की तत्कालीन मुद्राओं के संबंध में संवत् १३४७ में उन्होंने 'द्रव्य परीक्षा' नामक ग्रन्थ लिखा, जो अपने में बेजोड़ है। इस ग्रन्थ में प्राचीन काल में व्यवहृत स्वर्ण, रौप्य तथा धातु की अनेक मुद्राओं का वर्णन है—यहाँ तक कि उनके सही तोल, माप एवं मोल तक ग्रन्थकार ने दिये हैं। कुल मिलाकर २६० प्रकार के सिक्कों का मुद्रा कोष है यह। बादशाह अलाउद्दीन के समय में प्रचलित १२ एवं बादशाह कुतुबुद्दीन के ६३ प्रकार के विभिन्न सिक्कों के डिजाइन तैयार करने का श्रेय भी शाह फेरू को ही है। अनेक अन्य प्रदेशों यथा मुल्तान, खुरासान, मालवा, चन्देरी आदि के शासक भी उनसे मुद्रा विषयक सलाह लिया करते थे।

शाह फेरू की दूसरी बेमिसाल कृति है 'रत्न परीक्षा'। जिसे उन्होंने संवत् १३७२ में लिखा। उक्त दोनों ग्रन्थों के अलावा ज्योतिषसार, गणितसार, वास्तुसार, भूगर्भशास्त्र एवं धातुत्पत्ति विषयक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना फेरू की ही देन है। 'रत्न परीक्षा' ग्रन्थ उन्होंने अपने पुत्र हेमपाल के लिये लिखा। उक्त रचनाएँ प्राकृत भाषा में लिखी गयी हैं। इनके ग्रन्थों में इतने पारिभाषिक शब्द हैं जितने किसी 'कोश' में भी उपलब्ध नहीं हैं।

शाह फेरू जैन धर्म के अनन्य सेवक थे। इनकी प्रथम कृति एक आध्यात्मिक रचना 'युग प्रधान चतुष्पादिका' है, जिसे मात्र २१ वर्ष की आयु में संवत् १३४८ में उन्होंने वाचनाचार्य राजशेखर के सान्निध्य में कन्त्राणा में लिखा। यह रचना अपभ्रंश भाषा में है। दिल्ली से श्रीमाल श्रेष्ठि रयपति ने दादा गुरु खरतराचार्य श्री जिनकुशल सूरि के नेतृत्व में संवत् १३८० में शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला था। इस संघ में ठक्कर फेरू भी शामिल थे।

नरोजी भंडारी

पन्द्रहवीं शताब्दी में राव जोधाजी का उदय हुआ। भँडारी गोत्र के श्रेष्ठि समरोजी ने जोधपुर राज्य की स्थापना में उन्हें बहुत सहयोग दिया। वे मूलतः चौहान वंश के थे। जैनाचार्य से प्रबोधित होकर वे भंडारी बने। राव रिणमल के मारे जाने के बाद जोधाजी ७०० सिपाहियों को लेकर उदयपुर से भाग निकले। मेवाड़ की सेना ने भी पीछा किया। मारवाड़ पहुंचते-पहुंचते कुल ७ सिपाही रह गये। जब जीलवाड़ा पहुंचे तो समरोजी से भेंट हुई। समरोजी को जोधाजी का पक्ष न्याययुक्त लगा। अपने पुत्र नरोजी को जोधाजी के साथ मारवाड़ भेजकर खुद राणाजी की फौज को रोक रखने में वीरगति को प्राप्त हुए। राणाजी की सेना जोधाजी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का पीछा करते हुए मंडोर पहुंची। वहाँ कब्जा कर लिया। जोधाजी ने थली के किसी गाँव में शरण ली। वहाँ नरोजी की सहायता से सेना इकट्ठी कर फिर से मंडोर पर आक्रमण कर दिया। जोधाजी ने विजय प्राप्त की और सं. १४९३ में जोधपुर राज्य की नींव डाली। जोधपुर शहर सं १५१५ में बसा। जोधाजी ने नरोजी को दीवानगी एवं प्रधानगी बख्शी (संवत् १५१५-१५३१) एवं ६०,०००/- की जागीर प्रदान की। उनके बाद नरोजी की अनेक पुश्तों तक जोधपुर राज्य की प्रधानगी एवं दीवानगी उनके वंशजों के पास रही। भँडारी नरोजी तक इनका परिवार जैनी चौहान राजपूत कहलाता था। सं. १५१२ में नरोजी का दूसरा विवाह मुहणोतों की कन्या से हुआ। तब से वे जैन ओसवाल कहलाने लगे।

नरोजी की मुहणोत पत्नी से तीन पुत्र हुए : तोलोजी, नीबोजी और नाथोजी। नाथोजी के पुत्र भण्डारी उदोजी वि.सं. १५४८ में जोधपुर राज्य के प्रधान बने। आपके पुत्र गौरो जी भी राज्य के प्रधान रहे। उनके पुत्र लूणोजी बहुत पराक्रमी थे। उन्हें जोधपुर के तीन महाराजाओं ने सं. १६५१ से १६८१ के बीच प्रधानगी का सम्मान दिया। इन्हीं लूणोजी की संतानें लूणावत भँडारी कहलाईं। इनके पुत्र रायमल जी को संवत् १६९४ में दीवानगी बख्शी गयी। इनके पौत्र भण्डारी विठलदास जी को सं. १७६३ में दीवान बनाया गया। इसी परिवार के भण्डारी माईदास सं. १७६९ में दीवान रहे।

श्रेष्ठि जावड़ शाह

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में माण्डु (माण्डवगढ़) में श्रीमाल वँशीय बहकट गोत्रीय धनाढ्य श्रेष्ठि जावड़ शाह का आविर्भाव हुआ। उनके पूर्वज दिल्ली के प्रतिष्ठित व्यापारी थे, जो चौदहवीं शताब्दी में मांडू आकर बस गये। इस खानदान में संघ पतियों की एक अपूर्व श्रृंखला थी। जावड़ के पिता राज-मल्ल मालव पति सुल्तान महिमूद की सभा के भूषण थे। तपागच्छीय गुरु लक्ष्मी सागर सूरि के माण्डू पधारने पर उनके स्वागत समारोह में उन्होंने साठ हजार टके व्यय किये। लक्ष्मी सागर सूरि ने विक्रम संवत् १५१७-२४ के मध्य मांडू में अनेक जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई।

मांडू सुल्तान गयासुद्दीन के समय श्रेष्ठि जावड़ राज्य के कोषाध्यक्ष नियुक्त हो राजदरबार में सम्मानित हुए। उन्हें सुल्तान का मंत्री कहा गया है। कहीं कहीं 'जावड़ेन्द्र' नाम से भी उनका उल्लेख हुआ है। समाज ने जावड़ को 'श्रीमाल-भूपाल' के विरुद से अभिषिक्त किया। जावड़ ने आबू एवं जीरापल्ली तीर्थों के संघ निकाले। श्री संघ ने उन्हें संघपति की उपाधि दी। प्रसिद्ध जैन कवि सर्व विजय गणि ने अपने संस्कृत काव्यों—'आनन्दसुन्दर' और 'सुमतिसम्भव' के प्रशस्ति लेखों में जावड़ शाह की इन तीर्थयात्राओं का सविस्तार वर्णन किया है एवं इतिहास प्रसिद्ध जैन श्रावकों-श्रेणिक, सम्प्रति, कुमारपाल और शालिभद्र की श्रेणी में आसीन किया है।

जावड़ ने श्रावक के १२ व्रत ग्रहण किये थे। प्रसिद्ध चरित्र लेखक डा. सी. क्राउझे के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करते समय जावड़ ने बत्तीस स्त्रियों का आगार सुरक्षित रखा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

था। शायद यह जैन साहित्य के कथा नायक सेठ शालिभद्र के उदाहरण का अनुकरण था, जिसकी बत्तीस पत्नियाँ बताई जाती हैं। शालिभद्र ने सबको त्याग कर प्रवज्या ग्रहण की थी। अन्य श्रोतों में जावड़ की चार पत्नियों का उल्लेख है। राजपूती परम्परा के अनुसार बाकी रखैलें या उप पत्नियाँ रही हों—यह सम्भव है। अपरिग्रह के पाँचवें व्रत के आगार से उसकी निजी सम्पत्ति एवं समृद्धि का अनुमान सहज ही हो जाता है। यथा—एक लाख मन अनाज, एक लाख मन घी तेल, २००० बैल, १० भवन, ४ मन चांदी, १ मन सोना, ३०० मन हीरे (सम्भवतः वह हीरों का व्यापारी था।), २०० मन अफीम, १५०० घोड़े, ५० हाथी एवं दो करोड़ टंक (स्वर्ण मुद्राएँ)। माण्डू के श्रेष्ठि वर्ग ने उसे 'व्यवहारि शिरोरत्न' की उपाधि से विभूषित किया था।

संवत् १५४७ में जावड़ शाह ने माण्डू के भव्य मन्दिरों में १०४ जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित कीं। इनमें हीरे जवाहरातों से मंडित सोने, चांदी की अनेक बहुमूल्य प्रतिमाएँ थीं। संवत् १५५५ में श्रेष्ठि जावड़ के आश्रय में स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्णित कल्पसूत्र की प्रशस्ति में इन प्रसंगों का विशद विवरण दिया गया है। अनेक प्रतिमाओं की पीठिका पर भी प्रशस्तियाँ उत्कीर्णित हैं।

कर्माशाह

विक्रम की ९वीं शताब्दी में आचार्य बप्पभट्ट सूरि ने ग्वालियर के राजा नाग भट्ट प्रतिहार को, जो आम राजा के नाम से विख्यात था, प्रतिबोध देकर जैन बनाया। आमराजा की एक रानी व्यावहारिया वणिक पुत्री थी। उनकी सन्तानों का गोत्र राजकोष्ठागार निर्धारित हुआ। ओसवाल कुल के राजकोठारी गोत्र के लोग अपने को आम राजा की सन्तान बताते हैं। इसी गोत्र में १६वीं सदी में कर्माशाह नामक ओसवाल श्रेष्ठि हुए, जिन्होंने शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार कराया। कुछ लेखक कर्माशाह को डोसी गोत्रीय क्षत्रिय बताते हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार राणा रतनसिंह द्वितीय के समय संवत् १५८४ से १५८८ तक कर्माशाह राज्य के मंत्री रहे।

उनकी प्रशस्ति में शत्रुञ्जय तीर्थ के विमलवासी आदीश्वर मंदिर पर उत्कीर्णित विक्रम संवत १५८७ के एक शिलालेख से तत्कालीन ओसवंश की विशालता एवं कर्माशाह की समृद्धि का पता चलता है। मुनि जिन विजय जी ने अपने ग्रन्थ 'जैन लेख संग्रह' में यह लेख आद्योपान्त प्रकाशित किया है। इसके अनुसार इनके पूर्वज सारणदेव बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए। उनकी ८वीं पीढ़ी में तोला शाह हुए, जिनकी धर्मपत्नी लीलू की कुक्षि से कर्मा शाह का जन्म हुआ। इनकी दो पत्नियाँ थीं : कापूरदे और कामल दे। राज दरबार में कर्मा शाह का बड़ा सम्मान था। गुजरात के तत्कालीन शासक सुल्तान बहादुर शाह से फरमान प्राप्त कर आपने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजित किया। लाखों रुपये खर्च कर तीर्थ का पुनरुद्धार भी कराया। कर्नल टॉड ने 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' में शत्रुञ्जय तीर्थ के सोलहवें उद्धारक शाह कर्मा डोसी का जिक्र करते हुए उनकी वंशावली दी है जिसके अनुसार सरणदेव की दसवीं पीढ़ी में कर्माशाह हुए। उनके पिता का नाम 'माधवजी' एवं पुत्र का नाम 'सूरज' था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुछ इतिहासकारों के अनुसार राणा सांगा अलवर से भारमल कावड़िया और कर्मा शाह को आग्रह पूर्वक चित्तौड़ लाए एवं कर्मा शाह को अपना दीवान बनाया। कर्मा शाह बड़े धनी थे। उन्होंने बंगाल की खाड़ी होकर चीन तक अपना व्यवसाय स्थापित किया था। राणा सांगा की पूरे भारत पर आधिपत्य करने की महत्वाकांक्षा को धन से बल देने वाले कर्मा शाह ही थे। उन्होंने विशाल सेना के खर्च में कभी कमी नहीं आने दी।

गुजरात के शासक मुहम्मद शाह के पुत्र बहादुर शाह ने जब मेवाड़ में शरण ली तो कर्माशाह ने उन्हें लाखों रुपये देकर पुनः गुजरात का शासक बनने में सहयोग दिया। उन्होंने पाटण के ११०० मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। बहादुरशाह ने उनके आग्रह पर कभी मन्दिरों को क्षति न पहुंचाने का फर्मान निकाला।

मंत्रीश्वर करमचन्द बच्छावत

ओसवाल जाति के बच्छावत गोत्र के श्रेष्ठियों ने बीकानेर राज्य की बहुत सेवा की। जोधपुर महाराज राव जोधाजी ने अपने पुत्र बीकाजी को नवीन राज्य की स्थापना हेतु जांगल प्रदेश भेजा। उनके साथ बोहत्थरा वत्सराज जी भी थे। राव बीकाजी ने सन् १४८८ में बीकानेर राज्य की नींव डाली तथा बोहत्थरा वत्सराज जी को अपना प्रधान मंत्री बनाया। इन्हीं वत्सराज जी का गोत्र कालांतर में बच्छावत नाम से प्रसिद्ध हुआ। ओसवाल जाति के बच्छावत गोत्र की पांचवीं पीढ़ी में जन्में श्री करमचन्द जी बड़े दूरदर्शी थे। आपके वंश की पांच पीढ़ियों ने राज्य के प्रधानमंत्री पद पर रहते हुए राज्य की सेवा की थी।

मंत्रीश्वर करमचन्द बच्छावत

बीकानेर के राव राजा रायसिंह जी ने सन् १५७३ में आपको अपना प्रधान दीवान नियुक्त किया। ये महान् राजनीतिज्ञ, संधि-विग्राहक, कार्यकुशल व वीर थे। राजा रायसिंह के पिता राव कल्याणमल का दुसाध्य मनोरथ 'जोधपुर के राजगवाक्ष में बैठकर पूर्वजों का तर्पण करने' को बादशाह अकबर से कुछ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

समय के लिये जोधपुर राज्य मांग कर आपने ही पूर्ण करवाया। इनके प्रयत्न से बादशाह अकबर ने रायसिंह जी को 'राजा' का खिताब दिया। जब नागपुर के मिर्जा इब्राहिम ने आक्रमण किया तो करमचन्द जी की फौज ने उनका मुकाबला किया और उसे परास्त किया। बादशाह अकबर की ओर से भी आप अनेक युद्धों में गये। गुजरात पर चढ़ाई की। कुछ समय तक सोजत और जालौर पर भी अधिकार कर लिया। सिंध देश के कुछ हिस्से बीकानेर राज्य में मिलवाये। बीकानेर शहर को सुव्यवस्थित कर हर गोत्र को अलग अलग मुहल्लों में बसाने का श्रेय आपको ही है। मुगल सेना द्वारा लूटे गये जिन मंदिरों की १०५ भव्य प्रतिमाओं को बादशाह अकबर से दरख्वास्त कर बीकानेर के चिन्तामणि मन्दिर के तहखाने में संग्रहित करने का श्रेय भी आप ही को है।

बादशाह अकबर पर इनका खूब प्रभाव था। आप ही ने जैनाचार्य जिनचन्द्र सूरि की अकबर से मुलाकात करवाई। तब बादशाह ने जैन पर्वों पर हिंसा बन्द रखने के फरमान निकाले। आपकी प्रेरणा से अकबर ने एक जैन मन्दिर के स्थान पर बनी मस्जिद को तुड़वा कर फिर से जैन मंदिर बनवाने की आज्ञा दी।

विन्सेंट प्रभृति इतिहासकारों के अनुसार अकबर ने अपने जीवन के उत्तरार्ध (सन् १५८०-८१) में जैन धर्म अंगीकार कर लिया था—गो मांस छूता नहीं था। पुर्तगाली पादरी पिन्हेरो ने अपने बादशाह को लिखे पत्र (सन् १५९५) में लिखा था कि मुगल बादशाह जैन विधि से आत्म चिन्तन करते हैं तथा जैनी हो गये हैं। इन्हीं कारणों से असन्तुष्ट मुगल सरदारों के उकसाने पर जहांगीर ने विद्रोह किया था। अबुलफजल द्वारा लिखित 'आइने अकबरी' में भी ओसवाल श्रेष्ठियों एवं जैन धर्म का वर्णन है।

सन् १५७८ में जब भयंकर अकाल पड़ा तो कर्मचन्द जी ने हजारों कुटुम्बों को कई साल तक अन्न प्रदान किया।

महाराजा रायसिंह शक्की एवं कान के कच्चे थे, साथ ही अदूरदर्शी भी। भाट-चारणों की प्रशस्तियाँ सुन सुन कर दौलत लुटाना उनका शौक था। एक बार शंकर नामक एक चारण को एक करोड़ रुपया इनाम में देने की घोषणा की। दीवान करमचन्द के समझाने का उल्टा असर हुआ और इनाम की रकम सवा करोड़ देने का हुक्म कर दिया। इसे चुकाने में राज्य की रेवेन्यू रेहन करनी पड़ी। इस तरह खजाना खाली होता गया। सन् १५९५ में एक और घटना हुई, जिसने करमचन्द जी को बीकानेर छोड़ने पर विवश कर दिया। राजपूत सामन्तों ने यह इल्जाम लगाया कि महाराज रायसिंह की जगह उनके पुत्र दलपतसिंह या रामसिंह को सिंहासनारूढ़ करने के षड्यंत्र में करमचन्द का हाथ है, हालांकि इस इल्जाम का कोई आधार नहीं था। दीवान करमचन्द बीकानेर छोड़ अन्यत्र चले गये। अन्तिम समय में महाराज रायसिंह से अनबन एवं बादशाह अकबर से अच्छे संबंध के कारण वे दिल्ली में ही रहने लगे थे। सन् १६०५ में बादशाह अकबर की मृत्यु के बाद करमचन्द भी अधिक नहीं जिये। रायसिंह जी जब दिल्ली आये तो करमचन्द की हवेली पर आकर आंखों में आंसू भर कर सांत्वना देने लगे। उनके चले जाने पर करमचन्द जी ने अपने पुत्रों को सावधान रहने की ताकीद की और कहा—'कभी बीकानेर मत जाना।'

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराजा रायसिंह जी ने मरते वक्त (सन् १६१२) में अपने पुत्र सूरसिंह जी से कहा था कि 'मुझे मारने के षड्यन्त्र में करमचन्द शामिल था अतः उससे बदला लेना।' महाराजा सूरसिंह जी शासन संभालने पर करमचन्द जी के पुत्रों को फुसलाकर बीकानेर ले गये। पहले तो उन्हें मन्त्रीपद सौंपा। कृपा दिखाई। कुछ समय बाद सन् १६२२ में हजारों सैनिकों को उनकी हवेली पर हमला करने के लिये भेज दिया। करमचन्द जी के दोनों बेटे बहादुरी से लड़े। अपनी माता, स्त्रियों एवं बच्चों को जौहर में जलाकर खुद लड़ते हुए वे वीरगति को प्राप्त हुए। इस तरह करमचन्द जी की आशंका सही सिद्ध हुई।

श्रीत्रिपुटी महाराज अपने ग्रन्थ 'जैन परम्परा नो इतिहास' में लिखते हैं कि खरतर गच्छीय आचार्य जिनसिंह ने भविष्यवाणी की थी कि शहजादा खुसरू दिल्ली के तख्त पर बैठेंगे। मंत्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत आदि खुसरू के पक्ष में थे। जहाँगीर ने यह बात गांठ बांध ली और बादशाह बनते ही बीकानेर राजवंश व मंत्री कर्मचन्द के वंश का युक्तिपूर्वक विनाश किया। जहाँगीर ने अपने 'तुजुके जहाँगीर—जहांगीरनामा' में आचार्य जिनसिंह के लिये तिरस्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है। इस स्थिति में खरतर गच्छीय आचार्यों का विहार उन प्रदेशों में बन्द हो गया था।

कर्मचन्द जी के कुटुम्ब की एकमात्र गर्भवती स्त्री सेवक की सहायता से मन्दिर में छिपकर भाग निकली। कहते हैं कि उसी से आगे चलकर बच्छावत वंश बढ़ा, जो बाद मे उदयपुर राजघराने से संबंधित रहा। 'राजपूताना का इतिहास के लेखक श्री गौरीशंकर ओझा के अनुसार भामाशाह की पुत्री जागीशा बाई मन्त्रीश्वर कर्मचन्द को ब्याही थी। उक्त जौहर के समय जगीशा बाई अपने पुत्र भाण के साथ उदयपुर में थी। मात्र वे ही बच पाए। उदयपुर के मेहताओं की ख्यात में भाण को भोजराज का पुत्र लिखा है। सम्भव है भाण कर्मचन्द के तीसरे पुत्र भोज का पुत्र हो।

कावड़िया भामाशाह (वि.सं. १६०४-१६५७)

राजपूत राज्यों के इतिहास में 'प्रधान' का पद सदैव राजपूतेतर अधिनायकों के पास रहा। वे एक साथ योद्धा, प्रशासक और कूटनीतिज्ञ का कार्य अंजाम दे सकते थे। ऐसे मेवाड़ उद्धारक उदयपुर के ओसवाल कावड़िया गोत्र के सूर्य भामाशाह को कौन नहीं जानता? देशी राज्यों के इतिहास मे वे अमर हैं। वे स्वामी एवं देशभक्ति के आदर्श थे। सेवग देशमल के 'वीरशासन' प्रबन्ध के अनुसार भामाशाह के पड़दादा चांडा (चांदा) भी राय कोठारी गोत्र के ओसवाल थे। वे दिल्ली रहते थे। बाप-दादा लड़ाइयों में मारे गये, उस समय चांडा बालक थे। उन्हें कावड़ी में डालकर बादशाह के कोप से बचाने के लिये अलवर लाया गया। इसलिये कालान्तर में इनकी सन्तानें कावड़िया कहलाईं। वे धनाढ्य होने से शाह कहलाते थे। ये श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रावक थे।

चांदा का बेटा तीड़ा, और तीड़ा के भारमल हुए, जिन्हें महाराणा सांगा सं. १५८० में अलवर से साथ लाये। वे रणथम्भौर के किलेदार नियुक्त हुए। रावराजा श्यामलदास लिखित

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'वीर विनोद' के अनुसार राणा सांगा का हाड़ी रानी कर्मवती से विशेष स्नेह था। उनके दो पुत्र विक्रमादित्य और उदयसिंह छोटे थे। ज्येष्ठ पुत्र रत्न सिंह से रानी को भय था। उसने राणा से रणथम्भौर की ६० लाख रूपया सालाना की जागीर प्राप्त कर ली और वहीं रहने लगी। राणा सांगा के देहान्त के बाद सं. १५८५ में रत्नसिंह राणा बना। उसने रानी कर्मवती को उदयपुर बुला भेजा। इसी समय रानी ने दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को इतिहास प्रसिद्ध राखी भेजी थी। सं. १५८८ में रानी कर्मवती के भाई हाड़ा सूरजमल के साथ हुए घात प्रतिघात में रत्न सिंह की मृत्यु हो गयी। भारमल जी इस दरम्यान रणथम्भौर के किलेदार बने रहे। सं. १५९९ में जब शेरशाह सूरि ने किले पर आक्रमण किया तो भारमल जी ने बड़ी चतुराई से नजराना देकर वह संकट टाला।

दानवीर भामाशाह

(महाराणा प्रताप की सेवा में अपनी संचित निधि भेंट करते हुए)

राणा उदयसिंह जी के शासनकाल मे वे राज्य के प्रधान बने। वे बड़े बुद्धिमान और राजनीतिकुशल थे। वि.सं. १६२४ में मुगल बादशाह अकबर द्वारा चित्तौड़ के किले पर कब्जा कर लिये जाने के बावजूद भारमल ने उदयपुर को राजधानी बनाने एवं राज्य की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अन्ततः इसी युद्ध में भारमलजी काम आये।

भामाशाह का जन्म वि.सं. १६०४ में हुआ था। उनका परिवार उस समय पाडनपोल स्थित हस्तिशाला में निवास करता था। राणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र प्रताप भी दुर्ग की तलहटी

P.P. Gunratnasuri M.S. Jin Gun Aradhak Trust

में रहता था। राणा ने भटियानी रानी से प्रेम होने के कारण उसके पुत्र जगमल को युवराज बनाया था। इसी काल में भामाशाह और प्रताप की दोस्ती हुई। अपने पिता की मृत्यु के बाद भामाशाह राणा उदयसिंह द्वारा राज्य के प्रधान नियुक्त हुए। राजनैतिक उथल-पुथल के बावजूद आपका शासन प्रबन्ध बहुत अच्छा था। संवत् १६२९ में राणा की मृत्यु पर प्रताप को सिंहासनारूढ़ करने में भामाशाह का हाथ था। प्रताप ने भामाशाह को अपना कोषाध्यक्ष चुना। भामाशाह का विवाह भीमा नाहटा की पुत्री से हुआ।

सं. १६३३ में हल्दी घाटी का युद्ध हुआ। इस युद्ध में भामाशाह और उनके भाई ताराचन्द मेवाड़ी सेना के हरावल (अग्रभाग) के दाहिने हिस्से में थे। 'मुन्तखाब उत तवारीख' के लेखक मौलवी अल बदायूनी के अनुसार मेवाड़ी सेना के हरावल के जबर्दस्त आक्रमण ने मुगल सेना को ६ कोस तक खदेड़ दिया। जब राणा प्रताप युद्ध में लहुलुहान हो रहे थे तो प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार के अनुसार इन्हीं भाइयों ने प्रताप के घोड़े को युद्ध-भूमि से खींच कर सुरक्षा स्थल तक पहुंचाया था। इसी शौर्य प्रदर्शन के बाद प्रताप ने भामाशाह को राज्य का प्रधान एवं ताराचन्द को गोडवाड प्रान्त का शासक नियुक्त किया। इसके बाद ही प्रताप का दस सालाना छापामार युद्ध प्रारम्भ हुआ।

राणा प्रताप स्वाधीनता के लिये जूझते हुए भटक रहे थे एवं बिलाव के रोटी ले जाने से द्रवित होकर मेवाड़ छोड़ कर सिन्ध चले जाने को तैयारी कर जब अरावली पर्वत के पार मरु प्रदेश में पहुंच गये, उस समय राज्य के दीवान भामाशाह ने अपना जीवन भर का संचित द्रव्य उनके चरणों मे रख दिया। कर्नल टॉड के अनुसार यह धन २५ हजार सैनिकों के १२ वर्ष निर्वाह के लिये पर्याप्त था। राणा प्रताप ने बिखरी शक्ति बटोरकर सं. १६४३ तक खोये हुए समस्त राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया, सिवाय चित्तौड़ के। भामाशाह खुद भी राणा के साथ लड़े। उन्होंने युद्धों के लिये प्रचुर धन और साधन जुटाये। वीर विनोद के लेखक कवि राजा श्यामलदास के अनुसार मालवा पर आकस्मिक धावा बोलकर भामाशाह ने प्रचुर धन हस्तगत किया। फिर चूलिया में राणा को २५ लाख रुपये और २० हजार अशर्फी भेंट की। जैन कवि दौलत विजय रचित 'खुमाण रासो' के अनुसार भामाशाह ने अहमदाबाद पर जबरदस्त धावा मारकर २ करोड़ का धन हस्तगत किया। कविवर श्यामलदास के उल्लेखानुसार बादशाह अकबर ने अपने सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना की मार्फत प्रलोभन देकर भामाशाह को फोड़ने की कोशिश की, पर नाकाम रहा।

ये राणा प्रताप के गद्दीनशीन होने से लेकर राणा अमर सिंह के शासन के तीन वर्ष तक राज्य के कोषाध्यक्ष या प्रधान रहे। सं. १६५६ में इनका स्वर्गवास हुआ। मरने के एक दिन पूर्व अपनी स्त्री को राज्य के खजाने की चाबी दे गये, जिससे राणा अमर सिंह ने कई वर्षों तक खर्च चलाया। मरणोपरान्त उनके लड़के जीवाशाह राज्य के प्रधान बनाये गये। भामाशाह के भाई ताराचन्द भी राज्य की ओर से लड़ते हुए शहीद हुए। आज भी इनके वंशजों को पंच पंचायतों में सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। भामाशाह के पौत्र अक्षयराज महाराणा करण सिंह एवं उनके बाद महाराणा जगतसिंह द्वारा राज्य के प्रधान बनाये गये। सं. १९१२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में महाराणा स्वरूप सिंह के समय जब जातिगत विवाद उठा एवं कुछ लोगों ने ईर्ष्यावश कावड़िया संघ की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाना चाहा तो महाराणा ने एक हुक्मनामा जारी कर तुरन्त आदेश दिया कि भामाशाह के वंशजों को किसी भी जाति भोज या सिंह पूजा के अवसर पर सर्व प्रथम तिलक किया जाये।

राजा भारमल राक्यान

श्रीमाल जाति के नर पुँगव राजा भारमल राक्यान विक्रम की १७वीं शताब्दी में भारत के अद्वितीय ऐश्वर्य शाली व्यापारी थे। वे बादशाह अकबर के दरबार के राज्य मान्य अधिकारी थे। इनका गोत्र राक्याणि था। इस गोत्र की उत्पत्ति श्रीमाल नगर के राजपूत जाति के रंका-राउ से मानी जाती है। वे बड़े धर्म प्रेमी थे। उन्होंने ओछू में जैन धर्म स्वीकार किया। इन्हीं की वंश परम्परा में संघपति नाल्हा हुए। उनकी चौथी पीढ़ी में संघपति देवदत्त हुए, जिनकी संतान राजा भारमल थे।

राजा भारमल नागौर के निवासी थे। नागपुरीय तपागच्छ की स्थापना इसी शहर में हुई थी। वि.सं. १६३५ के आस-पास राजा भारमल व्यापारिक सुविधा की दृष्टि से विराट (वैराट) नगर जा बसे। जयपुर से चालीस मील दूर स्थित इस नगर में कभी पांडवों ने गुप्त वास किया था। राजा भारमल धन कुबेर थे। वे सांभर, विराट, डीडवाना, मुक्तसर आदि भू पर्वतों की खानों के स्वामी थे। विराट के नजदीक तांबे की खानों पर आपका एकाधिकार था। आपके हाथों में टकसालों का स्वामित्व भी था। आपके कोष में पचास करोड़ अकबरशाही सोने की मुहरें हर समय मौजूद रहती थीं। आपकी प्रतिदिन की आमदनी सवा लाख मुद्रा थी, जिसमें से पचास हजार आप प्रतिदिन बादशाह अकबर को बतौर खान टैक्स देते थे। भारमल के अतुल ऐश्वर्य एवं प्रभाव से प्रभावित होकर ही बादशाह अकबर ने उन्हें 'राजा' की पदवी दी। आपको सुरक्षा के लिये चतुरंग सेना रखने का अधिकार था। कहते हैं शहजादा सलीम (जहांगीर) आपके यहाँ मिलने आता था।

आप तपागच्छीय नागौरी आम्नाय के थे। आप हर्षकीर्ति के शिष्य थे। वि.सं. १६४४ के कुछ पूर्व आपका देहान्त हुआ।

इन्हीं के समकालीन कवि राजमल ने 'छंदो विद्या' ग्रन्थ में राजा भारमल के जीवन वृत्तान्त को उदाहरण रूप में रखा है। उससे राजा भारमल के अद्‌भुत व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

वैराट के स्वामी राजा भारमल के पुत्र इन्द्रजीत भी बड़े प्रतापी एवं वैभवशाली थे। वैराट के शिलालेख के अनुसार राजा के आमन्त्रण पर जैनाचार्य हीर विजय सूरि ने अपने शिष्य उपाध्याय कल्याण विजय जी को मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराने के लिये वैराट भेजा था। राजा भारमल के वंशज अब भी दिल्ली में निवास करते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शाह तेजपाल सोनी

खम्भात में ओस वंश के सुप्रसिद्ध आभू श्रेष्ठि के कुल में शिवराज सोनी बड़े पुण्यशाली हुए। उनकी पांचवीं पीढ़ी में बच्छिया जी हुए, जिनकी धर्मपत्नी सुहासिनी देवी की कुक्षि से तेजपाल ने जन्म लिया। ये अपने समय के महाप्रतापशाली धर्मपुरुष थे। इनके गुरु तपागच्छीय आचार्य हीर विजय जी थे। उनकी प्रेरणा से आपने विपुल धनराशि खर्च कर संवत् १६४६ में खम्भात में सुपार्श्वनाथ चैत्य का निर्माण कराया। संवत् १६४९ में आपने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया। इस संघ में गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, एवं दक्षिणी प्रदेशों के हजारों यात्री शामिल थे। आचार्य हीर विजय जी के नायकत्व में एक हजार श्रमण संघ के साथ थे। शाह तेजपाल ने लाखों रूपये खर्च कर शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार कराया तथा आचार्य हीर विजय जी के हाथों अनेक बिम्ब प्रतिष्ठित कराये। इस आशय का एक शिलालेख मुख्य मन्दिर के पूर्व द्वार के रंग मण्डप में उत्कीर्णित है। मुनि जिन विजय जी ने अपने ग्रन्थ 'जैन लेख़ संग्रह' में इसे आद्योपान्त प्रकाशित किया है।

ब्रिटिश रायल एशियाटिक सोसायटी के बम्बई से प्रकाशित जरनल में आर० स्टोथर्ट द्वारा सम्पादित उक्त शिलालेख के विवरण में शाह तेजपाल के पूर्वज शिवराज को 'उकेश वंशीय स्वर्णकार' बताया है एवं पिता का नाम 'बच्छिया' की जगह 'राजाई' और पत्नी का नाम गलदा दिया है। शाह तेजपाल द्वारा मन्दिर पर १२४५ स्वर्ण कलश चढ़ाने एवं संवत् १६५० में वहाँ विजय विहार चैत्य निर्मित कराने का उल्लेख भी आलेख में है।

थाहरू शाह

विक्रम की १७वीं शताब्दी में जैसलमेर के प्रसिद्ध भणशाली गोत्र में भाटी राजा सागर की १९वीं पीढ़ी में महा प्रतापी थाहरूशाह नामक ओसवाल श्रेष्ठि हुए। उन्होंने विक्रम संवत् १६५५ में लोद्रपुर में प्रसिद्ध पार्श्वनाथ मन्दिर बनवाया। उन्होंने संघ के साथ शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। वहाँ २४ तीर्थंकरों एवं १४५२ गणधरों की पादुकाओं की प्रतिष्ठा करवाई। श्री समयसुन्दर उपाध्याय ने अपने सर्वप्रसिद्ध 'शत्रुञ्जय रास' की रचना इसी संघ समायोजन में की थी। थाहरू शाह को इस विराट् समायोजन के उपलक्ष्य में जैसलमेर दरबार ने 'कच्छवाहा' पदवी से विभूषित किया। आगरा का एक जैन मन्दिर भी थाहरू शाह का बनवाया हुआ है। तीर्थयात्रा में निकाले गये संघ के भव्य एवं विशाल काष्ठ रथ का दर्शन आज भी लौद्रपुर के प्राचीन मन्दिर मे किया जा सकता है। थाहरू शाह ने जैसलमेर में एक देहरासर एवं विशाल हवेली का निर्माण भी करवाया।

लौद्रवा के जैन मन्दिर में उत्कीर्णित शतदल पद्मयंत्र के विक्रम संवत् १६७५ के प्राचीन शिलालेख के अनुसार पार्श्वनाथ का मूल मन्दिर थाहरू शाह के पूर्वज राजा सगर के पुत्र श्रीधर का बनवाया हुआ था, जिसे मुहम्मद खिलजी ने नष्ट कर दिया था। थाहरू शाह ने उस प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार तो कराया ही, पाँच नये भव्य मन्दिरों का निर्माण भी कराया। लेख के अनुसार उनके पिता का नाम श्रीमल्ल था। माता का नाम चापल दे। उनकी पत्नी कनका दे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थीं। उनके पुत्र हरराज और मेघराज का भी नामोल्लेख है। इन मन्दिरों में बिम्ब प्रतिष्ठा आचार्य जिनराज सूरि ने की। ये मन्दिर स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने हैं। बारीक कोरनी से पाषाण सजीव व मुखर हो गये हैं। छत, स्तम्भ व शिखरों की कलात्मक खुदाई का सौन्दर्य देखते ही बनता है। एक किंवदन्ती के अनुसार मन्दिरों में स्थापित मूर्तियाँ पाटण के सिद्धहस्त शिल्पकारों द्वारा निर्मित हैं। थाहरू शाह ने उन शिल्पकारों को उन मूर्तियों के भार के बराबर सोना अर्पित किया था। वे पाटण से जिस भव्य काष्ठ रथ में लाई गयी थीं, वह काष्ठ रथ भी मन्दिर में सुरक्षित है। मूल प्रतिमा पर विक्रम संवत् १६२२ का लेख उत्कीर्णित है।

इन्हीं थाहरू शाह की धनोपार्जन सम्बन्धी एक किंवदन्ती प्रचलित है। ये लोद्रवा में घी का व्यापार करते थे। एक दिन रूपसिया ग्राम की एक स्त्री चित्रावेल की एंडुरणी पर रखकर घी का मटका बेचने के लिये आयी। थाहरू शाह ने घी खरीदा और तौलने के लिये घी निकालना शुरु किया—पर मटका खाली हुआ ही नहीं। इसे उन्होंने एंडुरणी का कमाल समझा। उन्होंने महिला को समझा बुझा कर एंडुरणी भी रख ली। तब से उनके पास अपार द्रव्य हुआ। इसमें सन्देह नहीं की थाहरू शाह सुविज्ञ जैन श्रावक थे। वे विद्वान् भी थे। विक्रम संवत् १६५९ से १६८४ के बीच उन्होंने अनेक धर्म ग्रन्थ लिपिबद्ध कराये। अनेक मूल्यवान ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों के अन्त में 'थाहरू साहेब संशोधितम्' उल्लेख मिलता है।

इन्हीं थाहरू शाह को बादशाह अकबर ने दिल्ली बुलाकर सम्मानित किया था। थाहरू शाह ने बादशाह को 'हाथी और ५०० घोड़े' नजर किये। बादशाह ने उन्हें 'रायजादा' का खिताब दिया। तब से इनके वंशज रायजादा भंसाली कहलाने लगे।

वर्धमान शाह पद्मासिंह शाह

इसी समय के आसपास विक्रम की १७वीं शताब्दी में कच्छ में ओसवाल कुल के लालन गोत्रीय श्रेष्ठि अमर सिंह के दो पुत्र वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह बहुत प्रसिद्ध हुए।

लालन गोत्र की उत्पत्ति वि.सं. ७१३ में सोनगोरा सोढ़ा सोलंकी राजपूतों से मानी जाती है। इस वंश में वि.सं. १६३० में कच्छ के आरीखणा गाँव में सेठ अमरसिंह हुए। उनके पुत्र वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह को एक योगी ने सिद्ध-रस की तूंबड़ी दी। कहते हैं इसके प्रयोग से तांबा सोने में बदल जाता था। दोनो भाइयों ने खूब धन और यश कमाया। वे भद्रावती नगरी में बस गये। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार वे कच्छ के अलसाणा गाँव के थे, जिन्हें अलसाणे के ठाकुर की कन्या के विवाह के समय जामनगर के जामसाहब ने मांग लिया और ले जाकर जामनगर में बसाया।

शाह बन्धु रेशम और इलायची का व्यवसाय करते थे। संवत् १६७५ में वर्धमान शाह जामनगर के मन्त्री नियुक्त हुए। इन भाइयों ने विदेशों में भी अपना व्यवसाय फैला कर खूब नाम कमाया। पद्मसिंह चीन के केंटान बन्दरगाह में अनेक दिन रहे। उनके साथ एक चीनी व्यापारी युलन चांग भारत आया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इन भाइयों ने जैन धर्म की प्रभावना में सराहनीय योग दिया। अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया। इन्होंने लगभग २०४ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। वि.सं. १७७६ में शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा में इनके साथ १५००० श्रावकों का संघ था, जिसमें ५०० रथ, ७०० गाड़ी, ९०० घोड़े, ९ हाथी, १५० तंबू, ५०० ऊँट, १००० खच्चर, २०० रसोइये, २०० साधु, ३०० साध्वियाँ, १०० चारण, २० बाजे एवं ५० नाटकियाँ थीं। इन्हीं आंकड़ों से इन श्रेष्ठियों की समृद्धि का अन्दाजा लगाया जा सकता है। तीर्थ से लौटते हुए संघ जब नवानगर पहुंचा तो वहां के राजा जसवन्तसिंह ने दोनों भाइयों का बहुत सत्कार किया। कुछ दिनों तक वहीं निवास किया। सं. १६६८ में वहां एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया। उसमें रत्न एवं माणिक जड़ित जिन प्रतिमाओं की स्थापना की। कहते हैं कि इस ऐश्वर्य को देखकर राज्य का खजांची ईर्ष्या से तिलमिला उठा। उसके कहने पर महाराज ने वर्धमान शाह से ९ हजार स्वर्ण मोहरें उधार मांगीं। खजांची ने रुक्के पर दो बिन्दी और लगाकर ९ लाख स्वर्ण मोहर की माँग करवा दी। दोनों भाइयों की प्रतिष्ठा की घड़ी आ गयी। ऐसे समय फिर उस योगीराज ने एक जड़ी देकर सहायता की। नौ लाख मोहरें गाड़ियों में भरकर महाराजा को भेज दी गयीं। तब से वे 'नवलखा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस घटना के पश्चात् वे भद्रावती लौट आये।

अनेक वर्षों बाद भद्रावती नगरी में महामारी का प्रकोप हुआ। नगरी उजड़ गई। वर्धमान शाह अपने परिवार सहित भुज जा बसे। पद्मसिंह शाह अपने परिवार सहित मांडवी जा बसे। वर्धमान शाह के पुत्र जगडू शाह हुए। उनके घर आँगन में हमेशा याचकों की भीड़ लगी रहती थी। अतः लोग उसे लक्ष्मी घर ही कहते थे। वे महा दानेश्वर थे। दुष्काल में उनके औदार्य की कथाएँ घर घर प्रचलित हो गयीं। उनकी विनती पर वि.सं. १६९१ में श्री अमर सागर सूरि ने संस्कृत में 'श्रीवर्धमान पद्मसिंहचरित्र' ग्रन्थ की रचना की।

सेठ शान्तिदास जौहरी

ओसवाल कुल भूषण एवं तीर्थ रक्षक सेठ शान्तिदास जौहरी के जीवन प्रसंग प्रेरणास्पद हैं। मुगल बादशाह अकबर की पट्टमहिषी महारानी जोधाबाई उनकी धर्म बहन थी। जहाँगीर उन्हें मामू कहकर पुकारते थे। जैन तीर्थों की रक्षा के लिये किये गये उनके प्रयत्नों के कारण समूचा जैन समाज उनका ऋणी है।

मेवाड़ के सिसोदिया ठाकुर पद्मसिंह ने लगभग वि.सं. १४७२ में एक जैन मुनि की प्रेरणा से जैन धर्म स्वीकार किया। उनकी छठी पीढ़ी में सहस्रकिरण हुए, जो अहमदाबाद आकर एक मारवाड़ी जौहरी की दुकान पर काम करने लगे। अपनी ईमानदारी से उन्होंने जौहरी का मन मोह लिया और उनकी पुत्री से विवाह कर घरजमाई बन गये। वि.सं. १६४२ के आस-पास सेठ शान्तिदास का जन्म हुआ। उनके दूसरे पुत्र का नाम वर्द्धमान था। गुजराती, फारसी में शिक्षा ग्रहण कर दोनों भाई व्यापार देखने लगे। शान्तिदास देश-विदेश का काम देखते थे। वे कभी श्रीलंका में मोती खरीदने जाते, कभी बर्मा से माणिक लाते और कभी गोलकुण्डा से हीरे खरीदते। राजाओं नवाबों और बादशाह अकबर के दरबार में उनकी पहुंच

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थी। उनकी रत्न परीक्षा की काबिलियत से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने उनकी शाही जौहरी के रूप में नियुक्ति की। उन्हें रनिवास में जाकर बेगमों को जवाहरात दिखाने का भी परवाना प्राप्त था। उस समय उनकी उम्र लगभग २० वर्ष थी।

एक बार बादशाह अकबर की पट्टमहिषी महारानी जोधाबाई रूठ कर अहमदाबाद चली आई। अहमदाबाद का सूबेदार बादशाह के खौफ से उनका जाहिरा स्वागत भी नहीं करना चाहता था और महारानी का अनादर करने की हिम्मत भी न थी। वह सेठ शान्तिदास के प्रभाव से वाकिफ था—अतः उनकी खातिरदारी का दायित्व सेठ शान्तिदास को सौंप दिया। बादशाह सलामत की नाराजगी की परवाह न करते हुए सेठ शान्तिदास ने अपना रहवास महारानी के लिये खाली कर दिया और खुद छोटी कोठरी में चले आये। महारानी हिन्दू थी वह आवभगत से प्रसन्न होकर उन्हें भाई कहने लगी। शहजादा सलीम जब माँ से मिलने अहमदाबाद आये तो शांतिदास को जौहरी मामा कहना शुरू कर दिया। यही नहीं, महारानी ने राखी बाँध कर उन्हें अपना धर्मभाई बनाया। सेठ शांतिदास ने अनेक मूल्यवान रत्न महारानी को भेंट किये। तब तक अकबर का गुस्सा ठंडा हो गया। राजा मानसिंह (सलीम के मामा) के समझाने पर सलीम की उच्छृंखलता को बादशाह ने माफ कर दिया था। महारानी जब दिल्ली लौटीं तो बादशाह सेठ शान्तिदास की मेहमानगिरी की बात सुनकर बहुत खुश हुए। बादशाह ने उन्हें प्रथम श्रेणी का अमीर घोषित किया, सिरोपाव बख्शा और अहमदाबाद का नगर सेठ बनाया।

इस समय तक सेठ शान्तिदास की समृद्धि और प्रतिष्ठा चर्चा का विषय बन गयी थी। उन्होंने राजा महाराजाओं को कर्ज देना शुरू कर दिया था। उनकी हुण्डी देश-विदेश में सिक्कों की तरह चलती थी। अहमदाबाद, शत्रुञ्जय, केशरियाजी संखेश्वर आदि प्रमुख जैन तीर्थों की सुव्यवस्था का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने अहमदाबाद राधनपुर, खम्भात और सूरत में उपासरों का निर्माण करवाया। वि.सं. १६६९ में शत्रुञ्जय के जीर्ण मन्दिरों का पुनरुद्धार करवाया। उन्होंने यात्रा संघ निकाला, जिसमें चारों तीर्थों के १५००० लोग थे। इस अवसर पर उन्होंने खुले हाथों दान-दक्षिणा दी।

तब तक शहजादा सलीम शहंशाह जहांगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर सिंहासनारूढ़ हो गये थे। सेठ शान्तिदास ने अहमदाबाद में शहंशाह की इजाजत लेकर नौ लाख रुपये खर्च कर ५२ भव्य जिनालयों का निर्माण कराया, जिनमें मकराणा के संगमरमर एवं खम्भात के अकीक पत्थरों पर बेजोड़ खुदाई प्रेक्षणीय थी। वि.सं. १६८२ में 'मेरुतुंग जिनालय' में पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा प्रस्थापित की गयी। विदेशी शिल्प विशेषज्ञों ने इनकी रमणीयता एवं शिल्प-विन्यास की खूब प्रशंसा की है।

जहाँगीर के बाद शाहजहाँ बादशाह बने। वह अकबर व जहाँगीर की तरह उदार न थे। उनके समय से धर्मान्ध मुस्लिम सूबेदारों ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना शुरु कर दिया था। शाहजादा औरंगजेब बड़ा प्रपंची एवं अन्य धर्मों के प्रति विद्वेष से भरा था। संवत् १७०२ में वह अहमदाबाद का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने सभी मन्दिर ढहा कर मस्जिदों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में तब्दील कर दिये। उसके हुक्म से जिनालयों पर सेना ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया। सेठ शांतिदास के हृदय को बड़ी चोट लगी। वे दिल्ली जाकर बादशाह से मिले। बादशाह ने सेठ साहब की पुश्तैनी खिदमतगारी को मद्देनजर रखते हुए औरंगजेब का तबादला दक्षिण में कर दिया एवं वि.सं. १७०५ में शाही फरमान द्वारा मंदिर सेठ साहब को लौटा दिये। परन्तु रूढ़िवादी जैन समाज उन्हें पुनः मन्दिर के रूप स्वीकार करने को राजी न हुआ। वे विशाल मन्दिर खण्डहर बन कर रह गये। इस तरह सेठ शांतिदास की विजय भी पराजय में बदल गयी।

शाहजहाँ ने छः करोड़ रुपये खर्च कर जो मयूरासन (सिंहासन) बनवाया था, उसमें जड़ित मूल्यवान रत्नों को उपलब्ध कराने में सेठ शांतिदास का मुख्य हाथ था। अनेक लड़ाइयों के निमित्त बादशाह को कर्ज देने वाले सेठ शान्तिदास ही थे। इसी प्रभाव से समय-समय पर तीर्थों की रक्षा के लिये शाही फरमान निकलवाने का श्रेय उन्हीं को है। वि.सं. १६८७ में निकला ऐसा एक फरमान अब भी आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी में मौजूद है, जिसमें इन तीर्थों की व्यवस्था में सरकारी दखलंदाजी न हो—ऐसे आदेश हैं। वि.सं. १७१३-१४ के फरमान में पालीताना गाँव एवं शत्रुञ्जय परगना सेठ शांतिदास की कायमी वंश परम्परा में माना गया है।

संवत् १७१५ में शाहजहाँ की वृद्धावस्था के कारण उसके पुत्रों—दारा, मुराद, शाहशुजा और औरंगजेब में दिल्ली के तख्त के लिए झगड़े शुरु हो गये। मुराद ने इस हेतु शांतिदास के पुत्र लक्ष्मीचन्द्र से साढ़े पाँच लाख रूपये कर्ज लिये किन्तु वह औरंगजेब के छलावे में आ गया। औरंगजेब ने दारा को परास्त कर अन्ततः शाहजहाँ एवं मुराद को भी कैद कर लिया। फिर स्वयं बादशाह बना। सेठ शांतिदास औरंगजेब की क्रूरता से परिचित थे फिर भी वे पुत्र के अनुनय पर वृद्धावस्था में दिल्ली गये एवं बादशाह को नजराना पेश किया। उन्होंने अपनी चतुराई एवं दूरदर्शिता से न सिर्फ मुराद को दिये कर्ज की वसूली के फरमान प्राप्त किये बल्कि जैन तीर्थों की भी रक्षा के फरमान निकलवाये। औरंगजेब जैसे कट्टर मजहबी, धर्मांध, स्वार्थी एवं असहिष्णु बादशाह से पालीताणा, गिरनार, आबू तीर्थों के अधिकार प्राप्त कर लेना सेठ शान्तिदास की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। सं. १७१६ में जैन तीर्थों का यह रक्षक एवं चार मुगल बादशाहों द्वारा सम्मानित तथा 'जौहरी मामा' नाम से सम्बोधित ओसवाल कुल का यह नक्षत्र अस्त हुआ।

अन्य वंशज

उनके पुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द्र को बादशाह औरंगजेब ने अहमदाबाद का 'नगर सेठ' घोषित किया। संवत् १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु पर बादशाह बहादुरशाह ने आपको प्रथम श्रेणी का अमीर घोषित किया एवं पालकी छत्री का सम्मान बख्शा। उस काल में आपकी हवेली पर पांच सौ अरब सैनिक तैनात रहते थे। बहादुरशाह के बाद जहाँदार शाह के समय (संवत् १७६९) भी सेठ लखमीचन्द्र का सम्मान उसी तरह कायम रहा। जब फर्रूखसियार ने विद्रोह

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किया तो सैयद बन्धुओं के कहने से सेठ लखमीचन्द्र ने स्थिति पहचान उसकी आर्थिक मदद की। फर्रूखसियार ने भी दिल्ली का बादशाह बनने पर सेठ लक्ष्मीचन्द्र को खूब सम्मान दिया। सं० १७७५ में सेठ लक्ष्मीचन्द्र के पुत्र खुशालचन्द्र कारोबार सम्भालने लगे। उन्हें भी बादशाह ने 'नगरसेठ' का सम्मान दिया। इसी साल महावीर स्वामी के महोत्सव पर निकलने वाले जुलूस के प्रश्न पर अहमदाबाद के सूबेदार से ठन गयी। बात यहाँ तक बढ़ी कि सूबेदार की फौज और सेठ जी की हवेली के अरब पहरेदार आमने सामने जम गये। तोपों में गोले भरे जाने लगे, तभी दिल्ली से परवाना पहुँचा। सूबेदार को दिल्ली बुला लिया गया और सेठ खुशालचन्द्र का सम्मान अक्षुण्ण रहा।

सं. १७७६ में सैयद बन्धुओं ने फर्रुखशियार की हत्या करवा दी। इधर मराठों की लूटपाट बढ़ रही थी। उन्होंने अहमदाबाद को घेर लिया। ऐसी विपत्ति की घड़ी में सेठ खुशालचन्द्र ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। वे स्वयं मराठा छावनी में गये। काफी मात्रा में धन देकर घेरा उठवाया एवं शहर को विपत्ति से बचाया। इस उपकार के बदले शासन ने सेठजी को नगर की मालगुजारी का 'सैकड़ा चार आना' वंश परम्परागत देने का निर्णय किया। आगे चलकर यह रकम एकमुश्त तय कर दी गयी।

सेठ खुशालचन्द्र के बाद उनके पुत्र नत्थू शाह एवं उनकी मृत्यु पर द्वितीय पुत्र बखत शाह नगर सेठ बने। उन्होंने बड़ौदा में भी पेढ़ी स्थापित की। गायकवाड़ सरकार से उन्हें छत्र और पालकी सम्मान प्राप्त हुआ। आपने पालीताणा, गिरनार और आबू तीर्थों के संघ निकाले।

बखतशाह के बाद उनके पुत्र हेमा भाई नगरसेठ के पद से विभूषित हुए। इस समय तक नगर सेठ का परिवार विशाल हो गया था। कहते हैं भोजन की पंक्ति में परिवार के डेढ़ सौ सदस्य एक साथ बैठते थे। यह पारिवारिक एकता का आदर्श था। हेमा भाई के समय अंग्रेजों का शासन हो गया था। समस्त भारत में नगर सेठ की पेढ़ियाँ (शाखाएँ) थीं। इन्होंने तीर्थों के संघ निकाले। बम्बई के मोतीशाह नाहटा से इनकी गाढ़ी मित्रता थी।

बखतशाह की पाँचवीं पीढ़ी में लालभाई का जन्म हुआ। इन्होंने पैतृक जवाहरात के व्यवसाय के अलावा संवत् १९५३ में कपड़ा उद्योग की नींव डाली। इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। यह जैन समाज में एक क्रांतिकारी कदम था। जो धनिक समाज धर्मगुरुओं के प्रभाव में ऐसे स्वदेशी उद्योगों को महाआरम्भ (पाप) का काम समझ कर विलायती कपड़े को विदेशों से आयात कर विक्रय करने तक सीमित था, वहाँ स्वदेशी कपड़ा मिलें स्थापित कर लालभाई ने समाज को नई दिशा दी। इसी का परिणाम है कि गुजरात के ओसवाल उद्योगों के क्षेत्र में बहुत आगे हैं।

लालभाई आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी के अध्यक्ष चुने गये। संवत् १९६५ में सम्मेद शिखर पर सरकार ने निजी बंगले बनवाने की इजाजत दे दी। उस समय लालभाई के नेतृत्व में ही समाज उसे रुकवाने में सफल हुआ। वे श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेंस के अनेक वर्षों तक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महामंत्री रहे। इनके पुत्र श्री कस्तूरभाई ने औद्योगिक क्षेत्र में खूब नाम कमाया। वे भारत की स्वतंत्र सरकार द्वारा संवत् २०२६ में 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किये गये।

योगी सम्राट् आनन्दघन

सत्रहवीं शताब्दी में एक ऐसी महान् आत्मा का अवतरण हुआ, जिसे सब संप्रदाय और धर्म बड़ी श्रद्धा से स्मरण-नमन करते हैं। सम्प्रदायातीत आत्मानुभवी श्रीमद् आनन्दघन की भक्ति एवं आध्यात्म परक 'चौबीसी' बहुत लोकप्रिय हुई। उनके जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी बहुत कम उपलब्ध है। वे मेडता के श्वेताम्बर जैन परिवार में जन्मे ओसवाल जाति के एक धनाढ्य श्रेष्ठि के पुत्र थे। उनका जन्म वि.सं. १६६० के आस-पास हुआ। सन्त प्रवर सहजानन्द जी महाराज ने 'चौबीसी' का विवेचन करते हुए उनके जीवन प्रसंगों पर भी संक्षित रूप से प्रकाश डाला है। कहा जाता है कि इनका पूर्व नाम या दीक्षा नाम लाभानन्द था। उनके स्तवनों के सूक्ष्म परिदर्शन से वे मूर्तिपूजक खरतर सम्प्रदाय के निकट लगते हैं। मुनि बुद्धिसागर जी ने उन्हें 'खरतर गच्छ की परम्परा' का ही लिखा है परन्तु साधना अपेक्षा से वे गच्छातीत थे—यह असंदिग्ध है। 'आनन्दघन ग्रन्थावली' में उनकी समस्त रचनाओं का संकलन है। आपकी 'चौबीसी' पर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं।

कहते हैं एक समय आनन्दघनजी, शत्रुञ्जय तीर्थ दर्शन के लिये गये। वे प्रभु दर्शन कर स्तवन कर रहे थे कि वहाँ तपागच्छीय उपाध्याय यशोविजय जी पहुँच गये। जिन स्तवन में लीन आनन्दघनजी की पंक्तियाँ यशोविजयजी ने कण्ठस्थ कर लीं। जब आनन्दघनजी को मालूम हुआ तो उन्होंने २२वां पद गा कर बन्द कर दिया। इस तरह २ स्तवन सदा के लिये बाकी रह गये। योगिराज आनन्दघन के बाईस स्तवनों के अलावा सौ से अधिक पद एवं ५ सज्जाएँ भी उपलब्ध हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने उन्हें रहस्यावादी माना है। मूलतः वे भक्तिमार्गी थे। प्रभु की शरणागति में चित्त-वृत्तियों को लीन कर देना उन्हें श्रेयस्कर लगा। जैन परम्परा एवं साधना पद्धति के विपरीत भगवान की प्रीतम के रूप में उपासना उनकी उत्कट भक्ति का दर्शन है :

ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो, और न चाहूँ कन्त।
रीझ्यो साहब संग न परिहरे, भोगे सादि अनन्त।।

इनके चमत्कारों की अनेक जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। एक बार जोधपुर की महारानी से राजा साहब नाखुश रहते थे। योगीराज ने रानी को कागज पर लिख कर एक मंत्र दिया। रानी ने उसे सोने के यन्त्र में रख कर पहना। संयोग से राजा प्रसन्न हो गये। ताबीज खोलकर पढ़ा तो लिखा था—'राजा रानी दोउ मिलें, उसमें आनन्दघन को क्या।' एक समय आबू के पहाड़ पर योगीजी साधना लीन थे। एक आदमी स्वर्णसिद्धि रसायन लेकर आया। उसने चमत्कार दिखाया। आनन्दघन जी ने उठ कर एक चट्टान पर लघुशंका की। वह चट्टान स्वर्ण की हो गयी। इसी तरह मेड़ता में एक स्त्री को सती होने से उपदेश द्वारा बचाया। जोधपुर के एक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गाँव में ज्वरग्रस्त हो कर भी ज्वर को कपड़ों में छोड़कर आगन्तुक को देशना दी। बीकानेर में दिल्ली के शाहजादे का स्तम्भन कर उसे जैन साधुओं का मजाक उड़ाने से रोका। इस तरह की अनेक कथाएँ आनन्दघन जी से जुड़ी हैं। ये समाज की अतुल श्रद्धा की प्रतीक तो हैं ही।

आनन्दघन जी की कृतियों में धार्मिक क्रांति के स्पष्ट चिह्न परिलक्षित होते हैं, साथ ही वे अनुभव बल से पुष्ट हैं। तत्कालीन जैन सम्प्रदायों की अनुभव शून्यता, कदा ग्रह एवं गच्छ भेद के प्रति उनके हृदय में अपार पीड़ा थी। गुजरात के एक चातुर्मास में, व्याख्यान में नगरसेठ के आने में विलम्ब होता देखकर आपने व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया। नगरसेठ ने इससे क्षुब्ध होकर उन्हें उपाश्रय से निकाल दिया। तभी से उन्होंने सम्प्रदाय की चहार-दीवारी तोड़ दी। वे साधना में लीन रहने लगे। एक दिन वस्त्र पात्र आदि का भी त्याग कर वे जंगल मे चले गये। जनश्रुति है कि दिगम्बर दशा में जब वे खड्गासन में ध्यानस्थ थे तो किसी भक्त ने उन्हें एक कौपीन पहना दी। वे कभी वृक्ष के तले, कभी गुफा-कन्दरा में और कभी श्मशान में देखे जाते थे। उन्हें द्रव्य, काल, क्षेत्र का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। कालान्तर में वह कौपीन भी कहीं गिर गयी। अन्ततः पूर्ण दिगम्बर अवस्था में वे समाधिस्थ रहने लगे।। इसी अवस्था में इस युगपुरुष ने महाप्रयाण किया। कतिपय जैन साधुओं की साक्षी के अनुसार महर्षि आनन्दघन अपने अन्तिम दिनों में मेड़ता के आस-पास विचरण करते रहे। प्राणनाथ सम्प्रदाय की कृति 'निजानन्द चरित्र' के अनुसार योगी सम्राट् आनन्दघन ने संवत् १७३१ में मेड़ता में देह-त्याग किया।

कुँवरपाल सोनपाल लोढ़ा

"हिन्दू सुरताण" एवं "नगर शिरोमणि" विरुद से सुशोभित ये भ्रातृद्वय मुगलकालीन भारत में ओसवाल श्रेष्ठियों की बुलन्दी के प्रतीक थे।

सूर्यवंशी देवड़ा चौहानों के वंशज राव लखणसी के संवत् ७३२ (या ७१०) में जैन धर्म अंगीकार कर लेने से लोढ़ा गोत्र की उत्पत्ति मानी जाती है। इसी कुल के धजमल से चली धजमलोत शाखा में ५०वीं पीढ़ी में शोभाचन्द्र हुए जिन्हें आगरा के एक शिलालेख में श्रृंग कहा गया है। इन्होंने सं. १५०१ में आगरा में एक जिनालय बनवाया। इन्हीं के वंशज कुंवरपाल सोनपाल हुए। इनके पिता ऋषभदास ने अंचलगच्छीय उपाचार्यों की प्रेरणा से धर्म स्थापना के अनेक कार्य किये। 'अंचल गच्छ नी मोटी पट्टावली' में ऋषभदास को बादशाह अकबर का कृपा पात्र बताया गया है।

भाटों के कुछ कवित्तों में ऋषभदास की जगह पिता का नाम रेखचन्द आता है एवं कुछ माता का नाम रेखश्री बताते हैं। आगरा मन्दिर की शिला प्रशस्ति के अनुसार सोनपाल सबसे छोटे थे। किन्तु मुस्लिम तवारीखों में कुंवरपाल (कुँवरदास) को छोटा बताया गया है। जहाँगीरनामा के अनुसार सुन्दर दास (सोनपाल) शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के विश्वस्त साथी थे। उन्होंने कांगड़ा के अजेय दुर्ग पर विजय पाई। शाहजहाँ ने जब जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किया तो विद्रोही सेना का प्रमुख संचालक सुंदर दास था। शाहजहाँ के वकील की तरह काम करने के लिये जहाँगीर ने उन्हें रायरायाँ का खिताब दिया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उन्हें राजा विक्रमादित्य की पदवी भी दी गयी। कुंवरदास गुजरात के दीवान तो थे ही, संवत् १६७५ में उन्हें मालवा का दीवान नियुक्त किया गया। गुजरात में भैंस एवं गाय का वध बन्द कराने का श्रेय इन्हीं भ्राताओं को है।

वंशावली

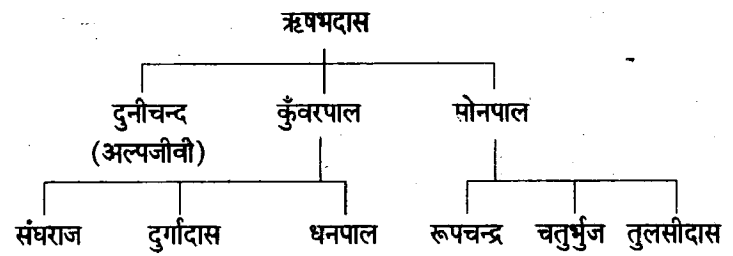

भ्रातृ द्वय ने जैन धर्म की प्रभावना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। सं. १६५७ में उन्होंने शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला। सं. १६६९ में सम्मेद शिखर के लिये संघ समायोजित किया। आ. जिन कीर्ति सूरि ने 'सम्मेद शिखर रास' में इसका मनोहारी वर्णन किया है। इस यात्रा के लिये बादशाह जहाँगीर ने फर्मान जारी किया। भ्रातृ द्वय को 'संघवी पद' से विभूषित किया गया। 'आगरा नूं ऐतिहासिक स्तवन' के अनुसार जहाँगीर ने उन्हें 'नगर शिरोमणि' की पदवी दी। मुनि जिनविजय जी के पाटण ग्रन्थागार से 'कोरपाल सोनपाल लोढ़ा गुण प्रशंसा' काव्य मिला है जिसमें उन्हें 'हिन्दू सुरताण' बताया गया है।

मुणोत नेणसी (वि. १६६७-१७२७)

राजस्थान के राजनैतिक इतिहास में नैणसी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आप कलम और तलवार दोनों के धनी थे। राजस्थान का राजपूत जातियों का इतिहास लिख कर भारत के साहित्य संसार में आपने अपार ख्याति अर्जित की।

मुहणोत गोत्र की उत्पत्ति राठौड़ राजपूतों से मानी जाती है। राव सोहा जी की चौथी पीढ़ी में मोहन जी हुए। उनके वंशज मोहनिया राठौड कहलाते थे। मोहनजी ने वृद्धावस्था में जैन धर्म स्वीकार कर लिया। उनके वंशज जैन रहे एवं कालान्तर में ओसवाल कुल में शामिल होकर मुहणोत कहलाये। इनके २०वें वंशधर जयमल वि.सं. १६९६ में राजा गजसिंह के समय मारवाड़ राज्य के मंत्री बने। इनके पांच पुत्र थे। उनमें नैणसी सबसे बड़े थे।

नैणसी का जन्म वि.सं. १६६७ में हुआ। सं. १७१४ में जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह ने इन्हें अपना दीवान बनाया। उस समय भारत भर में औरंगजेब के अत्याचार से लोग पीड़ित थे। राजपूताना में भी षड्यन्त्रों के जाल बिछे थे। महाराजा को दिल्ली दरबार के हुक्म से बाहर ही युद्ध रत रहना पड़ता था। शासन की बागडोर नैणसी के हाथों में सौंपकर महाराजा आश्वस्त थे। एक पत्र में हिदायतें देते हुए महाराजा ने नैणसी जी को लिखा था कि वे लोक,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

व्यापारी और प्रजा को तसल्ली देते रहें। कोई किसी पर जोर जबर्दस्ती न करने पाये। सरहद का प्रबन्ध रखना। राजकुमार के खाने पीने की ठीक व्यवस्था रखना आदि। इस पत्र से मालूम होता है कि महाराज नैणसी का कितना सम्मान व भरोसा करते थे।

नैणसी जी के शासन में मारवाड़ में अमन चैन का राज्य रहा। लोग संतुष्ट थे। उन्होंने प्रजा पर लगी कई लागें माफ कर दीं। आपने राज्य में सं. १७२० में जनगणना करवाई, जिसमें छोटी छोटी बातें रिकार्ड की गयी थीं। आपने 'मुणोत नैणसी री ख्यात' नाम से विख्यात राजपूताना का इतिहास लिखा, जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण के अलावा राज्यों के कुओं, जमीन, जनसंख्या आदि का पूरा हाल अंकित है। मारवाड़ के गाँवों की एक पूरी रिपोर्ट "मारवाड़ रे परगना री विगत" तैयार की। उसमें गाँवों की आमदनी, भूमि की किस्म, साखों का ब्यौरा, कुँओं, तालाबों आदि का पूरा विवरण है।

मुणोत नैणसी

आपने राज्य की ओर से अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। सं. १६८८-८९ में मगरे के मीणों ने राज्य में बड़ा उत्पात मचाया। आपने उनपर चढ़ाई कर उत्पात शमन किया। सं. १६९४ में वे फलौदी के हाकिम नियुक्त हुए, जहाँ उन्हें बिलोचियों से लड़ना पड़ा। इसी तरह सं. १७०० में राउधरे में महेचा महेशदास की बगावत का शमन किया। सं. १७०२ में रावत नारायण की सोजत में लूटमार खत्म की। सं. १७०५ में महाराज ने नैणसी जी को जैसलमेर पर चढ़ाई करने भेजा। वहाँ के रावल आपके डर से जैसलमेर छोड़कर भाग गये। सं. १७०६ में पोकरण का परगना महाराज को इनायत हुआ। वहाँ उस समय जैसलमेर के भाटियों का अधिकार था। नैणसी ने लड़ाई में भाटियों को हराकर पोकरण पर कब्जा कर लिया।

वि.सं. १७१४ से १७२३ तक वे राज्य के दीवान रहे। सं. १७२३ में महाराजा जसवंत सिंह इनसे नाराज हो गये। महाराजा ने नैणसी तथा इनके भाई सुन्दरसी को कैद कर लिया। कहते हैं—इन्होंने अपने नाते-रिश्तेदारों को बड़े पदों पर नियुक्त कर दिया था—इससे महाराज अप्रसन्न थे। सं. १७२५ में एक लाख रूपये दण्ड लगाकर इन्हें छोड़ दिया गया। दण्ड न

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

देने पर सं. १७२६ में इन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया। इन सब घटनाओं से दुखित होकर फुलमरी नामक स्थान पर दोनों भाइयों ने सं. १७२७ में अपने पेट में कटार मारकर शरीरांत कर लिया। इससे महाराज की बहुत बदनामी हुई।

आप द्वारा विरचित 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ है। मुन्शी देवी प्रसाद उन्हें राजपूताने का अबुल फजल कहा करते थे। "ख्यात" की भाषा मारवाड़ी है। शोध छात्रों के लिये यह ग्रन्थ अमूल्य है। इसमें वि.सं. १३०० से नैणसी जी के समय तक का राजपूताना, काठियावाड़ कच्छ, बुन्देलखण्ड और मध्य भारत के रजवाड़ों और ऐतिहासिक घटनाओं का विशद वर्णन है। इतिहासकार की दृष्टि से नैणसी अबुल फजल की तुलना में बहुत भारी पड़ते हैं। जहाँ अबुल फजल को बादशाह अकबर की छत्रछाया, राजकीय पोथीखाने एवं हर सूबे में लिखारों का सहयोग प्राप्त था वहाँ नैणसी स्वयं अपनी बुद्धि और श्रम पर निर्भर थे। अबुल फजल ने जहाँ बादशाह की प्रशस्तियाँ लिखीं, नैणसी की दृष्टि आलोचनात्मक थी। एक सच्चे इतिहासकार की तरह नैणसी ने जहां जहाँ से सामग्री का दोहन किया, उन पोथी गुटकों भाटों एवं चारणों के संदर्भ दिये। जहाँ अब्बुल फजल को सुलेमान सौदागर, अल्बरूनी, जियाउद्दीन बरनी, इब्नबतूता आदि इतिहासकारों के उद्धरण हासिल थे, नैणसी के लिये यह आयाम सर्वथा नवीन था। नैणसी मात्र इतिहासकार नहीं, वे एक समाजशास्त्री एवं वाणिज्यवेत्ता भी थे। उन्होंने राजसत्ता के साथ आम जनता, भील ढेढ, बलाई आदि जन जातियों के जीवन का भी बखान किया। उक्त महान ग्रन्थ का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन श्री रामनारायण दूगड़ ने किया जो नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ।

मुहणोत नैणसी कवि भी थे। कैद के समय रचित निम्न पद उनके दृढ़ चरित्र का गवाह है :

दहाड़ो जितरे देव, दहाड़े बिन नहीं देव है।
सुर-नर करता सेव, नेड़ा न आवै नेणसी।।

नैणसी ने जोधपुर में चांदपोल दरवाजे के बाहर एक बाग बनवाया, जो अब भी 'नैणसी जी का बाग' नाम से प्रसिद्ध है। उनके बनवाये हुए मकानों, जो मुहनोतों की पोल नाम से प्रसिद्ध हैं, में अब भी उनके वंशज निवास करते हैं। इनके वंशजों को 'ठाकुर' की पदवी राज्य से इनायत हुई हैं जिसका प्रयोग अब भी वे अपने नाम के आगे करते हैं।

संघवी दयालदास

मुगल साम्राज्य के अत्याचारों से जब भारत की जनता त्राहि त्राहि कर रही थी, तब ओसवंश के इस प्रतापी योद्धा ने मुगलों के दाँत खट्टे किये। मूलतः सिसोदिया राजपूतों के विक्रम की १३वीं शताब्दी में यति यशोभद्र सूरि से जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल बनने एवं संघ समायोजन से संघवी गोत्र उत्पन्न हुआ है। इस गोत्र में डूंगर सिंह हुए, जिन्हें राणा लाखा ने कोठार के काम पर नियुक्त किया। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर सूरपुर गाँव जागीर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में दिया, जिससे ये सरूपिया नाम से विख्यात हुए। कालांतर में इसी खानदान के संघवी राजाजी एवं उनकी भार्या रमण दे के सबसे छोटे पुत्र दयालदास हुए। अनेक वर्षों तक आप उदयपुर में एक ब्राह्मण पुरोहित के यहाँ नौकर थे। उदयपुर के तत्कालीन महाराणा राजसिंह के विरुद्ध लड़ते हुए एक षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ करने से राणा ने उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। कालांतर में उन्नति कर आप राज्य के प्रधानमंत्री बने।

उस समय दिल्ली के तख्त पर बादशाह औरंगजेब थे। उन्होंने हिन्दुओं और जैनों के विरुद्ध जेहाद बोल रखा था। जजिया कर लगा दिया, मन्दिरों को तुड़वा कर मस्जिदें बनवा दीं, समस्त जनता त्रस्त थी। जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह की विधवा एवं पुत्रों के साथ किये गये अन्यायपूर्ण व्यवहार से कुपित हो मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब को एक कड़ा पत्र लिखा। जले-भुने औरंगजेब ने संवत् १७३६ में मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राणा राजसिंह के नेतृत्व में अनेक रियासती राजाओं ने मुगल सेना का डटकर मुकाबला किया। यह राज्य के प्रधान मंत्री संघवी दयाल दास की सूझ-बूझ का ही नतीजा था कि बादशाह को मजबूर होकर संवत् १७३८ में राणा से सन्धि करनी पड़ी।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजपूताने के इतिहास' में आपके शौर्य की प्रशस्ति में लिखा है कि दयालदास के हृदय में मुगलों से अत्याचार का बदला लेने की आग हर समय सुलगती रहती थी। मालवा, देवास, माँडू, उज्जैन, चन्देरी, सारंगपुर, सिरोज आदि के मुगल सूबेदारों को दयालदास ने बार बार पराजित किया। मुल्ला, मौलवी, काजी, मस्जिद, कुरान किसी को नहीं बख्शा। उनके आतंक से मुसलमानों में दहशत छा गयी थी। उन्होंने मुगलिया सल्तनत की जड़ें हिला दीं। चित्तौड़ के निकट शहजादा सलीम की फौज के साथ हुए घमासान युद्ध में दयालदास ने फिर एक बार मुगल सल्तनत को शिकस्त दी। शहजादा बच कर भाग निकला।

दयालदास अपने धर्म की रक्षा के लिये जूझे मरे। उनकी बहादुरी एवं राजनीति कुशलता से राणा राजसिंह बहुत प्रसन्न थे। दयालदास ने मुगल छावनियों से लूटे गये सोने से लदे २५ ऊँट महाराजा को भेंट किये। इसी धन से महाराणा ने राजसमंद की ऐतिहासिक झील का निर्माण कराया। जैन यतियों को राज्य की ओर से जमीन प्रदान की गई। उनकी प्रेरणा से उदयपुर राज्य में एक अभूतपूर्व फरमान जारी हुआ—'जैन उपासरों में शरण लेने वाले अपराधियों को भी पकड़ा नहीं जा सकता।' राज्य धर्म और जाति की उन्नति के लिये इस ओसवाल वीर ने अपना जीवन होम दिया। आपने अनेक जिनालयों का निर्माण करवाया। राजसमन्द झील के पास की पहाड़ी पर संवत् १७३२ में दयालदास ने आदिनाथ भगवान् का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बनवाया, जो 'दयालसाह का देवरा' नाम से विख्यात है। उन्हीं की प्रेरणा से संवत् १७४९ में महाराणा ने प्राचीन जैन क्षेत्रों की सीमा में जीववध निषेध कर दिया।

सती पाटण दे

मंत्रीश्वर दयालदास की पत्नी का नाम पाटण दे था। इस वीर रमणी के वीरत्व एवं सतीत्व की अनेक कथाएँ चारण कवियों के मुख से सुनी जा सकती हैं। श्री जसवंत लाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मेहता ने अपने प्रबन्ध 'मेवाड़ के शासक एवं जैनधर्म' में एक बहुश्रुत जनश्रुति का जिक्र किया है। कहते हैं—जब राजसमन्द झील का निर्माण हो रहा था तो झील की पाल जैसे ही बनाई जाती, पानी आने पर बह जाती। किसी ज्योतिषी की राय से महाराणा राजसिंह एक सती से झील की नींव रखवाने पर आमादा हुए। भविष्य में चारित्रिक लांछन एवं जग हंसाई के डर से कोई रमणी नींव रखने को तैयार न थी। अन्ततः पाटण दे तक बात पहुंची। वे तुरन्त तैयार हो गयीं। इसी सती के हाथों झील की नींव रखवाई गयी—जो फिर कभी नहीं टूटी।

पाटण दे धर्मात्मा सती तो थी हीं, वीरांगना भी थीं। युद्ध के समय रमणियों के जौहर की अनेक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बछावत के कुल की वीर रमणियों द्वारा बीकानेर में किया गया जौहर इसका ज्वलंत साक्षी है, किन्तु युद्धभूमि में पति के साथ साथ लड़ने वाली रमणियाँ कम ही हुई हैं। कहते हैं बादशाह औरंगजेब की फौज ने चित्तौड़ पर हमला किया, तब मंत्रीश्वर दयालदास की पत्नी पाटण दे स्वयं अपने पति के साथ युद्धभूमि में लड़ी। एक समय जब शत्रुसेना ने उन्हें घेर लिया तो पाटण दे ने अपने पति से स्वयं तलवार चला कर मार डालने की प्रार्थना की, ताकि शत्रु पकड़ कर उनकी देह को अपवित्र न कर सकें। एक चारण कवि ने पाटण दे की इस वीरगाथा को इस प्रकार छन्दबद्ध किया है :

काट काट काटहि कटक पाटी पाटण दे।
जैनधर्म की जोधड़ी दी नहीं छुअन देह।।
मोटी मन की मरदड़ी कोमल कमलहि काय।
खग खटका रण खेतड़ा ढब ढब अरि न ठहाय।।
अन्त समय में वह अरे कहियो पति सो एह।
कर करपाण चलाय के दोय करो मन देह।।

(छन्द सौजन्य—श्री बलवन्त सिंह जी मेहता)

पाटण दे वीरांगना सती का नाम ओसवाल जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

भण्डारी खींवसी

भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाले ओसवाल मुत्सद्दियों में भंडारी खींवसी जी बड़े धुरन्धर हुए। महाराज जसवन्तसिंह के बाद जोधपुर की राजगद्दी पर महाराजा अजीतसिंह बैठे। आपने भण्डारी खींवसी को सं. १७६६ में दीवान एवं कुछ समय बाद १७७२ में अपना प्रधान नियुक्त किया।

मुगल साम्राज्य का सितारा उस समय डूब रहा था। तत्कालीन दिल्ली के मुगल बादशाह फर्रूखशि-यार खींवसी जी से बहुत प्रभावित थे। महाराजा अजीतसिंह जी ने इसका बहुत लाभ उठाया। सं. १७७१ में गुजरात के सूबे का शासन भार खींवसी जी के प्रयत्नों से ही हस्तगत हुआ था। महाराज को राजराजेश्वर की पदवी दिलाने का श्रेय भी खींवसी जी को ही था। जब भी कोई समस्या आ खड़ी होती, खींवसी जी दिल्ली जाकर राज्य के हक में फैसला करवाते। आप महीनों दिल्ली दरबार में रहते थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसी समय महाराज अजीतसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह बादशाह फर्रूखशियार से कर दिया। यह मुगल बादशाहों का हिन्दू राजकुमारी से अन्तिम पाणिग्रहण था। कर्नल जेम्स टॉड ने इसी विवाह को अंग्रेजों के भारत भूमि पर पांव टिकाने का कारण एवं अंग्रेजी शासन का आदिस्रोत माना है। हुआ यह कि विवाह के दरमियान बादशाह बीमार पड़ गया एवं हकीम वैद्य उसे स्वस्थ करने में असमर्थ रहे। उन्हीं दिनों सूरत से अंग्रेज व्यापारियों का एक मिशन दिल्ली आया हुआ था, उनमें डा. हेमिल्टन भी था। उसमे बादशाह को अच्छा कर दिया। बादशाह ने खुश होकर उसे बंगाल के हुगली जिले में फैक्टरी लगाने के लिये जमीन का पट्टा लिख दिया। यहीं से भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ी।

सं. १७७६ में बादशाह फर्रूखशियार को सैयद बंधुओं ने मरवा डाला। मुहम्मदशाह को दिल्ली का सिंहासन दिलाने में खींवसी जी का प्रधान हाथ था। बादशाह ने आपकी प्रार्थना पर हिन्दुओं पर लगाया गया जजिया कर माफ कर दिया।

खींवसी जी ने मुणोत नैणसी जी के वँशज संग्रामसिंह को वापिस बुलाने के लिये महाराजा अजीतसिंह से आग्रह किया। महाराजा ने उन्हें वापिस जोधपुर बुलाकर सात परगनों का शासक बना दिया।

भंडारी खींवसी जी

अंतिम समय में आपको भी प्रधानगी से इस्तीफा देना पड़ा। महाराजा अजीत सिंह की मृत्यु पर महाराजा अभयसिंह सं. १७८१ में जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने खींवसी जी को फिर प्रधान बनाया। सं. १७८२ में मेड़ता में खींवसी जी का देहान्त हो गया। उनके पुत्र अमरसिंह प्रधान नियुक्त हुए। उन्हें सिरोपाव, पालकी एवं हाथी पर सवारी बख्शी गयी।

भण्डारी खींवसी जी के समय भण्डारी रघुनाथ जी का बड़ा सम्मान था। महाराज अजीतसिंह ने उनको गुजरात में दी गयी सेवाओं के एवज में 'राय' की उपाधि दी थी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इन्हीं के परिवार में भण्डारी मनरूप जी (सं. १८०४) और उनके पुत्र सूरतराम जी सं. १८०६ में राज्य के दीवान बने। परन्तु सं. १८०७ में वे कैद में डाल दिये गये। उन्हें सवा लाख का जुर्माना भरना पड़ा।

जगत सेठ माणकचंद

विक्रम की १८वीं सदी में ओसवाल श्रेष्ठियों का एक घराना भारत के समूचे राजनैतिक, व्यापारिक एवं धार्मिक आकाश पर छा गया। भारत एवं विशेषतः बंगाल के इतिहास में जगतसेठ एवं उनके खानदान का बहुत प्रभाव रहा। यह खानदान नागौर का श्वेताम्बर जैन धर्मी गेलड़ा गोत्रीय ओसवालों का है।

सं. १५५२ में खींची गहलोत राजपूत गिरधरसिंह जी आचार्य जिनहंस सूरि के उपदेश से प्रतिबोध पाकर जैन हुए। उनके पुत्र गेलाजी की संतानों से गेलड़ा गोत्र की उत्पत्ति मानी जाती है। उनके वंशज शाह हीरानन्दजी नागौर के वाशिन्दे थे। वे बड़ी आर्थिक कठिनाई में थे। एक समय हीरानन्द जी व्यापार के लिये एक यति से मुहूर्त निकलवा कर पूर्व की ओर चले। रास्ते में काला नाग आया। वे अपशकुन समझकर लौट आये। यति ने कहा—'उस शकुन में चले जाते तो छत्रपति होते, अब भी चले जाओ अरबपति जरूर होओगे।' यह सुनकर वे चल पड़े। कई मास चलकर संवत् १७०९ में पटना पहुंचे। पटना में साहूकारी का धन्धा शुरू किया। वहाँ से बंगाल आकर व्यापार किया। इनके सात पुत्र और एक कन्या हुई। सं. १७६८ में इनकी मृत्यु हुई। इनके पांचवें पुत्र माणकचन्द जी बंगाल और देहली के राजतंत्र में नक्षत्र की तरह चमके। बड़े-बड़े सरदार दीवान, अंग्रेज कम्पनी के अधिकारीगण इनकी कृपा के लिये लालायित रहते थे। ये २००० सैनिक हर समय अपनी रक्षा और सम्भाल के लिये साथ रखते थे। १८वीं सदी के बंगाल के इतिहास में इनकी कोई मिसाल नहीं।

उस समय बंगाल मुगलिया सल्तनत का ही अंग था। प्रदेश की राजधानी ढाका थी। अजीमुशान बंगाल का नाजिम था। उसने संवत् १७५५ में सोलह हजार रुपये लेकर अंग्रेजों को सुतानती, गोविन्दपुर और कलिकत्ता के जमींदारी के अधिकार दे दिये। बादशाह औरंगजेब ने खफा होकर अजीमुशान को पटना भेज दिया और फर्रूखशियार को बंगाल का निजाम बनाया। साथ ही नवाब मुर्शीदकुली खां को बंगाल का दीवान बनाया। मानिकचन्द्र जी सं. १७६१ में ढाका आये। वे जल्दी ही शहर के प्रसिद्ध श्रेष्ठियों में गिने जाने लगे। दीवान मुर्शीदकुली खाँ और माणकचन्द जी में भाइयों का-सा प्रेम हो गया। माणकचंद जी की राय पर दीवान मुर्शीदकुली खाँ ने भागीरथी के किनारे मुर्शिदाबाद नगर आबाद किया। यह स्थान पहले मखसूदाबाद के नाम से जाना जाता था। नवाब को राजकाज का ज्ञान न था। दिल्ली बादशाह के हुक्म से मुर्शीदकुली खां को संवत् १७६१ में बंगाल का दीवान बनाया गया था। तब से राज का अधिकांश काम काज सेठ माणकचंद जी की राय से चलने लगा। जब बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद बन गयी, वहीं महिमापुर में सेठ माणिकचन्द ने अपनी शानदार कोठी बनवाई। मुर्शीदकुली खां से इन्होंने टकसाल बनाने की इजाजत ले ली। सेठ माणकचन्द जी की टकसाल में ढले सिक्के पूरे राज्य में चलने लगे। राजधानी होने से मुर्शिदाबाद का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

खूब विकास हुआ। राजस्व की उगाही भी सेठ माणकचंद के हाथ में थी। दिल्ली को अधिक महसूल जाने लगा। बंगाल, बिहार, उड़ीसा की प्रजा ने उन्हें सर्वोपरि माना। प्रजा पर अत्याचार कम हुए।

उधर अंग्रेज कर्नाटक, मद्रास, सूरत में अपने पाँव फैला रहे थे। पर बंगाल में अपने पाँव न रोप सके थे। संवत् १७६३ तक अंग्रेजों ने सेठ मानकचन्द से संबंध बैठाने शुरु कर दिये थे। अंग्रेज विदेश से चांदी लाकर भारत मे बेचते थे। मद्रास में उनकी अपनी टकसाल चालू हो गयी थी। बंगाल में भी सेठ मानकचंद जी की टकसाल में वे सिक्के ढालना चाहते थे, पर समझौता नहीं हो पा रहा था। बंगाल में बिना शुल्क दिये व्यापार करने की सनद पाने के लिये उन्हें ५२,५०० रूपये देने पड़े थे।

दिल्ली का तख्त पलटा और फर्रूखशियार बादशाह बना। उसने माणकचन्द को नगरसेठ की पदवी और पाँव में सोना बख्शा। 'रियाज' के लेखक के अनुसार माणकचंद को फर्रूखशियार ने संवत् १७७० में 'जगत् सेठ' की उपाधि दी थी। अन्य अनेक इतिहासकार भी इस बात से सहमत हैं कि दिल्ली की मुगल सल्तनत की ओर से पहली बार यह उपाधि सेठ माणकचन्द को ही प्रदान की गयी। फर्रूखशियार की मृत्यु के बाद बादशाह मुहम्मद शाह ने भी उन्हें इस उपाधि से एक बार फिर सम्मानित किया।

बादशाह फर्रूखशियार की एक बीमारी ने इतिहास के रुख को किस तरह पलटा, इसकी भी दिलचस्प कहानी है। बादशाह जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह की कन्या से विवाह करने के लिये लालायित था। वैद्य और हकीम बादशाह के रोग का निदान नहीं कर पा रहे थे। उन्हीं दिनों अंग्रेज व्यापारियों का एक दल दिल्ली आया हुआ था। उस दल में हेमिल्टन नामक डाक्टर भी थे। उन्होंने बादशाह को रोगमुक्त कर दिया। बादशाह ने मुंह मांगा इनाम देने का बचन दिया। हेमिल्टन ने एवज में बंगाल के कुछ परगने मांग लिये। वस्तुतः यहीं से भारत मे अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ी। जब परगने अंग्रेजों के सुपुर्द कर देने का फरमान मुर्शिदाबाद पहुंचा तो नवाब ने उन्हें बिना तामील किये वापस कर दिया। सेठ माणकचंद अंग्रेजों से खुली शत्रुता मोल नहीं लेना चाहते थे। वे अंग्रेज व्यापारियों को कोशिश करने का आश्वासन देते रहे। बादशाह ने क्रोध में आकर मुर्शीदकुली खां को बर्खास्त कर दिया और उसकी जगह सेठ माणकचंद को बंगाल का दीवान बनाया। सेठ माणकचंद स्वयं आश्चर्यचकित था और मुर्शीदकुली खां भी सकते में आ गया। सेठ माणकचंद जब उनसे मिलने गया तो मुर्शीद कुली खाँ को ठँडा मीठा करके समझा दिया। कहा—'मैं आज ही दिल्ली लिख देता हूँ कि मुझे मिली दीवानगी पुनः मुर्शीदकुली खाँ को दे दी जाय।' इस अपनापे से मुर्शीदकुली खां खुश हो गया। वह दीवान बना रहा। सेठ माणकचंद ने अंग्रेजों के चढ़ते सितारों को देखते हुए उन्हें बिना टैक्स दिये व्यापार करने की इजाजत देने की सिफारिश दिल्ली दरबार से कर दी।

सेठ माणकचन्द ने भागीरथी नदी के तट पर एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया। उसे तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित किया। इस मंदिर में मूल्यवान एवं दुष्प्राप्य कसौटी पत्थरों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(जिन पर घिस कर सोना कसा जाता है) का उपयोग हुआ है, जिसे तत्कालीन नवाब मुर्शीद कुली खां से खरीदा गया था। कहते हैं कि नवाब ने उन्हें मालदा से प्राचीन गौड़ हिन्दू राजाओं के महल एवं दरबारशाला से प्राप्त किया था। संवत् १९४८ में भागीरथी नदी के प्रलयंकारी प्रवाह से मंदिर को बचाने के लिये तत्कालीन सेठ गुलाबचन्द ने कसौटी के ये पत्थर एवं इनसे बना भगवान का सिंहासन अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया। संवत् १९५८ में लार्ड कर्जन जब जगत सेठ के महल एवं मंदिर के भग्नावशेष देखने मुर्शिदाबाद पधारे तो इन पत्थरों के सौंदर्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन पत्थरों को कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल में महारानी की प्रस्तर मूर्ति के आसनरूप में लगाने की इच्छा जाहिर की थी। परन्तु जगत् सेठ खानदान ने इसे उचित नहीं समझा। संवत् १९७६ में पुनः नये जैन मन्दिर का निर्माण सेठ गुलाब चन्द के पुत्र सेठ फतहचन्द (द्वितीय) ने आरंभ किया। तब इन बहुमूल्य पत्थरों से मंदिर को फिर अलंकृत किया गया।

जगत सेठ माणकचंद ने अपार धन संपत्ति अर्जित की। बंगाल, बिहार, उड़ीसा में उन्हीं की टकसाल से बने रुपये ही जनता के उपयोग में आते थे। कर्नल जैम्स टॉड ने लिखा है कि जगत सेठ (माणकचन्द) के पास इतना सोना चांदी था कि गंगा पर सोने की ईंटों का पुल बनवाया जा सकता था। दिल्ली बादशाह की ओर से उन्हें कुण्डल, हाथी की सवारी और पालकी बख्शी गई थी। संवत् १७७९ में जगत सेठ माणकचंद परलोक सिधारे।

जगत सेठ माणिकचंद की पत्नी मानिक दे ने धार्मिक जगत् में बड़ी सुख्याति अर्जित की। उनकी प्रशस्ति में रचित 'मानिक दे रास' उनकी दान पुण्यशीलता को उजागर करता है।

जगत सेठ फतहचन्द

सेठ माणकचंद के दो पत्नियाँ थीं, किन्तु पुत्र न था। उन्होंने अपने भान्जे आगरा के राय उदयचंद गोखरू के पुत्र फतहचंद को संवत् १७५७ में गोद ले लिया था। सेठ माणकचंद की मृत्यु के बाद फतहचंद उनके उत्तराधिकारी हुए, जिन्हें बादशाह फर्रूखशियार ने सेठ की पदवी प्रदान की। सेठ फतहचन्द बड़े कुशल व्यापारी एवं राजनीतिज्ञ थे। थोड़े ही समय में पूरे देश में उन्होंने अपने फर्म की शाखाएँ स्थापित कीं। साहूकारी हुण्डियों के लेन देन में उनकी फर्म सर्वोपरि थी। संवत् १७७६ में दिल्ली में सैयद बन्धुओं ने राज्य क्रान्ति की। फर्रूखशियार मारा गया तथा मुहम्मदशाह दिल्ली का बादशाह बना। राजनैतिक अस्थिरता तथा मुद्रास्फीति से देश त्रस्त था। सेठ फतहचन्द के कहने पर बादशाह ने बाजार में मियादी हुण्डियों का क्रय-विक्रय एकदम रोक दिया, जिससे मुद्रास्फीति रुक गई। आम आदमी को राहत मिली। सेठ फतहचंद ने अनाज के अभाव को दूर करने में भी सल्तनत की बहुत मदद की। इससे खुश होकर संवत् १७८० में बादशाह मुहम्मदशाह ने उन्हें 'जगत सेठ' की पदवी से सम्मानित किया। उनके पुत्र आनन्दचन्द को सेठ की पदवी दी।

मुर्शीदकुली खां के पश्चात् बंगाल की नवाबी उसके जमाई शुजाउद्दीन और उसके पुत्र सरफराज खां के हाथ लगी। इधर दिल्ली की सल्तनत भी लड़खड़ा रही थी। इसी समय संवत्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जगत सेठ फतहचन्द

१७९६ में ईरान का बादशाह नादिरशाह अफगानों का पीछा करता हुआ भारत पर चढ़ आया। दिल्ली में नादिरशाह की लूटमार शुरु हुई। सरफरात खाँ असमर्थ था। बंगाल के छोटे छोटे जमींदार शासक जगतसेठ की ओर आँखें लगाये थे। जगतसेठ की महिमागंज स्थित कोठी मंत्रणा गृह बन गयी। वर्धमान के महाराज, ढाका के नवाब आदि सभी इस आतंक के समय जगतसेठ से मशविरा करने आते थे। जगतसेठ की सूझबूझ से उनकी टकसाल में ढले एक लाख सोने के सिक्के नादिरशाह को नजर किये गये। वह प्रसन्न हो गया और बंगाल उसके आतंक से बच गया।

नवाब सरफरात खाँ अत्यन्त विलासी था। भ्रष्ट सरफरात खाँ ने महिमापुर की एक अत्यन्त सुंदर कन्या, जिससे जगतसेठ के पुत्र की शादी होने वाली थी, पर लोलुप दृष्टि डाली। जगतसेठ ने उसकी रक्षा के लिये सरफरात खाँ के खिलाफ प्रबल लोकमत निर्मित किया। दिल्ली दरबार तक बात जा पहुंची। सरफरात खाँ का पतन हुआ। उसकी जगह अलीवर्दी खाँ नवाब बना दिया गया। वह बड़ा शान्तिप्रिय व धर्मनिष्ठ था। तभी मरहठों ने बंगाल पर हमला कर दिया। अलीवर्दी खां ने जगतसेठ को गोदावाड़ी मकान पर सुरक्षा के लिये भेज दिया। इसकी कोठी की सुरक्षा का भार अपने सेनाध्यक्ष मीर हबीब को दिया। पर मीरहबीब ने ईर्ष्यावश कोठी लुटने दी। इतिहास प्रसिद्ध लूट हुई। जगतसेठ की कोठी तहस नहस हो गयी। दो करोड़ मूल्य की संपत्ति लूटी गई। एक वर्ष पश्चात् यानि संवत् १८०० में फिर से मरहठों ने हमला किया। इस बार समझौते के बहाने अलीवर्दी खाँ ने मरहठा सरदार भाष्कर पण्डित की गर्दन उतार ली। इस तरह जगतसेठ की कोठी की लूट का बदला ले लिया। कुछ समय बाद ही अलीवर्दी खां मर गये।

संवत् १७९७ तक जगतसेठ और अंग्रेजों के बीच आर्थिक संबंध कायम हो चुके थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जगतसेठ से लाखों रूपये १२ रूपये सैकड़ा सालाना ब्याज पर कर्ज ले रखे थे, जिसका भुगतान चांदी बेच कर करते थे। कम्पनी के लिखे हैण्डनोटों में अधिकांशतः 'जगतसेठ फतहचंद आनन्दचंद' नाम मिलता है। आनन्दचंद जगतसेठ के बड़े पुत्र थे। संवत् १८०९ में जगतसेठ फतहचंद का स्वर्गवास हुआ। आनन्दचंद का पहले ही स्वर्गवास हो चुका था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जगतसेठ महतावचन्द (महताबराय)

सेठ फतहचन्द के बाद उनके पौत्र महताबचन्द गद्दी पर बैठे। इधर संवत् १८१३ में अलीवर्दी खाँ का दौहित्र सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। दिल्ली में तब अहमदशाह बादशाह बने। उन्होंने महताबचन्द को जगतसेठ की पदवी से और उनके चचेरे भाई सरूपचन्द को महाराजा की पदवी से सम्मानित किया। जैन तीर्थ पार्श्वनाथ की पहाड़ी का स्वामित्व भी इन दोनों भाइयों को दिया गया। कहा जाता है कि इस समय (संवत् १८१३) में जगतसेठ को मालगुजारी उगाहने के एवज में १० प्रतिशत कमीशन मिलता था। दोनों प्रान्तों—बंगाल और बिहार की मालगुजारी तब २ करोड़ सालाना होने का अनुमान है। इसके अलावा जगतसेठ ब्याज पर कंपनी व अन्य को करोड़ों रुपयों का कर्ज देते थे, जिस पर एक रुपया सैकड़ा महीना का ब्याज लिया जाता था। हुंडावण, सिक्के ढालने की टकसाल आदि की आमदनी अलग थी। तात्पर्य यह कि उस समय जगतसेठ के वैभव की कोई सीमा नहीं थी।

सिराजुद्दौला स्वेच्छाचारी और अत्यंत विलासी था। उसने कई खून करवाए। महिमापुर के ही सद्गृहस्थ मोहनलाल की बहन को, जो सारे बंगाल में सर्वाधिक सुंदर मानी जाती थी, अपने अन्तःपुर में दाखिल कर लिया। रानी भवानी की विधवा पुत्री तारा को अंकशायिनी बनाने के लिये षड्यंत्र रचा तो वह अग्नि में जलकर भस्म हो गयी। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि सिराजुद्दौला ने जगतसेठ खानदान की अस्मत पर भी डाका डाला था। कविवर नवीनचंद्र सेन के 'पलाशिर युद्ध' और प्रमोदकुमार अग्रवाल के 'मीरजाफर' नामक ग्रन्थ में सिराज की इस बदचलनी को चित्रित किया गया है। 'मीरजाफर' (१९८८) के लेखक प्रमोद कुमार अग्रवाल के अनुसार 'महताबराय का विवाह एक अपूर्व सुन्दरी कन्या से हुआ था। नवाब को इसकी खबर लग गई। नवाब ने उसकी सुंदरता देखने की इच्छा प्रकट की। जगत सेठ एवं उनके परिवार के कड़े विरोध एवं सैकड़ों मिन्नतें भी नवाब को उसके निर्णय से विचलित नहीं कर पायी। फलस्वरूप, एक दिन सायंकाल नई नवेली बहू को पालकी में बैठाकर सिराजुद्दौला के हरम में ले जाया गया। कुछ ही क्षण रुक कर बहू वापस आ गयी। सिराजुद्दौला ने अवश्य ही उसके साथ कुछ अन्याय किया। इससे जगतसेठ के परिवार में बहू वितृष्णा की मूर्ति हो गई। उसके पति ने फिर कभी उसका संस्पर्श नहीं किया। इस घटना के बाद जगतसेठ का समस्त परिवार परोक्ष रूप से बदले की आग में जलने लगा।'

जे. टॉलब्वायज व्हीलर ने अंग्रेजी सल्तनत के पूर्वकालीन विवरणों (Early Records of British India-1878) में भी उक्त तथ्य की पुष्टि की है। सिराजुद्दौला के इस शर्मनाक कृत्य ने ही शतरंज के प्रमुख मोहरों को प्रभावित कर भारत का इतिहास ही बदल डाला। प्रजा में असंतोष बढ़ने लगा। इधर अंग्रेजों के साथ भी शत्रुता बढ़ने लगी। जगतसेठ अंग्रेजों से शत्रुता लेने के पक्ष में न था। किन्तु सिराजुद्दौला ने एक न सुनी। अंग्रेज तब तक कलकत्ता में पाँव जमा चुके थे एवं फोर्ट विलियम में किलेबंदी कर चुके थे।

बंगाल में उस समय पंजाब के एक व्यापारी सेठ अमीचंद का अभ्युदय हुआ। उसने जगत सेठ को अंग्रेजों के पक्ष में करने की कोशिश की, जिसकी खबर लगते ही सिराजुद्दौला

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने जगत सेठ को कैद कर लिया। नवाब के दीवान मीरजाफर ने उसे छुड़ाया। सिराजुद्दौला की फौज ने साहसपूर्वक फोर्ट विलियम का किला घेर लिया। अंग्रेज विवश होकर जलमार्ग से भागे। संवत् १८१४ में लार्ड क्लाइव के नेतृत्व में उन्होंने प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को पछाड़ा। वह हारा और मारा गया।

अंग्रेज मीरजाफर को नवाब बनाना चाहते थे। जगतसेठ इसके पक्ष में न थे, किन्तु उसके एहसान तले दबे थे एवं अंग्रेजों का विरोध भी नहीं करना चाहते थे। अतः नवाब के चुनाव के लिये जगतसेठ के घर पर ही मंत्रणा चली। तत्कालीन राजशाही की रानी भवानी ने उसी ऐतिहासिक मंत्रणा में ललकार कर कहा था : 'जो बंगाल का भाग्य विदेशी व्यापारियों के हाथ में देने की सलाह दे, उसे सिन्दूर की डिबिया और बंगड़ी मेरी तरफ से दे देना।' जगतसेठ चुप रहे। अंततः मीरजाफर बंगाल का नवाब बना। बंगाल या कहिये भारत के भाग्य में अंग्रेजों की गुलामी बदी थी। उस समय मीरजाफर नवाब न बनाया जाता तो शायद भारत का इतिहास ही पलट जाता। परिस्थितियों ने जगतसेठ को इस कदर जकड़ा कि उन्हें मजबूरन चुप रहना पड़ा।

कुछ इतिहासकार जगतसेठ खानदान को भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के लिये जिम्मेवार मानते हैं एवं उन पर अंग्रेजों की सहायता करने का दोषारोपण करते हैं। वस्तुतः उन दिनों मुगलिया सल्तनत अपनी अंतिम सांसे गिन रही थी—यह तो जगतसेठ का किया न था। इसे भाँपने की दूरदर्शिता दिखाई जगतसेठ ने। वे इतिहास की करवट को उलट नहीं सकते थे। मुगल साम्राज्य का अधःपतन निश्चित था। उसी में निहित था—अंग्रेजों का अभ्युदय और राज्यारोहण। अंग्रेज निसंदेह मुगलों से बेहतर शासक थे। ऐसी योग्यता हिन्दुओं में भी नहीं बची थी। कुछ इसी तरह का तर्क बंगाल के प्रसिद्ध मनीषी उपन्यासकार श्री बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय ने दिया है। सन् १८८१ में रचित उपन्यास आनन्दमठ में उन्होंने अंग्रेजों की शासकीय योग्यता की सराहना करते हुए घोषणा की कि अंग्रेज अनेक वर्षों तक भारत में एकछत्र राज्य करेंगे। बंकिमचंद्र बड़े मौलिक विचारक थे। उन्होंने 'स्वतंत्रता' को देशी-विदेशी शासकों की मोहताज न मानकर आम जनता की खुशहाली से जोड़ा एवं प्राचीन भारत को अल्पसंख्यक ब्राह्मणों द्वारा प्रताड़ित बहु संख्यक शूद्रों वाला गुलाम देश ही माना। जगतसेठ ने अंग्रेजों की सहायता की, वह उनकी मजबूरी थी; क्योंकि मुगलिया सल्तनत पर किसी को भरोसा तब न रह गया था। जगतसेठ का आत्मसम्मान भी सिराजुद्दौला की नवाबी में सुरक्षित न था। कुछ इतिहासकार सिराजुद्दौला की बदचलनी को ही जगतसेठ के मुगल सल्तनत के साथ असहयोग का कारण मानते हैं। प्लासी का युद्ध सिराजुद्दौला के इतना कमजोर न होते हुए भी उसे बरबाद कर देगा—यह कौन जानता था?

मीरजाफर के नवाब बनते ही खजाना खाली होता गया। उसका अधिकांश भाग अंग्रेजों की जेब में चला गया। मीरजाफर ने अंग्रेजों को कलकत्ता में टकसाल खोलने की इजाजत दे दी। उसी दिन से जगतसेठ का वैभव सूर्य अस्ताचल की ओर खिसकने लगा और अंग्रेजों के पांव मजबूत होने लगे। मीरजाफर अपनी बेवकूफियों से अयोग्य सिद्ध हुआ। शीघ्र ही उसके

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थान पर मीरकासिम को नवाब बनाया गया। वह बड़ा शंकालु था। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध जंग छेड़ दिया। जगतसेठ के प्रभाव की दहशत और अंग्रेजों से अच्छे संबंध उसे खलते थे। उसने जगतसेठ को नजरबंद कर दिया, साथ ही उनके भाई स्वरूपचन्द को भी। अंग्रेजों से युद्ध में हार जाने के बाद भागते हुए मीरकासिम ने जगतसेठ को गंगा में डुबा देने का आदेश दे दिया। इस तरह संवत् १८२० में जगतसेठ महताबराय एवं उनके भाई स्वरूपचन्द का दुःखान्त हुआ। कहते हैं जगतसेठ की हत्या के समय उनके स्वामिभक्त नौकर चुन्नी ने उन्हें बचाने की हरसम्भव कोशिश में नाकाम रहने के बाद, नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली। मेजर जे. एच. तुल वाल्स ने अपने ग्रंथ "हिस्ट्री ऑफ मुर्शिदाबाद डिस्ट्रिक्ट" (१९०२) में लार्ड क्लाइव द्वारा मीर कासिम को २४ अप्रैल १७६३ का लिखा एक पत्र प्रकाशित किया है जिससे पता लगता है कि जगत सेठ एवं उनके भाई की नजरबन्दी अंग्रेजों की रजामन्दी से हुई थी। किन्तु वे उन्हें हीरा झील में डुबो देने की साजिश में शामिल नहीं थे एवं इस संदर्भ में अंग्रेजों ने उक्त पत्र में नाराजगी भी जाहिर की।

जगतसेठ खुशालचन्द

सेठ महताबराय की मृत्यु के बाद उनके पुत्र खुशालचंद गद्दी पर बैठे। संवत् १८२३ में दिल्ली के बादशाह शाह आलम ने उन्हें जगतसेठ की उपाधि से सम्मानित किया। सेठ खुशालचंद बहुत शान्त और धार्मिक प्रकृति के थे। उन्होंने १०८ सरोवरों का निर्माण कराया। प्रसिद्ध तीर्थ सम्मेदशिखर पर सेठ खुशालचंद ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया। उधर मीरकासिम के भाग जाने पर एक बार फिर संवत् १८२० में मीरजाफर बंगाल का नवाब बना। अंग्रेजों ने क्षतिपूर्ति के नाम पर लाखों रूपये उससे बटोरे। संवत् १८२२ में उसकी मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र नज्मुद्दौला उत्तराधिकारी बना। कंपनी ने सुरक्षा के नाम पर उससे भी लाखों रूपये हथियाये। संवत् १८२२ में लार्ड क्लाइव और नवाब के बीच हुए समझौते से अंग्रेजों को सेना रखने एवं मालगुजारी उगाहने का अधिकार प्राप्त हो गया। राज-काज देखने के लिये तीन आदमियों की एक प्रबन्धकारिणी बना दी गयी—जगतसेठ उनमें से एक थे। खजांची का काम जगतसेठ के ही सुपुर्द रहा।

संवत् १८२२ के फरमान द्वारा शाह आलम ने ३६ लाख रूपया सालाना दिल्ली भेज देने के एवज में राज्य की दीवानगी का स्वत्व अंग्रेजों को सौप दिया। संवत् १८२३ में नज्मुद्दौला की मृत्यु हो गयी। जगतसेठ का लाखों रूपया कम्पनी से पावना था, परन्तु उसने अंगूठा दिखा दिया। व्यापारिक क्षेत्र में भी नमक, सुपारी, तम्बाकू, रुई और रेशम व्यवसाय के एकाधिकार कंपनी ने हासिल कर लिये। इस तरह बंगाल के समस्त व्यापारी उनके मातहत हो गये। बाजार भाव आसमान छूने लगे। सारा मुनाफा इंग्लैण्ड जाने लगा। संवत् १८२७ में खजाना कलकत्ता चला गया। संवत् १८२४ से इंग्लैण्ड की सरकार भी इस लूट में शामिल हो गई थी। कम्पनी से ४ लाख पौंड सलाना उन्हें मिलने लगा था। लार्ड क्लाइव ने जगतसेठ को ईस्ट इंडिया कम्पनी का भी खजांची नियुक्त किया। परन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों को बिना ब्याज धन उधार देने के मसले पर मतभेद हो गया। संवत् १८२७ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। महामारी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने स्थिति और भी चिंताजनक बना दी। संवत् १८३४ में मुर्शिदाबाद की पुरानी टकसाल बन्द कर दी गयी। इस तरह मुद्रा प्रसार पर भी अंग्रेजों का एकाधिकार हो गया।

ऐसी विषम परिस्थितियों के बावजूद जगतसेठ खुशालचंद मुक्तहस्त बने रहे। संवत् १८३७ तक जगतसेठ के परिवार का मासिक खर्च एक लाख रूपये था। कहते हैं कि उस समय जगतसेठ की आय पर आधारित सेठ परिवार के प्राय ४००० व्यक्ति थे, जिनमें १२०० स्त्रियाँ थीं। संवत् १८३९ में सहसा सेठ खुशालचंद ४० वर्ष की अल्प आयु में काल कवलित हुए। इसके बाद जगतसेठ परिवार की स्थिति बिगड़ती ही चली गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी में जो धन पावना था, उसके मिलने की कोई सूरत ही न थी। जहाँ तहाँ पावना था, वह भी डूब गया। जे. एच. लिटिल (हाउस आफ जगतसेठ-१९६७) के उल्लेखानुसार जगतसेठ के परिवार में यह किंवदन्ती चली आई है कि जो धन जमींदोज था, सेठ खुशालचंद की सहसा मृत्यु हो जाने से, उस बारे में वे किसी को बता नहीं सके और वह अपार सम्पत्ति रत्नगर्भा वसुन्धरा में ही समा गई।

परवर्ती जगतसेठ खानदान

सेठ खुशालचंद के एकमात्र पुत्र गोकुलचंद का भी पिता की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व ही देहान्त हो चुका था। अतः जगतसेठ ने अपने भतीजे हरखचन्द को गोद ले लिया। वे ही उनके उत्तराधिकारी हुए। वारेन हेस्टिंग्ज की अंग्रेज सरकार की सिफारिश पर तत्कालीन नवाब मुबारक-उ-द्दौला ने संवत् १८३९ में सेठ हरखचंद को 'जगतसेठ' की पदवी दी। वे पुत्र न होने से बड़े व्यग्र रहते थे। एक वैष्णव फकीर के प्रभाव में जगतसेठ ने वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया। उन्होंने अपने निवास के समीप श्री कृष्ण का एक वैष्णव मंदिर बनवाया। यद्यपि जगतसेठ परिवार की महिलाएँ तब भी जैन धर्म के प्रति आस्थाशील बनी रहीं। कालान्तर में उनके दो पुत्र हुए।

संवत् १८७० में जगतसेठ हरखचंद का देहान्त हो गया और इनके पुत्र सेठ इन्दरचन्द को कम्पनी सरकार ने जगतसेठ के रूप में मान्यता दी। संवत् १८७९ में उनका देहान्त हो गया। उनके पुत्र गोविन्ददास गद्दी के उत्तराधिकारी बने। परन्तु कम्पनी सरकार ने उन्हें जगतसेठ के रूप में मान्य करने से इन्कार कर दिया। वे जेवर बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार तत्कालीन गवर्नर जनरल वायसराय लार्ड आकलैंड ने उन्हें 'जगतसेठ' मान्य कर लिया था। संवत् १९०० में कंपनी सरकार ने जगतसेठ खानदान को १२००/-मासिक वृत्ति देना स्वीकार किया। यह मासिक वृत्ति धीरे-धीरे घटाकर तीन सौ रूपये कर दी और अन्ततः संवत् १९४८ में बिल्कुल बन्द कर दी। इस तरह जगतसेठ घराने का वैभव तिरोहित हो गया। जिनकी समृद्धि की चर्चा करते हुए लार्ड क्लाइव ने कहा था—"जब मैं मुर्शिदाबाद गया और सोने चांदी और जवाहरात के बड़े-बड़े ढेर देखे उस समय मैं अपने मन को कैसे काबू में रख सका यह मेरी अन्तरात्मा ही जानती है।" वही समृद्धि अब इतिहास बन कर रह गई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विदुषी रत्नकुँवर बीबी

अठारहवीं सदी के अन्त में मुर्शिदाबाद के जगतसेठ (गेहलड़ा) खानदान से सम्बन्धित एक असाधारण कवियित्री हुई-श्रीमती रत्नकुंवर। श्री पारसनाथ सिंह के 'जगतसेठ' नामक ग्रंथ के परिशिष्ट में दी गयी बाबू पूर्णचंद जी नाहर द्वारा संयोजित जगतसेठ घराने की वंशावली के अनुसार गेहलड़ा गोत्रीय शाह हीरानन्द के सात पुत्र और एक कन्या थी। पुत्रों में ज्येष्ठ श्री मानिकचन्द हुए। पुत्री धनबाई आगरा के ओसवाल श्रेष्ठि गोखरू गोत्रीय राय उदयचन्द को ब्याही थी। सेठ मानिकचन्द के कोई पुत्र न था। उन्होंने धनबाई के पुत्र भाणेज फतहचन्द को गोद लिया। इन्हीं फतहचन्द को मुगल सम्राट् ने 'जगतसेठ' की पदवी से विभूषित किया। धनबाई के वंशजों में तीसरी पीढ़ी में राजा डालचन्द हुए, जो बनारस रहते थे। इनके पुत्र उत्तमचन्द का विवाह लखनऊ के राजा बच्छराज नाहटा की कन्या रत्नकुँवर बीबी से हुआ। परन्तु यह कथन राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द द्वारा 'भाषाकल्पसूत्र' की प्रस्तावना में दिये गये 'कुछ बयान अपने खानदान का' से मेल नहीं खाता। उनके अनुसार बनारस के राजा डालचन्द के पुत्र उत्तमचन्द (शिवप्रसाद जी के पितामह) का विवाह राजा बच्छराज की कन्या से हुआ, परन्तु उनसे कोई पुत्र नहीं हुआ। अतः राजा उत्तमचन्द ने अपनी बहिन बीबी रत्नकुँवर के बेटे बाबूचन्द (गोपीचन्द) को गोद लिया, उन्हीं के पुत्र राजा शिवप्रसाद थे। कुछ भी हो, निःसंदेह रत्न कुँवर बीबी गोखरू एवं गेलहड़ा (जगतसेठ) दोनों खानदानों से संबंधित थी।

वे बड़ी विदुषी महिला थीं। भारतीय भाषाविद् सर जी ए. ग्रीयर्सन ने 'माडर्न वरनाकुलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में बड़े सम्मान से आपका उल्लेख किया है। 'दी हैरीटेज आफ इण्डिया' सीरीज में भी आपके भक्ति काव्य ग्रन्थ 'प्रेम रत्न' का वर्णन है। आप गाने बजाने में अत्यन्त निपुण थीं। आपको यूनानी और भारतीय चिकित्सा पद्धतियों का अगाध ज्ञान था। आप प्रतिदिन योगाभ्यास करतीं एवं यम नियम से रहतीं। आपकी वृत्ति ऋषियों की सी थी। भारत सरकार के विद्या विभाग के तत्कालीन निर्देशक राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द आपके पौत्र थे। आप संस्कृत की पंडिता थीं एवं छहों शास्त्रों की जानकारी रखती थीं। आप फारसी जबान की भी ज्ञाता थीं। आपका 'प्रेम रत्न' नामक ग्रन्थ संवत् १८४४ में प्रकाशित हुआ। इसमें श्रीकृष्ण की लीला का अति रुचिर और रसमयी काव्यशैली में वर्णन है एवं भागवत भक्तों में बहुत प्रचार है। आप संवत् १८९९ में दिवंगत हुईं। उस वक्त आपकी उम्र ६० और ७० वर्ष के बीच थी। मुन्शी देवीप्रसाद ने संवत्१९६२ में प्रकाशित 'महिला मृदुवाणी' में आपकी गणना महिला रत्नों में की है। ओसवाल समाज आपसे गौरवान्वित हुआ।

मेहता अगर चन्द

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में मेवाड़ के इतिहास में एक चतुर राजनीतिज्ञ और शासनाधिकारी हुए। इस समय राजनैतिक उथल-पुथल से देशी रियासतें त्रस्त थीं। मेवाड़ में भय और लूटपाट का बोलबाला था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलिया सल्तनत भी कमजोर हो गयी थी। मरहठा सरदारों ने लूट पाट से अनेक प्रदेशों को भयभीत कर रखा था। विक्रम संवत् १८१९ में उदयपुर की राजगद्दी पर महाराणा अरिसिंह पदासीन हुए। वे बड़े

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शक्की और अस्थिर दिमाग के थे। समस्त सरदार उनसे नाखुश थे। वे मरहठा सरदारों से मिलकर राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में व्यस्त थे। मरहठों के बार-बार आक्रमण से महाराणा बुरी तरह परास्त हुए। उन्हें हर्जाने स्वरूप ३३ लाख रूपये और जावेद जिरम और नीमच के परगने सिंधिया सरकार को देने पड़े। मरहठों ने निम्बाड़ पर भी कब्जा कर लिया।

श्री अगरचन्द मेहता

ऐसी विपत्ति के समय वि.सं. १८२२ में मेहता अगरचन्द को मेवाड़ राज्य का दीवान नियुक्त किया गया। मेहता ने अपने रण कौशल एवं चातुर्य से सर्वप्रथम राज्य के बागी सरदारों को वश में किया। फिर मांडलगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। महाराणा ने खुश होकर उन्हें रुक्का बख्शा और मांडलगढ़ का किला उन्हीं को सौंप दिया। तब से किला उनकी निजी सम्पत्ति माना गया।

तभी सरदार रतनसिंह ने मराठों और कुछ बागी सरदारों की मदद से मेवाड़ की राजगद्दी के लिए दावा किया एवं युद्ध छेड़ दिया। महाराणा की फौजें एक बार फिर परास्त हुईं। मेहता अगरचन्द बन्दी बना लिये गये। उन्हें छोड़ने की यह शर्त रखी गई कि वे रतनसिंह को महाराणा के रूप में स्वीकार कर लें। स्वामिभक्त एवं महान् योद्धा मेहता अगरचन्द ने इसे नामंजूर कर दिया और अपनी कुशलता से वे जेल की दीवारों से निकल भागे। रतनसिंह के मन्सूबों पर पानी फिर गया। मेहता ने मांडलगढ़ से सेना का नेतृत्व संभाला एवं मरहठों को खदेड़ दिया। महाराणा ने उनकी स्वामिभक्ति एवं वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें जो रुक्का इनायत किया, वह इस प्रकार है :

'सिद्ध श्री भाई मेहता अगरा जोग अप्रंच मे तो थां-सा सपूत चाकर थी नचींता हां। राज थारा बापरौं छै। थाहरी सेवा बन्दगी म्हारा माथा पर छै। निपट तू म्हारो साव

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

धर्मो छे। थारी चाकरी तो सपना में भी भूला नहीं। ई राज माँहें आधी रोटी होसी तो भी बटको पेली ताने देर खासां। थारा वंश का स्यूं उरीण हो पावां नहीं। सीसोदिया हौसी जो वो थारा वँश का ने आखाँ की पलकां पर राखसी। फरक पाडैगा तो जिणने श्री एकलिंग जी पूगसी। ई राज म्हें तो म्हारा बेटा बच भी थारा बेटा रो भरोसो बत्तो छै। कतराक समाचार थाभाई रूपा रा साह मोतीराम बोल्यारा कागद सूं जाणोगा। संवत् १८२३ वरणै बैशाख बदी १० गुरै।'

महाराणा अरिसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ की गद्दी पर संवत् १८२९ में महाराणा हमीरसिंह बैठे। आपने मेहताजी का उसी तरह सम्मान रखा। महाराणा हमीर की अकस्मात ४ वर्ष बाद मृत्यु हुई। मृत्यु पर महाराणा भीमसिंह ने मेवाड़ का शासन भार संभाला।

महाराणा भीमसिंह के समय भी मेहता अगरचन्द राज्य के दीवान रहे। इस तरह महाराणाओं की तीन पीढ़ियों तक इस ओसवाल नर पुंगव ने मेवाड़ राज्य की सेवा की।

जब महाराणा भीमसिंह ने चूंडावत सरदार को शरण दी तो सिंधिया सरकार ने एक बार फिर 'आखा और लाखा' के नेतृत्व में फौजें भेज कर मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। अन्ततः विजय श्री मेहता अगरचन्द के हाथ लगी। मरहठे खदेड़ दिये गये। शाहपुरा के नवाब ने भी जब जहाजपुर हड़पना चाहा तो मेहता अगरचन्द एक बार फिर राज्य की सुरक्षा के लिए आगे आये और नवाब को ठिकाने लगाया।

मेहता अगरचन्द सेनाध्यक्ष, वीर योद्धा एवं चतुर राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, कुशल प्रशासक भी थे। मांडलगढ़ की प्रजा को सुख शान्ति प्रदान की, तालाब खुदवाये और किले की मरम्मत करवा कर उसे अजेय बना दिया। प्रजा की भलाई के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे। वे बड़े पंडित भी थे। अपने वंशजों को एक वसीयत के रूप में आपने उपदेशों का संग्रह लिख कर दिया था, जो अमूल्य है। संवत १८५७ में आपका स्वर्गवास हुआ।

सेठ नरसी नाथा नागड़ा (सं. १८४०-१८९९)

कच्छी दसा ओसवाल महाजन समाज के स्वयंभू नेता एवं 'जाति शिरोमणि' के विरुद से सम्मानित सेठ नरसी नाथा जातीय इतिहास के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। उन्होंने अपने समय को तो प्रभावित किया ही, भावी के लिये भी प्रेरणा स्रोत बन गये।

मुस्लिम आक्रान्ताओं से त्रस्त होकर राजस्थान से कच्छ जा बसे ओसवाल श्रेष्ठियों को अंचल गच्छीय आचार्य जयसिंह सूरि ने सं. १२२८ में प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार करवाया। उनसे नागड़ा गोत्र की स्थापना हुई। कालांतर में वे नलिया जा बसे। नरसी नाथा का जन्म संवत् १८४० में नलिया में हुआ। बचपन में ही माँ चल बसी। पिता की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। नरसी अक्षर ज्ञान से वंचित रहे पर हिसाब में निष्णात हो गए। सं. १८५० में भाटियों के मुंबई प्रवसन एवं धन अर्जन की कहानियाँ सुनकर आपमें भी मुंबई जाने की उमंग उठी। हीर जी हंसराज कायाणी लिखित "कच्छी दशा ओसवाल जैन जाति नो इतिहास" (१८९९) के अनुसार आप मानिक से ४ माप ओला (बेझड़) मांग कर मुंबई आये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुंबई में उस वक्त नल न होने से पानी की तंगी थी। नरसी ने बन्दरगाह के मजदूरों तक पानी पहुंचाने का काम शुरू किया। पांच वर्ष बाद बाप बेटे ने मुकादमी शुरु कर दी। सं. १८८० तक उन्होंने अपनी जायदाद भी बना ली और आढ़त का धंधा शुरु किया। नरसी की पेढ़ी थोड़े ही दिनों में मुख्य पेढ़ी गिनी जाने लगी। नरसी का विवाह किशोर वय में तेजशी जेठा की पुत्री कुंवर बाई से हो गया था। उन्होंने अपने साले भारमल को व्यापार में शामिल कर लिया। इनका नरसी की उन्नति में बहुत हाथ था। कुंवर बाई के दो पुत्र हुए—मूल जी और हीर जी। मूल जी छोटी उम्र में ही मुंबा देवी तालाब की भेंट चढ़ गए। हीर जी का विवाह सं. १८८७ में पूंरबाई से हुआ। सं. १८९५ में बम्बई में प्लेग की महामारी फैली। हीरजी इसी रोग से काल कवलित हुए। थोड़े दिन बाद पूरबाई भी दिवंगत हो गईं। इसी अरसे में नरसी के पिता भी चल बसे। इन विपदाओं ने नरसी की जीवन शैली ही बदल दी। वे धर्मार्थ हर सुबह अनाज और सब्जी का टोकरा लेकर निकलते और घर-घर बांटते। बहुत बार उनके साथ रुपयों के बंडल डाल देते और कोई लौटाने आता तो कहते 'ये तो तुम्हारे नसीब के थे तभी निकले होंगे।'

सेठ नरसी नाथा नागड़ा

नरसी ने रुई के व्यापार में महारत हासिल की और जल्दी ही समस्त बाजार पर छा गए। उन्होंने भारत भर में शाखाएँ खोलीं और जाति बंधुओं को प्रेरित कर कोलाबा काटन मार्केट पर मोनोपाली स्थापित कर ली। वे अनाज मसाले एवं अन्य वस्तुओं का निर्यात भी करते थे। चीन के व्यापारियों से उनके घनिष्ठ संबंध थे। मालवाही जहाजों के मालिक रूप में सेठ मोतीशाह एवं जमशेद जी जीजाभाई से उनके घनिष्ठ संबंध थे।

सं. १८९७ में उन्होंने नलिया में जिनालय की प्रतिष्ठा की एवं शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये संघ निकाला। बम्बई एवं पालीताणा में उन्होंने मन्दिरों का निर्माण कराया, धर्मशालाएँ बनवाईं एवं स्कूल खोले। वे जाति शिरोमणि के नाम से जाने जाने लगे। उनकी प्रेरणा से सं. १९०० में जाति हितार्थ ठहराव नियत हुए। सं. १८९९ में उनका देहांत हुआ। उनकी याद में बम्बई के एक बाजार का नाम नरसी नाथा स्ट्रीट रखा गया। भारत सरकार ने सन् १९९४ में डाक टिकट जारी कर उन्हें सम्मानित किया।

नाहटा मोतीचन्द शाह

उन्नीसवीं सदी के बीसा ओसवाल वंश के इतिहास पुरुषों में नाहटा गोत्रीय मोती शाह का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। आपका जन्म सं. १८३८ में हुआ। आप बड़े

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दानवीर एवं धर्मवीर सेठ थे। आपके पूर्वज फलौदी (मारवाड़) के थे। वहां से गुजरात जाकर खँभात में बसे। आपके पिता शाह अमीचन्द साकरचंद संवत् १८१४ में खंभात से बंबई आये। उस समय बम्बई इतनी विकसित न थी। सात वर्ष नौकरी करने के बाद जौहरी का धन्धा शुरू किया। आपके पुत्र थे—नेमचन्द, मोतीचन्द एवं देवचन्द। बड़े भाई की अल्पवय में मृत्यु से मोतीशाह के कन्धे पर परिवार का सारा भार आ गया।

नाहटा मोतीशाह

थोड़े समय में ही अपने अध्यवसाय से मोतीशाह बम्बई के प्रमुख व्यापारी बन गए। आपका साहूकारों एवं यूरोपीय व्यापारियों में बड़ा सम्मान था। आपने जहाजों में दूर देशों में भारतीय माल भिजवाने का काम शुरू किया। आपके सात बड़े जहाज ईरान, ईराक, मोजाम्बीक, मेडागास्कर एवं चीन की निरंतर यात्राएँ करते रहते थे। आश्चर्य की बात है कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में जो जहाजरानी व्यवसाय सम्पूर्णतः भारतीयों के हाथ था, वही कुछ दिन बाद अधिकांश विदेशियों के हाथ में चला गया। बंबई की मोतीशाह की पेढ़ी उन दिनों मशहूर थी।

आपने लाखों रूपये दान दिये। शत्रुञ्जय तीर्थ पालीताना में सं. १८८६ में २०० फुट गहरी खाई को पाट कर आपने एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया, जिस पर उस समय २४ लाख रूपये खर्च हुए। भायखला (बंबई) में आदिनाथ का विशाल जैन मंदिर आपका ही (सं. १८८५ में) बनवाया हुआ है, जिसकी कीमत आज कई करोड़ रुपये

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। आपने अनेक स्थानों पर जैन मन्दिरों और धर्मशालाओं का निर्माण करवाया। बम्बई की प्रसिद्ध पिंजरापोल के संस्थापक मोती शाह ही थे। आप सं. १८९२ में दिवंगत हुए।

मोतीशाह के पुत्र खीमचन्द शाह भोले और दिल के बड़े उदार थे। उन्होंने अपने पिता की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिये सं. १८९३ में संघ समायोजन किया, जिसमें लाखों लोग सम्मिलित हुए। कहते हैं जैन तीर्थों के इतिहास में यह सबसे बड़ा संघ समायोजन था। इसके बाद की कहानी बड़ी दुःखद है। अकुशल व्यापारी खेमचन्द शाह सट्टे के चक्कर में पड़ गए। साथ ही स्वार्थी लोगों ने उनके भोलेपन का बेजा फायदा उठाना शुरु किया। व्यापार में भी धोखा खा गये। भारी नुकसान हुआ। वि.सं. १९०८ में पेढ़ी (दुकान) भी बन्द कर दी गई। खेमचन्द भाई ने इमानदारी से सारी देनदारी चुकायी। कोर्ट में सच्चाई से दी गयी आभूषणों की तफसील सुनकर जज भी अवाक् रह गये। नसीब का पासा ऐसा पलटा कि खानदान ही तबाह हो गया। संवत् १९२५ में मरते वक्त खीमचन्द शाह की हालत फकीरों की सी थी।

सेठाणी हरकौर

ओसवाल कुल के इतिहास का एक उज्ज्वल तथा उल्लेखनीय प्रसंग है—धर्म भावनामयी सच्चरित्रशाली अतिकुशल नेतृ तथा असाधारण नारी रत्न सेठाणी हरकौर (कुँवर)। अठारहवीं सदी की विदाई बेला में सेठ मोतीचन्द नाहटा बम्बई के व्यवसाइयों के सिरमौर थे। उन्हीं दिनों अहमदाबाद के ओसवाल समाज में सेठ खुशालचन्द निहालचन्द के कुटुम्ब का मुख्य स्थान था। उनके पुत्र केसरी सिंह ने खूब ख्याति अर्जित की। वे रेशम तथा कीरमच के व्यापार में अग्रणी थे। संवत् १८६० में उनकी अल्प वय में मृत्यु के समय उनके पुत्र हठीसिंह की आयु मात्र ८ वर्ष थी। सेठ हठीसिंह ने बड़े होकर व्यापार में बड़ी प्रसिद्धि पाई। एक बार सेठ हठीसिंह तीर्थ यात्रा पर थे। गोधा शहर की एक गुवाड़ में छाणा (गोबर के उपले) थापती एक बालिका पर उनकी नजर पड़ी। उसमें पद्मिनी के सर्व चिह्न विद्यमान थे। एक सामान्य ओसवाल परिवार की यह बालिका उन्हें लुभा गई। यही बालिका हरकुँवर उनकी तीसरी पत्नी बनी, जो सेठाणी हरकौर के नाम से विख्यात हुईं।

उस वक्त बालिकाओं की शिक्षा के लिये न स्कूलें थीं और न गुरुकुलों में स्थान। स्त्री शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अनुचित भी मानी जाती थी। परन्तु हर कुँवर ने अपने माँ बाप से बड़े अच्छे संस्कार पाये थे। बचपन में ही उसने पंच प्रतिक्रमण, जीवाजीव विचार, नवतत्त्व आदि का अभ्यास किया था। सेठ हठीसिंह से विवाहोपरांत उसने अपनी गृहस्थी ही नहीं सम्हाली, व्यापार में भी सफल सहायिका का काम किया। सेठ हठीसिंह जिस सौदे में उससे पूर्व परामर्श ले लेते, उसमें उन्हें बड़ा लाभ होता। धीरे-धीरे हरकौर उनके पूरे व्यापार साम्राज्य पर छा गई। देवी लक्ष्मी हठीभाई पर पूर्ण कृपालु रही। संवत् १९०० में ४८ वर्ष की अल्प वय में हठीभाई का देहान्त हो गया। सेठाणी हरकौर ने करोड़ों का व्यापार स्वयं संभाल लिया। छोटी से छोटी बात भी उनकी नजर से चूक नहीं सकती थी। रेशम और कीरमच का व्यापार बहुत बढ़ गया। सारा चिट्ठा सेठानी की उंगलियों पर रहता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेठाणी हरकौर ने अतुल संपत्ति ही नहीं अर्जित की, उसे धर्म की प्रभावना के लिए खर्च कर पुण्यलाभ भी कमाया। अहमदाबाद में दिल्ली दरवाजे पर बावन जिनालयों का विशाल जैन मन्दिर सेठाणी हरकौर का बनवाया हुआ है। शत्रुञ्जय तीर्थ की मिशाल पर बने हुए इस मन्दिर पर आठ लाख रुपये खर्च हुए थे। दूर देशों से कारीगर बुलवाकर संवत् १९०३ में सेठाणी ने मन्दिर का निर्माण पूरा करवा कर आचार्य शान्ति सागर सूरि के हाथों प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं।

इस दर्शनीय मन्दिर को देख कर सेठानी के स्थापत्य एवं शिल्प कला ज्ञान की भूरि भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है। मूर्ति प्रतिष्ठा के समय सेठानी ने एक लाख जैन धर्म के नुमाइन्दों को परदेशों से आमंत्रित किया, जिनकी आवभगत एवं मान मनुहार के प्रबन्ध में सेठानी ने कोई कसर नहीं छोड़ी। इस महोत्सव पर पाँच लाख रूपये खर्च हुए। सभी दर्शनार्थी उनकी व्यवस्था कुशलता देखकर मुग्ध हो गए। सेठानी ने सम्मेदशिखर एवं अन्य तीर्थों के लिये अनेक संघ निकाले। अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। सरकार ने उन्हें 'नेक नामदार सखावत बहादुर' का खिताब बख्शा। उस युग में वे 'हरकौर सरकार' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

संवत् १९२० तक के सेठाणी हरकौर के नाम के शिलालेख/प्रशस्तियाँ आदि उपलब्ध हैं परन्तु बाद का इतिहास नहीं मिलता। इतने बड़े व्यापार की अनेक शाखाओं का कुशलतापूर्वक संचालन करने वाली एवं धार्मिक संघों का नेतृत्व करने वाली यह एक मात्र नारी रत्न है, जिसमें स्त्री-शक्ति के चमत्कारों के दर्शन हुए।

सिंघी इन्द्रराज जी

जोधपुर राज्य के ओसवाल दीवानों में भीवराजोत वंश के सिंघी इन्द्रराज जी सर्वाधिक प्रभावशाली दीवान हुए। शुरू में इन्द्रराज जी पंचभदरा एवं फलौदी के हाकिम थे। सं. १८५९ में जोधपुर नरेश भीमसिंह जी ने उन्हें बागी सरदारों को दण्ड देने के लिये भेजा। सिंघीजी ने उनसे दण्ड स्वरूप हजारों रुपये वसूल किये। सं. १८६० में महाराज का देहान्त हो गया। उस समय महाराजा मानसिंह को गद्दीनशीन करने में सिंघी इन्द्रराज जी का प्रमुख हाथ था। महाराजा ने प्रसन्न होकर उन्हें मुसाहिबी इनायत का रुक्का बख्शा।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समय भारत में मुगल साम्राज्य अन्तिम सांसें गिन रहा था। ब्रिटिश सत्ता अपने पाँव फैला रही थी। तख्त के एक अन्य दावेदार धोकलसिंह ने मारवाड़ पर जयपुर महाराज की सहायता से हमला कर दिया था। सं. १८६३ तक सभी जिले और जोधपुर शहर भी उसके कब्जे में चला गया। महाराज का अधिकार सिर्फ किले पर रह गया। उस वक्त सिंघी इन्द्रराज जी महाराज से अनबन के कारण जेल में थे। ऐसा हुआ कि उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा कुमारी की सगाई महाराजा भीमसिंह से तय हुई थी—पर उनकी मृत्यु हो जाने से राणा ने जयपुर के महाराजा जगतसिंह से राजकुमारी की सगाई करनी चाही। इस पर मानसिंह ने जयपुर पर चढ़ाई कर दी। तब सिंघी इन्द्रराज जी के उद्योग से सुलह

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुई। दोनों की बहने एक दूसरे को ब्याही जानी निश्चित हुईं। पर जोधपुर लौटकर महाराज ने दूसरों की सिखावट पर इन्द्रराज जी को कैद में डाल दिया। उधर जयपुर नरेश ने जोधपुर की गद्दी के एक दावेदार धोकल सिंह की सहायता से जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। संवत् १८६३ में जोधपुर नगर भी हाथ से निकल गया। सिंघी इन्द्रराज जी ने कैद से प्रार्थना की कि अगर उन्हें बाहर निकाला जाय तो वे दुश्मन को हरा सकते हैं। उन्हें गुप्त मार्ग से बाहर निकाला गया। ये भंडारी गंगाराम जी के साथ मेड़ता गये। वहाँ सेना संगठित की। पिण्डारी सरदार अमीर खां को एक लाख रूपया देकर उसे अपनी ओर मिलाया और जयपुर पर हमला बोल दिया। घमासान लड़ाई के बाद जयपुर की फौज परास्त हुई। जयपुर नरेश जोधपुर का घेरा छोड़कर जयपुर लौट गये। उस समय महाराजा मानसिंह ने सिंघी इन्द्रराज का खूब स्वागत कर रुक्का बख्शा—**'आज स्वूं थांरो दियेड़ो राज है, म्हारे राठोड़ां रो वंश रहसी, न ओ राज करसी, उत्तरे थारां एहसान मंद रहसी'** (सं. १८६४)। महाराजा ने इन्द्रराज जी को प्रधानगी एवं जागीर दी। सारा शासन उन्हें सौप दिया।

सिंघी इन्द्रराज जी ने तत्कालीन बीकानेर राज्य पर भी चढ़ाई की थी। बीकानेर के महाराज सूरत सिंह को समझौता करना पड़ा और फौज खर्च के ४ लाख रुपये देने पड़े। इसी लड़ाई के समय पीछे से जोधपुर में अमीरखां ने महाराजा मानसिंह से अपनी सहायता के बदले राज्य के अनेक परगने अपने नाम लिखवा लिये। सं. १८७२ में अमीरखाँ अपने पठान सैनिकों के साथ जोधपुर आया। सिंघी इन्द्रराज जी ने राज्य की भलाई के लिये एक चाल चली। उन्होंने

सिंघी इन्द्रराज जी

P.P. Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अमीरखाँ से वह अधिकार पत्र देखने के लिये मांगा। ज्योंही पत्र उनके हाथ में आया, इन्द्रराज जी उसे निगल गये। अमीरखाँ ने उन्हें तत्काल कत्ल कर दिया। महाराजा मानसिंह ने पूर्ण सम्मान सहित राजपुरुषों की तरह उनके शव को दफनाया। उनकी सेवाओं के बदले उनके पुत्र फतहराजजी सिंघी को २५ हजार की जागीरें, दीवानगी एवं राजकुमार की बराबरी का सम्मान बख्शा गया। महाराजा ने इन्द्रराज जी की प्रशंसा में ये दोहे रचे :

गेह छुटो कर गोड़, सिंह जुटो फूटो समद।
अपनी भूप अरोड़, अड़िया तीनूं इन्दड़ा।।

गेह सांकल गजराज, घेरे रह्यो सदुलधीर।
प्रकटी बाजी बाज, अकल प्रमाणे इन्दड़ा।।

पड़तो घेरो जोधपुर, अड़तां दला अथंभ।
आप डीगंता इन्दड़ा, थे दीयो भुज थंभ।।

इन्दा बे असपारियां उण चौहटे आम्बेर।
धिण मंत्री जोधाणरा, जैपुर कीनो जैर।।

सिंघी इन्द्रराज जी जातीय गौरव की प्रतिमूर्ति थे। एक ऊँटवाला लकड़ी का लादा (भार) बेचने आया। उसने सिंघी जी के हाली (नौकर) से पानी पिलाने को कहा। सिंघी जी के उससे 'जात' पूछने पर उसने 'सुराणा' (ओसवाल) बताई। जब ऊँट वाला भार उतार कर जाने लगा तो हाली ने पुकारा—दीवान साहब आपको हवेली में याद कर रहे हैं। हवेली में दीवान साहब ने उन्हें अपने साथ भोजन करने का आमंत्रण दिया। ऊँटवाला किंकर्तव्यविमूढ़ देखता रह गया। जब ऊँट वाले की उम्र का पता चला तो दीवान साहब ने उन्हें अपने से ऊंची गद्दी पर बिठा कर उनका सम्मान किया। जातीय सौहार्द्र की यह अनुपम मिसाल दीवान साहब के निरभिमानी चरित्र की परिचायक थी।

इनके पुत्र फतेहराज जी सं. १८७२ से १८७५ के बीच सात बार राज्य के दीवान बने। राज्य में षड्यन्त्र चलते रहे। दो बार फतहराज जी कैद कर लिये गये एवं दस लाख रुपये जुर्माना हुआ। किन्तु जैसे ही षड्यन्त्रों की पोल खुली, महाराजा ने उन्हें फिर सादर दीवान का पद सौंपा। इन्द्रराज जी के छोटे पुत्र उम्मेदराज जी के पुत्र देवराज जी सं. १९११ से १९२८ तक राज्य के फौजबख्शी रहे।

दीवान अमरचन्द सुराणा

राजस्थान के विभिन्न राज्यों में ओसवाल श्रेष्ठियों ने सेनानायक दीवान प्रधान एवं मुत्सद्दियों के रूप में जो सेवाएँ दीं, वे स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य हैं। अमरचन्द जी उनमें से एक थे। वे सेठ मलूकचन्द सुराणा के पौत्र और कस्तूरचन्द जी के पुत्र थे। बाल वय से ही आपने तलवार चलाने का अभ्यास किया था। आपके तीन पुत्र हुए—माणकचन्द, लालचन्द

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एवं केसरीचन्द। अमरचन्द जी का सारा जीवन राज्य की सेवा में और युद्धस्थल में ही बीता। बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह के समय वि.सं. १८६० में अमरचन्द सुराणा राज्य के सेनानायक थे।

श्री अमरचन्द सुराणा

चूरू के ठाकुर शिवसिंह ने जब महाराजा को आँखें दिखाईं तो सेनानायक अमरचन्द सुराणा के नेतृत्व में फौज भेजी गई। ठाकुर ने महाराजा की अधीनता मान ली और जुर्माने स्वरूप इक्कीस हजार रूपये दिये। वि.सं. १८६१ में भटनेर (हनुमान गढ़) के किलेदार जाब्तार खाँ भाटी ने सर उठाया। सेनानायक अमरचन्द के नेतृत्व में चार हजार सैनिक भेजे गये, जिन्होंने नगर पर घेरा डाल दिया। पाँच महीने घेरा रहा। हार कर जाब्तार खाँ को भाग जाना पड़ा और किले पर अमरचन्द जी ने कब्जा कर लिया। मंगलवार को विजय होने से भटनेर के किले का नाम हनुमानगढ़ रखा गया। इस वीरतापूर्ण कार्य के लिये महाराज ने उन्हें पालकी की इज्जत बख्शी तथा राज्य के दीवान पद पर नियुक्त किया।

वि.सं. १८६५ में जोधपुर नरेश मानसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की। चतुर राजनीतिज्ञ अमरचन्द जी ने सेना लेकर अन्य रास्ते से जोधपुर पर आक्रमण किया एवं खूब माल असबाब लूटकर लाये। इधर जोधपुरी सेना दो महीने तक गजनेर के पास पड़ी रही। जोधपुर से उनकी मदद के लिये लोढ़ा कल्याणमल चार हजार सैनिक लेकर आये। अमरचन्द जी सेना लेकर गजनेर गये। यह जानकर लोढ़ाजी की हिम्मत पस्त हो गई। वे जोधपुर लौटने लगे, किन्तु अमरचन्द जी ने उनका पीछा कर उन्हें युद्ध के लिये बाध्य किया और अन्ततः लोढ़ाजी को बन्दी बना लिया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राज्य में ठाकुरों ने जब जब विद्रोह किया अमरचन्द जी भेजे गये। उन्होंने ठाकुरों को कठोर दण्ड दिया। सांडवे के विद्रोही ठाकुर जैतसिंह से ८० हजार रुपये जुर्माने के वसूल किये। वि.सं. १८६९ में मीणासर के बीदावतों के विद्रोह का शमन किया। वहाँ के ठाकुर रतनसिंह को पकड़कर फाँसी दे दी। इसी तरह वि.सं. १८७० में सिंधमुख के विद्रोही ठाकुरों का दमन किया। वि.सं. १८७१ में चूरू का ठाकुर शिवसिंह एक बार फिर बागी हुआ तो अमरचन्द जी ने आक्रमण कर चूरू पर फतह पाई। मुँशी सोहनलाल द्वारा रचित 'तवारीख राज श्री बीकानेर' के अनुसार इस युद्ध में ठाकुर ने चूरू के नागरिकों द्वारा प्रदत्त चांदी के गोलों का प्रयोग किया था। महीनों घेरा रहा। अन्ततः ठाकुर शिवसिंह को हीरे की कनी खा. कर आत्मघात करना पड़ा। इन विजयों से प्रसन्न होकर महाराजा ने अमरचन्द जी को राव का खिताब, खिलअत और हाथी की सवारी बख्शी।

इतनी सेवाओं के बावजूद अमरचन्द जी अन्ततः ठाकुरों द्वारा रचे गये षड्यन्त्र के शिकार हो गये। वि.सं. १८७२ में उन पर पिंडारी सरदार अमीर खान से मिल जाने का अभियोग लगाया गया एवं महाराज ने उनकी नृशंस हत्या करवा दी। बाद में जब वास्तविकता का पता लगा तो महाराजा साहब को खूब पश्चात्ताप हुआ। बीकानेर राज्य का इतिहास इस ओसवाल नर केसरी के खून से रंगा हुआ है।

महाराव हिन्दूमल बैद

बीकानेर राज्य के इतिहास में ओसवाल श्रेष्ठियों का वर्चस्व सदैव रहा। आप अपने काल के सर्वोच्च ओसवाल मुत्सद्दी थे। आप सुदक्ष राजनीतिज्ञ एवं प्रतिभा संपन्न पुरुष थे। अंग्रेज शासकों में आपका बहुत सम्मान था। राज्य की प्रजा में भी आप लोकप्रिय थे।

आपके पिता का नाम मेहता मूलचन्द था। आपका जन्म संवत् १८६२ में हुआ। आपके पूर्वज लाखनसिंह बैद राव बीका जी के साथ ही आये थे। बीकानेर को तरतीब वार बसाने में उनका मुख्य हाथ था। उन्हीं के वंशजों में मूलचन्द जी हुए। वे भी राज्य सेवा में थे। हिन्दूमल जी सर्वप्रथम सं. १८८४ में बीकानेर राज्य के वकील बन कर दिल्ली गये, जहाँ अपने बुद्धिकौशल से बहुत समय से चले आ रहे रियासत की ओर से अंग्रेज सरकार को २२००० रुपये फौजी खर्च के लिये प्रतिवर्ष देने के इकरार को रद्द करवाया। महाराजा रत्नसिंह ने प्रसन्न होकर उन्हें दीवान नियुक्त किया। सिक्केदारी की मुहर प्रदान की एवं राज्य का सारा प्रबन्ध उनके सुपुर्द कर दिया। सं. १८८७ में आपने देशनोक से ठाकुर बेरीसाल को खदेड़ा। आप ने ही अमरावती के झाला ठाकुर एवं जैसलमेर के रावल के उत्पातों से राज्य को मुक्त किया। बीकानेर दरबार ने उन्हें अनेक रुक्के इनायत किये।

सं. १८८८ में भारत सरकार से बीकानेर नरेश के लिये 'नरेन्द्र शिरोमणि' का खिताब लाने की एवज में महाराज रत्नसिंह ने हिन्दूमल जी को 'महाराव' की उपाधि से सम्मानित किया एवं उनके घर पधार कर एक मोतियों का हार इनायत किया।

राज्य की ओर से अंग्रेज सरकार की सेवा में जब भी जरूरत पड़ी, हिन्दूमल जी ही भेजे गये। सं. १८८६ में जाज क्लार्क को शेखावटी में एवं १८९१ में गवर्नर जनरल के

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एजेन्ट कर्नल एल्विस को सीमा विवाद निपटाने में सहायता देने वाले हिन्दूमल ही थे। उनकी बुद्धिमत्ता से चमत्कृत होकर उदयपुर के महाराणा सरदारसिंह जी ने हिन्दूमल जी की सेवाएँ कुछ समय तक मांगीं, जिसे महाराजा रत्नसिंह जी ने सहर्ष स्वीकार किया। वि.सं. १९०२ में महाराजा साहब ने आपको नेटराणा गाँव की जागीर बख्शी। वि.सं. १९०४ में महाराव की कीर्ति से असन्तुष्ट कुछ व्यक्तियों ने अखबारों में उन पर लुटेरों की सहायता करने का झूठा दोषारोपण किया। आप तुरन्त भारत के गवर्नर जनरल से मिले। तत्कालीन गवर्नर जनरल हार्डिंज ने आपकी सच्चरित्रता पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए आपको खिलअत बख्शी। सं. १९०४ में ही ४२ वर्ष की अल्प वय में आप स्वर्ग सिधारे। सं. १९०५ में महाराजा गंगासिंह ने आपकी सेवाओं के उपलक्ष्य में सीमावर्ती गाँव का नाम हिन्दूमल कोट रखकर आपको सम्मानित किया।

राव हिन्दूमल बैद

सेठ जोरावरमल बापना

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ का भारत राजनैतिक दृष्टि से बड़ी डांवाडोल स्थिति में था। एक तरफ मुगलिया सल्तनत दम तोड़ रही थी एवं मरहठों के उत्पात बढ़ रहे थे तो दूसरी तरफ अंग्रेज भारत की धरती पर शनैः शनैः अपने पाँव फैलाते जा रहे थे। उस परिस्थिति में इन्दौर के बापना गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि श्री जोरावरमल जी ने राज्य शासन में खूब नाम कमाया। इनके पिता का नाम गुमानमल एवं पितामह का नाम देवराज था। ये मूलतः जेसलमेर के पटवा खानदान के थे। जिस वक्त अंग्रेज राजपूताना के देशी रजवाड़ों से मैत्री करने में लगे थे, उस वक्त सेठ जोरावरमल जी का बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर इन्दौर आदि रियासतों पर अच्छा प्रभाव था। इन्होंने रजवाड़ों से मेल कराने में अंग्रेज

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेठ जोरावर मल बापना

हुकूमत की बड़ी सहायता की। संवत् १८७६ में कर्नल जेम्स टॉड राजपूताने के पॉलिटिकल एजेण्ट बनकर उदयपुर आये तो उन्होंने महाराणा भीमसिंह को सलाह दी कि 'इन्दौर की हालत सुधारने में जोरावरमल जी का ही हाथ था, उन्हें उदयपुर बुलाएँ।' राणा साहब के आमंत्रण पर जोरावरमल जी उदयपुर आये। यहाँ उन्होंने नये गाँव बसाये, किसानों को सहायता दी एवं चोरों लुटेरों को पकड़वा कर कठोर दण्ड दिलवाया। महाराणा ने इन बहुमूल्य सेवाओं के एवज में उन्हें संवत् १८८४ में छड़ी और पालकी बख्शी एवं 'सेठ' की पदवी दी। अंग्रेजी राज्य के खजाने का प्रबंध भी आपके सुपुर्द किया गया।

महाराणा भीमसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जवानसिंह गद्दी पर बैठे। जवानसिंह के समय भी जोरावरमल जी राज्य के प्रथम श्रेणी के उमरावों में गिने जाते थे। सं. १८९५ में महाराणा की अचानक मृत्यु से उत्तराधिकार के लिए राज्य में विवाद उठ खड़ा हुआ। उस समय जोरावरमल जी ने ब्रिटिश सरकार पर अपने प्रभाव से महाराणा सरदार सिंह जी को दत्तक लिया जाना मंजूर करवाया। सं. १८९९ में उनकी भी मृत्यु हो गई। उनके पश्चात् महाराणा स्वरूप सिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् १९०३ में उदयपुर राज्य पर उनका बीस लाख रूपये कर्ज हो गया था। महाराणा ने सेठजी का सारा कर्ज निपटाना चाहा एवं इस हेतु सेठजी की हवेली पर पधारे। महाराणा ने जैसा चाहा वैसा आपने स्वीकार कर लिया। कहते हैं संवत् १८७५ में मेवाड़ की वार्षिक आय ४० हजार रूपये रह गई थी, जो आपके प्रयत्नों से बढ़कर दस लाख रूपये हो गई। इन्हीं सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराणा ने जोरावरमल जी को पालकी एवं पौत्र को शिरोपाव बख्शा।

अपने अध्यवसाय से आपने देश के ३५० विभिन्न नगरों में ही नहीं, वरन् चीन और रंगून में भी अपनी पेढ़ियाँ (दुकाने) स्थापित कर ली थीं। प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार लेफ्टि. ए. एल. बोर्डले ने उन्हें मेवाड़ का 'राथ्सचाईल्ड' कहा है। आपकी विभिन्न स्थानों पर बनाई हुई कोठियों की लागत एक करोड़ रूपये से ऊपर थी। जैसलमेर में आपकी बनवाई हुई पटवों की इतिहास प्रसिद्ध हवेली आपका कीर्ति स्तम्भ है।

सेठ जोरावरमल ने मेवाड़ ही नहीं, अन्य रियासतों के आपसी झगड़े निपटाने एवं ब्रिटिश सरकार से समझौते कराने में अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। जोधपुर नरेश के वार्षिक कर न चुकाने पर अंग्रेजों ने सन् १८३९ में किले पर कब्जा कर लिया। सेठ जोरावरमल ने ही अन्ततः समझौता कराया। इस कारण जोधपुर नरेश मानसिंह ने जोधपुर की फोतेदारी सेठजी के हवाले कर दी। इस तरह बीकानेर व अन्य देशी रियासतों की राजनीतिक गुत्थियाँ सुलझाने में भी सेठजी ने प्रमुख योगदान दिया।

आप व्यापारिक जगत में भी अग्रगण्य थे। आप धार्मिक विचारों एवं दानवीरता के लिये प्रसिद्ध थे। आपने जैन तीर्थों के लिये एक संघ निकाला, जिस पर १३ लाख रुपये खर्च हुए। संघ में हजारों व्यक्तियों के अतिरिक्त २२०० साधु-साध्वियाँ और ४०० सेवक थे। शत्रुञ्जय में समापन समारोह में ढाई लाख लोगों ने भाग लिया। मेवाड़ के महाराणा ने चार तोपें, चार हजार सिपाई और डेढ़ सौ घुड़सवार सुरक्षा के लिये साथ भेजे। इसी तरह जोधपुर, कोटा, जैसलमेर व अंग्रेज सरकार ने सुरक्षार्थ अनेक प्रबन्ध किये। जब संघ जैसलमेर लौटा तो जैसलमेर के महारावल व अन्य नरेश उनकी हवेली पर सम्मानार्थ पधारे। सं. १९०८ में इन्दौर में आपका स्वर्गवास हुआ। रायबहादुर सिरेमल जी बापना आपके ही प्रपौत्र थे। आपकी सम्पत्ति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सं. १८८१ में आपके पुत्र चन्दनमल जी के विवाह में दस लाख रुपये खर्च हुए थे।

सेठ वेलजी मालू (सं. १८६५-१९२१)

गुजरात के दसा ओसवाल समाज में 'जाति दीपक' के विरुद से विभूषित सेठ वेलजी मालू का जन्म वि.सं. १८६५ में कच्छ के कोठारा ग्राम में लोड़ाया गोत्रीय श्रेष्ठि मेगजी केशवजी के घर हुआ। हर द्वितीय वर्ष पड़ने वाले अकाल से त्रस्त मालू मेगजी मांडवी आकर मजदूरी करने लगे। उनकी इमानदारी से खुश होकर गुलामशाह नामक व्यापारी ने उन्हें पाँच सौ रुपये सालाना पगार पर हिसाब किताब देखने के लिये रख लिया। उनके दो पुत्र हुए-वेलजी और

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लखमसी। सं. १८७७ में वेलजी १२ वर्ष की उम्र में मामा सारंग शाम जी के साथ बंबई आ गये। वहाँ परचून की दुकान कर ली। नफा होने लगा तो लखमसी को भी बुला लिया। मलाबार से माल मंगा कर बेचने लगे। सं. १८८१ में उनका विवाह हुआ।

विदेशी व्यापारियों के मुंह से समुद्री यात्रा के रोमांचक वर्णन सुनते-सुनते वेलजी के मन में भी समुद्री यात्रा की ललक जगी। परन्तु उन दिनों समुद्री यात्राएँ खतरे से खाली न थीं। बराबर समुद्री लुटेरों का डर बना रहता था। सं. १८९२ में वेलजी ने सूती व गरम कपड़े जहाज में लाद कर एडन व बसरा का सफर शुरू किया। आठ महीने बाद भरपूर नफा कमा कर लौटे। इस तरह की चार यात्राओं में वेल जी मालामाल हो गए। कोचीन से भी वेलजी ने व्यापारिक संबंध बनाए। रुई का व्यवसाय करके भी खूब लाभ कमाया। सं. १९१८ में वेलजी की कुल संपत्ति पौन करोड़ आंकी जाती थी। इसी समय अमरीका में सिविलवार छिड़ गई। सं. १९२० में रुई के भाव आसमान छूने लगे। परन्तु लड़ाई के हठात् बन्द हो जाने से पासा ही उलट गया। अचानक भाव गिरे। अनेक व्यापारी दिवालिया घोषित हो गये। परन्तु वेलजी सेठ ने हिम्मत न हारी और सभी सौदे चुकता किये।

वेलजी के पुत्र त्रीकम जी का विवाह सं. १९१७ में सेठ नरसीनाथा के वंशज हरभम जी की पुत्री से हुआ। त्रीकमजी साहित्य के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अनेक साहित्यकारों की सहायता की। गुरुवर दलपत जी प्रागजी ने सं. १९२२ में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का गुजराती रूपान्तर उन्हीं को समर्पित किया। परन्तु त्रीकमजी व्यापार में सफल न हो सके। सट्टे में फंस गये, नुकसान लगा और संवत् १९२४ में पेढ़ी ही बन्द करनी पड़ी।

सेठ वेलजी व्यापार का भार पुत्र को सौंपकर जातिसेवा में लग गए थे उन्होंने कोठारा में शान्तिनाथ जिनालय बनवाया। बम्बई शहर की सुधार कमेटी में सरकार द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों में सेठ नरसी नाथा और केशवजी नायक के साथ सेठ वेलजी प्रमुख थे। जाति पंचायत में भी वे प्रमुख थे। वे जाति दीपक कहलाए। सं. १९२१ में अचानक वे सारण गांठ व्याधि से त्रस्त होकर ५६ वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उनके पुत्र त्रीकमजी ने बहुत दान पुण्य किया एवं केसरिया जी तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया।

सेठ केशवजी नायक (सं. १८७५-१९४१)

कच्छी दशा ओसवाल समाज के 'मुकुटमणि' कहलाने वाले सेठ केशवजी नायक जैन जातियों के इतिहास में अपने प्रभाव एवं विपुल अवदानों के लिये अविस्मरणीय रहेंगे।

केशव जी का जन्म संवत् १८७५ में कच्छ के लाखणीया ग्रामवासी गांधी मेहता गोत्रीय दंड शाखा के नायक मणसी की पत्नी हीराबाई की कोख से हुआ। यहाँ से यह परिवार कोठारा आ बसा। केशवजी मात्र ५ वर्ष के थे तभी उनके पिता चल बसे। माता ने मजदूरी कर उन्हें बड़ा किया। दस वर्ष की वय में वे मामा के साथ बम्बई चले आये। यहाँ अनेक तरह के कार्य सीखे। सं. १९०० में मामा के साझे में 'शिवजी नेणसी' पेढ़ी की स्थापना की। व्यापार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का क्षेत्र बढ़ता ही गया। सं. १९०९ में चीन और हांगकांग के बन्दरगाहों पर पेढ़ी स्थापित कर ली। "विलियम नीकल" की मशहूर कम्पनी का मुकादमी का काम ये ही देखते थे। सं. १९१७ में केशवजी ने अपनी स्वतंत्र पेढ़ी स्थापित की। इस वक्त तक अफ्रीका व अरब देशों से करोड़ों का व्यापार होने लगा था।

सं. १९१७ में अमरीका में सिविल वार छिड़ गई। सभी वस्तुओं के भाव आसमान छूने लगे। सेठ केशवजी ने स्थिति भाँप कर बैंकिंग कम्पनियों की श्रृंखला स्थापित कर ली। बैंक आफ इंडिया उन्हीं दिनों स्थापित हुई। इसी अर्से में भारत में कपड़े की मिलें प्रारम्भ हुईं। केशव जी इसमें भी पीछे नहीं रहे। रोयल मिल, प्रिंस आफ वेल्स मिल, एलेक्जेंड्रा मिल, कोलाबा मिल, फ्लेमिंग मिल, केसरे हिन्द मिल आदि की स्थापना में उनका प्रमुख हाथ था।

केशव जी कोट्याधीश तो थे ही, बम्बई के तटवर्तीय प्रदेशों के सभी प्रमुख बन्दरगाहों, कलेर, कर्नार्क, मस्जिद, एलफिंस्टन आदि पर उनका एकछत्र अधिकार था। इन बन्दरगाहों को भारत सरकार ने अधिकृत करने हेतु वार्ता प्रारम्भ की। बम्बई के गवर्नर साईमूर फिट्जरल्ड सेठ जी से मिलने आये। कहते हैं इसके आयोजनार्थ सेठजी ने दाणा बन्दर से मस्जिद बन्दर तक विशाल मंडप बनवाया। सेठ जी के वैभव से प्रभावित गवर्नर ने स्वयं खड़े होकर उनका स्वागत किया। इन बन्दरगाहों के सरकार द्वारा अधिग्रहण से सेठजी को अकूत मुनाफा हुआ।

उन दिनों सेठजी की जहलौजलाली का यह हाल था कि यदि सेठजी की बग्घी किसी जेल के पास से गुजरती तो कैदियों की फांसी की सजा तक रद्द कर दी जाती। बम्बई शहर के लिये सरकार द्वारा बनाई सुधार समिति में सेठ नरसी नाथा एवं वेलजी मालू के साथ केशव जी भी मनोनीत थे। उनकी सेवाओं का सम्मान कर सं. २००४ में फव्वारा (Fountain) से ट्राम डीपो तक की विशाल सड़क का नाम 'सेठ केशवजी नायक रोड' कर दिया गया। फव्वारा भी सेठजी ने ही तेइस हजार की लागत से बनवा कर म्युनिसिपिलिटी के सुपुर्द किया था एवं सं. १९३३ में उसका उद्घाटन तत्कालीन गवर्नर के हाथों बड़ी शान शौकत से हुआ था।

केशव जी हमेशा चार घोड़ों की बग्घी में सवारी करते थे। उनका कद्दावर डील डौल और मोटा चेहरा, चोंचदार पगड़ी और बग्घी की भव्यता देखने के लिये लोग रास्ते में कतार बाँधे खड़े रहते थे। एक बार एक कोर्ट में उन्हें गवाही देने बुलाया गया तो कोर्ट को अपना इजलास नीचे की मंजिल में करना पड़ा।

केशव जी ने जैन धर्म की प्रभावना के लिये अनगिनत अवदान दिये। सं. १९१४ में कोठारा में जिन प्रसाद जिनालय बनवाए एवं भगवान शांतिनाथ की बिम्ब प्रतिष्ठा कराई। सं. १९२१ में पालीताणा में विशाल संघ समायोजन किया जिसमें सात सौ साधु साध्वियों एवं हजारों की संख्या में जैन धर्म बन्धु एवं जैनेतर पारसी, अंग्रेज व अन्य लोग उपस्थित थे। पन्द्रह लाख से भी अधिक रकम खर्च कर सात हजार बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। उन्हें संघपति के पद से विभूषित किया गया। इस समारोह का मनोहारी वर्णन 'अंजन शलाका स्तवन' में हुआ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। तदुपरान्त सेठजी ने गिरनार तीर्थ की यात्रा की और मंदिरों के जीर्णोद्धार कराए। सं. १९३१ में उन्होंने सम्मेद शिखर तीर्थ के लिए संघ निकाला, वहां जीर्णोद्धार एवं बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई। केसरिया जी तीर्थ में अनेक जिनालय बनवाए। राजा महाराजाओं एवं जनता द्वारा समान रूप से सम्मानित कच्छ के इस अर्वाचीन कुबेर का देहान्त पालीताणा में सं. १९४१ में हुआ।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (सं. १८८०-१९५२)

आप प्रसिद्ध गोखरू गोत्रीय ओसवाल कुल के राजा डालचन्द के पौत्र एवं राजा उत्तमचन्द्र के सुपुत्र थे। श्री पारसनाथ सिंह रचित 'जगतसेठ' ग्रंथ के परिशिष्ट में दी हुई वंशावली के अनुसार गेहलड़ा गोत्रीय शाह हीरानन्द के सात पुत्र और एक कन्या धनबाई पैदा हुई। पुत्रों में ज्येष्ठ श्री मानिकचन्द के कोई सन्तान न थी। उन्होंने धनबाई के पुत्र फतेहचन्द को गोद ले लिया। जिन्हें मुगल सम्राट ने जगतसेठ की पदवी दी। धनबाई आगरा के ओसवाल श्रेष्ठि गोखरू गोत्रीय राय उदयचन्द को ब्याही थी। इनके वंश में तीसरी पीढ़ी में राजा डालचन्द हुए, जो बनारस में रहते थे।

उनके पुत्र राजा उत्तमचन्द का विवाह लखनऊ के राजा बच्छराज की विदुषी कन्या रत्नकुँवर बीबी से हुआ। इन्हीं के पौत्र राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे।

'हिन्दी के निर्माता' ग्रन्थ के रचयिता बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार राजा डालचन्द नवाब कासिम अली के अत्याचारों से तंग आकर मुर्शिदाबाद से काशी आकर बस गए। उनके पुत्र गोपीचन्द थे, जिनके यहाँ सं. १८८० में राजा शिवप्रसाद का जन्म हुआ। आप बहुत स्वाध्यायशील, चिंतनशील मेधावी और बहु भाषा-विज्ञ थे। काशी नरेश तथा अवध के नवाब वाजिदअलीशाह आपका बहुत सम्मान करते थे। आप वायसराय द्वारा लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये। संवत् १९३१ में आप अंग्रेज सरकार द्वारा सी.आई.ई. (सितारेहिन्द) की पदवी से विभूषित किये

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गये। वर्तमान उत्तरप्रदेश के आप पहले विद्यालय निरीक्षक थे। कर्नल कनिंगम जैसे पुरातत्त्व सर्वेक्षक आपको अपना मेहरबान दोस्त मानते थे।

आपने हिन्दी साहित्य को अनेक रचनाएँ दीं। आप ही प्रथम भारतीय इतिहासकार माने जाते हैं। आपके बृहद् इतिहास ग्रंथ 'इतिहासतिमिर नाशक' में सिकन्दर, नौशेरवाँ, गजनवी, चंगेज खाँ आदि आक्रमणकारियों से लेकर मुगल बादशाह शाह आलम (सं. १८६०) तक हुई राजनीतिक चहल-पहल की कथा व्यथा हिन्दी में संजोई हुई है। यह ग्रंथ संवत् १९२४ में लेफ्टिनेंट गवर्नर बहादुर की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ।

सं. १९०२ में आपके सहयोग से 'बनारस अखबार' का जन्म हुआ। आपकी विद्वत्ता का द्योतक दूसरा ग्रन्थ 'भूगोल हस्तामलक' (तीन भागों में) सं. १९१६ में प्रकाशित हुआ। आपने अन्य अनेक ग्रंथों की रचना की एवं कई मौलिक ग्रन्थों का सम्पादन किया। 'भाषा कल्पसूत्र' की प्रस्तावना में आपने जगतसेठ एवं अपने खानदान का पूरा परिचय दिया है। 'राजा भोज का सपना', 'करपल्लवी', 'विद्यांकुर' आदि ग्रन्थों की रचना आपने ही की।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की भाषा के पक्षधर थे। फिर भी आपके प्रयत्नों से अदालत में हिन्दी का प्रवेश हुआ। इससे पूर्व उर्दू या अंग्रेजी ही मान्य भाषाएँ थीं। आपने शिक्षण कार्य भी रुचि के साथ किया। यही कारण है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे विख्यात मनीषी भी आपको अपना गुरु मानते थे। सं. १९४४ में भारत सरकार ने आपको 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया। ओसवाल श्रेष्ठियों में आपही का एक खानदान है, जिसे वंशानुगत 'राजा' की उपाधि प्राप्त है। संवत् १९५२ में आपका देहान्त हुआ।

अमर शहीद अमरचन्द बाँठिया

सन् १८५७ (वि.सं. १९१४) के स्वतंत्रता संग्राम का एक ओसवाल सेनानी अब तक इतिहास के पृष्ठों में छिपा सा रहा है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'अठारह सौ सत्तावन' में अमरचन्द बाँठिया का पावन स्मरण अवश्य किया है, परन्तु उनकी शहादत का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी तांत्या टोपे और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को तो हमने उचित सम्मान दिया, पर जिसने ग्वालियर राज्य का असीम खजाना उन पर न्यौछावर कर दिया, उन अमरचन्द बांठिया का इतिहास में नाम तक नहीं आया!

परमार क्षत्रिय श्री जगदेव ९वीं-१०वीं सदी में जैनाचार्य भावदेव सूरि से प्रबोध लेकर श्वेताम्बर जैन धर्म अंगीकार कर ओसवाल जाति में शामिल हुए थे। इनके पौत्र माधवदास/माधवदेव द्वारा मुक्तहस्त दान देने से उनका बांठिया गोत्र हुआ। कुछ ग्रंथों के अनुसार माधवदेव ने आचार्य भावदेव सूरि से जैन धर्म अंगीकार कर लिया और ओसवाल बने। अन्य इतिहासकार विक्रम की १२वीं सदी में रणथम्भौर के राजा लालसिंह पवांर के पुत्रों द्वारा जैनाचार्य जिनवल्लभ सूरि से प्रतिबोध पाकर जैन धर्म अंगीकार कर लेने एवं ज्येष्ठ पुत्र बंठ से बांठिया गोत्र की उत्पत्ति मानते हैं। कुछ भी हो, 'बांठिया' नामकरण उनकी दानवीरता के कारण हुआ हो-यह सम्भव है। इन्हीं के वंशज वि.सं. १८९२ में फलौदी से ग्वालियर आकर बसे। अमरचन्द

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जी के दादा खुशालचन्द एवं पिता अबीरचन्द थे। ये सात भाइयों में सबसे छोटे थे। तत्कालीन देशी राज्यों में अनेक ओसवाल परिवार खजांची या कोषाध्यक्ष पद पर नियुक्त थे। यह बांठिया परिवार भी ग्वालियर राज्य के सिंधिया राजघराने का बैंकर था। ग्वालियर नरेश जियाजी राव सिंधिया ने गंगाजली (राज्य-कोष) का भार राज्य के पोद्दार श्रीवृद्धिचन्द्र जी संचेती के परामर्श से अमरचन्द जी बांठिया को सौपा। उस समय सिंधिया नरेश अनाप-शनाप संपत्ति के मालिक थे एवं मोती वाले राजा के नाम से जाने जाते थे। अमरचन्द जी ने योग्यतापूर्वक यह भारवहन किया एवं राजकोष में अकूत धन वृद्धि हुई।

अमरचन्द बांठिया

झांसी के राजा गंगाधर राव की मृत्यु पर १३ जून १८५४ (वि.सं. १९११) को अंग्रेजों नें झांसी को कम्पनी सरकार में मिलाने की घोषणा की। ४ जून १८५७ (वि.सं. १९१४) को झांसी में विद्रोह की चिंगारी फूटी और रानी झांसी की हुकूमत स्थापित हुई। ग्वालियर की सेना ने भी क्रान्ति का झंडा लहराया। अंग्रेजों के बंगले जला दिये गये। कुछ अंग्रेज सिंधिया नरेश की शरण में आये। उस समय सिंधिया ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया होता तो इतिहास ही कुछ और होता। अगस्त १८५७ में तांत्या टोपे की सेना बिठूर में हार गई। तांत्या टोपे और नाना साहब सेना लेकर ग्वालियर आये. झांसी की रानी ने भी साथ दिया। जून १८५८ (वि.सं. १९१५) को युद्ध में पराजित होकर सिंधिया जियाजीराव भाग कर आगरा चले गये। रानी की जीत से देशभक्त अमरचन्द्र बांठिया इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने एक भव्य समारोह का आयोजन किया और शानदार भोज दिया।

स्वतंत्रता संग्राम छिड़ने के कुछ ही दिन बाद से सेना का अस्थाई कण्ट्रोल एवं प्रबन्ध राव साहब व तांत्या टोपे के हाथ में था। उन्होंने विद्रोह को सबल बनाने की दृष्टि से करीब २०/२५ लाख रुपये खर्च कर डाले, जिसका आज ७ करोड़ मूल्य बैठता है। रानी झांसी एवं राव साहब के अनुरोध पर देशहित सर्वोपरि मानकर अमरचन्द बांठिया ने यह धनराशि

Ac. Gunnabhadra Sm MS ... Jain Gun Aradhak Trust

खुशी खुशी उन्हें दी—यह जानते हुए भी कि अंग्रेज इस देशभक्ति की सजा फांसी पर लटका कर ही देंगे। एक बारगी इस विशाल धनराशि की बदौलत विद्रोही सेना में जान आ गयी। फिर जब जब जरूरत हुई, अमरचन्द ने गंगाजली देशभक्त सेना पर न्यौछावर कर दी।

अपूर्व रणकौशल एवं अद्भुत साहस का परिचय देती हुई रानी लक्ष्मीबाई लश्कर के कम्पू मैदान में १८ जून १८५८ (वि.सं. १९१५) को अंग्रेज सेना से जबरदस्त टक्कर लेती हुई वीरगति को प्राप्त हुईं। विजयी अंग्रेजी सरकार ने जियाजी राव सिंधिया को २० जून १८५८ (वि.सं. १९१५) को गद्दीनसीन किया एवं क्रान्तिकारियों की मदद करने वालों का एक एक कर सफाया कर दिया। ब्रिगेडियर नैपियर ने कम्पनी सरकार के हुक्म से २२ जून १८५८ (वि.सं. १९१५) को अमरचन्द बांठिया को विद्रोहियों पर राजकोष न्यौछावर करने के जुर्म में फांसी पर लटका दिया। उनका पार्थिव शरीर जनता को चेतावनी स्वरूप ३ दिन तक फांसी पर लटकाए रखा गया। लश्कर के सराफा बाजार में खड़ा सदियों पुराना नीम का वृक्ष, जिस पर उन्हें फांसी पर लटकाया गया था, आज भी उस जवां मर्द ओसवाल कुल नक्षत्र की उत्सर्ग गाथा कह रहा है। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अमर शहीद की पावन स्मृति चिरस्थाई बनाने के लिये कानपुर के प्रमुख समाजसेवी श्री हजारीमल जी बांठिया प्रयत्नशील हैं।

श्रीमद् रायचन्द

ओसवाल (श्रीमाल) जाति के अनमोल हीरों में एक श्रीमद् रायचन्द थे। उनके सत्संग में बैठने वालों एवं प्रशंसकों का कहना है कि वे पच्चीसवें तीर्थंकर समान थे। उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। उनका पूरा नाम श्रीमद् रायचन्द रवजी भाई मेहता था। श्रीमद् का जन्म काठियावाड़ के बवाणिया गाँव में संवत् १९२४ की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ। आपके पिता रवजी भाई एवं दादा पंचाण भाई मूलतः माणकवाड़ा (मोरवी) से सं. १८९२ में बवाणिया आकर बसे थे। जब आप सात वर्ष के थे, तभी किसी परिचित गृहस्थ की सांप के डसने से अकाल मौत हो गयी। उसे देखकर आपके मानस में उथल-पुथल मच गई। मृत्यु संबंधी तीव्र जिज्ञासा ने मन के आवरण हटा दिये। कहते हैं उसी समय आपको पूर्व जन्म का आभास (जाति स्मरण ज्ञान) हुआ एवं आपके अन्तःकरण में वैराग्य के अंकुर फूटे। प्रारम्भ में आप दादा की तरह कृष्ण भक्त थे। एक साधु रामदास से कंठी भी बंधवाई थी। परन्तु आपका वैराग्य एवं त्यागप्रधान चित्त धीरे-धीरे जैन धर्म की ओर झुकता गया। तेरह वर्ष की आयु में पूर्णतः जैन रंग में रंग गये। आप असाधारण स्मरण शक्ति के धारक थे। एक बार पढ़ लेने मात्र से कालान्तर में उसे ज्यों का त्यों दोहरा देना आपके लिये सहज था। १४-१५ वर्ष की उम्र में ही आप अवधान करने लगे थे। १९ वर्ष की वय में बम्बई में डा. पिटर्सन की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा में शतावधान कर आपने अद्भुत धारणा शक्ति का परिचय दिया। तत्कालीन भारत में वे ही एकमात्र शतावधानी थे। संवत् १९४३ में श्रीमद् रायचन्द के शतावधान प्रयोगों से सारे भारत में तहलका मच गया था। हाई कोर्ट के जजों, विद्वानों एवं महात्माओं ने उनकी स्मरण शक्ति के चमत्कार की प्रशंसा की थी। वे रातों रात प्रसिद्धि के लिए शिखर पर पहुंच गए पर श्रीमद् ने इसे कभी महत्व नहीं दिया। वे अवधान के साथ ही अलौकिक स्पर्शेन्द्रिय के स्वामी थे। एक बार देखकर आँखें बन्द

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

करके मात्र स्पर्श से विभिन्न पुस्तकों के नाम बता सकते थे। रसोई को देखकर चखे बिना और स्पर्श किये बिना कौन सी बानगी में नमक कम या अधिक है—कह देना उनकी इन्द्रिय शक्तियों के चरमोत्कर्ष का साक्षी था। उनके जीवन प्रसंग संबंधी अनेक घटनाएँ प्रचलित हैं। इस प्रकार श्रीमद् जी में अलौकिक विभूतियों का साक्षात्कार देखकर आत्मा की अनन्त शक्तियों की प्रतीति होती है।

वि.सं. १९४४ में उनका विवाह गांधीजी के परम मित्र डा. प्राण जीवन मेहता के बड़े भाई पोपटलाल की पुत्री झंबकबाई से हुआ। विवाहोपरांत वे जवाहरात के व्यापार में लग गए।

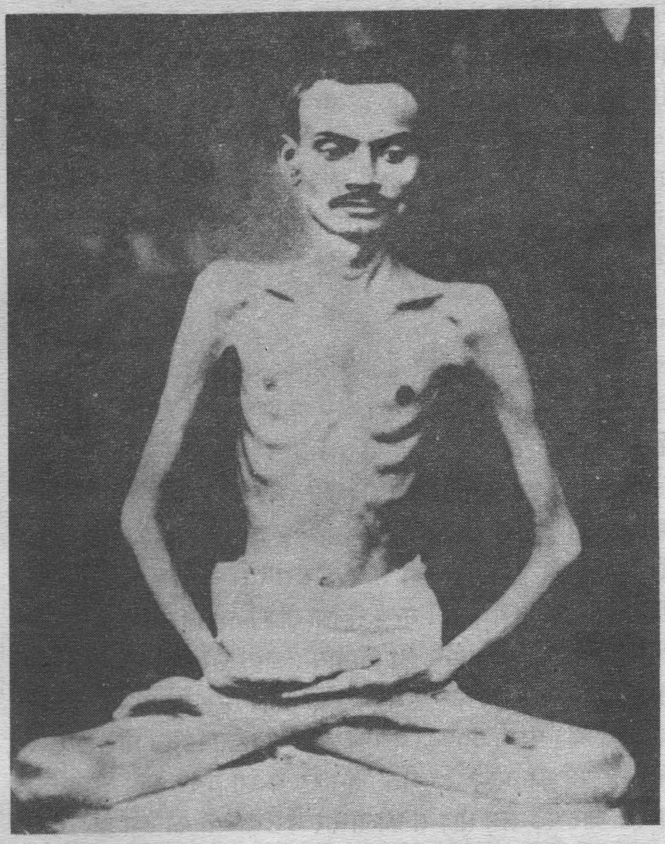

श्रीमद् रायचन्द

ग्यारह वर्ष तक वे गृहस्थाश्रम और व्यापार में संलग्न रहे। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। संवत् १९४६ में श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवन के साझे में बंम्बई में जवाहरात का काम शुरु किया। व्यापार में कुशल होते हुए भी इसे वे संसार की माया और प्रपंच मान कर तटस्थ बने रहते थे। किसी को ठगने के लिए कुछ नहीं करते थे। ग्राहक या विक्रयकर्ता की चालाकी वे शीघ्र समझ जाते थे। उन्हें वह असह्य होती थी। हीरे मोती की परीक्षा अत्यन्त सूक्ष्मता से करते। उनका अनुमान प्रायः सत्य सिद्ध होता। लाखों रूपये के सौदे की बात करके तत्क्षण आत्मज्ञान की गूढ़ बातें पढ़ने या लिखने बैठ जाते—ऐसा व्यापारी नहीं, ज्ञानी ही कर सकता है। उनका कहना था कि धार्मिक मनष्य का धर्म उसके प्रत्येक कार्य में दिखाई देना चाहिए। धर्मकुशल मनुष्य, व्यवहार कुशल नहीं होता—इस वहम को रायचन्द भाई ने असत्य सिद्ध कर दिखाया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कई बार एकान्त साधना के लिये वे चरोत्तर एवं इडर के जंगलों में चले जाते थे। इस तरह पाँच वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। एक गृहस्थ बंधु के अनुरोध पर 'आत्म सिद्धि' नामक ग्रंथ की रचना की, जो गुजराती में जैन धर्म का सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। श्रीमद् ने इसमें १४२ दोहों के माध्यम से जैन दर्शन का सार प्रस्तुत किया है। स्त्री-नीति-बोध, काव्यमाला, वचन सप्तसती, पुष्पमाला आदि उनकी १६ वर्ष वय पूर्व की रचनाएँ हैं।

उनके जीवन के हर कार्य में निर्ग्रन्थ की सी अनासक्ति झलकती थी। स्त्री को वे सत्संगी समझते थे। कभी किसी ने उन्हें किसी वैभव के प्रति मोह करते नहीं देखा। धोती, कुरता, अंगरखा और पगड़ी—यही उनकी वेश-भूषा थी। उनके हर कार्य में वीतराग की विभूति के दर्शन होते थे। उनकी दैनन्दिनी में लिखे विचारों में कहीं कृत्रिमता नहीं है।

वे ज्ञानी और कवि तो थे ही, पर मुख्यतः आत्मार्थी थे। वे कहते थे : "काव्य, साहित्य एवं संगीत आदि कलाएँ आत्मार्थ हो, तभी श्लाघ्य हैं अन्यथा निरर्थक। वास्तविक ज्ञान शास्त्र, काव्य चातुरी या भाषा सौष्ठव से परे आत्मा से संबंधित है।" महात्मा गांधी उनसे बहुत प्रभावित थे। सन् १८९३ में दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी को सेवा परायणता के ईसाई दर्शन से अध्यात्म की ओर मोड़ने का श्रेय श्रीमद् रायचन्द भाई को ही है।

शतावधान और ज्योतिष उनके ज्ञान का अंग अवश्य थे, पर स्मरण शक्ति का प्रयोग करना एवं पूर्व जन्म की बातें करना कुछ समय बाद उन्होंने छोड़ दिया था। वे सदा आत्म साधना में लीन रहने लगे। इस सम्बन्ध में उनकी दैनन्दिनी का एक उल्लेख उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन को उद्घाटित करता है—**"हम अपने किसी भी प्रकार के अपने आत्मिक बंधन के कारण संसार में नहीं रह रहे हैं। स्त्री से पूर्व में बाँधा हुआ कर्म निवृत्त करना है, कुटुम्ब का पूर्व में लिया हुआ कर्ज वापस देकर निवृत्त होने के लिए उसमें निवास करते हैं। उन जीवों की इच्छाओं को भी दुखित करने की इच्छा नहीं होती। उसे भी अनुकम्पा से सहन करते हैं–परन्तु इसमें किसी प्रकार की हमारी इच्छा नहीं है।"**

ज्यों-ज्यों संस्कार क्षय हुए, वे आत्म समाधि में लीन रहने लगे। संवत् १९४७ में एक पत्र में लिखे श्रीमद् के उद्गार आत्म-साधकों के मार्ग दर्शन में सहायक हो सकते हैं:

> "परिपूर्ण स्वरूप ज्ञान उत्पन्न होने के बाद इस समाधि से निकलकर
> लोकालोक के दर्शन को जाना कैसे बनेगा?
> अब हमें मुक्ति न चाहिए,
> न जैनों का केवल ज्ञान। अब हम अपनी दशा किसी
> प्रकार नहीं कह सकेंगे,
> निरुपायता है।"

संवत् १९५७ में ३३ वर्ष की अल्पायु में राजकोट में श्रीमद् रायचन्द ने शरीर त्याग कर महाप्रयाण किया। उनकी स्मृति में रत्नकूट, हम्पी (मैसूर) में बनाया गया, 'श्रीमद् रायचन्द्र आश्रम' जैन जगत एवं समस्त आध्यात्म प्रेमियों के लिये उपयुक्त साधना स्थली है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री पूर्णचन्द नाहर

अंग्रेजी शासन के दौरान ओसवाल जाति के एक और नक्षत्र चमके— श्री पूर्णचन्द नाहर, जिनके सद्प्रयत्नों से जाति के सांस्कृतिक व सामाजिक अभ्युदय का नया अध्याय शुरु हुआ।

आपका जन्म १५ मई १८७५ (वि.सं. १९३२) को अजीमगंज के प्रख्यात नाहर परिवार में हुआ। पिता रायबहादुर सिताबचन्द बड़े जमींदार थे। पूर्णचन्द जी ने सन् १८९५ में बी.ए. पास किया। वे बंगाल में ओसवाल समाज के प्रथम ग्रेज्युएट हुए। तत्पश्चात् अदालत मे प्रविष्ट हुए। सन् १९०४ में कलकत्ता हाइकोर्ट के वकील नियुक्त हुए। परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। एक दिन सर आशुतोष मुखर्जी के पास पहुंचे और कलकत्ता विश्वविद्यालय का परीक्षक बनने की इच्छा जाहिर की। सर आशुतोष ने तुरन्त उन्हें हिन्दी का परीक्षक नियुक्त कर दिया। नाहरजी अपनी नियुक्ति से प्रसन्न होने के साथ साथ स्तब्ध रह गये। उन्हें मालूम था कि हिन्दी में उनकी पैठ नहीं है। अतः दूसरे ही दिन 'भारतमित्र' के कार्यालय में पहुंचे। उससे जुड़ कर लिखना शुरू किया और जब तक परीक्षा की कापियाँ जांच के लिये आयीं, उन्होंने अपने आपको अधिकारी परीक्षक बना लिया।

साहित्य और पुरातत्व की ओर रुझान होने के कारण शीघ्र ही उन्होंने कानून का क्षेत्र छोड़ दिया। पुरातत्त्व उनका नशा बन गया। अनेक तीर्थों एवं ऐतिहासिक स्थलों का परिभ्रमण कर अनेकानेक चित्र, वास्तुशिल्प, मूर्तियाँ, हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह कर 'कुमार सिंह हाल' स्थित पुस्तकालय एवं संग्रहशाला की स्थापना की। आपका दियासलाइयों का संग्रह तो जग विख्यात है। आपको संस्कृत, पाली एवं अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान था। लेखन भी हिन्दी बंगला एवं अंग्रेजी में निरन्तर चलता रहा। आपका 'जैन लेख संग्रह' अपूर्व ग्रन्थ है, जिसमें ३००० शिलालेखों का सन्निवेश है। यह ग्रन्थ तीन भागों में है एवं जैन इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है। 'एपीटोम आफ जैनिज्म' नामक विशाल ग्रन्थ में आपने एवं श्री कृष्णचंद्र घोष ने प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'प्राकृत सूक्तरत्न माला' में प्राकृत भाषा की सूक्तियों का संग्रह है।

श्री पूरणचन्द्र नाहर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साथ ही उनका अंग्रेजी अनुवाद भी आपने दिया है। आपकी कृति 'पावापुरी का प्राचीन इतिहास' जैनों का लोकप्रिय ग्रन्थ है।

विद्वत् समाज में आपका बड़ा आदर था। कलकत्ता विश्वविद्यालय की अनेक परीक्षाओं के आप परीक्षक थे। इंग्लैण्ड की रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, बिहार—उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, बंगीय साहित्य परिषद, भण्डारकर ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, नागरी प्रचारणी सभा आदि के आप वरेण्य सदस्य थे। एक समय आप मुर्शिदाबाद एवं लालबाग के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी नियुक्त हुए। अनेक अन्य सभाओं के आप आजीवन सदस्य, कमिश्नर व मंत्री रहे। राजगृह, पावापुरी, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों पर आपने धर्मशालाएँ बनवाईं। अजमेर में सन् १९३२ में हुए 'अखिल भारतीय प्रथम ओसवाल महा सम्मेलन' के आप सभापति चुने गये थे।

३१ मई १९३६ को आपकी मृत्यु हुई। आपने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में ओसवाल समाज का नाम उजाला।

श्री पूर्णचंद जी नाहर के विशाल पांडित्य, कठोरतम परिश्रम और अपूर्व शास्त्रज्ञान की प्रशंसा में साहित्याचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी का एक श्लोक उल्लेखनीय है :

विज्ञान-विद्या विभवप्रसारमधीत जैनागमशास्त्रसारम्।
चन्द्रं पुराकृत तमोत्कारं, त्वां पूर्णचंद्रं शिरसा नमामि।।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने नाहर जी के आदर्श व्यक्तित्व को अपनी इन पंक्तियों में अमर कर दिया है :

बहुरत्ना वसुधा विदित और धनी भी भूरि।
दुर्लभ हैं ग्राहक तदपि पूर्णचन्द सम सूरि।।

सेठ खेतसी खींवसी दुल्ला (सं. १९११-१९७८)

प्रेम से दुल्ला राजा नाम से जनप्रिय सेठ खेतसी का जन्म सं. १९११ में जैन तीर्थ सुथरी में कच्छी दसा ओसवाल मूल लोडाया गोत्रीय धुल्ला शाखा के खींवसी करमण के घर माता गंगाबाई की कुक्षि से हुआ। धुल्ला या दुल्ला दिल के दिलावर या दौलत अधिक होने से व्युत्पन्न लगता है। ये अपने को उदयपुर के सूर्यवंशी राणा वंश के राजपूतों से निस्सृत मानते हैं, जैनधर्म अंगीकार कर लेने से ओसवाल कुल में शामिल किए गये।

खींवसी के चारों पुत्र बम्बई आ बसे। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद वे माधवजी धरमसी की पेढ़ी पर रुई का काम सीखने लगे। जल्दी ही पारंगत होकर उन्होंने अपना स्वतंत्र रुई व्यवसाय स्थापित किया और सफल हुए।

खेतसी का प्रथम विवाह सं. १९३२ में एवं द्वितीय सं. १९३७ में वीरबाई से हुआ। वीरबाई के सहवास से गृह स्वर्ग तुल्य हो गया। सं. १९४४ में पुत्र हीरजी का जन्म हुआ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उस वर्ष अकल्पनीय मुनाफा हुआ। हीरजी खेतसी कम्पनी स्थापित की। जल्द ही उनकी गिनती कोट्याधीशों में होने लगी। खेतसी रुई के तलस्पर्शी ज्ञान के कारण सम्पूर्ण बाजार में 'मास्टर ग्रेजुएट' नाम से जाने जाते थे। अनेक प्रतिष्ठानों बैंकों एवं एक्सचेंजों ने उन्हें अपना डाइरेक्टर मनोनीत किया। खेतसी ने भी अनेक शहरों में शाखाएँ खोलीं। प्रमुख उद्योगपतियों एवं राजा-महाराजाओं से उनके घनिष्ठ संबंध थे।

समाज का हर क्षेत्र उनके दान से लाभान्वित हुआ। सं. १९५६ के अकाल में उन्होंने त्रस्त जनता की बड़ी सहायता की एवं द्वितीय जगडू शाह कहे जाने लगे। सं. १९७२ तक अकालों की श्रृंखला निरन्तर छाई रही। सेठ खेतसी ने बिना किसी भेदभाव के खुले हाथों दान दिया। बम्बई के दसा ओसवाल जाति कोर्ट के लिये लाखों रूपये खर्च किये एवं महाजन वाड़ी को कर्ज से मुक्ति दिलाई। सं. १९७४ में समाज की ओर से सर पुरुषोत्तम ठाकुरदास की अध्यक्षता में उन्हें मान-पत्र भेंट कर 'जातिभूषण' के विरुद से विभूषित किया गया। सुथरी में साधु-साध्वियों के चातुर्मासों, जिनालयों एवं बिम्ब प्रतिष्ठानों पर लाखों रूपये खर्च किए। सं. १९९३ में खेतसी ने ५२ ग्रामों के संघ सुथरी में निमंत्रित कर जाति मेले का आयोजन किया जो अभूतपूर्व था। सं. १९७२ में हालार में भी लाखों रूपये खर्च कर ऐसे ही जाति मेले का आयोजन किया। सं. १९६९ में शत्रुञ्जय तीर्थ के लिये विशाल संघ समायोजित किया। खेतसी ने अनेक तीर्थों पर धर्मशालाएँ बनवाईं, हालार के अनेक गाँवों में पाठशालाएँ और जिनालय बनवाए। पं. मदनमोहन मालवीय को बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के लिये एक लाख रूपये प्रदान कर वहाँ जैन चेयर की स्थापना की। खेतसी ने अनेक शैक्षणिक संस्थाओं एवं अनाथालयों को लाखों रुपये दान दिये।

सं. १९७३ में कलकत्ता में हुई जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस में उनका सम्मान किया गया सरकार ने उन्हें 'जस्टिस आफ पीस' चुना। जनता प्रेम से उन्हें 'दुल्ला राजा' कहने लगी। उन दिनों किसी सरकारी संस्थान को दो लाख रूपये प्रदान कर 'सर' की उपाधि ली जा सकती थी किन्तु दुल्ला सेठ ने इसे अस्वीकार कर गरीबों का सरताज कहलाना पसन्द किया।

सं. १९७८ में लिंबडी में उनका देहांत हुआ। सेठाणी वीरबाई ने संघ समायोजन किया एवं लिंबडी में जिनालय बनवाया। खेतसी के पुत्र हीरजी भी प्रतापी पुरुष थे। उन्होंने पूना की भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट आदि अनेक संस्थानों को मुक्तहस्त अवदान दिये। सं. १९७७ में पेरिस में अचानक हीरजी भाई चल बसे। सेठ खेतसी पुत्र शोक से विह्वल हो उठे और अधिक तीव्रता से जनता की सेवा में जुट गए। ओसवाल समाज ऐसे औघड़ दानी को पाकर गौरवान्वित हुआ।

राय बहादुर सिरेमल बाफना

जिन ओसवालों ने भारत के इतिहास को गौरवान्वित किया, उनमें अपनी दूरदर्शिता पूर्ण राजनैतिक प्रतिभा के कारण सिरेमलजी बाफना का नाम अग्रणी है। वे अनेक वर्षों तक इन्दौर राज्य के प्राइम मिनिस्टर रहे। नाबालिग राजा की शासकी बड़ी नाजुक होती है। षड्यंत्रों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से भरपूर स्थितियों में शासन चलाना और राजा का विश्वास जमाये रखना कोई हंसी खेल नहीं होता।

देशी राज्यों के खजानों के व्यवस्थापक सेठ जोरावरमलजी बाफना की मृत्युपरान्त उनके पुत्र चन्दनमल जी उदयपुर रहकर राज्य की सेवा करते रहे। सं. १९२४ में उनकी मृत्यु हुई। उनके कनिष्ठ पुत्र छोगमल जी थे, जिनके द्वितीय पुत्र सिरेमल जी थे। आपका जन्म सं. १९३९ में हुआ। पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आपके गुरु थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा अजमेर में हुई। आपका विवाह बाल-अवस्था में ही मेहता भोपाल सिंह की पुत्री से कर दिया गया। आपकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज में हुई।

वजीर-उद्दौला सिरेमल जी बाफना

सं. १९६१ में आपने एल.एल.बी. प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर पास कर इलाहाबाद में वकालत शुरू की। संवत् १९६४ में आप होल्कर राज्य के डिस्ट्रिक्ट जज नियुक्त किये गये। सं. १९६७ में जब होल्कर दरबार विलायत गये, तो बाफना साहब को अपने साथ ले गये। सं. १९७२ में आप होम मिनिस्टर नियुक्त हुए। छः वर्ष तक बड़ी योग्यता से आपने राज्य का शासन भार संभाला। तदुपरान्त कुछ अरसे तक आप पटियाला राज्य के मंत्री नियुक्त हुए। संवत् १९८० में होल्कर दरबार ने पुनः आपको इन्दौर बुला लिया और राज्य का डिप्टी प्राइम-मिनिस्टर नियुक्त किया। संवत् १९८३ में आप प्राइम मिनिस्टर बने। इस तरह अनेक वर्षों तक राज्य का शासन भार आपके ही कन्धों पर रहा।

संवत् १९७१ में दिल्ली दरबार के समायोजन पर ब्रिटिश सरकार ने आपको 'राय बहादुर' की पदवी से सम्मानित किया। लन्दन में हुई गोलमेज कान्फ्रेंस में आपने इन्दौर के महाराजा का प्रतिनिधित्व किया। संवत् १९८७ में महाराजा ने आपको 'वजीर-उद्दौला' की पदवी से विभूषित किया। अगली साल ब्रिटिश सरकार ने आपको सी.आई.ई. का सम्मान इनायत

Gunratnasuri MS Jin-Gun Aradhak Trust

किया। संवत् १९९२ में 'लीग आफ नेशन्स' संस्थान के जेनेवा अधिवेशन में आप भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शरीक हुए। संवत् १९९३ में ब्रिटिश सरकार ने आपको सर्वोच्च सम्मान नाईट (सर) की उपाधि दी।

सरकारों में ही नहीं, समस्त प्रजा में आप लोकप्रिय थे। प्रजा का कल्याण आपके लिये सर्वोपरि था। आपके सद्प्रयत्नों से इन्दौर का छावनी क्षेत्र, जो ब्रिटिश सरकार के कब्जे में था, पुनः राज्य में शामिल कर दिया गया एवं भारत के वाइसराय के पास इन्दौर राज्य का प्रतिनिधि हर समय रहने लगा। इससे राज्य के विकास में बहुत सहायता मिली। यह अधिकार किसी अन्य राज्य को प्राप्त नहीं था। इन्दौर में विशाल 'वाटर वर्क्स' के निर्माण का श्रेय आपको ही है। सम्पूर्ण संसार में ऐसी एक दो योजनाएँ ही क्रियान्वित हुई हैं। इसने आपको चिर स्मरणीय बना दिया। शिक्षा जगत् में आपने राज्य की अभूतपूर्व सेवा कर क्रान्ति ही ला दी।

संवत् १९९६ में बाफना जी सेवा निवृत्त हुए! तत्कालीन बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह जी उन्हें अपनी रियासत का प्रधान मंत्री बनाकर ले गये, जहाँ वे दो वर्ष रहे और बहुत लोकप्रिय हुए। आपने रतलाम और अलवर रियासतों के मुख्य मंत्री पदों पर भी कार्य किया। परन्तु स्वास्थ्य खराब रहने की वजह से संवत् २००४ में पूर्णतः सेवा निवृत्त हो गये।

बाफना जी सौजन्यता और उदारता की प्रतिमूर्ति थे। अनेक विधवाओं, विद्यार्थियों और दीन दुखियों की सहायता वे निरन्तर करते रहते थे। अनेक वर्षों तक महाराजा की नाबालिगी में राज्य के सर्वेसर्वा और निरन्तर चौदह वर्षों तक प्रधानमंत्री रहते हुए भी जब वे कार्यभार से मुक्त हुए तो आकंठ कर्ज में डूबे थे। कोई और होता तो करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर ली होती। अपनी मृत्यु से एक दो वर्ष पूर्व बाफना जी ने जैसलमेर स्थित अपनी पैतृक संपत्ति का भी एक ट्रस्ट बना दिया जो अब भी गरीबों बीमारों एवं असहायों की सहायता करता है। ओसवाल वँश का यह सितारा संवत् २०२१ में इन्दौर में अस्त हुआ।

बाबू तखतमल जैन (सं. १९५१-२०३३)

आधुनिक भारत के निर्माण में जिस ओसवाल श्रेष्ठि ने प्रमुख भूमिका निभाई वे थे बाबू तख्तमल जैन। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री पद को सुशोभित करने के साथ ही आप नवीन मध्य प्रदेश के गठन एवं उत्तरोत्तर विकास के प्रेरणा स्रोत रहे।

आपका जन्म सं. १९५१ में गंजबासौदा (भेलसा) के प्रतिष्ठित जालोरी खानदान में हुआ। मुनि ज्ञान सुन्दर जी ने जालोरी गोत्र को ओसवालों के १८ मूलगोत्रों में से एक कुलहट गोत्र की शाखा माना है। इसमें कोई शक नहीं कि इनके पूर्वज जालौर से प्रत्यावर्तन के कारण ही जालौरी कहलाए। सेठ खुशालचन्द अरारिया से रीवाँ आकर बसे। उनके पौत्र ताराचन्द रींवां से भेलसा आये। उनके पौत्र लूनकरण जी ने अपने अध्यवसाय से भेलसा में व्यापार एवं जमींदारी स्थापित की। वे बड़े उदार एवं लोकप्रिय थे। कहते हैं एक मृत्यु भोज में उन्होंने अछूतों (मेहतरों) को सोने की एक एक सींक लगीं पत्तलों में लड्डू जलेबी का भोज कराया था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेठ लूनकरण जी की एकमात्र संतान थे तख्तमल। भेलसा में ननिहाल में ही आपकी शिक्षा सम्पन्न हुई। सं. १९६९ में कानून के स्नातक बन कर आपने बासौदा में निजी प्रैक्टिस शुरु की। सं. १९६६ में आपका विवाह हुआ। एक यशस्वी नेता एवं विधिवेत्ता के रूप में आपकी शोहरत बढ़ती गई। पैतृक व्यवसाय भी विस्तृत होता गया। अतः पूरा परिवार भेलसा आ बसा। अपने विधिक ज्ञान के कारण ग्वालियर राज्य के मजलिस ए आम और मजलिस ए खास (राज्य की कानून बनाने वाली सार्वभौम सभा) के आप वर्षों तक सदस्य रहे। सं. १९९६ में आप भेलसा नगरपालिका के प्रथम अशासकीय अध्यक्ष चुने गये। सिंधिया सरकार ने स्वतंत्रता के पूर्व ही सं. १९९७ में आपको ग्वालियर रियासत में ग्राम सुधार एवं स्थानीय स्वशासन विभाग का मंत्री नियुक्त किया।

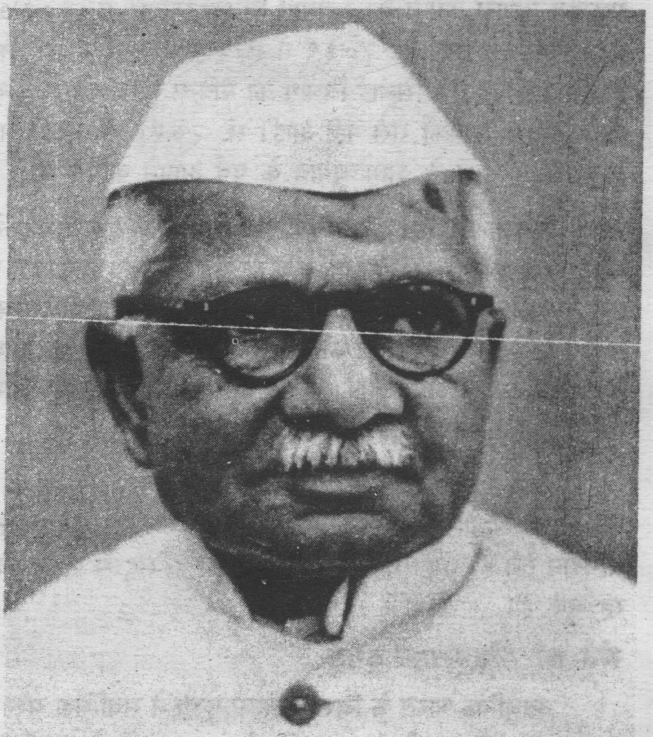

स्व. बाबू तख्तमल जैन

सन् ४२ के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय आप त्यागपत्र दे शासन से अलग हो गये। संवत् २००५ में स्वतंत्रतोपरान्त प्रदेश में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमण्डल बना तो बाबूजी अर्थ मंत्री नियुक्त हुए। आपने मध्य भारत शासन के अर्थ विभाग का पुनर्गठन किया। सं. २००७ में आपने मध्य भारत के मुख्यमंत्री पद पर शपथ ग्रहण की एवं एक ऐसे युग का सूत्रपात किया जिसे मध्यभारत का स्वर्णयुग कहा जाता है। पं. जवाहरलाल नेहरू आपकी शासन क्षमता से विशेष प्रभावित थे। राज्य में पंचवर्षीय योजनाओं के सुनियोजित क्रियान्वयन का श्रेय बाबूजी को ही है। सं. २००९ के आम चुनाव में बासौदा विधान सभा क्षेत्र से चुनाव हार जाने पर भी समस्त कांग्रेस विधायक दल ने आपको नेता चुन कर अपनी आस्था प्रकट की। सं. २०१२ में आप चुनाव जीते और फिर से मुख्यमंत्री पद ग्रहण किया। यह कांग्रेस हाईकमान की बाबूजी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की योग्यता एवं नेतृत्व क्षमता में आस्था का सूचक था। सं. २०१३ में पुनर्गठित हो मध्य प्रदेश राज्य बना तो पं. रविशंकर शुक्ल मुख्यमंत्री बने। बाबूजी इस मंत्रिमंडल में वाणिज्य उद्योग एवं कृषि मंत्री बने। शुक्लजी के निधन के बाद डा. कैलाशनाथ काटजू के मंत्रिमंडल में भी आप पुनः उन्हीं विभागों के मंत्री रहे एवं राज्य विकास के लिये सदा क्रियाशील रहे। सं. २०१५ में केन्द्रीय नेतृत्व ने आपकी बहुमुखी प्रतिभा का सम्मान करते हुए आपको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का महामंत्री नियुक्त किया। सं. २०१७ में वे मध्यभारत खादी संघ के अध्यक्ष चुने गये। सं. २०१९ में राज्य के मंडलोई मंत्रिमंडल में बाबूजी को पुनः योजना, विकास, विद्युत् एवं सिंचाई विभाग का मंत्रित्व सौपा गया। किन्तु राजनैतिक संघर्ष एवं सत्ता की राजनीति आपको रास नहीं आई। सं. २०२० में आपने सत्ता की राजनीति से विदा ले ली। सं. २०२४ के आम चुनाव के पूर्व आपने कांग्रेस पार्टी ही छोड़ दी।

बाबूजी विदिशा की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रकाश स्तम्भ थे। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व राज्य विकास के हर क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ गया। दलितों, आदिवासियों, एवं किसानों के तो वे मसीहा ही थे। खादी, ग्रामोद्योग, गोसेवा एवं हरिजनोद्धार के कार्यों में वे सदा सेवारत रहे। राज्य की अनेक शिक्षण संस्थाओं के वे अध्यक्ष/उपाध्यक्ष एवं संस्थापक थे। सबसे बढ़ कर था उनका सबके प्रति सौहार्द्र, सौजन्य और स्नेह। सं. २०३३ में यह निरन्तर गतिशील व्यक्तित्त्व सदा के लिये सो गया।

आपके सुपुत्र श्री राजमल जी विधि अधिवक्ता हैं। आपने भी विदिशा नगरपालिका का अध्यक्ष पद सुशोभित किया है। प्रदेश की विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों में आपका सदा सराहनीय योगदान रहा है। आप राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य एवं विदिशा जिला कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं।

सेठ श्री सोहनलाल दूगड़

आधुनिक भारत के जिस इतिहास पुरुष ने सर्वाधिक यश कमाया, वे थे श्री सोहनलाल दूगड़। इस औढरदानी का जन्म वि.सं. १९५२ में शेखावटी (राजस्थान) के फतेहपुर नगर में हुआ। आपके पूर्वज सूरजमल जी मारवाड़ से उठकर फतेहपुर आये। यहाँ के नवाब ने उन्हें कुशल योद्धा और दीवान की प्रतिष्ठा दी। आपके पिता श्री जोहरीमल जी नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। सोहनलाल जी के कोई अपनी संतान न थी। उन्होंने दो पुत्रों को गोद लिया। मुख्य व्यवसाय क्षेत्र कलकत्ता रहा। व्यवसाय के नाम पर सट्टा प्रमुख था—कुछ ही क्षणों में लाखों की खोई-कमाई! बम्बई, दिल्ली एवं कलकत्ता के रूई, चांदी एवं जूट के सट्टा बाजारों पर वे हावी रहे। परन्तु पैसा बटोरना उनके जीवन का लक्ष्य कदापि नहीं रहा, उनका रस तो उसे बांटने में था।

दानी तो विश्व-इतिहास में और भी हुए हैं, जिन्होंने बिना हिचक अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, पर सेठ सोहनलाल अद्‌भुत एवं बेजोड़ थे। जहाँ जरूरत समझते, बिन बुलाए ही स्वयं थैलों में नोट भरकर पहुंच जाते। भारत का हर कोना विशेषतः शेखावटी एवं थली

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रान्त की स्कूलें, सामाजिक संस्थाएँ, हरिजन परिवार एवं जरूरतमन्द विधवाएँ—सभी उनके दान से अनुग्रहित हुए। उन्होंने जितना दिया उसका लेखा जोखा तक करना असम्भव है। ऐसे दिया कि दाहिने हाथ से देते हुए बाँएँ हाथ को खबर तक न होने दी। ऐसे निस्पृह दानी थे दूगड़जी। जब आचार्य रजनीश ने कहा —'अभी आवश्यकता नहीं है जरूरत होगी तब मंगा लेंगे' तो फौरन जवाब मिला—'कौन भरोसा, उस समय मेरे पास हो न हो। यह तो रख ही लीजिए'

श्री सोहनलाल दूगड़

दूगड़जी पढ़े-लिखे न थे, पर विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। गाँधी और विनोबा के बड़े भक्त थे। सम्प्रदाय, जाति या धर्म उनके कार्य कलाप में कभी बाधक नहीं बने। गोरक्षा आन्दोलन में तन मन धन से अग्रणी रहे, जेल गये। सरल हृदय इतने थे कि हर किसी के दुःख से कातर हो उठते थे और सर्वत्र लुटाने को तत्पर रहते। जैन थे परन्तु धर्माचार्यों को भी खरी खरी सुनाने से नहीं चूके। लाड़नूँ में आयोजित धार्मिक क्रान्ति सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के नाते ३० जनवरी १९६१ को उन्होंने दो टूक बात कही कि "आज धर्म के नाम पर आचार्य, साधु-संत, मठाधीश, पंडे-पुजारी इत्यादि अपनी पूजा और सेवा कराने में लगे हैं। इससे समाज और राष्ट्र के जीवन में निर्बलता आयी है। समय आ गया है कि अब सबका विघटन किया जाय। हम पुराने धर्म से निकलकर नये धर्म को धारण करने के लिये परिश्रम और सेवा करें। देश का साधु समाज जागे और समाज में आकर सेवा के जरिये राष्ट्र को नवीन ज्योति से जगमगा दे"। संवत् १९९८ में उन्होंने अपना फतहपुर स्थित विशाल 'आजाद भवन' लोकार्पित कर दिया, जो कालांतर में नगर की शैक्षणिक, सामाजिक एवं राजनीतिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बना। थली के विभिन्न नगरों में बाल मन्दिरों की श्रृंखला ही खड़ी कर दी। अकाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से विपन्न या अग्निकांड से त्रस्त लोगों के लिये बिना भूख प्यास की परवाह किये नोट बाँटते फिरे। संवत् २०२१ में भारत जैन महामंडल के सांगली अधिवेशन का अध्यक्ष चुन कर समाज ने उनका समुचित सम्मान किया।

संवत् २०२५ में वे दिवंगत हुए। आचार्य तुलसी ने उन्हें 'निष्काम कर्मयोगी' एवं अमर मुनि ने 'सूखी धरती का मेघ' कह कर श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री कन्हैयालाल जी सेठिया ने दूगड़ जी की 'कालजयी' विशेषण से अभ्यर्थना की। कलकत्ता में ओसवालों की प्रतिनिधि संस्था 'ओसवाल नवयुवक समिति' के भवन निर्माण के लिये वे स्वयं चन्दा मांगने निकले थे। समिति ने संवत् २०४२ में उनकी संगमरमर की वक्ष-प्रतिमा अपने प्रांगण में स्थापित कर अपने को धन्य माना। संवत् २०३६ में अखिल भारतवर्षीय अभिनन्दन समिति की ओर से आपकी स्मृति में एक बृहद् स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जिसमें सभी प्रेमियों के श्रद्धा सुमन ही नहीं, आपके क्रिया-कलापों का सही आकलन एवं दान-वर्षा का अनोखा किन्तु अपूर्व लेखा जोखा दर्ज है।

श्री देवीलाल सामर

राजस्थान की लोक संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में पहुंचाने का श्रेय ओसवाल कुल के दीपक श्री देवीलाल सामर को है। गर्मी की तपती दोपहरी और सर्दी की ठिठुराती रातों में गाँव-गाँव घूम कर इस कला उपासक ने लोक कथाओं के संरक्षण, संकलन एवं संवर्धन में जो योगदान दिया, वह स्वातंत्रोत्तर भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विशिष्ट उपलब्धि है।

आपका जन्म खैरादीवाड़ा, उदयपुर में ३० जुलाई १९११ (वि.सं. १९६८) को हुआ। आपके पिता अर्जुन सिंह जी पुत्र जन्म के तीन महीने पूर्व ही परलोकवासी हो गये थे। पांच वर्ष बाद माता भी नहीं रहीं। उस समय रामलीला का अच्छा प्रसार था। बाहर से मण्डलियाँ आती थीं। देवीलाल जी को रामलीला में इतना रस आया कि ११-१२ वर्ष की उम्र में ही एक मण्डली के साथ निकल पड़े। मामा को यह मंजूर न हुआ तो उदयपुर में ही अपनी एक मंडली बना ली—यही उनके कला जीवन की शुरूआत थी।

जब से प्रसिद्ध शिक्षाविद् डा. मोहन सिंह मेहता के सम्पर्क में आये, जीवन में व्यवस्था एवं सुधार का सूत्रपात हुआ। १६ वर्ष की उम्र में ही विवाह हो गया। संवत् १९८४ में वे श्वसुर के प्रयत्न से पढ़ने काशी विश्वविद्यालय, बनारस चले आये। वहाँ अभिनय कला को उपयुक्त बढ़ावा मिला। वे नायक की भूमिकाओं में पारंगत हो गये एवं अच्छी ख्याति अर्जित की। यहीं उन्होंने संगीत एवं वायलिन की शिक्षा पायी। सन् १९३० की गांधी की आँधी में वे भी बह गये। सत्याग्रह आन्दोलन में हिस्सा लेने लगे लेकिन उन्हें नानी की भूख-हड़ताल से द्रवित हो उदयपुर लौट आना पड़ा। फिर तो नाटक प्रदर्शनों का दौर चला। सामरजी की प्रेरणा से संपूर्ण मेवाड़ में अनेक मण्डलियों की स्थापना हुई। मामा को जब यह सहन न हुआ तो उनका घर छोड़कर डा. मेहता के स्काउट आश्रम चले आये। फिर विद्या-भवन की स्थापना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुई तो सामरजी उसे समर्पित हो गये। वहीं से लोक कला के अभिनव प्रयोग शुरु किये। उसके सांस्कृतिक मंच 'कला-मंडल' की नींव रखी। बुद्ध, गांधी, राम एवं कामायनी पर लिखे उनके पेजेन्ट में विद्याभवन के डेढ़-डेढ़ सौ पात्र अभिनय करते थे एवं समूचा उद्यान ही रंगमंच बन जाता था।

श्री देवीलाल सामर
(गंगापार नृत्य-नाट्य में 'राम' की भूमिका मे)

नाट्य लेखन के साथ गद्यगीत एवं कविता भी सामरजी लिखते रहे जो विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उनकी पहली कहानी 'तिरस्कृत' संवत् १९८५ में छपी। 'चन्द्रलोक' 'मृत्यु के उपरान्त' एवं 'आत्मा की खोज' नामक नाटक संग्रह प्रकाशित हुए। अनेक उच्चस्तरीय एकांकी लिख कर उन्होंने साहित्य के इस पक्ष को गरिमा प्रदान की। अनेक एकांकी आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित हुए। सं. २००४ में सामरजी प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर के सम्पर्क में आये एवं अल्मोड़ा में उनके नृत्य केन्द्र में नृत्य शिक्षक नियुक्त हुए। उदयशंकर की नृत्य-फिल्म 'कल्पना' में सामरजी ने 'सुन्दर' की महत्वपूर्ण भूमिका ही नहीं अदा की, बल्कि उसके गीत संवादों का भी सृजन किया।

संवत् २००९ में सामरजी ने विद्याभवन छोड़ा और लोक-धर्मी कलाओं के शोध-संवर्धन एवं उन्नयन के लिए 'भारतीय लोककला मंडल' की स्थापना की। बड़े धैर्य और हिम्मत के साथ इस महत् कार्य में जुटे। लेखन भी चलता रहा। लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोकोत्सव आदि एक एक कर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। अनेक कलाकारों को खड़ा किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कठपुतली के समारोहों ने देश में धूम मचा दी। उन्होंने भारत सरकार के आग्रह पर मध्य प्रदेश, राजस्थान, मणिपुर एवं त्रिपुरा के आदिवासियों के सर्वेक्षण एवं फिल्मांकन का दुःसाध्य कार्य बड़ी लगन एवं सफलतापूर्वक कर दिखाया। संवत् २०१३ में कला मण्डल का संग्रहालय बना, जो अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुका है। इसमें लोकमंचीय विधाओं, वाद्यों, प्रतिमाओं, भित्तिचित्रों, कठपुतलियों का अभूतपूर्व संग्रह है। कला मंडल द्वारा लोककलाओं की अन्वीक्षक 'रंगायन' एवं 'लोककला' पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। राजस्थान के सांस्कृतिक गौरव को उजागर करने वाले ढेर सारे प्रकाशन हुए हैं। विविध अंचलों में व्याप्त लोक धर्मी रंगीनियों को इस तरह सब के लिये सुलभ कर देने से एक सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण हुआ। विश्व विद्यालयों ने लोककला का पठन-पाठन शोध के लिये स्वीकृत किया। डा. महेन्द्र भानावत के निर्देशन में कला मण्डल में अब भी सामरजी का स्वप्न आकार पा रहा है। विदेशी कलाकारों का तो यह तीर्थस्थल ही बन गया है। उनके वरद पुत्र गोविन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कठपुतली सर्कस को तो उन्होंने चमत्कार युक्त कर दिया था। उनके असमय निधन ने सामरजी को निढाल कर दिया।

सामरजी ने अनेक बार विदेश यात्राएँ कीं एवं लोककला का प्रदर्शन कर अपार ख्याति अर्जित की। संवत् २०२४ में राज्य सरकार ने उन्हें राजस्थान संगीत नाटक अकादमी का अध्यक्ष मनोनीत किया। संवत् २०२५ में वे राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित हुए। संवत् २०२६ में कालिदास अकादमी, इलाहाबाद ने उन्हें 'लोकनाट्यश्री' की उपाधि दी। राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर द्वारा वे 'कलानिधि' की उपाधि से सम्मानित किये गये। इटली के पादुआ विश्वविद्यालय ने उन्हें रजत पदक से अलंकृत किया। हनोई की वियतनाम सरकार ने उन्हें सर्वोच्च कला पदक प्रदान किया।

इस प्रख्यात लोक संस्कृतिविद् एवं कला मर्मज्ञ का ७१ वर्ष की आयु में संवत् २०३८ में बम्बई मे देहांत हुआ।

सर वशन जी त्रीकमजी नाईट (सं. १९२२-१९८२)

समस्त जैन समाज में 'सर' व 'नाईट' (Knight) की पदवियों से सम्मानित होने वाले प्रथम ओसवाल श्रेष्ठि वशन जी ही थे। सुथरी के दशा लोडाया गोत्रीय श्रेष्ठि त्रीकमजी मूलजी की पत्नी लाख बाई की कुक्षि से बम्बई में सं. १९२२ में वशन जी का जन्म हुआ। माँ का सूतिका गृह में ही छठें दिन देहांत हो गया। वशन जी पितामह के धार्मिक संस्कारों में ही पले, बड़े हुए। सं. १९२८ में पितामह ने केसरिया जी तीर्थ के लिये संघ समायोजन किया। सं. १९३० में पिता की एवं सं. १९३२ में पितामह की मृत्यु हो जाने से परिवार का सारा भार वशन जी के बाल कंधों पर आ पड़ा।

आपने हजारों रूपये खर्च कर जिनालय बनवाए, पाठशालाएँ खोलीं, एवं धर्मशालाओं का निर्माण कराया। भयंकर दुष्काल के समय आपने सुथरी एवं अन्य अनेक जगहों पर दानशालाएँ खोलीं एवं त्रस्त जनता की सेवा की।। इन लोकोपयोगी कार्यों के लिये सं. १९५२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में सरकार ने उन्हें जे.पी. की पदवी दी। सं. १९५५ में वे राय साहब की उपाधि से सम्मानित किये गये। सं. १९६५ में सरकार ने उन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। आपने रायल इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स को सवा दो लाख रूपये प्रदान किये। सं. १९६८ में सरकार ने आपके सेवा कार्यों से प्रभावित होकर आपको 'सर' का सर्वोच्च सम्मान (Knighthood) प्रदान किया। वे अनेक सार्वजनिक लोकहितकारी संस्थाओं के संस्थापक और ट्रस्टी रहे। आपके अवदानों की सूची बहुत विस्तृत है।

सं. १९८२ में आपकी मृत्यु हुई।

डा. विक्रम साराभाई

ओसवाल कुल श्रीमाल गोत्र (दसा) के नक्षत्र एवं भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान के जनक डा. विक्रम सारा भाई का नाम आधुनिक भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो चुका है। उन्होंने अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा विज्ञान को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्थापित कर भारत को विश्व के अग्रणी देशों की कोटि में ला खड़ा किया। स्वयं ऊर्जा के इस भण्डार से भारत के अनेक वैज्ञानिक शैक्षणिक व अनुसंधान केन्द्र संचालित हैं।

आप का जन्म अहमदाबाद में विक्रम संवत् १९७६ में हुआ। आप के पिता श्री अंबालाल साराभाई बड़े उद्योगपति थे। आपकी माता सरला देवी बड़ी आदर्श महिला थीं। प्रारम्भिक शिक्षा अहमदाबाद में ग्रहण करने के उपरांत आपने इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज शिक्षण संस्थान से वि.सं. १९९६ में विज्ञान की डिग्री हासिल की। तत्पश्चात आप बंगलोर के इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स में कास्मिक किरणों पर शोकार्य में लगे। नोबल प्राइज विजेता सर सी.वी. रमन के निर्देशन में कार्य करने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ। महायुद्ध की समाप्ति पर एक बार फिर कैम्ब्रिज लौटकर अनुसंधान कार्य में लगे। फलतः सं. २००४ में इसी विषय पर डाक्टरेट की उपाधि मिली।

भारत आकर वे अनेक पारिवारिक उद्योगों से जुड़े। उनके विकास में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी महती उपलब्धि अहमदाबाद में भौतिक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना थी। प्रो. के. आर. रामनाथन के सहयोग से संचालित इस अनुसंधान केन्द्र ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। डा. साराभाई के निर्देशन में २० से अधिक शोधार्थी डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। संवत् २००३ में स्थापित अहमदाबाद का टेक्सटाईल उद्योग अनुसंधान केन्द्र (ए.टी. आई. आर.ए.) आप के ही अध्यवसाय का फल है। वे २०१३ तक उसके मानद निर्देशक रहे। सं. २०१३ में उन्होंने भारतीय प्रबन्ध संस्थान (आई.आई.एम.), अहमदाबाद की स्थापना की। तभी पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें भारत के अत्यन्त मूल्यवान नाभिकीय अनुसंधान केन्द्र का भार सौंपा, जिसे उन्होंने बड़ी योग्यता से निभाया। थुंबा का राकेट लांचिंग स्टेशन उन्हीं दिनों स्थापित हुआ। रोहिणी एवं मेनका राकेटों के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। सं. २०१३ में उन्हें एटामिक एनर्जी कमीशन का अध्यक्ष बना दिया गया। वे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारत सरकार के इस विभाग के सचिव मनोनीत हुए। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों, सेमिनारों तथा सभाओं की अध्यक्षता उन्होंने की। राष्ट्रसंघ की 'अन्तरिक्षीय अस्तित्व के शान्तिपरक उपयोगों की खोज' के निमित्त वि.सं. २०२५ में हुई कान्फ्रेंस के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वि.सं. २०२७ में विएना में परमाणु ऊर्जा के विकासार्थ हुई १४वीं अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस के आप सभापति चुने गये। वि.सं. २०२८ में राष्ट्र संघ के तत्त्वाधान में परमाणु उर्जा के शांति परक उपयोगार्थ हुई चौथी कान्फ्रेंस के आप उपसभापति मनोनीत हुए।

देश और विदेश में अनेक अलंकरणों से डा. साराभाई को सम्मानित किया गया। सं. २०१९ में उन्हें 'शान्ति स्वरूप यादगार एवार्ड' से सम्मानित किया गया। सं. २०२३ में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित किया। उनकी पत्नी मृणालिनी साराभाई ने शास्त्रीय नृत्यों में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। वे नृत्य तथा ड्रामा के आश्रयदाता थे। उनके सुपुत्र कीर्तिकेय तथा सुपुत्री मल्लिका ने भी अपने क्षेत्र में निजी पहचान बनाई। कीर्ति के शिखर पर होते हुए भी अभिमान उन्हें छू तक न सका। प्रकृति से उन्हें अत्यन्त प्रेम था।

वि.सं. २०२८ में (३० दिसम्बर १९७१) थुंबा में मात्र ५० वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ। राष्ट्रपति ने वि.सं. २०२९ में उन्हें मरणोपरांत 'पद्मविभूषण' अलंकरण से विभूषित किया। किसी भी राष्ट्र के इतिहास में बड़े अन्तराल में ऐसे विरले मनुष्य आते हैं जो आगामी २०० वर्षों के विकास को आकार प्रदान कर जाते हैं। नभ भौतिकी तथा परमाणु उर्जा के शान्ति परक उपयोग में डा. साराभाई का अवदान इसी कोटि का है। एक बार महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर सं. १९७७ में अहमदाबाद पधारे थे—तब बालक विक्रम साराभाई घुटनों के बल चलने लगे थे। महाकवि ने उन्हें गोद में उठाकर माता सरला देवी से कहा था—'बहन! तुम बड़ी भाग्यशाली हो। तुम्हारा यह पुत्र बड़ा होकर बहुत नाम कमाएगा।' महाकवि की वह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई।

डा. दौलत सिंह कोठारी

विश्व के महानतम वैज्ञानिकों में गिने जाने वाले डा. दौलत सिंह कोठारी का जन्म वि.सं. १९६२ में उदयपुर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा उदयपुर और इन्दौर में पूर्ण करने के बाद आपने इलाहाबाद युनिवर्सिटी से सं. १९८५ में डा. मेघनाथ साहा के निर्देशन में भौतिकी में एम.एस.सी. (प्रथम श्रेणी में) पास की। तत्पश्चात यू.पी. सरकार की स्कालरशिप पर आपने कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) युनिवर्सिटी में विश्व के चोटी के वैज्ञानिकों रदरफोर्ड, फाउलर आदि के साथ अनुसंधान में रत रह कर नभ भौतिकी का अध्ययन किया। सं. १९९० में वे पी.एच.डी. से सम्मानित किये गये। आपने दिल्ली युनिवर्सिटी में वि.सं. १९९१ से २०१८ तक अध्यापन किया। वे भौतिकी विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे। कलकत्ते में हुई विज्ञान कान्फ्रेंस (सं. १९९७) के सभापति सर जेम्स जीन ने आपके कार्य की बहुत सराहना की। सं. २००५ में उन्हें भारत सरकार ने रक्षा अनुसंधान एवं विकास की जिम्मेदारी सौंपी। वे सं. २००५ से २०१८ तक भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार रहे। सं. २०१८ में उन्हें युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन का चेयरमैन बनाया गया—तब भी वे दिल्ली युनिवर्सिटी के मानद

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रोफेसर बने रहे। उन्होंने नाभिकीय सितारों पर अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान किये जिससे उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

श्री कोठारी संवत् २०२० में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के स्वर्ण जयंती समारोह के अध्यक्ष मनोनीत हुए। भारत सरकार ने सं. २०२१ में आपको भारतीय शैक्षणिक कमीशन का चेयरमैन नियुक्त किया। सं. २००५ में डा. राधाकृष्णन एवं सं. २०१० में प्रो. मुदालियर की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग शिक्षण के क्षेत्र में एकरूपता लाने में असमर्थ रहे थे। अतः भारत सरकार ने यह जिम्मेदारी कोठारी आयोग को सौंपी। गहन अध्ययन के बाद डा. कोठारी ने सं. २०२३ में डेढ़ हजार पृष्ठों की जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें यथार्थवादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण से विद्यालयों के पाठ्यक्रम, छात्रों की प्रवेश-उम्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के शिक्षण आदि के बारे में अनेक उपयोगी सुझाव दिए जिससे सम्पूर्ण देश की भावात्मक एकता बनी रहे। सं. २०३० में आप भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकेडमी के सभापति चुने गए। आपने अन्य अनेक सरकारी निकायों की सदस्यता से देश को लाभान्वित किया। आप बड़े आध्यात्म प्रेमी थे। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी कांफ्रेंस की अध्यक्षता कर आपने समाज को नहीं दिशा दी। सं. २०१९ में भारत सरकार ने आपको 'पद्म-भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया एवं सं. २०३० में 'पद्मविभूषण' की उपाधि से विभूषित किया।

डा० दौलतसिंह कोठारी

उनकी राष्ट्रीय उपलब्धियों से अभिभूत होकर 'नेशनल फेडरेशन आफ़ यूनेस्को एसोसिएशन' ने उन्हें 'यूनेस्को' एवार्ड से अलंकृत किया। सं. २०४९ में जयपुर में आप दिवंगत हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अध्याय

द्वादश

शासन द्वारा सम्मानित ओसवाल

उपाधि एवं अलंकरण

राज्य शासन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देने वाले ओसवालों की सूची बहुत लम्बी है। जीवन के हर क्षेत्र में ओसवाल श्रेष्ठि अग्रगण्य रहे। राज्य शासन ने अनेक ओसवाल बन्धुओं का समुचित सम्मान करते हुए समय-समय पर विभिन्न उपाधियों तथा अलंकरणों से उन्हें विभूषित किया।

भारत के बाहरी आक्रमणों से पद-दलित होने से पूर्व राज्य शासन के सहयोगी और राज्य के विशिष्ट व्यक्ति भी राज्य के अंग माने जाते थे अतः उपाधि देने की प्रथा ही न थी। मुस्लिम आक्रमण तथा राज्य स्थापना के समय से राजा और प्रजा का भेद गहराया। कुछ लोग शासन के कृपापात्र बने। विभिन्न कारणों से वे शासन के सहयोगी रहे। अतः समय-समय पर उन्हें विभिन्न उपाधियाँ देकर सम्मानत किया गया। निःसन्देह अपने क्षेत्र में वे अग्रगण्य थे।

कुछ उपाधियाँ पुश्तैनी थीं। परिवार का कर्त्ता उपाधिधारी कहलाता था। सेठ, शाह,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राय, चौधरी, मेहता आदि अलंकरण इसी कोटि के थे। इनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी सूचि बनाना असम्भव प्राय है। विशिष्ट उपाधियाँ व्यक्ति विशेष तक ही सीमित थीं जैसे जगतसेठ, नगर सेठ, राय साहब आदि।

भारत के स्वतंत्र होने के बाद आयाम बदल गये। जीवन के नाना क्षेत्रों में अग्रगण्य व्यक्तियों को सम्मानित करने की दृष्टि से पद्मश्री, पद्म-भूषण एवं पद्मविभूषण अलंकरण राष्ट्रपति द्वारा दिये जाने लगे। स्वतंत्र भारत में स्वयं सेवी संगठनों, सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं, विद्यापीठों ने भी उपाधियों से अनेक ओसवाल बन्धुओं को सम्मानित किया। उनमें समाज भूषण, साहित्य श्री, विद्यारत्नम्, समाज-सेवी आदि उपाधियाँ चर्चित हैं। उपाधिधारी महानुभावों की पूरी सूची उपलब्ध नहीं है।

उपलब्ध विवरणों के आधार पर कुछ अलंकरणों की सूची यहाँ दी जा रही है।

जगत सेठ, नगर सेठ, राय बहादुर, राय साहब, राजा, राय जादा, राव राजा, राजा बहादुर, दीवान बहादुर, शमशेर बहादुर महाराव, प्रवाल गोरखा दक्षिणबाहु, सर, सी० एस० आई०, कैसरे हिन्द, सितारे हिन्द, पद्म विभूषण, पद्म भूषण, पद्मश्री प्राप्त महानुभावों की सूची :

जगतसेठ

नाम	स्थान	समय	उपाधि-दाता
१. सेठ माणकचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १७७०)	बादशाह फर्रुखशियार
२. सेठ फतहचन्द गेहलडा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १७८०)	बादशाह मुहम्मदशाह
३. सेठ महताबचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १८१३)	बादशाह अहमदशाह
४. सेठ खुशालचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १८२३)	बादशाह शाह आलम
५. सेठ हरखचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् (१८३९)	अंग्रेज सरकार
६. सेठ इन्द्रचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १८७२)	अंग्रेज सरकार

रायजादा

१. सेठ थाहरू शाह भंसाली	लोद्रवा	(१७वीं सदी)	बादशाह अकबर

नगर सेठ

१. श्री शांतिदास जौहरी	अहमदाबाद	(संवत् १६६२)	बादशाह अकबर
२. श्री लक्ष्मीचन्द जौहरी	अहमदाबाद	(संवत् १७१७)	बादशाह औरंगजेब
३. श्री खुशालचन्द जौहरी	अहमदाबाद	(संवत् १७७६)	बादशाह मुहम्मदशाह
४. श्री माणकचन्द गेहलड़ा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १७७०)	बादशाह फर्रुशसियार
५. श्री प्रह्लादजी शिशोदिया	बेगूं (मेवाड़)	(संवत् १७७३)	महाराणा मेवाड़
६. श्री जीवनदास महणोत	रीयाँ	(संवत् १८२९)	जोधपुर नरेश
७. श्री नत्थू शाह	अहमदाबाद	(संवत् १८०५)	
८. श्री बखत शाह जौहरी	अहमदाबाद	(संवत् १८३७)	

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाम	स्थान	समय	उपाधि-दाता
९. श्री हेमाभाई जौहरी	अहमदाबाद	(संवत् १८७०)	
१०. श्री कनीराम सुराणा	कोटा	(संवत् १८९४)	झालवाढ़ नरेश
११. श्री प्रेमचन्द बापना	उदयपुर	(संवत् १९०८)	महाराणा मेवाड़
१२. श्री चम्पालाल बापना	उदयपुर	(संवत् १९२०)	महाराणा मेवाड़
१३. श्री कन्हैयालाल बापना	उदयपुर		महाराणा मेवाड़
१४. श्री नन्दलाल बापना	उदयपुर		महाराणा मेवाड़
१५. श्री बागमल ममैया	अजमेर	(संवत् १९१४)	
१६. श्री कालूराम लोढ़ा	सिरोही	(संवत् १९१६)	सिरोही नरेश
१७. श्री शिवजी राम लूणिया			जोधपुर नरेश
१८. श्री हिम्मतराम नागसेठिया	जालना	(संवत् १९३५)	बलून्दा ठाकुर
१९. श्री पनराज सुराणा	सिरोही	(संवत् १९६८)	जोधपुर नरेश
२०. श्री प्रेमा भाई	अहमदाबाद	(संवत् १९१४)	
२१. श्री मणि भाई	अहमदाबाद	(संवत् १९४३)	
२२. श्री चिमन भाई	अहमदाबाद	(संवत् १९५६)	
२३. श्री कस्तूर भाई	अहमदाबाद	(संवत् १९६९)	

राय बहादुर

१. श्री धनपतसिंह दूगड़	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९२२)	अंग्रेज सरकार
२. श्री लक्ष्मीपतसिंह दूगड़	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९२४)	अंग्रेज सरकार
३. श्री सिताबचन्द नाहर	अजीमगंज	(संवत् १९३२)	अंग्रेज सरकार
४. श्री मूलचन्द सोनी	अजमेर	(संवत् १९३४)	अंग्रेज सरकार
५. श्री विजयसिंह मेहता	मुणोत-किशनगढ़	(संवत् १९३४)	अंग्रेज सरकार
६. श्री बद्रीदास मुकीम	कलकत्ता	(संवत् १९३४)	अंग्रेज सरकार
७. श्री बुधसिंह दूधोरिया	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९४५)	अंग्रेज सरकार
८. श्री बिशनचन्द दूधोरिया	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९४५)	अंग्रेज सरकार
९. श्री समीर मल लोढ़ा	अजमेर	(संवत् १९४७)	अंग्रेज सरकार
१०. श्री मणिलाल नाहर	अजीमगंज	(संवत् १९५१)	अंग्रेज सरकार
११. श्री सोभागमल ढ़ढ़ा	अजमेर	(संवत् १९५२)	अंग्रेज सरकार
१२. श्री सुखराज फाफू	भागलपुर	(संवत् १९५४)	अंग्रेज सरकार
१३. श्री गणपत सिंह दूगड़	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९५५)	अंग्रेज सरकार
१४. श्री जवाहरचन्द सिंघवी	सिरोही (डीडू)	(संवत् १९५६)	अंग्रेज सरकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाम	स्थान	समय	उपाधि-दाता
१५. श्री लखमीचन्द बोथरा	कटंगी	(संवत् १९५७)	अंग्रेज सरकार
१६. श्री उम्मेदमल लोढ़ा	अजमेर	(संवत् १९५८)	अंग्रेज सरकार
१७. श्री धनपतसिंह नौलखा	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९६७)	अंग्रेज सरकार
१८. श्री लखमीचन्द छाजेड़	किशनगंज	(संवत् १९६८)	अंग्रेज सरकार
१९. श्री विशनदास दूगड़	जम्मू	(संवत् १९६८)	अंग्रेज सरकार
२०. श्री थानमल लूणिया	हैदराबाद	(संवत् १९७०)	अंग्रेज सरकार
२१. श्री हीराचन्द कोठारी	इन्दौर	(संवत् १९७१)	अंग्रेज सरकार
२२. श्री सिरेमल बापना	इन्दौर	(संवत् १९७१)	अंग्रेज सरकार
२३. श्री केशरीसिंह बापना	रतलाम	(संवत् १९७३)	अंग्रेज सरकार
२४. श्री पूनमचन्द श्रीमाल	कोटा	(संवत् १९७३)	अंग्रेज सरकार
२५. श्री छगनमल मुणोत	रीवाँ	(संवत् १९७४)	अंग्रेज सरकार
२६. श्री मेहरचन्द कोचर	मेहता-बीकानेर	(संवत् १९७५)	अंग्रेज सरकार
२७. श्री रामजीदास चोपड़ा	मजीठा	(संवत् १९८१)	अंग्रेज सरकार
२८. श्री बिरधमल लोढ़ा	अजमेर	(संवत् १९८३)	अंग्रेज सरकार
२९. श्री कुन्दनमल कोठारी	ब्यावर	(संवत् १९८४)	अंग्रेज सरकार
३०. श्री फूलचन्द मोघा		(संवत् १९८९)	अंग्रेज सरकार
३१. श्री मोतीलाल मूथा	सितारा	(संवत् १९९३)	अंग्रेज सरकार

राय साहब

१. सेठ चाँदमल महणोत	रीवाँ	(संवत् १९३४)	अंग्रेज सरकार
२. सेठ समीरमल लोढ़ा	अजमेर	(संवत् १९३४)	अंग्रेज सरकार
३. सर वशनजी त्रीकमजी लोडाया	बम्बई	(संवत् १९५५)	अंग्रेज सरकार
४. सेठ लखमीचन्द छाजेड	किशनगढ़	(संवत् १९६३)	अंग्रेज सरकार
५. सेठ धनपतसिंह नौलखा	अजीमगंज	(संवत् १९६७)	अंग्रेज सरकार
६. सेठ केसरीसिंह बापना	रतलाम	(संवत् १९६९)	अंग्रेज सरकार
७. सेठ कृष्णलाल बापना	जोधपुर	(संवत् १९७४)	अंग्रेज सरकार
८. श्री मेहरचन्द कोचर	बीकानेर	(संवत् १९७५)	अंग्रेज सरकार
९. सेठ कुन्दनमल कोठारी	ब्यावर	(संवत् १९७७)	अंग्रेज सरकार
१०. सेठ रावतमल चोरड़िया	बरेरा	(संवत् १९७८)	अंग्रेज सरकार
११. सेठ गोपीचन्द छाजेड़	किशनगढ़	(संवत् १९८०)	अंग्रेज सरकार
१२. सेठ पूनमचन्द सिंघवी	सिरोही (डीडू)	(संवत् १९८१)	अंग्रेज सरकार
१३. सेठ मेघराज कोठारी	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९८१)	अंग्रेज सरकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाम	स्थान	समय	उपाधि-दाता
१४. डा० रामजी दास चोपड़ा	मजीठा(पंजाब)	(संवत् १९८१)	अंग्रेज सरकार
१५. लाला टेकचन्द लोढ़ा	जंडियाला	(संवत् १९८४)	अंग्रेज सरकार
१६. बाबू लक्ष्मीचन्द सुचिन्ती	बिहार	(संवत् १९८७)	अंग्रेज सरकार
१७. सेठ मोतीलाल मूंथा (भंडारी)		(संवत् १९८८)	अंग्रेज सरकार
१८. लाला उत्तमचन्दजी दूगड़	पसरूर (पंजाब)	(संवत् १९८८)	अंग्रेज सरकार
१९. सेठ मिश्रीमलजी कोठारी	रेंठी (भोपाल)	(संवत् १९९२)	अंग्रेज सरकार

राजा

१. सेठ भारमल राक्यान	वैराठ	(संवत् १६३५)	बादशाह अकबर
२. सेठ सुखजी दूगड़	राजगढ़	(संवत् १७१९)	बादशाह औरंगजेब
३. सेठ अमरदत्त गोखरू	आगरा	(संवत् १७१९)	बादशाह औरंगजेब
४. सेठ उदयचन्द गोखरू	आगरा	(संवत् १७१९)	बादशाह औरंगजेब
५. सेठ डालचन्द गोखरू	आगरा	(संवत् १७१९)	बादशाह औरंगजेब
६. सेठ शिवप्रसाद गोखरू	बनारस	(संवत् १९४४)	अंग्रेज सरकार
७. श्री विजयसिंह दूधेरिया	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९६५)	अंग्रेज सरकार

राव राजा

१. सेठ शाहमल लोढा	जोधपुर	(संवत् १८४९)	जोधपुर नरेश

राजा बहादुर

१. सेठ थानमल लुणिया	हैदराबाद	(संवत् १९७०)	निजाम हैदराबाद

दीवान बहादुर

१. सेठ उम्मेदमल लोढ़ा	अजमेर	(संवत् १९७२)	अंग्रेज सरकार
२. सेठ थानमल लूणिया	हैदराबाद	(संवत् १९७९)	अग्रेज सरकार
३. सेठ केसरीसिंह बापना	रतलाम	(संवत् १९८२)	अंग्रेज सरकार

शमशेर बहादुर

१. सेठ शाहमल लोढ़ा	जोधपुर	(संवत् १८४९)	जोधपुर नरेश

महाराव

१. श्री हिन्दूमल बैद	बीकानेर	(संवत् १८८८)	बीकानेर नरेश

प्रवल गोरखा दक्षिण बाहु

१. सेठ रामलाल गोल्छा	विराटनगर	(संवत् २०२०)	नेपाल नरेश
२. सेठ हंसराज गोल्छा	विराटनगर	(संवत् २०४२)	नेपाल नरेश

सर नाइट (Sir knight)

१. श्री सिरेमल बापना	इन्दौर	(संवत् १९९३)	अंग्रेज सरकार
२. श्री वसनजी त्रीकमजी लोडाया	सुथरी	(संवत् १९६८)	अंग्रेज सरकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नाम	स्थान	समय	उपाधि-दाता
सी० एस० आई०(C.S.I)			
१. श्री विशनदास दूगड़	जम्मू	(संवत् १९७७)	अंग्रेज सरकार
सी० आई० ए०–कैसरे हिन्द			
१. सेठ नरपत सिंह दूगड़	मुर्शिदाबाद	(संवत् १९५५)	अंग्रेज सरकार
२. श्री सिरेमल बापना	इन्दौर	(संवत् १९८८)	अंग्रेज सरकार
सी० आई० ई०–सितारेहिन्द			
१. श्री शिवप्रसाद गोखरू	बनारस	(संवत् १९३१)	अंग्रेज सरकार
२. मेहता पन्नालाल बछावत		(संवत् १९३७)	अंग्रेज सरकार
३. सेठ चाँदमल ढ़ढ़ा	बीकानेर	(संवत् १९५९)	अंग्रेज सरकार
४. श्री विशनदास दूगड़	जम्मू	(संवत् १९७२)	अंग्रेज सरकार
पद्मविभूषण			
१. डा० मोहनसिंह मेहता	उदयपुर	(संवत् २०२६)	भारत सरकार
२. डा० विक्रम सारभाई	अहमदाबाद	(संवत् २०२९)	भारत सरकार
३. डा० जीवराज मेहता	बम्बई	(संवत् २०२९)	भारत सरकार
४. डा० दौलतसिंह कोठारी	उदयपुर	(संवत् २०३०)	भारत सरकार
पद्मभूषण			
१. श्रीमती हंस जीवराज मेहता	बम्बई	(संवत् २०१६)	भारत सरकार
२. डा० दौलतसिंह कोठारी	उदयपुर	(संवत् २०१९)	भारत सरकार
३. डा० विक्रम साराभाई	अहमदाबाद	(संवत् २०२३)	भारत सरकार
४. सेठ कस्तूर भाई लालभाई	अहमदाबाद	(संवत् २०२६)	भारत सरकार
५. पं० सुखलाल संघवी	अहमदाबाद	(संवत् २०३१)	भारत सरकार
पद्मश्री			
१. मुनि जिन विजयजी	चित्तौड़	(संवत् २०१८)	भारत सरकार
२. श्री भगवत सिंह मेहता	जयपुर	(संवत् २०१८)	भारत सरकार
३. श्रीमती मृणालिनी साराभाई	अहमदाबाद	(संवत् २०२२)	भारत सरकार
४. श्री देवीलाल सामर	उदयपुर	(संवत् २०२५)	भारत सरकार
५. श्री आनन्दराज सूराणा	जोधपुर	(संवत् २०२८)	भारत सरकार
६. सेठ मोहनलाल चोरड़िया	मद्रास	(संवत् २०२९)	भारत सरकार
७. डा० नन्दलाल लक्ष्मीलाल	बोर्दिया	(संवत् २०३०)	भारत सरकार
८. श्री बालकृष्ण विठ्ठलदास डेसी	अहमदाबाद	(संवत् २०३३)	भारत सरकार
९. श्री कोमल कोठारी	जोधपुर	(संवत् २०४०)	भारत सरकार
१०. श्री शांतिलाल जैन	बनारस	(संवत् २०५०)	भारत सरकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परिशिष्ट

इतिहास की अमर बेल

ओसवाल

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अकबर—लेखक : विंसेट स्मिथ (हिन्दी अनुवाद--राहुल सांकृत्यायन)
अकबर एण्ड जैनिज्म—लेखक:एम० एस० रामास्वामी आयंगर
अकबर्स जैन गुरुज—लेखक : विंसेट स्मिथ (भंडारकर स्मृति ग्रंथ)
अगरवालों की उत्पत्ति—लेखक : भारतेन्दु रहिश्चन्द्र (१८९३)
अग्रवाल इतिहास परिचय—लेखक : बालचन्द मोदी
अथ महाजनाँ री जातां रौ छन्द (गुटका)—मथेन अमीचन्द रो कह्यो (नाहर ग्रंथागार--१८८३)
अन्धकार युगीन भारत का इतिहास—लेखक : डा० काशी प्रसाद जायसवाल
(अनुवाद : रामचन्द्र वर्मा)
अंचल गच्छ दिग्दर्शन—लेखक : पार्श्व (१९६८)
अंचल गच्छ ना ज्योतिर्धरो (गुजराती)—ले० श्री पार्श्व (१९७४)
अमर शहीद अमरचन्द बांठिया—लेखक : सूरजराज घाड़ीवाल (१९८६)
अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संग्रह—लेखक:जयंत विजय जी
अर्ली रिकार्ड्स आफ ब्रिटिश इंडिया—लेखक : जे. टालन्वायज व्हीलर (१८७८)
अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया—लेखक : विंसेट स्मिथ (१९२०)
अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा (आलेख)—लेखक : डा० सागरमल जैन
(श्रमण--अप्रैल मई १९८८)
अहिंसा का अग्रदूत (पत्रिका)—सम्पादक : केसरीचन्द सेठिया
अज्ञान तिमिर भाष्कर—लेखक : आचार्य आत्मारामजी
आईने अकबरी—लेखक : अबुल फजल
आगम पुरुष—ले० डा० नेमिचन्द्र जैन (१९९२)
आत्माराम शताब्दी स्मारक स्मारक ग्रंथ—
आनन्दघन ग्रंथावली—सम्पादक : उमरावचन्द जैन जरगड़ (१९७४)
आनन्द मठ— लेखक : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
आबू मन्दिरों का निर्माण—लेखक : ललित विजय जी
आबू जैन मन्दिरों के निर्माता—
आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया—दीटेम्पल्स आफ ओसिया (आलेख)—
लेखक : डी० आर० भंडारकर(१९०८-१९०९)
इतिहास के बोलते पृष्ठ—लेखक : मुनि छत्रमल जी (१९६१)
इतिहास तिमिर नाशक—लेखक:राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द (१८६७)
इंडियन एन्टीक्वेरी (खण्ड ७)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इंडियन एन्टीक्वेरी (खण्ड १९—दी पट्टावली आर लिस्ट आफ पोंटिफ्स आफ उपकेश गच्छ (आलेख)—लेखक : प्रो० ए० एफ० रूडोल्फ होर्नेल (१८९०)
इंसक्रिपसन्स आन स्टोन—लेखक : डा० के० वी० रमेश (१९७२-७३)
उपकेश गच्छ चरित्र—लेखक : श्री कक्क सूरि (१३३६)
उपकेश गच्छ प्राचीन पट्टावली—लेखक : श्री देवगुप्त सूरि (१३४५)
उपदेश कल्प वल्लरी—लेखक : श्री इन्द्र हंस गणि
उपमिति भव प्रपंच कथा—लेखक : आचार्य सिद्धर्षि (सम्पादन—पीटर पिटर्सन एवं डा० हरमन जैकोबी—१९१४)
एक युग : एक पुरुष—लेखक : ओमप्रकाश शर्मा (१९६९)
एटीन फिफ्टी सेवन (१८५७)—लेखक : सुरेन्द्रनाथ सेन (१९७७)
एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका—
एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटिज ऑफ राजस्थान—लेखक : कर्नल जैम्स टॉड (१८२९)
ऐतिहासिक पूर्वजों की गौरव गाथा—लेखक : चौकसी
एन एपीटॉम आफ जैनिज्म—लेखक : पूरणचन्द्र नाहर (१९१७)
ओघ निर्युक्ति वृत्ति : लेखक : द्रोणाचार्य
ओसवंश की ऐतिहासिकता—लेखक : मुनि ज्ञान सुन्दर जी (१९३५)
ओसवाल समाज निर्देशिका—सम्पादक : डा० खेमराज पिछोलिया (१९८४)
ओसवाल एंड ओसवाल फेमिली—लेखक : उमराव सिंह टांक (१९३२)
ओसवाल जाति का इतिहास—लेखक : सुखसम्पतराय भंडारी व अन्य (१९३४)
ओसवाल जाति समय निर्णय—लेखक : मुनि ज्ञानम सुन्दर जी (१९३५)
ओसवाल जाति का संक्षिप्त पद्यमय इतिहास : लेखक धीरजमल बछावत (१९२८)
ओसवाल जाति के इतिहास का परिवर्द्धित संस्करण (१९३७)
ओसवाल नववयुवक (पत्रिका)—
ओसवाल सुधारक (पत्रिका)— (१९३५)
ओसवाल (पत्रिका)—
ओसवाल : दर्शन दिग्दर्शन—लेखिका : श्रीमती मनमोहिनी जैन (१९७५)
ओसवाल दुर्दशा दर्पण : लेखक—खुशालचन्द्र खजांची
ओसवाल वंश अनुसंधान के आलोक में—लेखक : सोहन राज भंसाली (१९८१)
ओसवाल लोकां री आजकाल री स्थिति : लेखक—नैणसुख केवलचन्दाणी निमाणी (१८९०)
ओसवाल हितैषी (पत्रिका)—
ओसवाल समाज की परिस्थिति—लेखक : मूलचन्द बोहरा (१९२९)
ओसवालाँ री पीढ़ियाँ (ग्रंथांक २५)—डा० टैसीटरी का राजस्थानी ग्रंथ सर्वेक्षण (अनूप लाईब्रेरी, बीकानेर)
ओसवालोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान—लेखक : मुनि ज्ञान सुन्दर जी (१९३५)
ओसिया का वीर जिनालय (आलेख)—लेखक : विनयकुमार चोरड़िया (१९७७)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसिया की प्राचीनता (आलेख)—लेखक : प्रो० देवेन्द्र हाण्डा
(श्री केशरीमल सुराणा अभिनन्दन ग्रंथ—१९८२)
ओसिया तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास—लेखक : गुमानमल पारख (१९८५)
कच्छी दशा ओसवाल जैन जाति नो इतिहास—लेखक : हीरजी हंसराज कायाणी (१८९९)
कच्छी दशा ओसवाल प्रकाश— लेखक : कुसुमकांत टी० भाटे
कथा कोष प्रकरण—लेखक : मुनि जिन विजयजी
कर्मयोगी श्री केसरीमल सुराणा अभिनन्दन ग्रंथ—सम्पादक : डा. नथमल टांटिया (१९८२)
कादम्बिनी (पत्रिका)—
कुमारपाल चालुक्य—लेखक : डा० सत्य प्रकाश (१९७२)
कुमारपाल प्रतिबोध : लेखक—आचार्य सोमप्रभ सूरि
कुवलयमाला—लेखक : आचार्य उद्योतन सूरि
कुशल निर्देश पत्रिका—सम्पादक : भंवरलाल नाहटा
कोरंटा तीर्थ का इतिहास—लेखक : यतीन्द्र विजय जी
खरतर गच्छ के प्रतिबोधित गोत्र—लेखक : अगरचंद भँवरलाल नाहटा (१९३०)
खुमाण रासो : लेखक—कवि दौलत विजय
खतरगच्छ गुर्व्वावली
गच्छ मत प्रबन्ध—लेखक : आचार्य बुद्धि सागर सूरि
ग्वालियर के भामाशाह—अमरशहीद अमरचन्द बांठिया—रघुवीर सहाय
गहरो फूल गुलाब रो—लेखक : डा० महेन्द्र भानावत (१९७१)
गुर्जर देशाध्यक्ष सुन्दरदास—ले० श्री पार्श्व (१९७१)
चमकते चाँद—लेखक : मुनि धनराजजी
चाणक्य का अर्थशास्त्र—
चाँद (पत्रिका)—मारवाड़ी विशेषांक (१९३४-जब्त)
चार तीर्थंकर—लेखक : पं० सुखलाल संघवी
चुरु मंडल का शोध पूर्ण इतिहास—लेखक : गोविन्द अग्रवाल (१९७४)
छंदो-विद्या : लेखक—कवि राजमल
जगत सेठ—लेखक : पारसनाथ सिंह (१९५०)
जरनल एशियाटिक सोसाईटी ऑफ बंगाल—खण्ड-३५ (१) :
लेखक—क० डाल्टन (१८६६)
जम्मड़ भवन—लेखिका : श्री कँवर देवी जम्मड़ (१९८४)
जाति शिरोमणि (गुजराती)—लेखक : पार्श्व (१९७०)
जिनचन्द्र सूरि स्मृति ग्रन्थ—सम्पादन : अगरचन्द भँवर लाल नाहटा
जीवन और जागृति : लेखक—टोकरसीलाल कापड़िया (१९७२)
जैन प्रकाश पत्रिका—
जैन संस्कृति और राजस्थान—लेखक : डा० नरेन्द्र भानावत (१९७६)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन धर्म नो प्राचीन इतिहास—लेखक : पं० हीरालाल हंसराज (१९०२)
जैन और बौद्धों का भेद—लेखक : राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द (१८९७)
जैन वीरों का इतिहास—लेखक : अयोध्याप्रसाद गोयलीय (१९३०)
जैन धर्म के प्रभावक आचार्य—लेखिका : साध्वी संघमित्रा (१९७९)
जैन सम्प्रदाय शिक्षा—लेखक : यति श्रीपालचन्द (१९१०)
जैन जाति महोदय—लेखक : मुनि ज्ञान सुन्दर जी (१९२९)
जैन लेख संग्रह (तीन खंड)—लेखक : श्री पूरणचन्द नाहर (१९३८)
जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर—लेखक : विजयानन्द सूरि
जैन गोत्र संग्रह—लेखक : पं० हीरालाल हंसराज (१९२३)
जैन मत पताका—लेखक : यति शांति विजय
जैन जरनल (पत्रिका)—सम्पादक : गमेश ललवानी
जैन हिस्टॉरिकल स्टडीज्—लेखक : उमराव सिंह टांक
जैनिज्म इन राजस्थान—लेखक : कैलाशचन्द जैन (१९६३)
जैन मर्चेन्ट्स इन इस्टर्न इंडिया अंडर दी ग्रेट मुगल— लेखक : श्री सुरेन्द्र गोपाल
जैन डाईरेक्टरी—सम्पादक : श्री सी०एल० महता (१९७६)
जैन क्षत्रिय इतिहास—लेखक : रावत शेरसिंह (१९१३)
जैन इतिहास—लेखक : प्रो० बनारसीदास
जैन परम्परा का इतिहास—लेखक : मुनि नथमलजी (१९६०)
जैन धर्म का मौलिक इतिहास—लेखक : आचार्य हस्तिमल जी
जैन शिलालेख संग्रह--लेखक : हीरालाल जैन (१९२८)
जैपुर जैन श्वेताम्बर समाज डायरेक्टरी १९८४—सम्पादक : श्री सौभाग्यमल श्री श्रीमाल
जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह—लेखक : मुनि जिनविजय जी
जैन गुर्जर कवियों
जैन साहित्य नूँ संक्षिप्त इतिहास—लेखक : मोहन लाल दलीचन्द देसाई (१९३३)
जैन परम्परा नो इतिहास—लेखक : त्रिपुटी महाराज
जैसलमेर दिग्दर्शन—लेखक : दीनदयाल ओझा
जैसलमेर पंचतीर्थों का इतिहास—लेखक : मुनि प्रकाश विजय जी (१९७७)
डा० विक्रम साराभाई—लेखिका : डा० उषा जोशी (१९७४)
ठक्कर फेरू—लेखक : रामुला राजेश्वर शर्मा (श्री भंवरलाल नाहटा अभिनंदन ग्रंथ—१९८६)
तवारीख राज श्री बीकानेर—लेखक : मुंशी सोहनलाल
तित्थयर (पत्रिका)—सम्पादक : गणेश ललवानी
तिलक मंजरी—लेखक : धनपाल
तीर्थमाला (१५१६)
तीर्थ रक्षक सेठ शांतिदास—लेखक : रिषभदास रांका (१९७८)
तीर्थ दर्शन—प्रकाशक : श्री महावीर जैन कल्याण संघ (१९८०)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दर्शन सार—लेखक : आचार्य देवचन्द्र
दादा श्री जिनकुशल सूरि—लेखक : अगरचन्द भँवरलाल नाहटा (१९३९)
दानवीर जगडू शाह—लेखक : महात्मा छोगमल खजवाणा
दी डायनेमिक्स आफ ए ट्रेडिशन : कस्तुरभाई लालभाई एण्ड हिज
इंटरप्रेनरशिप—लेखक : द्विजेन्द्र त्रिपाठी (१९८१)
दी टेम्पल्स ऑफ शत्रुञ्जय—लेखक : जेम्स बरजेस (१८६९)
दी ट्राईब एण्ड कास्ट ऑफ बेंगाल (खंड २)--लेखक : एच० एच० रिसले (१९८१)
दी प्रेजेन्ट स्टेट आफ ओसवाल—लेखक : नैनसुख केवलचन्दानी (१८९०)
दी फ्यूचर आफ ओसवाल कम्यूनिटी—लेखक : अक्षयसिंह डाँगी (१९३२)
दी मारवाड़ीज—लेखक : थॉमस ए० टिमबर्ग (१९७८)
दी हेरिटेज ऑफ इंडिया (सिरीज)
नव साहसाक चरित—लेखक : पद्मगुप्त
नगर सेठ शांतिदास झवेरी (गुजराती)—लेखक : मालती शाह (१९८७)
नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबंध—लेखक : आचार्य कक्क सूरि (१३३६)
नामावली—लेखक : लक्ष्मीचन्द डूँगरवाल
नाहटा : बन्धु अभिनन्दन ग्रंथ—सम्पादक : दशरथ शर्मा (१९७६)
नाहर जन्म शताब्दी समारोह रिपोर्ट—जरनल आफ पी० सी० नाहर
इन्सटीट्यूट आफ जैनोलोजी (१९७८)
निजानन्द चरित्र : लेखक—प्राणनाथ सम्प्रदाय
निशीथ चूर्णि—लेखक : जिनदास गणि
नेपाल का शाह वंश और उनके पूर्वज (आलेख)—लेखक :
मुनि कनक विजय जी (जीवन साहित्य--१९५१)
पडिहारों का इतिहास—लेखक : मुंशी देवीप्रसाद
पश्चिमी भारत की यात्रा—लेखक : कर्नल जेम्स टॉड (१९३९)
प्रबंध चिन्तामणि—लेखक : आचार्य मानतुंग सूरि १३०५ (सम्पादन) : मुनि जिन विजय जी
प्रबन्धावली—लेखक : पूरणचन्द्र नाहर (१९३७)
प्रभावक चरित्र—लेखक : प्रभाचन्द्राचार्य : १२७७ (सम्पादक : मुनि जिन विजय जी—१९४०)
प्रभावक चरित्र प्रबन्ध पर्यालोचन—लेखक : मुनि कल्याण विजय जी
प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ--लेखक : डा० ज्योतिप्रसाद जैन (१९७५)
पलाशिर युद्ध (बंगला)—लेखक : नवीनचन्द्र सेन
पाँच पाट रास--लेखक : कवि उदयरत्न (स्व० मोहन लाल दलीचन्द देसाई संग्रह)
पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास--लेखक : मुन ज्ञान सुन्दर जी
प्राचीन कलिंग या खारवेल--लेखक : गंगाधर सामन्त
प्राचीन जैन इतिहास--लेखक : सूरजमल जैन
प्राचीन जैन इतिहास संग्रह--लेखक : मुनि ज्ञान सुन्दर जी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्राचीन जैन लेख संग्रह--लेखक : विजय धर्म सूरि जी
प्राचीन भारत--लेखक : हरिमंगल मिश्र (१९२०)
प्राचीन राज वंशावली--लेखक : पुरुषोत्तम दास गौड़
पुरातन प्रबन्ध संग्रह--सम्पादक : मुनि जिन वविजय जी
पूर्व कालीन ओसवाल ग्रंथकार--लेखक : अगरचन्द भंवरलाल नाहटा (१९३७)
प्रोग्रेसिव जैन्स आफ इंडिया--लेखक : सतीशचन्द्र जैन (१९७५)
बंगाल का आदि धर्म : लेखक--प्रबोधचन्द्रसेन
बछावत गोत्रीय मेहता वंश--लेखक : लक्ष्मण सिंह मेहता (१९८५)
बड़ा बजार के कार्यकर्त्ता--प्र० सम्पादक : राधाकृष्ण नेवटिया (१९८४)
बिजनेस कम्यूनिटी आप इण्डिया--लेखक : द्विजेन्द्र त्रिपाठी (१९८४)
बिब्लियोथिका इंडिका (राजस्थान सिरीज) : लेखक--डा० टेसीटेरी
बिब्लियोथिका इंडिका (उपमिति भव प्रपंच कथा)--स० पीटरसन एवं
डा० हरमन जैकोवी (१९१४)
बीकानेर जैन लेख संग्रह--लेखक : अगरचन्द नाहटा (१९८४)
बीकानेर राज्य का इतिहास--लेखक : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
भामाशाह और डा० ताराचन्द--लेखक : डा० राजेन्द्र प्रकाश भटनागर (१९८७)
भारत के प्राचीन राजवंश--लेखक : विश्वेश्ववर नाथ रेउ (१९२०)
भारत में मारवाड़ी समाज--लेखक : भीमसेन केडिया (१९४७)
भारतवर्ष का इतिहास--लेखक : एक इतिहास प्रेमी (१९३९)
भारतवर्ष का इतिहास--प्रकाशक : ज्ञान मण्डल, काशी
भाषा कल्प सूत्र की प्रस्तावना--लेखक : राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द
भीनमाल दर्शन--लेखक : भंवरलाल सेठिया(१९८१)
भीनमाल जैन इतिहास के पृष्ठों पर (आलेख) लेखक : धेवर चन्द माणेकचन्द
भोज प्रबंध : लेखक--वल्लाल पंडित
भूगोल हस्तामलक--लेखक : राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द
मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म--लेखक : हीरालाल दुग्गड़ (१९७९)
मंत्री कर्मचन्द्र वंशावली प्रबन्ध--लेखक : जयसोम पाठक (१५९३)
(हिन्दी अनुवाद--पं० मदनकुमार शास्त्री--१९८५)
महाजन वंश मुक्तावली--लेखक : यति रामलाल जी (१९१०)
महिला मृदुवाणी--लेखक : मुंशी देवी प्रसाद (१९०५)
माहेश्वरी कुल शुद्ध दर्पण--लेखक : शिकरण राम रतन दरक (१८९२)
मणिधारी जिनचन्द्र सूरि--लेखक : अगरचन्द भंववरलाल नाहटा (१९३९)
मानदेव सूरि प्रबंध (१८६९)
मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान : लेखक--जी० ए० ग्रीयर्सन
मारवाड़ के प्राचीन लेख--लेखक : मुंशी देवीप्रसाद

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मारवाड़ के परगनों को विगत--लेखक : मुणोत नैणसी
मारवाड़ राज्य का इतिहास--लेखक : कु० जगदीशसिंह गहलोत (१९२५)
मारवाड़ी समाज--लेखक : थॉमस ए० टिम्बर्ग (अनुवाद--देवलीना)
मारवाड़ी समाज : चुनौती और चिन्तन--लेखक : भंवरमल सिंघी (१९६५)
मीरजाफर—लेखक : प्रमोदकुमार अग्रवाल (१९८८)
मुन्तखाब-उत-तवारीख : लेखक--मौलवी अल बदाउनी
मुणोत नैणसी री ख्यात--प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा
(अनुवादक : रामनारायण दूगड़, सम्पादक गौ० ही० औझा--१९२४)
संशोधित संस्करण प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
मेहता नैणसी—लेखक : ब्रजमोहन जावलिया (१९८२)
मेजर मेकफरसन की डायरी--लेखक : रघुवीर सहाय
मेवाड़ के शासक और जैन धर्म : लेखक--जसवंत लाल मेहता
मैं अपने मारवाड़ी समाज को प्यार करता हूँ (१० खण्ड) लेखक : जैमिनी कौशिक बरुआ (१९६७)
मैं देखता चला गया--लेखक : कपूरचन्द कुलिश
मोहन चन्द्रिका
मोहनोत वंश प्रकाश--सम्पादक : डा० कृष्ण मोहनोत (१९७५)
यवन राजाओं का इतिहास--लेखक : मुंशी देवी प्रसाद
युग प्रधान श्री जिनदत्त सूरि--लेखक : अगरचन्द भंवरलाल नाहटा (१९४६)
युग प्रधानाचार्य गुर्वावली
राजपूताना का इतिहास--लेखक : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (१९२७)
राजपूताना की शोध खोज--लेखक : मुंशी देवी प्रसाद
राजपूताने का इतिहास--लेखक : जगदीश सिंह गहलोत
राजपूताने के जैन वीर--लेखक : अयोध्याप्रसाद गोयलीय
राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक--लेखक : शीतलप्रसाद
राजरसनामृत--लेखक मुंशी देवीप्रसाद
राजस्थान--लेखक : गोविन्द हयारण (१९३२)
राजस्थान के जैन ग्रन्थ संग्रहालय (आलेख)--लेखक : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल (१९७७)
राजस्थान की जातियाँ--लेखक : बजरंगलाल लोहिया (१९५४)
राजस्थान स्टडीज--लेखक : डा० जी० एच० शर्मा (१९७०)
राजस्थानी जातियों की खोज-
रायकुमार सिंह एवं अन्य बनाम सर सेठ हुकमचन्द एवं अन्य
(मुकदमा नं० ८, राजगिर--१९२४)
रीपोर्टेयर डेपीग्राफी : लेखक--डा० ए० गेरीयेनर (१९०८)
लाडनूं गौरव--लेखक : मुनि नवरत्नमल जी (१९८५)
वल्लभ भारती--लेखक : विनय सागर जी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विमल प्रबन्ध—
विविध तीर्थ कल्प--लेखक : आचार्य जिन प्रभसूरि (१३६४-८९)
वीर विनोद : लेखक--कवि राजा श्यामलदास
वीर वंशावली
वीर निर्वाण संवत् और जैन काल गणना--लेखक : मुनि कल्याण वियज जी
वीर शासन प्रवंध : लेखक--जेठमल सेवग
वैश्य कल्प द्रुम—
वृहत् कल्प भाष्य—
शत्रुञ्जय महात्म्य--लेखक : धनेश्वर सूरि
शत्रुञ्जय का रास--लेखक : उपाध्याय समय सुन्दर जी
श्वेताम्बर जैन दर्शन--लेखक : गणपतिराय अगरवाल (१९२८)
शक कालीन भारत--लेखक : प्रशांत कुमार जायसवाल
शासन समुद्र--मुनि नवरत्नमल जी
शिशुपालवधम्--लेखक : महाकवि माघ (टीकाकार-पं० हरगोविन्द शास्त्री)
स्याद्वादानुभव रत्नाकर--लेखक : आचार्य चिदानन्द स्वामी
स्टडीज इन साउथ इण्डिया जैनिज्म--लेखक : एम० एस० रामास्वामी आयंगर (१९२२)
स्थरविरावली चरित आफ हेमचन्द--सम्पादक : डा० हरमन जैकोबी (१९३२)
सकल तीर्थ स्तोत्र--लेखक : आचार्य सिद्ध सेन सूरि
सम हिस्टारिकल जैन किंग्ज एण्ड हीरोज--लेखक : कामता प्रसाद जैन
समरसिंह--लेखक : मुनि ज्ञान सुन्दर जी (१९३१)
समराईच्च कहा--लेखक : आचार्य हरिभद्र सूरि— सम्पादन एम० सी० मोदी--(१९३५)
सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रन्थ--सम्पादक : भंवरलाल नाहटा (१९६५)
सामोली शिलालेख (आलेख)--लेखक : बलवन्त सिंह मेंहता (अन्वेषणा--१९८७)
सिंध का इतिहास--लेखक : मुंशी देवी प्रसाद
सिरोही राज का इतिहास--लेखक : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
सूरीश्वर और सम्राट्--लेखक : मुनि विद्या विजय जी
सेठ मोतीचन्द शाह--लेखक : मोतीचन्द गिरधर लाल कापड़िया
हरिचन्द्रिका
हाउस ऑफ जगतसेठ--लेखक : जे० एच० लिटल (१९६७)
हिन्दी के निर्माता—लेखक : बाबू श्याम सुन्दर दास
हिन्दी विश्व कोष—
हिस्ट्री ऑफ इण्डिया--लेखक : सर जी० डनबर (१९४३)
हिस्ट्री ऑफ मुर्शिदाबाद डिस्ट्रिक्ट—लेखक : मेजर जे. एच. तुलवाल्स (१९०२)
हे प्रभो तेरापंथ--लेखक : सोहन राज कोठारी (१९८६)
श्रमण (पत्रिका) सम्पादक : डा० सागरमल जैन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रमण कुलतिलक आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज--लेखक : मिश्रीलाल जी महाराज (१९८१)
श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रंथ--सम्पादक : मुनि कला प्रभ सागर जी (१९८२)
श्री जैन गोत्र संग्रह— लेखक : पं० हीरालाल हंसराज (१९२३)
श्री पाल गोत्र (वसति पत्रक) : स० रमणीकलाल व० शाह (१९८२)
श्रीमद् राय चन्द : जीवन साधना--लेखक : मुकुल भाई कलार्थी
श्रीमाल जाति--एक परिचय--लेखक : राजेन्द्र कुमार श्रीमाल (१९८५)
श्रीमाल पुराण—
श्रीमाला महात्म्य (स्कंध पुराण)—
श्रीमाली वाणियाँ नो जाति भेद--लेखक : प्रो० मणिलाल बकोरभाई सूरतवाला
श्री वर्धमान पद्मसिंह चरित्र : लेखक--अमर सागर सूरि
श्री समग्र जैन चतुर्मास सूचि--सम्पादक : बाबूलाल जैन उज्ज्वल (१९९५)
त्रिषष्टी शलाका पुरुष चरित्र--लेखक : आचार्य हेमचन्द्र (सम्पादक—डा. हरमन जैकाबी—१९३२)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री मांगी लाल भूतोड़िया

जन्म :	लाडनूँ, १४ सितम्बर १९३४
पिता श्री :	तखतमल भूतोडिया
मूल निवास :	लाडनूँ (राजस्थान)-३४१ ३०६
शिक्षा :	साहित्यरत्न (१९५१), बी.ए. (१९५७) एम.ए. (१९५९), एल एल. बी (१९६०—स्वर्ण पदक)
अर्थ कर्म :	अधिवक्ता - उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) कलकत्ता एवं उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) नई दिल्ली।
रचनाकर्म :	कुमार प्रियदर्शी एवं किशोर उपनाम से विविध लेखन तरुण धर्मयुग, श्रमण, चौराहा, मुक्ता, समाज विकास विग्रह, विश्वमित्र आदि में प्रकाशित।

विशेष सृजन- 'ला रिफ्रेशर' (१९६३)
सम्पादन - शेष अशेष (१९८५)
पता - ७ ओल्ड पोस्ट आफिस स्ट्रीट कलकत्ता-१

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओसवाल जाति का इतिहास

प्रकाशक–

प्रियदर्शी पकाशन

७, ओत ीट

कल

(फोन

BN - 81-900389-1-5

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust